आरोग्यविधान

अर्थात्

आरोग्य रहने की रीति

WAY TO HEALTH

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद

१९१३ ई०

मूल्य =)॥

आरोग्य विधान

अर्थात्

आरोग्य रहने की रीति

भूमिका

—:o:—

आरोग्यता की क़दर

१—आरोग्यता अति उत्तम ईश्वरी देन है। आरोग्य रहने पर हम केवल अपना ही काम नही कर सकते वरन औरो की भी सहायता कर सकते है। रोग से बल घट जाता है और हम घर वालों को भार जान पड़ते हैं। संभव है कि रोग से पीड़ित होने पर राजा को भी अपने राजभवन में चैन न मिले, पर नीरोग, परिश्रमी मनुष्य को अपना जीवन कैसा अच्छा जान पड़ता है!

किसी लड़के का बीमार पड़ जाना भी कैसे शोक की बात है! स्कूल जाने और हँसी ख़ुशी के खेल खेलने के बदले उसे खाट पर पड़ा रहना पड़ता है और कदाचित् उसका शरीर ज्वर से फुँका जाता हो। जो उसकी बीमारी बहुत बढ़ जाती है तो सारे घर के लोगों को चिन्ता उत्पन्न हो जाती है।

जब किसी की मा बीमार पड़ जाती है तब और भी अधिक दुर्दशा होती है। अच्छी मा भली चंगी रहने पर दिन भर काम-काज में लगी रहती है। कड़ी बीमारी होने

पर वह चल फिर नहीं सकती और उसको औरों से अपना सारा काम कराना पडता है।

जब किसी का बाप बीमार पड जाता है तब कैसी विपत्ति होती है। बहुतों को अपने निर्वाह के लिये नित्य काम करना पडता है। बीमारी की अवस्था में परिश्रमी पुरुष कुछ कमा नहीं सकता और कदाचित् उसे डाक्टर की फीस और औषधि के दाम भी देने पडते हैं। ऐसी दशा में उसका ऋणी हो जाना सम्भव है जिससे उसके कुटुम्ब को बहुत दिनों तक कष्ट भोगना पडे। जो बाप मर जाय तो उसकी स्त्री विधवा और बच्चे अनाथ हो जाते हैं। यह कैसे शोक की बात है!

अब तुम जान लोगे कि यह कैसी आवश्यक बात है कि सब कोई आरोग्य रहने का उपाय करे। हम आरोग्यता के लाभ कदापि नहीं जान सकते जब तक आरोग्यता जाती न रहे।

रोग उत्पन्न होने के कारण

२—कोई २ आदमी यह समझते हैं कि बीमारी प्रारब्ध से या अचानक होती है और इसमें उनका वश नहीं चलता। परन्तु प्रारब्ध या अचानक कोई वस्तु नहीं है। जब हम बीमार पडते हैं तो उसका कुछ न कुछ कारण होता ही है।

आरोग्यता की विद्या के लाभ

(SANITARY KNOWLEDGE)

३—"सैनीटेरी" शब्द लाटिन भाषा के एक शब्द से निकला है जिसका अर्थ नीरोग है। "सैनीटेरी नालेज" वह विद्या है जो हम को आरोग्य रहने का उपदेश करती है। हम दूसरे देशों से जान सकते हैं कि रोगों के कम करने के लिये क्या २ युक्तियाँ की जा सकती हैं।

इस देश में सबसे अधिक प्रचलित बीमारी ज्वर है। वह या तो जाड़ा देकर आता है या गर्मी से चढ़ता है किसी न किसी समय प्रत्येक पुरुष को ज्वर आही जाता है। किसी समय में इंगलिस्तान के कई भागों में आदमी ज्वर से वैसे ही दुखी रहते थे जैसे कि अब हिंदुस्तान में हैं। परन्तु अब ऐसा बहुत कम होता है। सौ बरस के लगभग हुये कि इँगलिस्तान में इतने कोढी थे कि बड़े २ नगरों में उनके लिये अस्पताल बनाये गये थे, और अब एक भी नहीं है शीतला भी कैसा घिनौना और घातक रोग है। अगले समय में शीतला से गाँव के गाँव उजड़ जाते थे और इसके कारण मनुष्य जाति अनुमान से चौथाई कुरूप और अंधी हो जाती थी अस्सी बरस के लगभग हुये कि एक अंग्रेजी डाक्टर ने यह निर्णय किया कि गाय के थनों पर एक तरह का छाला निकलता है जिसका राद लगाने से शीतला रुक जाती है या उसका बल बहुत घट जाता है। पहिले की अपेक्षा अब इँगलिस्तान में बहुत कम आदमी मरते हैं और जो सब कोई सावधान रहें तो एक भी न मरे।

जो इस देश में भी इँगलिस्तान की तरह उपाय किये जाय तो यहाँ के निवासियों की आरोग्यता में वैसीही उन्नति हो सकती है। सब कोई यह जानता है कि आग जलती है परन्तु बहुतेरे अपने निर्बल और रोगी होने का कारण नहीं जानते। इस छोटी सी पुस्तक से तुम जान लोगे कि आदमी नीरोग और बलवान् कैसे रह सकता है। इसे सावधानी से पढ़ो और इसकी शिक्षा के अनुसार चलने का यत्न करो।

जीवन और आरोग्यता के लिये जिन २ बातों की हम को आवश्यकता है उनमें से प्रत्येक का वर्णन अलग २ किया जायगा

(१) साफ़ हवा

हवा और उसके संयोजक पदार्थों का वर्णन

४—विना खाये पिये हम कई दिन तक जी सकते हैं, परतु विना हवा के हम थोडे ही क्षण मे मर जाते है। जन्मतेही हमारा पहिला काम सांस लेना है जिससे हवा भीतर जाती है, और अंतिम काम सांस का वद हो जाना है जिससे हवा वाहर निकल जाती है। जन्म से मरने तक सोते जागते हम निरतर सॉस लिया करते है, इस लिये हवा ऐसी वस्तु है जो हमारे जीवन के लिये अत्यत आवश्यक है।

हम हवा को देख नहीं सकते और जव वह नहीं चलती तव हमको जान भी नहीं पडती। चलती हवा को आंधी कहते हैं। उस दशा में वह हमें जान पडती है और यह भी दिखाई देता है कि वह क्या काम करती है। कभी २ हवा इतने वेग से चलती है कि वडे २ पेडों को जड से उखाड कर फेंक देती है।

जैसे समुद्र की तली पानी से ढकी हुई है, वैसे ही सारी पृथिवी वायुमंडल से घिरी हुई है, जिसके नीचे हम कुछ २ वैसे ही चलते फिरते हैं जैसे पानी में मछलियॉ। वायुमडल की गहराई कम से कम सौ मील है, परन्तु जितना ही हम ऊपर चढते जाते हैं हवा हलकी होती जाती है।

जव हम कहवा का एक प्याला पीते हैं, तव प्राय. चार वस्तु, अर्थात् पानी, कहवा, चीनी और दूध, आपस में मिल जुल कर हमारे पेट में जाती है। वहुत दिन हुये कि लोग यह समझते थे कि हवा केवल एक ही वस्तु से वनी है। परतु विद्वानों ने अव यह वात सिद्ध कर ली है कि उसमें मुख्य पदार्थ चार

हैं जिनकी मिलावट वुद्धिमानी के साथ अद्भुत रीति से कही गई है।

५—हमारे चारों ओर तीन तरह के पदार्थ पाये जाते हैं। कुछ तो पत्थर और लकड़ी के समान हैं, जिन्हें "सालिडस" (दृढ़) कहते हैं, और कोई कोई पानी और दूध के समान हैं जिनको "लीकिड्स्" (द्रव) कहते हैं और जो हवा की भाँति हैं उन्हें "गैसेज़" (वायु) कहते हैं।

जिन गैसों से हवा वनी है उन्हें हम अलग कर सकते और तोल सकते हैं। उनमें से एक आक्सीजन कहलाता है। हवा का यही भाग जीवन का मुख्य आधार है विना आक्सीजन के दिया नहीं जल सकता। जो हवा निरे आक्सीजन ही से बनी होती तो हमारा जीना कठिन हो जाता। इसी लिये आक्सीजन में एक दूसरे तरह का गैस, जिसे नाइट्रोजन कहते हैं मिलाया गया है। इसमें और आक्सीजन में वड़ा अन्तर है। इसमें कोई जी नहीं सकता और इसमें रखने से जलता हुआ दिया तुरंत बुझ जाता है। यह दोनों गैस ऐसे परिमाण से मिलाये गये हैं कि हम साँस ले सकते हैं और पदार्थ जला सकते हैं। तुम्हारे हाथ में एक अंगूठा और चार अंगुलियाँ हैं। इससे तुम्हें इसके स्मरण रखने में सहायता मिलेगी कि हवा में प्रायः एक भाग आक्सीजन है और चार भाग नाइट्रोजन।

प्रायः सारी हवा इन्हीं गैसों से वनी है। इसमें दो भाग और भी हैं जो परिमाण में वहुत कम होने पर भी वड़े उपयोगी हैं।

६—तुम जानते हो कि कोयला क्या है। वह एक काले रंग का पदार्थ है जो लकड़ी को ढक कर जलाने से बनता है। चाँवल या मांस का भी एक तरह का कोयला बन सकता है। शुद्ध कोयले

को कार्बन कहते हैं। आक्सीजन और कार्बन के संयोग से जो वस्तु बनती है उसे "कार्बोनिक एसिड गैस" कहते हैं और यह तीसरी वस्तु है जो हवा में पाई जाती है। यह एक तरह का भारी गैस है जो कभी कभी सूखे कुओं की तली में इकट्ठा हो जाता है। इसमें जलती बत्ती डालने से बुझ जाती है और साँस के साथ इसके भीतर जाने से आदमी तुरंत मर जाता है। परन्तु पेडों का यही मुख्य भोजन है जिसके विना वे बढ़ ही नहीं सकते। यह गैस दिन रात पेड़ों में प्रविष्ट होता रहता है।

साफ़ हवा के २५०० भागों में एक भाग अर्थात् तेरह रुपये में लगभग एक पाई के बराबर कार्बोनिक एसिड गैस रहता है। इतने कम परिमाण से हमें कुछ भी हानि नहीं पहुँचती परन्तु अधिक रहने से हम दुर्बल और रोगी हो जाते हैं।

चौथी वस्तु जो हवा में पाई जाती है थोडी सी पानी की भाफ है। जो तुम किसी थाली में पानी भर कर रख दो तो वह धीरे धीरे उड़ जाता है। सूर्य की गर्मी सदा पानी को भाफ बनाकर ऊपर खींचा करती है जिससे बादल बनते हैं, ओस गिरती है और पानी बरसता है। जो हवा में पानी की भाफ न होती तो हमारा शरीर झुलस जाता और सब पेड सूख जाते।

हवा में जो चार वस्तु पाई जाती हैं यह है—आक्सीजन नाइट्रोजन, कार्बोनिक एसिड गैस और पानी की भाफ। जब यह ठीक रीति से मिली रहती हैं तब हवा साफ़ रहती है, जिससे हम नीरोग और पुष्ट रहते हैं।

(२) हवा के बिगड़ने के कारण

७—जीवन के लिए हमें केवल हवा ही की आवश्यकता नहीं है, किन्तु ऐसी हवा की जो साफ हो। संसार में बहुत तरह के विष होते हैं, परंतु जिस विष से बहुत आदमी मरते हैं वह कदाचित् बिगड़ी हुई हवा है। बहुत बरस हुये कि एक दिन १४६ आदमी कलकत्ते में रात के समय एक तंग कोठरी में, जिसे "ब्लैक होल" कहते हैं और जिसमें केवल दो ही खिडकियाँ थीं, बंद कर दिये गये। दूसरे दिन सवेरे जब किवाड़ खोले गये, केवल तेईस आदमी लरखराते हुए बाहर आये और शेष सब मरे निकले। उनके मरने का क्या कारण हुआ? बिगड़ी हुई हवा। यद्यपि इन बिचारे आदमियों की भाँति एक रात में बहुत कम आदमी मरते हैं, तौ भी साफ़ हवा न मिलने से बहुतेरे जीवन भर के लिये दुर्बल और रोगी हो जाते हैं।

जिन कारणों से हवा बिगड़ जाती है उनमें से कुछ का वर्णन किया जायगा।

(१) सांस लेना

हम सदा साँस लिया करते हैं, परन्तु जो हवा साँस के साथ भीतर जाती है और जो बाहर निकलती है, इन दोनों में अंतर है। जिनके स्वभाव में सफाई है वे हाथ मुँह धोने के सिवा नित्य नहाते भी हैं। परन्तु जो हवा साँस लेने में भीतर जाती है उससे सदा शरीर के भीतर का भाग शुद्ध होता रहता है और मैलापन दूर होता जाता है। यह कैसे होता है इसका थोड़ा सा वर्णन किया जाता है।

साँस लेने में हवा हमारे फेफड़े के भीतर जाती है जो स्पंज की भाँति हमारी छाती में है। हवा की नली में लाखों छोटी छोटी

नलियाँ जुड़ी हुई है जिनमें हवा भरी रहती है। उन्हीं से मिली हुई अगणित रक्त की रगें है। इनके बीच में ऐसी महीन झिल्ली है कि हवा और रक्त का स्पर्श होता रहता है। शरीर के सब भागों का मैल, जो रक्त में मिल जाता है, इस महीन झिल्ली के द्वारा निकल जाता है और शुद्ध आक्सीजन उसमें जा मिलता है। इस रीति से बिगड़ा हुआ काला रक्त साफ़ और लाल हो जाता है।

८—जो हवा साँस के साथ बाहर निकलती है उसके साथ नीचे लिखी हुई तीन वस्तु भी निकला करती है।

१—"कार्बोनिक एसिड गैस"—साफ़ हवा में इसका बहुत थोडा परिमाण रहता है, परन्तु जो हवा साँस के साथ बाहर निकलती है, उसमें इसका परिमाण सौगुना के लगभग रहता है। हम इसे देख नहीं सकते, परन्तु यह साँस के साथ वैसे ही बाहर निकलता है जैसे आग से धुआँ। किसी बद जगह में आग जलती रहे तो वह थोडी ही देर में धुँएँ से भर जायगी। इसी प्रकार जो हम किसी बद कमरे में सोयें तो हमारे आस पास की हवा कार्बोनिक एसिड गैस से भर जायगी। जो साफ हवा भीतर न जाय तो हम तुरत मर जायँगे। परन्तु द्वार के ऊपर नीचे से कुछ बिगडी हुई हवा निकल जाती है और कुछ साफ़ हवा भीतर चली आती है।

२—पानी की भाफ—जो तुम स्लेट पर फूँक मारो तो उसमें सील या धुँधलापन आ जाता है, जिससे यह बात प्रकट होती है कि तुम्हारी साँस में पानी का अश है।

३—बिगडी हुई व्यर्थ वस्तु—जो पानी साँस में रहता है साफ़ नहीं होता। उसमें सडे हुए पदार्थ मिले रहते हैं जिनके शरीर पर लगने से रोग उत्पन्न होता है इससे भी उतनी ही हानि होती है जितनी कार्बोनिक एसिड गैस से होती है।

गाय, गोरू, बकरियाँ, कुत्ते और और जीव जन्तु हमारे समान साँस लेते हैं और उसी तरह उनसे भी हवा बिगड़ जाती है।

(२) पदार्थों का जलना

६—तुमको बता चुके हैं कि बिना आक्सीजन के आग नहीं जलती। जो दिया को तुम किसी बर्तन में रक्खो और फिर उस बर्तन को बन्द कर दो तो दिया तुरन्त बुझ जायगा, क्योंकि जितना आक्सीजन उस बर्तन की हवा में था, कार्बोनिक एसिड गैस के बनने में लग गया। इस भाँति आग और दिया से हवा बिगड़ा करती है।

(३) पदार्थों का सड़ना

जब कोई पौधा सूख जाता है तब जल्द सड़ने लगता है। उसमें से बहुत से हानिकारक गैस निकलते हैं और उनके परमाणु उड़कर हवा में जा मिलते हैं। जो हमारी आँखें हमारी नाक की तरह तीक्ष्ण होतीं तो हम जन्तु की सड़ी हुई बोथ से बहुतेरे छोटे २ परमाणु निकलते और हवा में फैलते देख सकते। जब ये परमाणु सांस लेने में भीतर जाते हैं तब स्पर्श से नाक को इनका अनुभव होता है।

केले के छिलकों और दूसरी तरह के कूड़े से जो घरों के पास फेंक दिये जाते हैं, हवा बिगड़ जाती है। कसाई, चमार और रंगरेजों के काम से भी हवा बिगड जाती है। लोथों के जलाने और गाडने की जगह घरों के पास न होनी चाहिये।

ज़मीन से भी भाफ निकला करती है। हवा थोड़ी बहुत मिट्टी में समा जाती है और यही निकल कर ऊपर की हवा में जा मिलती है।

जमीन में सील होने के कारण पदार्थ बहुत सड़ने लगते हैं। बहुधा ऐसा अनुमान किया जाता है कि सडी हुई वनस्पति अर्थात् सूखे पत्ते पौधे आदि ज्वर के मुख्य कारण हैं।

सांस लेना, जलना और सडना हवा के बिगाड के तीन मुख्य कारण हैं।

(३) हवा के साफ रखने की रीति

१०—जो हवा के साफ करने के उपाय न होते तो यह जगत् थोडे ही काल में बसने के योग्य ही न रह जाता। मुख्य उपाय नीचे लिखे जाते हैं।

(१) गैसों का आपस में मिलना

जो तुम थोडा सा दूध पानी में डालो तो वह पानी में मिल जायगा। धुआँ जो आग से निकलता है तुरन्त हवा में फैल जाता है यहाँ तक कि कुछ दिखाई नहीं देता। यही दशा बिगडी हुई हवा की है जो हमारी सांस के साथ निकलती है। यह आस पास की साफ हवा में मिल जाती है और मिलकर जितनी हलकी होती जाती है उतनी ही कम हानिकारक होती है।

(२) आँधी

सडे हुये पदार्थों से जो दुर्गंध उठती है उसको आँधी उडा ले जाती है और हवा को साफ और ताज़ा कर देती है।

(३) पौधे

पशुओं के सांस लेने से आक्सीजन भीतर जाता है और कार्बोनिक एसिड गैस बाहर निकलता है। दिन में पौधे कार्बोनिक एसिड गैस को अलग करके कार्बन को सोख लेते हैं और आक्सीजन को निकाल देते हैं। इससे हवा की सफाई

में बहुत सहायता मिलती है। यह बात ठीक है कि रात में पौधे में आक्सीजन समा जाता है और कार्बोनिक एसिड गैस बाहर निकल आता है, परन्तु प्रविष्ट होने की अपेक्षा आक्सीजन अधिकतर बाहर निकलता है। तिस पर भी उस कमरे में जहाँ पौधे हों, सोना अच्छा नहीं।

गैसों के आपस में मिलने से, आँधी और पौधों से हवा साफ़ होती है। पानी बरसने से भी सहायता मिलती है।

(४) ताज़ी हवा मिलने के उपाय

११—हम बता चुके हैं कि ताज़ी हवा से बहुत लाभ हैं। शरीर और सड़े हुये पदार्थों से जो हानिकारक वस्तु निकलती हैं इससे दूर हो जाती हैं। आरोग्यता और पुष्टता में हमें इससे बहुत सहायता मिलती है।

सदा इसी उद्योग में लगे रहो कि ताज़ी हवा बहुतायत से मिला करे। दिन में हम बहुधा बाहर जाते हैं और रात में कमरों में सोते हैं। रात में ताज़ी हवा मिलने की विशेष आवश्यकता है। यह कैसे हो सकता है इसका वृत्तान्त घरों के वर्णन में लिखा जायगा।

कूड़ा और सड़े हुये पदार्थों से हमारे आस पास की हवा का बिगड़ना ठीक नहीं। यद्यपि हम उनसे तुरन्त ही नहीं मर जाते, तौभी उनसे हानि तो होती ही है। तीक्ष्ण विष से तुम तुरन्त मर जाओगे, परन्तु थोडा सा भी विष खा लेना मूर्खता की बात है।

भले चंगों की अपेक्षा रोगियों से हवा बहुत जल्द बिगड़ जाती है। इस लिये रोगियों को बहुतायत से साफ हवा की आवश्यकता है।

बाहर बहुत सी साफ हवा मिलने पर हमारे शरीर के भीतर यथेष्ट निर्मल वायु जाना चाहिये। स्पज या कपडे का टुकडा ढीला रहने पर बहुत पानी सोख लेता है। जितना ही अधिक स्पंज को दबाओगे उतना ही कम पानी उसमें समायेगा। ठीक यही दशा हमारे फेफडे की है। जितना कम दबाव उस पर पडेगा, उतना ही हवा का अधिक प्रवेश उसमें होगा, जिससे रक्त का अधिक संशोधन होगा। लिखने या काम करने के समय झुकना उचित नहीं क्योंकि इससे फेफडा दब जाता है और हवा का भीतर जाना रुक जाता है। शरीर सीधा रखने से आरोग्यता बढ़ती है।

---

(२) साफ़ पानी

(१) पानी की आवश्यकता

१२—प्रत्येक जीव जन्तु और वनस्पति के लिये पानी की आवश्यकता है। बिना पानी के जीव जन्तु मर जाते हैं। और वनस्पति सूख जाती है।

हमारे शरीर में अधिक भाग पानी का है। जो कोई आदमी तौल में ७५ सेर हो तो उसमें ५६ सेर पानी होगा। इसके अच्छे २ प्रमाण हैं। जब हम खाते हैं तब खाना हमारे पेट में मांड के सदृश बन जाता है। उपयोगी भाग जो दूध के समान होता है, रक्त बन जाता है और व्यर्थ भाग बाहर निकल जाता है। छोटी २ नलियों के द्वारा रक्त शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँच जाता है, जिससे उसका पोषण होता है। पानी का अंश जितना चाहिये उतना न होता तो रक्त इतना गाढा हो जाता कि छोटी २ नलियों में होकर, जिनमें से बहुतेरी बाल से भी महीन हैं, न बह सकता। जो पानी हम

पीते हैं वह रक्त में मिलकर शरीर के प्रत्येक अंग में पहुँच जाता है। पानी अच्छा न मिले तो हमारी आरोग्यता में अवश्य हानि पहुँचेगी।

बहुत से आदमी अच्छे पानी के लाभ बहुत कम जानते हैं। जब कोई आदमी विदेश जाकर बीमार पड़ जाता है, तब वह अपनी बीमारी का कारण पानी ही बतलाता है। परन्तु आदमी अपनी जन्मभूमि में रहने पर भी दूषित पानी के कारण बीमार पड जाते हैं। इस तरह बहुत से रोग उत्पन्न होते हैं। साफ पानी की भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी साफ़ हवा की है।

सफ़ाई के लिये पानी बड़ा उपयोगी है। हम इससे अपनी देह धोते हैं। बरसाती पानी से पौधे धुल जाते हैं और उनमें रस आजाता है। पृथिवी पर पानी बहने से उसका मैलापन दूर हो जाता है।

(२) पानी मिलने के मुख्य कारण

(१) बरसात का पानी

१३—पानी मिलने का आदि कारण बरसात है। सब नदियाँ समुद्र मे जाकर गिरती हैं तिसपर भी वह भर नही जाता। इसका क्या कारण है? "जहाँ से नदियाँ आती है वहीं फिर लौट जाती हैं"।

सूर्य की गर्मी से पानी भाफ बनकर ऊपर उठता है, जिससे ओस, मेंह, या बर्फ़ बन जाता है। जब पानी बरसता है तब उसमें से कुछ जमीन पर बहकर नदियों और तालावों में चला जाता है और बहुत सा ज़मीन में समा जाता है, जिससे उसमें सील बनी रहती है और कुओं और सोतों में भी पानी उबलने लगता है, जैसे हिमालय की चोटियों पर, जहाँ ठंढ बहुत होती

है, पानी बर्फ़ होकर गिरता है, जो गर्मी की ऋतु में पिघल जाता है।

बरसात में नदियाँ उमडती हैं और तालावों और कुओं में पानी चढ आता है। गर्मी के दिनों में नदियों और तालावों का पानी घट जाता है और सूख भी जाता है।

इस तरह पानी का हेर फेर हुआ करता है। वह नदियों में बहकर समुद्र में जाता है और फिर भाफ बनकर लौटता है और पानी होकर बरसता है और फिर समुद्र में चला जाता है।

बरसने के समय पानी बहुत कुछ निर्मल रहता है। कभी कभी छतों का पानी भर लिया जाता है, परन्तु मिट्टी, चिडियों की बीट और मैली वस्तु मिली रहने से पानी कुछ कुछ बिगड जाता है, पर जब छत चौरस होती है तब बिगाड अधिक होता है। जब पानी जमीन पर बहता है तब उसमें मिट्टी और सडने वाली वस्तु मिल जाती हैं।

(२) नदियाँ

१४—प्रायः नदियों का पानी अच्छा होता है। बरसात में मिट्टी के बह आने से पानी मटमैला हो जाता है। पानी कुछ देर थिराने से निर्मल हो जाता है, या थोडी सी फिटकरी या निर्मली से जल्द साफ हो सकता है। दलदल या जंगल का पानी चाहे देखने में साफ भी जान पडे, तोभी उसमें प्राय सडी हुई वनस्पति मिली रहती है, जिससे ज्वर का आजाना सम्भव है। जो और पानी न मिल सके तो उसे औटा कर पीना चाहिये। इससे सडी हुई वनस्पतियों का विष दूर हो जाता है।

कपड़ों के धोने या पशुओं के नहलाने से नदियों का पानी विगड जाता है। यह काम वहाँ न होना चाहिये जहाँ से पीने के लिये पानी भरा जाता है किन्तु नदियों के बहाव की ओर कुछ दूर आगे बढ कर होना चाहिए।

मनुष्य प्रायः नदियों के किनारे या उनके पेटे में झाडा फिरते हैं, और पानी बरसने पर मैला बहकर नदी में चला जाता है। उन आदमियों की भी लोथें जो हैजा या शीतला से मरते हैं कभी कभी नदियों में डाल दी जाती हैं और जो लोथें उनके किनारे पर जलाई जाती हैं उनकी राख भी नदियों में फेंक दी जाती है। बहुधा नदियों से मैला डालने की जगह का काम लिया जाता है॥

ऊपर लिखे अनुसार बड़ी २ नदियों का पानी भी बिगड़ जाता है। यह बहुधा देखा गया है कि जब नदी छोटी होती है और बहाव कुछ भी नहीं होता, तो और भी अधिक हानि होती है। बहता पानी धीरे धीरे हवा से साफ़ हो जाता है।

आस पास की नदियों का पानी साफ़ रखने के लिये आद-मियों के उभारने को बहुत कुछ प्रयत्न करना चाहिए।

(३) तालाब

१५—तालाबों का पानी बँधे रहने के कारण जल्द बिगड़ जाता है, तिसपर भी बहुधा उनके साफ रखने में बड़ी असाव-धानी की जाती है। लोग तालावों में नहाते हैं, कुल्ला दतौन करते और थूकते हैं; कपडे धोते और रसोई के बर्तन मांजते है, किनारों पर झाड़ा फिर कर पानी लेते हैं, चौपाये और सुअर उनमें पडे रहते हैं और कभी २ पौधे भी उन में भिगोने के लिये डाल दिये जाते हैं। इतने पर भी उन्ही तालावों का पानी पीने और खाना बनाने के काम में लाया जाता है।

गर्मी में तालावों का पानी जो सूख जाता है या बहुत घट जाता है आरोग्यता में बाधा डालता है। हो सके तो घरों के पास के छोटे छोटे तालाबों को जो बेमरम्मत पड़े रहते हैं, पाट देना चाहिये। कैसी अच्छी बात हो कि गॉव वालों को उत्साह दिलाया जाय कि सब मिल कर पीने के पानी के लिये एक बडा गहरा तालाब खोद लें। मछलियों और हरे पौधे से तालावों का उपकार होता है, परन्तु गिरी हुई पत्तियों और सडे हुए पौधों से अपकार होता है। तालावों के पास मैला न रहना चाहिये, नहीं तो वह पानी बरसने पर बहकर उनमें चला जायगा, या जमीन में समा कर फिर उन्हीं में जा मिलेगा।

हो सके तो नहाने धोने और चौपायों के लिये दूसरा बडा तालाब बनाना चाहिये, किन्तु इसमें भी साफ पानी की चाह है। मैले पानी के धुले हुये कपड़ों से हानि होती है। आदमियों और पशुओं दोनों के लिये साफ पानी उपकारी है। बुरे पानी से पशुओं के कीड़े पड़ जाते और दूसरे रोग लग जाते हैं।

तालाब और नदियों के किनारे छोटे २ कुएँ खोदने से अच्छा पानी मिल सकता है। ज़मीन में छन कर पानी साफ़ हो जाता है।

(४) कुऐं

१६—प्राय. सब से अच्छे कुएँ वही होते हैं जिनके पानी के सोते बहुत गहराई में होते हैं। बहुत से कुएँ जिनमें जमीन के ऊपर का पानी बहकर जाता है, निकम्मे होते हैं। बहुधा जमीन में बहुत दिनों का कूड़ा इकट्ठा रहता है, उसमें होकर आने से पानी बिगड़ जाता है।

हिन्दुस्तानी कुओं में सधारण दोष यह है कि उनमें ऊपर का पानी बह कर चला जाता है। कभी कभी उनके चारों

और जगत नहीं होती, परंतु ऐसे गड़हे होते हैं जिनमें गिरा हुआ पानी भर जाता है। इस तरह कीचड़ और पशुओं का मल मूत्र कुएं में चला जाता है।

कुएँ पर जगत होना चाहिये और उसके आस पास की ज़मीन बाहर की ओर से ढलवाँ होनी चाहिये कि जो पानी गिरे वह जाय। थोडे से ईंटों के रोड़े चूना मिलाकर जगत के चारों ओर कूट देने से बड़ा लाभ होना है। कुओं पर नहाना धोना ठीक नहीं। उन पर पेड़ों की छाँह भी न होनी चाहिये, क्योंकि पत्तियाँ पानी में गिर कर सड़ने लगती हैं। कुएँ का मुँह बंद रखने से बहुत बचाव होना है।

पानी भरने के बर्तन और रस्सियाँ साफ़ होनी चाहियें। कुओं को गिरे हुये ठिकड़े और कूड़ा निकालने के लिये कभी २ उगारना भी चाहिये।

नालियों और संडासों के मैले से विशेष हानि होती है। कोई २ बहुत ही बुरी बीमारियाँ उस पानी के पीने से हो जाती हैं जिसमें मुहरियों या आदमियों के पेट से निकली सड़ी हुई वस्तु मिली रहती है। कुओं के पास के सडास सावधानी से साफ़ कराके बंद कर देना चाहिये। कुएँ के पास किसी तरह का मैला रहने से हानि होती है, क्योंकि उसकी दुर्गंध पानी मे समा जाती है।

(३) पानी के साफ़ करने की रीति

१७—अच्छा पानी साफ़ होता है। इसमें न तो किसी तरह का स्वाद होता है, न गंध होती है और न कोई सडने वाली वस्तु मिली रहती है। जब पानी में चूना या कोई और धातु मिली रहती है, तब उसे "भारी पानी" कहते हैं और जब उसमें किसी धातु का अंश नही होता या बहुत ही कम होता है, तब उसे

"हलका पानी" कहते हैं। हलका पानी खाना बनाने और धोने के लिये बहुत अच्छा होता है।

इँगलिस्तान में बड़े बडे नगरों की सडकों पर साफ़ पानी के नल लगाये गये हैं। हिंदुस्तान के कई नगरों में भी पानी मिलने का अब ऐसा ही प्रबंध किया गया है और कुछ दिनों में औरों में भी ऐसा ही हो जायगा।

हो सके तो साफ पानी लाओ और उसे साफ रक्खो। जो साफ पानी न मिल सके तो विना औटाये, ठंढा किये या छाने उसे न पिओ। छानने से पहिले पानी औटा लिया जाय तो और भी अच्छा होगा। छन्ने सहज में बन सकते हैं। दो मिट्टी के घडे ऊपर नीचे एक बाँस या लकडी की तिपाई पर रक्खो। ऊपर के घड़े की पेंदी में एक या दो छोटे २ छेद कर दो और आधे घडे में एक पर्त साफ बालू का और दूसरा साफ कोयले का रक्खो। ऊपर के घडे में पानी जिसे साफ़ करना है धीरे २ भर दो। वह बालू और कोयले के पर्तों में निथर कर नीचे के घड़े में बूँद २ टपकेगा। नीचे के घड़े का मुँह किसी छेददार बर्तन से ढक देना चाहिये कि उस में कुछ गिर न पड़े। बालू और कोयले को भी साफ़ करना चाहिये।

पीने के पदार्थों में पानी सब से उत्तम है। इससे प्यास बुझ जाती और हानि कुछ भी नहीं होती। मादक रसों से झूठी प्यास लगती है। जितना ही उन्हें पीते जाते हैं उतनी ही अधिक प्यास बढ़ती जाती है। उनके पीने से बहुतेरे मनुष्य नष्ट होगये हैं। उनको न छूनाही बहुत अच्छी बात है।

(४) नहाना

(१) नहाने की आवश्यकता

१८—शरीर यह चाहता रहता है कि जहाँ तक जल्द हो सके

व्यर्थ वस्तु उसमें से निकल जायँ वे दो तरह से निकला करती हैं अर्थात् साँस और खाल से।

यथोचित रीति से बनाये गये सब नगरों में नालियाँ होती हैं। नालियों के साफ़ रखने की सब से अच्छी रीति यह है कि उनमें पानी की धार बहा करे। हमारी खाल नालियों से भरी है जो ऐसी छोटी हैं कि आँख से दिखाई नहीं देतीं। एक रुपये के नीचे २००० के लग भग ढक जा सकतीं हैं। इन छोटी २ नालियों में पानी निरंतर बहा करता है जिसके साथ निकम्मी वस्तु बाहर निकला करती हैं। जब हम कड़ी मिहनत करते हैं तो परिमाण से अधिक पानी निकलता है और खाल के ऊपर उसकी बूंदें इकट्ठा हो जाती है जिसे हम पसीना कहते हैं। आदमी के शरीर से दिन भर में इतना पसीना निकलता है कि एक शराब की बड़ी बोतल भर जा सकती है। कभी २ इससे भी अधिक निकलता है। जो पानी बाहर निकलता है साफ़ नहीं होता। प्रतिदिन पानी के साथ आधे तोले के लग भग विषैली निकम्मी वस्तु निकल जाती है।

इन छोटी २ नालियों के मुँह खाल के धोने से खुले रहते हैं। मैल से वे बद हो जाते हैं; निकम्मी वस्तु ठीक रीति से नहीं निकल सकती; और बहुधा खुजली और दूसरी बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। साबुन से खाल बहुत साफ़ हो जाती है।

शरीर से निकली हुई निकम्मी वस्तु कपड़े और तकियों आदि में लग जाती है। खाल में रगड़ लगने से उसके भीतर चली जाती हैं और आरोग्यता में विघ्न डालती हैं। इसलिए कपड़ों और बिछौनों को शरीर के समान साफ़ रखना चाहिये।

(२) नहाने की रीति

१६—नीरोगियों को, चाहे पुरुष हों चाहे स्त्री, जहाँ तक बन

पड़े नित्य नहाना चाहिये। प्राय: नहाने के लिये सब से अच्छा समय सवेरे का होता है, परन्तु उन आदमियों को जिनकी देह काम करने से मैली हो जाती है, साँझ के समय नहाना उचित है। खाकर थोड़ीही देर पीछे नहाना अच्छा नहीं, यह पचाव में बाधा डालता है।

साफ पानी से नहाना चाहिये। लोगों का यह अनुमान है कि मैले पानी में नहाने से एक तरह का कीडा अर्थात् "गिनी वर्म" शरीर में घुस जाता है। नहाने के पीछे एक अगोछे से देह अच्छी तरह पोछ डालना चाहिये।

युवा और बलवान् पुरुषों के लिये ठडा पानी सबसे अच्छा है। ठढे पानी से नहाने के पीछे खाल भली भाँति पोंछ डालने पर भी यदि देह ठंढी बनी रहे तो जानना चाहिये कि गुनगुना पानी हितकारी होगा। जो लोग आँव या ज्वर की बीमारी से अच्छे होते ही ठढे पानी से नहा लेते हैं वे बहुधा फिर बीमार पड जाते हैं। जब तक शरीर में फिर बल न आजाय गर्म पानी को काम में लाना चाहिये। नहाने के समय ठढी हवा लगने से कभी २ ज्वर आने लगता है।

शरीर धो डालने से रोगी का चित्त प्रसन्न हो जाता है। एक अग को गुनगुने पानी से धोकर धीरे धीरे मलकर सुखाओ और ढकदो फिर दूसरे अग को धोओ, यहाँ तक कि सारी देह साफ़ हो जाय।

(३) अच्छा खाना

(१) खाने का प्रयोजन

२०—जो हमको खाना न मिले तो हमारा शरीर दुर्बल होता जायगा, यहाँ तक कि हम मर जायँगे। मांस कहाँ चला जाता है? पत्थर की मूर्ति को जो खाना न मिले तो

वह दुबली नहीं होती। इसका कारण यही है कि हम काम करते हैं और मूर्ति काम नही करती। प्रत्येक शब्द के बोलने और प्रत्येक पग के चलने में कुछ न कुछ कमी हो जाती है जो खाने से पूरी होती है।

देखने से जान पड़ेगा कि रेल का एंजिन गाड़ियों की पांति की पांति खीच ले जाता है। एंजिन में इतना अधिक बल कहां से आता है? उसके एक बड़ा मुँह है जिसमें समय समय पर लकड़ियाँ या कोयले झोंके जाते हैं मानो एंजिन कोयला खाता है, और यही कारण है कि वह काम कर सकता है। बिना कोयले के एंजिन बे हिले डुले खड़ा रहेगा। जिस बल से तुम काम करते हो वह खाने से उत्पन्न होता है जितना बल शरीर से निकल जाता है खाने से उतना ही फिर आ जाता है।

खाना खाने से केवल बल ही नहीं बढ़ता, किन्तु गर्मी भी उत्पन्न होती है। यद्यपि उसमें से लपट नही निकलती, तौभी वह हमारी छाती में आग के समान जलती रहती है। जो हम खाना न खायँ तो हमारे शरीर की गर्मी निकल जाती है। इसके विरुद्ध अच्छी तरह खाने से शरीर में गर्मी आ जाती है। प्रतिदिन शरीर में इतनी गर्मी उत्पन्न होती है कि जिससे घड़ा भर पानी औटा जा सकता है।

(२) खाने के पदार्थ

२१—स्मरण रखना चाहिये कि तरह २ का खाना खाने से शरीर पर तरह २ का असर होता है। जब कभी हो सके तो अनेक तरह के भोजन करना चाहिये।

खाने की हमें इसलिये आवश्यकता पड़ती है कि शरीर की कमी पूरी हो जाय, बल आवे और गर्मी बनी रहे।

शरीर के पुष्ट रखने के लिये जिन वस्तुओं की आवश्यकता है वह सब दूध से पूरी हो जाती है। जब बच्चे बड़े हो जाते हैं तब उनको दूसरा खाना दिया जाता है।

आदमी का मुख्य भोजन तरह २ के अन्न हैं। चांवल सबसे कम बलदायक भोजन है। गेहूं, ज्वार, बाजरा और मक्का इससे कहीं बढ़कर होते हैं। जो लोग इन्हें खाते हैं वे चॉवल खाने वाले से अधिकतर बलवान् और परिश्रमी होते हैं। थोडी दाल मिला देने से चॉवल अधिक पुष्टकारक हो जाता है। मांस मछली खाने से बल बढ़ता है।

जो लोग विशेष कर चाँवल, घी और मिठाई खाते हैं, मोटे हो जाते हैं और कड़ी मिहनत के योग्य नहीं रह जाते। उनके बाल जवानी में पक जाते हैं और उन्हें अनेक रोग लग जाते हैं। ठंढे देशों में गर्मी उत्पन्न करने वाले खाने की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु गर्मी के सिवाय और २ बातों के लिये शरीर को कुछ चिकनई की भी आवश्यकता है। बहुत चिकनई खाने से हानि होती है।

२२—अच्छी तरह पका हुआ फल उत्तम भोजन है। परन्तु जो फल कच्चा हो या बहुत ही पका हो तो उससे हानि होती है। पका हुआ खाना देर तक रखकर खाने से हानि होती है। किसी तरह का सड़ा बुसा भोजन कभी न करना चाहिये।

जब हैज़ा या मरोड़ (आँव) की बीमारी फैली हो तब खाने में सावधानी करनी चाहिये। जिस वस्तु से और समय में हानि नहीं होती उस समय में बीमारी और मौत का कारण हो सकती है। कच्चे फलों और कच्ची तरकारियों के बहुत खाने से बचाव रखना चाहिये। सब तरह के गरिष्ठ भोजनों

से भी बचना चाहिये। उनके अधिक खाने से आमाशय बिगड़ जाता है। मसाले आदि के थोड़ा खाने से लाभ होता है।

पान खाना जिसका इस देश में इतना चलन है मलिन और हानिकारक है। इससे दाँत बिगड़ जाते हैं और कभी २ नासूर पड़ जाता है। इसमें बहुत सा समय और द्रव्य व्यर्थ जाता है। इसको छोड़ना चाहिये।

किसी २ अवस्था में डाक्टर लोग तमाकू पीने का उपदेश करते हैं, परन्तु इससे प्रायः आरोग्यता को हानि पहुँचती है। जो रुपया इसमें उठाया जाता है, और २ कामों में भली भांति लगाया जा सकता है। तमाकू का पीना लड़कों के लिये विशेष कर अहित है। जो अभ्यास न डालोगे तो कभी उसकी चाह भी न होगी। अफ़ीम खाने या भांग पीने से बहुत हानि होती है।

जो खाना अच्छी तरह न पका हो तो उसके खाने से रोग उत्पन्न होता है। रसोई के तांबे या जस्त के वर्तनों के कसाव से लोग कभी २ बीमार पड़ जाते हैं। इनको साफ़ रखना चाहिये और जो तांबे के हों तो इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि कभी २ उन पर क़लई करा ली जाया करे।

(३) खाने की रीति

२३—यह बात बहुत आवश्यक है कि खाना नियम के अनुसार अवकाश देकर खाया जाय। ऐसा न किया जायगा तो जितना खाना आमाशय में जाता है उसको वह न पचा सकेगा, क्योंकि इसको भी शरीर के और अंगों के समान आराम करने का अवसर मिलना चाहिये *। हमको नियत

---

* खाने के पचाव में प्रायः तीन घंटे से पांच घंटे तक लगते हैं। कोई २ वस्तु औरों की अपेक्षा जल्द पच जाती है। चांवल साधारण रीति से एक घंटे में और मांस तीन घंटे में पचता है।

समय पर खाना चाहिये और दूसरी बार खाने से पहिले आमाशय को इतना अवकाश देना चाहिए कि पहिले का खाया हुआ पचा सके।

सवेरे काम पर जाने से पहिले थोड़ा सा खालेने से शरीर में बल बना रहता है और ज्वर नहीं आने पाता। हो सके तो दोपहर के समय अच्छा गर्म भोजन करना चाहिये और दूसरी बार साँझ के सात बजे तक खा लेना चाहिये। रात में देर करके न खाना चाहिये। पेट भर खाने के पीछे कुछ देर तक आराम करना उचित है।

संसार में कदाचित् कम खाने वालों की अपेक्षा बहुत खाने वाले अधिकतर मरते हैं। प्रायः धनी पुरुष परिमाण से अधिक खा लेते हैं। कंगालों को प्राय. पेट भर खाना नहीं मिलता और कभी कभी जब उन्हें अवसर मिलता है, तब. इतना अधिक खा जाते हैं कि उन्हें कष्ट भोगना पड़ता है। हमको अपना आमाशय कदापि भारी न रखना चाहिये। इससे हमारी हानि होती है।

निगलने के पहिले खाने को दाँतों से अच्छी तरह कुचल लेना चाहिये। इससे वह अच्छी तरह पच जाता है और बल बढ़ाता है। खाने के समय पानी थोड़ा थोड़ा पीना चाहिये।

---

(४) उजाला

२४—जो पेड अँधेरे में लगाये जाते हैं सफ़ेद और पीले देख पड़ते हैं। वे सदा उजाले में आने की चेष्टा करते रहते हैं। यही दशा आदमियों की भी है। जो अँधेरे में रहते हैं, पीले और निर्बल हो जाते हैं और अनेक रोगों में फँसने के योग्य हो जाते हैं। उनका मन भी दुखी रहता है।

सच तो यह है कि उजाला मन को भाता है और धूप की ओर देखना सुहावना जान पड़ता है। जो तुम चाहते हो कि पिंजरे में कोई चिड़िया न बोले तो पिंजरे को कपडे से ढक दो। चिड़ियाँ तभी बोलती हैं जब उनका चित्त प्रसन्न रहता है। अँधेरे में उनका मन मर जाता है। अँधेरे की अपेक्षा उजाले दिन में हमारे चित्त को भी अधिक आनंद होता है। ऐसा जान पड़ता है कि जब लोग बीमारी से चंगे होने लगते हैं तो उजाले में आने से उनका बल बढ़ता है।

अँधेरे घर में सदा बीमारी बनी रहती है। कहावत भी है कि "जहाँ उजाला नही जा सकता वहाँ डाक्टर अवश्य जाता है"। सूर्य के प्रकाश से घर के साफ़ रखने में सहायता मिलती है। इससे वस्तुओं का मैलापन प्रकट हो जाता है और लोगों को उनके साफ़ करने की चिंता होती है। उजाले से साँप और कीड़े मकोड़े दूर भागते हैं। स्त्रियों को ऐसी जगह में जहाँ उन्हें यथेष्ट हवा और उजाला न मिल सके, बद रखना कैसी दुष्ट और निठुर रीति है। इससे उनकी और उनके बच्चो की आरोग्यता में बाधा पड़ जाती है।

उजाला अच्छा है, परन्तु कड़ी धूप लगने से रोग उत्पन्न हो जाना सम्भव है। धूप में दौडने से प्राय. लडकों के सिर में दर्द होने लगता है। जिनको खेतों में काम करने का अभ्यास है कदाचित् उनको हानि न पहुँचे, पर औरों को चाहिये कि जब दिन के समय धूप में निकलें, तब एक छाता लगाये रहें और सिर का अच्छी तरह से बचाव रक्खें।

---

(५) यथोचित वस्त्र

२५—वायु जल (आब व हवा) के अनुसार कपड़े पहिनना चाहिये। दक्षिणी हिन्दुस्तान में गर्मी और जाड़े की ऋतुओं में

इतना अंतर नहीं होता जितना उत्तरी हिन्दुस्तान में होता है। बंगाले में बहुत से लोग जाड़े के दिनों में इस कारण मर जाते हैं कि उनके पहिनने के कपड़े जितने गर्म चाहिये नहीं होते। ठंढी हवा लगने से उन्हें ज्वर आ जाता है। फलालैन के कुर्ते नीचे पहिनने से बहुत बचाव होता है। जिनके पास धन नहीं है कदाचित् यह सोचते होंगे कि अनुकूल वस्त्र नहीं मोल ले सकते, परन्तु बीमार पड़ने पर उनका बहुत कुछ उठ जाता है। गहनों की अपेक्षा अच्छे कपड़ों में रुपया लगाना बहुत ही हितकारी है।

शरीर के अति सुकुमार अंग सिर और आँतें हैं। अच्छी पगड़ियों या शोले की टोपियों से सिर का धूप से बचाव होता है। विशेष कर रात में पेट के ऊपर कई पर्त कपड़ा लपेटने से बीमारी पास नहीं आती। जब ऋतु बदलती हैं तब विशेष कर सावधान होना चाहिये। प्रायः ऐसा होता है कि कोई दिन ठंढा होता है और कोई गर्म। ऐसी दशा में सर्दी लगने से बीमार पड़ जाना सम्भव है। दुर्बल बच्चों को बहुधा सर्दी हो जाया करती है।

आवश्यकता से अधिक कपड़े, भारी पगड़ी आदि, पहिनने से भी हानि हो सकती है।

दिनके पहिने हुये कपड़े रात को उतार डालना चाहिये। ऐसा करने से शरीर का पसीना जो उनमें लग जाता है सूख जायगा। सब कपड़े साफ़ रखना चाहिये।

भीगे कपड़े पहिन कर बैठना या सोना बहुत हानिकारक है। उन्हें न बदल सको तो जब तक वे सूख न जायें टहलते रहो।

---

(६) कसरत

(१) कसरत के लाभ

२६—अब कसरत के लाभ का कुछ वर्णन किया जाता है। हमारे शरीर के मोटे मोटे भाग; जिनकी सहायता से हम चलते फिरते हैं, पट्ठे कहलाते हैं। जब ये ठीक रीति से काम में लाये जाते हैं तब बढ़ते और पुष्ट होते हैं और जो इनसे काम न लिया जाय तो छोटे और निर्बल रह जाते हैं। किसी लोहार के दाहिने हाथ को उस सन्यासी के हाथ से, जो ऊपर उठा रहने के कारण पतला पडकर सूख जाता है मिलान करो।

जब हम आराम करते हैं तब प्रत्येक मिनिट में सोलह बार सांस लेते हैं। जब दौडते हैं तब जल्द जल्द सांस लेने लगते हैं जिससे अधिक हवा भीतर जाती है। इस रीति से रक्त अधिक शुद्ध होता है। दिल भी जल्दी जल्दी धड़कने लगता है और शरीर के सब अंगों में रक्त अधिक जाने लगता है और उनका बल बढ़ता है। कसरत से और तरह पर भी लाभ होता है। जब हम झपट कर चलते हैं या कड़ी मिहनत करते हैं तब पसीना निकलता है। यह वह पानी है जो खाल में होकर बाहर निकल आता है, जिसके साथ हमारे शरीर के भीतर की निकम्मी वस्तु निकल जाती है और आरोग्यता को बढ़ाती है। कसरत करने के पीछे हम खाना अधिक खा सकते हैं और उसको अच्छी तरह पचा सकते हैं।

उचित रीति से कसरत करने से हमारे शरीर का प्रत्येक अंग पुष्ट हो जाता है। कसरत न करने से लोग आलसी हो जाते हैं और थोड़े से परिश्रम का काम उन्हें भार जान पड़ता है। वे आप भी दुर्दशा में रहते हैं और दूसरों के काम के भी नहीं रह जाते।

(२) कसरत न करना

२७—सब कहीं लडके खेल कूद पसंद करते हैं। यह उनके लिये उपयोगी है। दौडने गेंद फेंकने और दूसरे खेलों से उनके हाथ पांव बलवान् होते हैं। चिल्लाने और हँसने से भी उनकी आरोग्यता बढती है।

कोई कोई लडके खेल में लगे रहने के कारण अपना पाठ नहीं सीखते, और कोई २ बहुत कम कसरत करते हैं। बहुत सी देशी पाठशालाओं में लडकों को बहुत देर तक बैठना पडता है और उनकी स्थिति में जितनी अदल बदल चाहिये नहीं होती। लडकों को स्कूल में कभी कभी खडे रहना और कभी बैठ भी जाना चाहिये।

युवा पुरुषों को, जो यूनीवर्सिटी की परीक्षाओं के लिये पढने में लगे रहते हैं कसरत न करने से बीमार पड जाने की सम्भावना होती है। उनमें से कोई कोई यह सोचते हैं कि सारा समय पढने ही में लगाना चाहिये। यह उनकी भूल है।

कभी कभी बढ़ई का समय अपने हथियार पैने करने में उत्तम रीति से व्यतीत होता है। मन दिमाग (भेजा) के द्वारा काम करता है। दिमाग में कसरत करने से अधिक रक्त पहुँचता है जिससे वह बलवान् हो जाता है। कभी कभी ऐसा हुआ है कि जिन लडकों ने कसरत की ओर ध्यान नही दिया, ऐसे बीमार पडे कि परीक्षा भी न दे सके। कोई कोई इसी तरह पर जन्म भर के लिये दुर्बल और बीमार बने रहते हैं।

सूर्य अस्त होने के समय अच्छी तरह गेंद बल्ले का खेलना बडा उपयोगी है। रस्सी छलांगने का खेल लडकियों के लिये बहुत ही अच्छा है।

लड़कों के समान लेखकों को भी जो दिनभर लिखा करते हैं, कसरत की आवश्यकता है।

परंतु खाली पेट या पेटभर खाने के पीछे तुरंत ही कसरत न करना चाहिये।

---

(७) नींद

(१) नींद की आवश्यकता

२८—विना सोये हम नहीं जी सकते। पुराने समय में लोगों के मार डालने की एक अत्यंत निठुर चाल यह थी कि उन्हें सोने नहीं देते थे।

जब हम दिनभर काम करते हैं तब रात को थक जाते हैं। शरीर और मन दोनों आराम चाहते हैं। जो कुछ हम काम करते हैं शरीर में उससे कुछ न कुछ कमी हो जाती है। सोने से यह कमी विशेष कर पूरी हो जाती है। जब लोग दिन भर किसी कुएँ से पानी भरते हैं पानी घट जाता है, परंतु रात में और इकट्ठा हो जाता है। रात भर आराम करने के पीछे दूसरे दिन सवेरे जब हम उठते हैं निपट नये जान पडते हैं। बलवान् और नीरोग रहने के लिये हमें पूरी नीद सोना चाहिये।

(२) सोने के नियम

कभी कभी निर्धन आदमी बहुत कम सोते हैं, और धनवान् बहुत देर तक सोया करते हैं। जवानों की अपेक्षा बालकों को अधिक सोना चाहिये। बच्चों को दिन में बहुत सोना चाहिये, बारह बरस तक के लडके या लड़की को नौ घंटे और जवान आदमी को सात घंटे के लगभग सोना चाहिये। किसी किसी को अधिक सोने की आवश्यकता है और किसी को कम।

सोने के लिये रात का समय सब से अच्छा है। दस बजे तक सोजाना और तड़के उठना चाहिये। समय पर सोने और समय पर उठने से आदमी नीरोग, धनवान् और बुद्धिमान् होता है।

दिन भर काम करना नींद्भर सोने का अति उत्तम उपाय है।

२६—सोने के थोड़े ही देर पहिले पेट भर न खाना चाहिये। इससे अच्छी तरह नींद नहीं पड़ती और बुरे बुरे स्वप्न दिखाई पड़ते हैं। आमाशय को कठिन परिश्रम होता है और दिमाग़ शांत नहीं रहता। स्वप्न तो व्यर्थ कल्पना है जो मन में उत्पन्न हुआ करती हैं और उनका कुछ अर्थ नहीं होता। उन पर कुछ ध्यान न देना चाहिये। उनसे यह जान पड़ता है कि दिमाग़ को जितना आराम चाहिए उतना नहीं मिलता।

जमीन पर सोने से खाट पर सोना अच्छा है। हो सके तो जमीन पर न सोओ। जब ज़मीन सूखी हो और गाँव में ज्वर न फैला हो तब कुछ हानि नहीं। जो ज़मीन में सील हो तो देह में दर्द होने लगता है या और कोई बीमारी पैदा हो जाती है। जिस हवा के कारण ज्वर आने लगता है नीचे रहती है और खाट की थोड़ी सी ऊँचाई भी उसके दूर रखने को बहुत है। रात के समय में साँप खाने की खोज में *निकलते हैं और सम्भव है जो लोग* ज़मीन पर सोते हैं उन्हें काट लें। जो किसी के पास खाट न हो और ज़मीन में सील हो तो कुछ सूखी पत्तियाँ या घास पात बिछा ले।

जैसा कि पहले कह चुके हैं तकियों और बिछौनों को साफ रखना चाहिये शरीर से निकली हुई निकम्मी वस्तु उसमें लग जाती है जिससे हानि होती है।

३०—रात के समय बहुत सी साफ़ हवा की आवश्यकता रहती है। तंग कमरों में सोने से हानि होती है। इसका वृत्तांत विस्तार से घरों के वर्णन में लिखा जायगा।

बहुतेरे आदमियों का ऐसा बुरा स्वभाव पड़ जाता है कि कपड़े से सिर लपेट कर सोते हैं। इससे साफ़ हवा भीतर नहीं जाने पाती।

गर्मी के दिनों में कहीं कहीं लोग खुले मैदान में सोयें और उनको हानि न पहुँचे। परन्तु जब ओस गिरती है तब बड़ी हानि होती है और ज्वर आने लगता है। ऐसी दशा में सिर के ऊपर बचाव के लिये कुछ रहना चाहिये।

जहाँ हवा के झकोरे देह में लगें वहाँ न सोना चाहिये। शरीर की गर्मी निकल जाती है और बीमारी दबा लेती है। जिन दिनों में ज्वर या हैज़ा फैला हो, रात के समय विशेष कर देह को गर्म रखना चाहिये।

---

(८) अच्छे घर

३१—आरोग्यता विशेषकर रहने के घरों और उनके आसपास की वस्तुओं के अधीन है। निर्धन लोगों को जैसे घर मिल सकते हैं लेने पड़ते हैं। उनमें से बहुतेरे घरों में कुछ न कुछ ऐसे उपाय किये जा सकते हैं कि जिससे आरोग्यता बनी रहे।

(१) घर बनाने की जगह

नीची ज़मीन में जहाँ पानी भर जाय घर न बनाना चाहिये। जहाँ तक हो सके ऊँची से ऊँची जगह पसंद करो। दलदल के पास की ज़मीन छोड़ देना चाहिये। सड़ी वनस्पतियों से निकली हवा ज्वर का विशेष कारण होती है। तालावों और नदियों के

पास घर बनाना उचित नहीं। सूखी जगहों में भी सब घरों की कुर्सी ज़मीन से दो तीन फुट ऊँची होनी चाहिये। इससे उनमें बरसाती पानी नहीं भरने पाता और न उनमें सील होने पाती है, जिससे बहुधा बीमारी होती है। निर्धन लोग भी अपने घर की कुर्सी इसी तरह पर ऊँची कर सकते हैं। छत इतनी ढलवाँ होनी चाहिये कि बरसाती पानी सहज में बह जाय।

घरों को ऐसा बनाना चाहिये कि उनमें होकर हवा बिना रुकावट आ जा सके। सकरी टेढ़ी गलियों से आरोग्यता को हानि पहुँचती है। घर पास पास न बनाना चाहिये।

कभी २ लोगों को सस्ते मिलने के कारण बुरी जगहों में बने हुये घरों के ले लेने का लालच होता है। परंतु अंत में ऐसे घर बड़े महगे पड़ते हैं, क्योंकि बीमारी में जो उठता है वह किराये की बचत से कहीं बढ़ जाता है। सीले घर की बुराइयाँ नीचे लिखे वृत्तांत से प्रकट होंगी।

(२) सीले घर

३२—एक कोई स्त्री अपनी बहिन से जो उसके यहाँ से दूर के प्रान्त में रहती थी मिलने गई। जब उसने घर वालों की कुशल क्षेम पूछी, उसकी बहिन ने कहा न जाने क्या कारण है कि इस घर में दुर्भाग्य घेरे रहता है। मेरा पति इतना बीमार है कि चला फिरा तक नहीं जाता। बहुत कम ऐसा होता है कि मुझे सर्दी न रहती हो। इसके सिवाय पारसाल हम सब को ज्वर आया था, जिससे हमारे दो प्यारे बच्चे मर गये। मैं नहीं कह सकती कि यहाँ किस दुर्भाग्य के कारण इतना क्लेश उठाना पड़ता है। इसका कारण यही हो सकता है कि हम बुरी घड़ी इस घर में आये।

उस स्त्री ने उत्तर दिया कि प्यारी वहिन! तुम अभागी नहीं हो, केवल निर्बुद्धि हो। तुम्हारे घरवालों के क्लेशों का यही कारण है कि तुम दलदल के पास सीले घर में रहती हो। जब तक तुम यहाँ रहोगी तुम्हारी यही दशा वनी रहेगी। उसकी वहिन ने कहा क्या सचमुच तुम ऐसा ही सोचती हो? जो तुम्हारा कहना ठीक है तो हम कलह हीं इस घर को छोड़ देंगे। परन्तु जहाँ कहीं हम जायँ, हम पर आपत्तियाँ वनी ही रहेंगी। भाग्य का लिखा कौन मेट सकता है?

इसके उत्तर मे उसकी समझदार वहिन ने कहा निस्संदेह हम पर सव कहीं विपति पड़ सकनी है, परन्तु यह हमारा काम है कि अपनी ना समझी से अपने ऊपर कोई आपत्ति न आने दें। तुम्हारे घर के क्लेशों का यही कारण है कि तुमने आरोग्यता की रक्षा की यथोचित चिन्ता नही की।

वहुत विनती के साथ वह अपनी वहिन के परिवार को दूसरे घर में, जो अच्छी जगह वना हुआ था, ले गई और वहाँ सवकी आरोग्यता वहुत अच्छी रही।

(३) हवा का संचार

३३—घर के लिये पहिली आवश्यक वात यह है कि साफ़ हवा वहुतायत से मिले। इसका होना आरोग्यता के लिये अत्यन्त लाभदायक है। वारकों और जेलखानों में प्रत्येक पुरुष के लिये वड़ी सावधानी से जगह नियत की जाती है। हो सके तो प्रत्येक स्त्री या पुरुष के लिये आठ फुट लम्बी और छः फुट चौड़ी अर्थात् अड-तालीस वर्ग फुट जगह मिलना चाहिये। जमाव एक जगह न होना चाहिये। जहाँ भीड़ भाड़ रहती है वहाँ, उस जगह की अपेक्षा जहाँ साफ़ हवा वहुतायत से मिलती है, दूने आदमी मरते हैं।

हवा के कम या अधिक आने के अनुसार जगह का प्रमाण होना चाहिये। बडे कमरे की अपेक्षा जहाँ हवा का सचार न हो छोटे कमरे में, जिसमें हवा निरन्तर आती जाती रहे, आरोग्यता अच्छी रहती है। दीवारों की दरारों और बहुत से झोपडों के छेदों में होकर हवा बे रुकावट आया जाया करती है।

ईंट के बने और चूना की अस्तरकारी के घरों में साफ़ हवा की आवश्यकता विशेष कर रहती है। ऐसे बहुतेरे घरों में केवल छोटी छोटी खिडकियाँ लगीं रहती हैं जो रात में याद करके बन्द कर दी जाती हैं। किसी किसी कमरे में खिडकियाँ नहीं रहतीं हैं, केवल एक छोटा सा द्वार रहता है। सोने वालों के कारण हवा बिगड जाती है और ठीक रीति पर उसका निकास न होने से कमरे में भरी रहती है।

जिन कमरों में लोग सोते हैं उनमें सब तरह के असबाब और खाने की वस्तुओं से भरे बर्तन रखने की बुरी चाल है। इस कारण जितनी हवा आनी चाहिये उससे भी कम आती है।

३४—रहने के कमरों में जब तक कोई धुआँरा या दूसरा मार्ग दूषित हवा और धुआँ के निकास का न हो, आग न जलाना चाहिये। दियों से भी हवा उतनी ही बिगड जाती है जितनी जीव जन्तुओं से बिगडती है।

सोने और बैठने के प्रत्येक कमरे में आमने सामने कम से कम दो खिड़कियाँ होनी चाहियें जिनमें होकर हवा आती जाती रहे। एकही खिड़की रखने से बेरुकावट उसका सचार नहीं हो सकता।

साँस से निकली हुई हवा आग से निकले हुये धुएँ की तरह ऊपर उठती है। छत के पास उसके निकलने के लिये

झरोखे होने चाहियें। झिलमिलीदार किवाडों से भी यह काम निकल सकता है। द्वारों के किनारे से कुछ हवा आ सकती है; परन्तु उनके नीचे कुछ झरोखे बना दिये जायँ तो इससे भी अधिक हवा आयेगी।

कमरे के भीतर रहने वाले बहुधा यह नहीं जानते कि हवा कब विगड़ जाती है। जब लोगों पर अफ़ीम का विष चढ़ जाता है, तब वे ऐसे सोते हैं कि कभी नहीं जागते। कुछ कुछ यही बात कार्बोनिक एसिड गैस से भी होती है। जो इसे सूँघते हैं अचेत हो जाते हैं। किसी कमरे मे यथेष्ट हवा है या नहीं, इस वात की जाँच इस तरह पर हो सकती है कि कोई वाहर से भीतर जाय जो उसमें ऐसी गन्ध हो कि दम घुटने लगे, तो जान लेना चाहिये कि हवा साफ़ नहीं है। अच्छी हवा मे किसी तरह की गन्ध नहीं होती। जब स्त्रियाँ अकेली रहें तब उनके कमरे बड़े होने चाहियें जिनमें हवा और उजाला बहुतायत से मिलें।

(४) घरों की सफ़ाई

३५—साल में कम से कम दो बार घरों को चूने से पुतवाना चाहिये। चूने से अच्छी तरह सफ़ाई हो जाती है। कच्ची दीवारों और फर्श को सातवें दिन चिकनी मिट्टी से लीपना चाहिये परन्तु उसमें गोवर मिलाना ठीक नहीं। गीली मिट्टी की अपेक्षा सूखी मिट्टी से कम हानि होती है। कमरों और बरामदों में बड़ी सावधानी से झाड़ू देना चाहिये। परन्तु नित्य धोने से सील हो जाती है जिससे हानि होती है।

(५) घर का कूड़ा

केले के छिलके और दूसरी तरह का कूड़ा घर के पास कभी न डालना चाहिये। जब उनका तुरन्त उठवाना असम्भव

हो तब एक अच्छा उपाय यह है कि एक मिट्टी का वर्तन, जिसका ढकना कसके बन्द हो सके, रक्खा जाय। दिन भर का कूडा उस वर्तन में डाला जाय और दूसरे दिन सवेरा होते ही साफ़ कर डाला जाय। किसी किसी नगर में अब कूड़ा ले जाने के लिये गाडियाँ रहती हैं। जहाँ ऐसा प्रवन्ध नही है वहाँ घर से दूर किसी गडहे में कूडा फेंकवा देना चाहिये। कूडा जितनी दूर फेंका जायगा, उतनी ही उससे कम हानि होगी। परन्तु बहुत से लोग अपने द्वारों के पास गड़हे खोद कर उनमें कूडा डालते हैं जहाँ कि वह सड़ा करता है। गडहों को इसलिये इतना पास खोदते हैं कि जब उनमें कुछ फेंकना हो तो दूर जाने के कष्ट से बच जायें। उन लोगों को दुर्गन्ध का ऐसा अभ्यास हो जाता है कि वे उसकी ओर ध्यान ही नहीं देते। परन्तु इससे उसका अवगुण मिट नहीं जाता।

हो सके तो रसोई का पानी जमीन में न सोखने पावे, इससे हवा बिगड़ जाती है।

मैले (पाखाना) की दुर्गन्ध दूर करने का सुगम उपाय यह है कि उस पर कुछ सूखी मिट्टी डाल दी जाय। जैसे कपडा पानी को सोख लेता है वैसे ही मिट्टी उस वस्तु को सोख लेती है जो आदमी के लिये विष का काम करती है। मैले के ऊपर थोडी सूखी मिट्टी डाल देने से दुर्गन्ध बहुत जल्द दूर हो जाती है।

कुछ देशों में किसान लोग मैले को खाद समझ कर उसकी बहुत चाहना रखते हैं और इस देश में भी किसान गोबर को खेतों में फैला देते हैं। इस देश के बहुत से किसान मैले को नापाक समझ कर काम में नहीं लाते। परन्तु घरों के पास मैले का रखना बहुत ही बुरा है, क्योंकि उससे निकली हुई दुर्गन्ध उनके और उनके बच्चों के शरीर में समा

जाती है। मैले को खाद की तरह काम में लाने से उसका विकार मिट्टी के द्वारा दूर हो जाता है और ज़मीन की उपज बढ़ जाती है।

मैला सूख जाने पर जला देना चाहिये। इसकी राख की उत्तम खाद बनती है और मिट्टी की तरह दुर्गन्ध को दूर कर देती है।

(६) घर के आस पास की वस्तु

३६—हो सके तो घरों को चारों ओर से खुला रखना चाहिये। कुछ छाया के लिये पेड़ होना चाहिये, परन्तु इतने नहीं कि उनसे सुहावनी हवा रुक जाय। घरों के पास झाड़ियों का जगल बढाना ठीक नही। पेडों से गिरी पत्तियों को बुहार कर किसी दूर के गड़हे में डाल देना या जला देना चाहिये।

घर को गाय गोरू, घोड़े और बकरियों के बाँधने के काम मे न लाना चाहिये। उनके साँस लेने वा मल सूत्र से हवा बिगड़ जाती है। जो वे घर के पास रक्खे जायँ तो लीद गोबर आदि उठवाने की ओर बहुत ध्यान देना चाहिये। घरों से कम से कम सो गज़ की दूरी पर खाद के ढेर लगाना चाहिये।

जहाँ जमीन ढलवाँ होती है पानी जल्द वह जाता है। जो धरती नीची हो तो बरसात के पीछे उसमें पानी भरा रहता है और वहाँ सील और सर्दी उत्पन्न हो जाती है। जब धूप निकलती है, छोटे छोटे गड़हों का पानी सूख जाता है, परन्तु सड़ी हुई कीचड़ से अप्रिय और रोगजनक दुर्गन्ध निकलती है। जिन गड़हों में पानी भर जाता है, पाट देना चाहिये। बरसात की ऋतु में पानी के निकास के लिये नालियाँ बनाई जायँ और कभी कभी साफ़ कराई जायँ।

ज्वर की उत्पत्ति का मुख्य कारण दलदल और झावर हैं। इस बुराई के दूर करने के लिये दो ही उपाय हैं कि नालियाँ बनाई जायँ और खेती की जाय। जहाँ यह उपाय नहीं किये जा सकते, वहाँ दलदल और घरों के बीच में घने पेड़ों की पाँति लगा देने से मलेरिया की रोक में बहुत सहायता मिलती है।

---

(९) नगर और गाँव की रक्षा

३७—अब हिन्दुस्तान के बहुत से नगरों में म्युनिसिपैलिटी की ओर से अधिकारी रहते और गाँवों में प्रधान रहते हैं उनका मुख्य काम यह होना चाहिये कि लोगों की आरोग्यता को ध्यान रक्खें। अपनी ही भलाई के लिये धनवानों को चाहिये कि निर्धनों की देख भाल करते रहें। जैसे गाँव में आग फैल जाती है वैसे ही मैले घर से बीमारी फैल सकती है।

सबसे सहज रीति किसी नगर के बहुत जल्द साफ करने की यह है कि प्रत्येक मनुष्य अपने अपने घर और उसके घेर की सफाई रक्खे, परन्तु कुछ काम ऐसे हैं जिनका लगाव विशेष कर अधिकारियों से है।

बाज़ारों की देख भाल होनी चाहिये। बिगड़ा हुआ नाज, सड़ी हुई तरकारियाँ, और मांस न बिकने पावें।

पीने के लिये अच्छे पानी का प्रबन्ध होना चाहिये। तालावों और उनके आस पास की ज़मीन को साफ़ रखना चाहिये।

इँगलिस्तान के बड़े बड़े नगरों में नल लगे हैं जिनमें हो कर शरीर से निकली हुई व्यर्थ वस्तु और रसोई का पानी

आदि बहता हुआ गहरी नालियों में चला जाता है। यही उपाय कुछ कुछ कलकत्ते में भी किया गया है, परन्तु इसमें व्यय अधिक पडता है और हिन्दुस्तान के बहुत भागों में नालियों के धोने के लिए जितना पानी चाहिए उतना नहीं मिलता। अच्छी मिट्टी के नल बनाये जा सकते हैं और उनकी लागत भी कम होती है। कदाचित् हिन्दुस्तान के और नगरों में भी इसी रीति से मैलापन दूर हो जाय। परन्तु अभी दूसरे उपायों से काम लेना चाहिये।

३८—सुभीते की जगहों में साधारण लोगों के लिये पाखाने बनवाना और उनको साफ़ रखना चाहिये। सूखी मिट्टी डालने से दुर्गन्ध दब जाती है। प्रतिदिन मैला निकलवा कर गाँव से कुछ दूर पर परती ज़मीन मे गड़वा देना चाहिए।

गलियों का कूड़ा बडी सावधानी से बटोर कर इकट्ठा किया जाय और कुछ दूर ले जाकर या तो जला दिया जाय या खाद के ढेर में डाल दिया जाय। कूड़ा उधर डालना चाहिए जिधर से प्राय. हवा नहीं चलती।

बरसाती पानी के निकास के लिये नालियाँ होनी चाहिएँ। खुली हुई छिछली नालियाँ सहज में साफ़ हो सकती है। नगरों में नालियाँ पक्की बनाना चाहियें, नहीं तो पानी ज़मीन में समा जायगा। नालियों को ऐसी जगह न गिराना चाहिये जहाँ उनसे पीने का पानी बिगड़ जाय।

जहाँ हो सके टेढ़ी नालियाँ सीधी करदी जायँ, जिसमें हवा के आने जाने में रुकावट न हो। खुली चौमुहानियाँ सर्व-साधारण के रमने और उपवन बहुत उपयोगी हैं।

चमार और रंगरेज़ नगर के बाहर या किसी ऐसी जगह में जहाँ लोगों का आना जाना कम होता हो, काम करने

पावे। उस जगह को साफ़ रखना चाहिये जहाँ पशु मारे जाते हैं।

उन पशुओं की लोथें जो खाने के लिये नहीं मारे जाते हैं, सड़ने से पहिले हटाकर कुछ दूर पर गाड़ देना चाहिए। लोथों के जलाने और गाड़ने की जगह घरों के पास न होना चाहिए। क़ब्रें कम से कम पाँच पाँच फ़ुट गहरी खोदकर उन्हें बहुत मिट्टी से पाट देना चाहिए।

१०—बीमारी

३९—आरोग्यता गँवाँ कर उसे फिर प्राप्त करने से उसको बनाये रखना बहुत सुगम है। कहावत भी है कि ओषधि करने से बीमारी रोकना अच्छा है। माना कि अंत में हम बीमारी से अच्छे हो जाते हैं, तो भी बीमार पड़ने से नीरोग रहना कहीं अच्छा है।

कुछ लोग ऐसे नासमझ होते हैं कि बीमारी की रोक के लिये दस्तों की दवा खा लेते हैं। यह केवल व्यर्थ ही नहीं, किन्तु हानिकारक होता है, क्योंकि इससे शरीर का बल घट जाता है। जब हैज़ा फैला हो तब ऐसा करने में भय है।

हैज़े के समान बीमारियों में दवा तुरन्त खाना चाहिये। परन्तु छोटी छोटी बीमारियाँ आराम और अनुकूल भोजन करने से जाती रहती हैं।

जब किसी को बीमारी के लक्षण जान पड़ें, काम छोड़ कर लेटा रहे और इतना ओढ़ ले कि शरीर गर्म बना रहे और सुख मिले। नित्य के खाने के बदले हलका खाना खाय। इससे आरोग्यता ज्यों की त्यों हो जायगी। आराम से रहने और संयम से खाने का यत्न करो।

रोगी की सेवा

४०—बहुत से रोगी यथोचित देख भाल न होने के कारण मर जाते हैं। कुछ उपदेश नीचे लिखे जाते हैं।

हवा साफ़ और ताज़ी रहना चाहिये। बीमारी की दशा मे इसकी दूनी आवश्यकता पड़ती है। रोगियों के शरीर से बहुत सी व्यर्थ वस्तु निकला करती है जो बहुधा गंधाती है। कभी कभी रोगी को छोटे कमरे में बंद रखते हैं, जिसकी हवा लोगों के भीतर आने से और भी बिगड़ जाती है। इससे रोगी को और भीतर जाने वालों को हानि पहुँचती है।

सफ़ाई पर बहुत ध्यान देना चाहिए। जिनसे दुर्गन्ध आती हो, उन वस्तुओं को तुरन्त हटा देना चाहिए। जो बीमारी बहुत न बढ़ गई हो, तो रोगी की देह नित्य गुनगुने पानी में कपड़ा भिगो कर धीरे धीरे पोछना चाहिये।

भोजन की ओर भी ध्यान देना चाहिये। पहिले पहिल सब से अच्छा तो यह है कि एक या दो बार का खाना न खाय। जो बीमारी बनी रहे तो बल बना रखने के लिये खाना चाहिये। परन्तु जब रोगी निर्बल हो जाय, तो मांड के सदृश हलका भोजन देना चाहिये। खाने का नियम यह होना चाहिये कि थोड़ा २ करके कई बार दिया जाय।

चुपचाप रहो और दया का बर्ताव रक्खो। बीमारों को चिल्ला कर बोलने से क्लेश होता है। उनको चुप चाप पड़ा रहने दो और जब उनका जी चाहे सोने दो। उनसे प्रसन्नता से बोलो और प्रसन्न रखने का यत्न करो।

साधारण बीमारियां

४१—छोटा दिया बड़े दिया की अपेक्षा अधिक सुगमता से बुझ जाता है। बच्चे प्रायः उन बीमारियों से मर जाते हैं

जिन्हें जवान आदमी झेल सकते हैं। उन्हें विशेष कर ताजी हवा, साफ़ पानी, उपकारी भोजन और शरीर गर्म रखने की आवश्यकता है।

छोटे बच्चों के लिये दूध सब से अच्छा खाना है। दांत निकलने के समय कांजी, बहुत गला हुआ भात और हलके खाने क्रम क्रम से देने चाहियें। दांत निकलने के समय बहुत सावधानी करनी चाहिये। धूप, गर्म हवा और सर्दी से बचा रहना चाहिये। सब बच्चों के टीका लगवा देना उचित है। दाँत निकलने के पहले जब बच्चे तीन महीने के हों टीका लगवाना बहुत अच्छा है।

अयोग्य वस्तु खाने से बच्चों को बहुत हानि होती है। वे यह नहीं जानते कि कौन सी वस्तु उनके लिये हानिकारक है, और बहुधा कच्चे फल, कच्चे चने इत्यादि खालेते हैं। इस तरह पेट में आँव पड जाती है और दस्त आने लगते हैं। हजारों बच्चों के प्राण की रक्षा हो सकती है जो उनके खिलाने में सावधानी की जाय।

बच्चों को सिखलाना चाहिये कि सफाई की बानि डालें। इस से खुजली और दूसरी बीमारियाँ नहीं होती हैं।

जब ओस पडती हो, बच्चों को खुली जगह में न सोने देना चाहिये। उन्हें गर्म रखने के लिये अच्छी तरह कपडे पहिनाये रखना चाहिए। बच्चों की बीमारी और मौत का मुख्य कारण सर्दी है।

(१) ज्वर

४२—हिन्दुस्तान में किसी न किसी तरह के ज्वर से लोग मरते ही रहते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि बहुत से ज्वरों का मुख्य कारण एक तरह की विष भरी हवा है जिसको

मलेरिया कहते हैं। इसकी ठीक ठीक व्यवस्था अभी तक पूरी रीति से नहीं जानी गई है। यह विशेष कर दलदलों और उन ने जंगलों में, जो प्रायः पहाड़ की तराई में होते हैं और न जिलों में जिनकी ज़मीन बलुई और ऊसर है, उत्पन्न होती । जब जमीन सूखने लगती है तो सड़ी हुई वनस्पतियों के ाथ मिल कर यह हवा उत्पन्न होती है। लोगों का ऐसा नुमान है कि यह एक तरह की भाफ है जो हवा में मिली हती है और साधारण हवा से कुछ भारी होती है। बरसात ीत जाने पर जब ज़मीन धूप से सूखने लगती है तब इस ी बहुतायत होती है। रात में इससे बहुत डर रहता है। ह पानी में समा जाती है और यही कारण है कि शरीर में इसका ेष पैठ जाता है।

हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि एक समय में इंगलिस्तान लोगों को जूड़ी बहुत आती थी। दलदलों का पानी नालियाँ नाकर निकाल देना और साफ़ पानी मिलना इस बीमारी के दूर रने के विशेष उपाय थे। इस देश में इन उपायों से वैसा लाभ हुँच सकता है। हलके, पुष्ट पथ्य से रोगी के बल को बनाये खना चाहिये।

आराम होने पर बहुत सवेरे या ठंढे पानी से बहुत नहाने े बहुधा ज्वर फिर आने लगता है।

४३—ज्वर की सबसे अच्छी दवा जो अब तक निकली है, क सफेद बुकनी है जो एक पेड़ की छाल से बनाई गई है ौर जिसको कोनैन कहते हैं। यह बहुत महंगी बिकती है, रन्तु सरकार की आज्ञा से इस देश में इसके पेड़ लगाये गये , जिनसे धीरे धीरे वैसी ही अच्छी पर सस्ती कोनैन मिलने गेगी।

ज्वर से बचने के लिये नीचे लिखे हुये नियमों के अनुसार चलना चाहिये।

घरों के आस पास इतने घने पेड और झाडियाँ न होनी चाहिये जिनसे हवा और उजाले के आने में रुकावट हो। मैला सब साफ कर दिया जाय। और जमीन के पानी का अच्छी तरह से निकास कर दिया जाय। पानी की रक्षा बडी सावधानी से की जाय। जब अच्छा पानी न मिल सके तब खाने के कामों में लाने के पहिले उसे औटा कर छान लिया जाय। जब ज्वर फैला हो तो सवेरे बिना खाये घर से बाहर न निकलो और भर पेट अच्छा खाना खाओ। धूप, थकावट, ओस और रात की हवा से बचे रहो। खुली जगह में न सोओ। नित्य के पहिनने के कपडे से अधिकतर गर्म कपडे पहिनो। रात में शरीर को विशेष कर गर्म रक्खो। ऊपर के कमरे में सोओ और जो यह न हो सके तो खाट ही पर सोओ।

लोग ऐसी कल्पना करते हैं कि अत्यन्त दुखदाई ज्वर के आने का कारण आदमियों के पेट से निकली हुई निषिद्ध वस्तु हैं, जिनके परमाणु पानी पीने या साँस लेने में भीतर चले जाते हैं। विष या तो पास के सडासों के द्वारा जमीन में समा कर कुओं में पहुँच जाता है या हवा में मिलकर फैल जाता है। इसके स्मरण मात्र से भय होता है। इसलिये सफाई की आवश्यकता जान पडती है।

(२) संग्रहिणी और अतिसार

४८—हानिकारक या अधिक भोजन करने या बुरा पानी पीने से संग्रहिणी प्रायः हो जाती है। एक बारगी सर्दी गर्मी घटने बढने और कपडे बदलने से भी यह बीमारी हो जाती है। चुपचाप पडे रहने और सिवाय मांड के कुछ न खाने से प्रायः बीमारी जाती रहती है।

इससे भी अधिक दुखदाई एक और बीमारी आँतों में होजाती है जिसको अतिसार कहते हैं। इसकी यह पहिचान है कि आँतों के नीचे के भाग में मरोड़ होती है और आँव और रक्त के दस्त आने लगते हैं। इसके वही कारण हैं जो संग्रहिणी के हैं। बहुतों का यह विश्वास है कि मलेरिया से अतिसार की बीमारी हो जाती है। यह बीमारी ऐसी भयानक है और इसकी रोक ऐसी कठिन है कि किसी अच्छे डाक्टर की सहायता तुरन्त लेनी चाहिये। चंगे हो जाने पर भी खाने में बड़ी सावधानी चाहिये कि बीमारी लौट न आवे।

जो उपाय ज्वर के दूर करने के लिये किये जाते हैं उन्हीं से अतिसार और संग्रहिणी की भी रोक हो जाती है। खाने में विशेष सावधानी चाहिये। कच्चे या बहुत पके फल, कच्ची तरकारियाँ, जो खाना अच्छी तरह पका न हो या गरिष्ठ हो न खाना चाहिये। विशेष कर रात में अधिक खाने से बचाव करना चाहिये। देह गर्म रखना चाहिये। हवा के झोकों में न सोना चाहिये। आँतो में हवा लगने से बहुत हानि होती है। ऋतु बदलने के समय बडी सावधानी करना चाहिये। गर्मी या सर्दी से ज्वर का आजाना सम्भव है।

(३) हैज़ा

४५—यह बड़ी भयानक बीमारी है। जिनको यह बीमारी हो जाती है उनमें से प्रायः आधे मर जाते हैं। मलेरिया की तरह इसका कारण अभी तक अच्छी तरह नहीं जाना गया है। परन्तु जिन उपायों से हैज़ा रुक जाता है वे अच्छी तरह से जाने गये हैं।

पौधों के बहुत से छोटे छोटे बीज आँधी से उड़कर हवा में मिल जाते हैं। यह बीज सीली और अनुकूल धरती में गिरने से जम उठते हैं और जो धरती प्रतिकूल है तो नहीं

जमते। अच्छे अच्छे डाक्टरों का इन दिनों यह विश्वास है कि जैसे पौधे ज़मीन पर उगते हैं, वैसे ही कोई कोई बीमारियाँ हमारे शरीर में छोटे छोटे बीजों से उत्पन्न हो जाती हैं। शीतला की बीमारी में ऐसे छोटे छोटे बहुत से बीज रोगी की देह से निकले हैं।

मैलापन, हानिकारक भोजन, रात में हवा में रहना और वह वस्तु जो हमको निर्बल कर देती है, ऐसे भयानक बीजों के लिये मानों हमारे शरीर को अच्छा खेत बना देती है। सफ़ाई, अच्छे खाने, गर्म कपड़ा और उन वस्तुओं से जो शरीर का बल बढ़ाती है, उनके उगने की रुकावट होती है।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि हैज़े के विष भरे बीज विशेष कर पानी में मिले रहते हैं। इस रोग के बीमारों की आँतों से निकली हुई वस्तु कुओं में चली जाती है। ऐसा देखा गया है कि केवल उन्हीं लोगों को हैज़ा हुआ जिन्हों ने उन कुओं का पानी पिया।

जिन दिनों में हैज़ा फैला हो घरों में सफ़ेदी कराना चाहिये और सफ़ाई पर बहुत ध्यान देना चाहिये। यह अति आवश्यक है कि खाने या पीने के काम में लाने से पहिले पानी औटा कर ठण्ढा कर लिया जाय और जो हो सके तो फ़िल्टर से छान लिया जाय। इस उपाय से हैज़े के विष से हानि नहीं होती। जो खाना पच न सके उसे न खाना चाहिये। आमाशय और पेट पर रात में फलालैन की पट्टी बाँधे रहने से बड़ा बचाव होता है। जब तक कोई डाक्टर न कहे, दस्त की दवा खाना ठीक नहीं।

बीमारी की सम्भावना घबराहट से दूनी हो जाती है। विशेष कर खाना बनाने और पीने के लिये साफ़ पानी

मिलने के यथोचित उपाय करो और तब ईश्वर पर भरोसा करके निडर रहो।

४६—हैज़े में प्रायः पहिले दस्त आते हैं। फिर इसके कुछ ही पीछे छाँट होने और देह टूटने लगती है। बीमार पड़ते ही सावधानी करने से बीमारी अच्छी हो जाती है। परन्तु जब बीमारी बढ़ जाती है तब कोई दवा काम नहीं आती। जब हैज़ा फैला हो, तब उसकी दवा घर में रक्खो और ज्योंही यह बीमारी किसी को हो जाय तुरन्त उसे दवा दो। लेटाकर उसे पूरा आराम दो और उसकी देह गर्म रक्खो। थोड़ा थोड़ा ठढा पानी पीने से लाभ होता है। किसी अच्छे डाक्टर को तुरन्त बुलवाना चाहिये।

हैज़े के बीमारों के शरीर से निकली हुई वस्तु ज़मीन में अच्छी तरह ऐसी जगह गड़वा देना चाहिये कि जहाँ जिनसे हवा और पानी में कोई बिगाड़ न हो। बिछौना या कपड़ों को या तो जला देना चाहिये, या सावधानी से गन्धक का धुआँ देकर धुलवा डालना चाहिये।

जिस जगह यह बीमारी किसी को हो जाय, वहाँ रहने में भय है। हो सके तो जिस घर में किसी को हैज़ा हो जाय, तो उसे दस दिन के लिये छोड़ देना चाहिये। जो उसका फ़र्श कच्चा हो तो खुदवा कर फिर से बनवाना चाहिये और कमरों में रहने के पहिले गन्धक जलाना चाहिये।

इस देश के कुछ भागों में नासमझ आदमी यह मानते हैं कि हैज़ा भूतों के कारण होता है। उनको संतुष्ट करने के लिये रात भर नाच और पूजा पाठ आदि करते हैं। इस तरह रात में हवा लगने और थकावट से बीमारी और भी बढ़ जाती है। सदैव इस बात का स्मरण रक्खो कि हैज़ा

सफाई न रखने और साफ पानी न मिलने से होता है और भूतों के कारण नहीं है, जिनका होना ही निर्मूल है।

(४) शीतला

४७—इस बीमारी से बहुत बड़ी हानि होती है। उसका वर्णन ऊपर हो चुका है। लंका में इसे "बड़ी बीमारी" कहते हैं।

पहिले यह उपाय किया जाता था कि शीतला के रोगी की देह से चेप लेकर भले चंगे आदमी की खाल के नीचे प्रविष्ट कर देते थे। जिसके यह लगाया जाता था शीतला निकल आती थी, परन्तु उसकी प्रबलता घट जाती थी। परन्तु कभी शीतला का आक्रमण ऐसा प्रबल होता था कि रोगी मर ही जाता था। इससे बीमारी की जड़ नहीं जाती थी। यह विधान जिसको "इनाक्युलेशन" कहते हैं अब सब कहीं बन्द कर दिया गया है।

इससे कहीं अच्छा एक उपाय डाक्टर जेनर साहिब ने निकाला है उसका कुछ वर्णन ऊपर हो चुका है। इसका नाम उन्होंने "वैक्सीनेशन" रक्खा है, क्योंकि जिस चेप से उन्होंने पहिले पहिल काम लिया वह गाय से निकाला गया था। गाय का चेप लगाने से शीतला का बल घट जाता है। अब भी कभी कभी गाय का चेप लगाया जाता है। परन्तु उस आदमी का चेप भी, जिसके गाय के चेप से टीका लग चुका है वैसा ही प्रभाव रखता है और बहुत करके उसी से काम लिया जाता है।

यथोचित सावधानी न करके मूर्ख लोग टीका लगाना व्यर्थ समझते हैं। कभी कभी गाय के थनों का यथोचित चेप नहीं लगाया जाता है और छाले टूट जाते हैं। कम से कम तीन

या चार छाले होने चाहिये और इन्हें कई दिन तक रगड़ कर टूटने से बचा रखना चाहिये। पहिले बचपन और फिर बड़े होने पर टीका लगाना चाहिये। इन उपदेशों के अनुसार चलने से शीतला निःशेष जाती रहती है।

४८—सब सभ्य देशों में टीका लगाने की चाल है। उनमें से किसी किसी में उत्पन्न होने से कुछ ही दिन पीछे मा बाप को अपने बच्चों के टीका लगवाना पड़ता है।

इस देश में टीका लगाने वाले सरकार की ओर से नियत किये गये हैं और जो चाहें बिना दिये टीका लगवा सकते हैं। जो समझदार हैं इससे लाभ उठाते हैं और उनके बच्चों की प्राण-रक्षा होती है। मूर्ख लोग यह समझते हैं कि देवी, जो शीतला की उत्पत्ति का कारण है, रूठ जायगी। इसीसे उनके बच्चे या तो जन्मभर के लिये अंगहीन हो जाते हैं या मर ही जाते हैं। यह कहना वैसा ही है जैसा यह कि प्रत्येक रोग परमेश्वर की इच्छा से होता है। इसलिये दवा न करनी चाहिये, नहीं तो वह अप्रसन्न हो जायगा।

शीतला का रोग छूने से होता है। इसके रोगियों की देख भाल उन्हीं को करना चाहिये जिनके शीतला निकल चुकी हो और दूसरों को घर से निकल जाना चाहिये। ताजी हवा बहुतायत से आना चाहिये। रोगी के कपड़ों और बिछौनों को जला देना बहुत अच्छी बात है। जो यह न हो सके तो चतुराई से गन्धक का धुआँ देकर उन्हें धुला डालना चाहिये।

प्रायः शीतला के रोगी के पास जाने में लोग बड़ी असावधानी करते हैं। इससे बीमारी फैल जाती है और यथोचित सावधानी की जाय तो एक या दो घर से अधिक बीमारी नहीं फैलने पाती। परन्तु टीका से बड़ी रक्षा होती है।

(५) अचानक घटनाएँ

(१) पानी में डूबना

४६—डूबने से आदमी इस कारण मर जाता है कि पानी में होकर हवा फेफडे में नहीं पहुँच सकती। जो कोई डूबने ही को हो और निकाल लिये जाने पर साँस लेने लगे, तो वह बच जायगा।

पहिले मुँह और नथुनों को साफ करो। मुँह खोलो और जीभ धीरे धीरे आगे को खींचो जिसमे हवा भीतर जाय। गर्दन और छाती पर के कसे कपडे हटा दो।

उस आदमी को चित्त लिटा कर तकिया लगादो कि सिर और कन्धे उमडे रहें। फेफडे में हवा जाने के लिये रोगी के हाथ कोहनी के ऊपर पकड कर यहाँ तक उठाओ कि सिर के ऊपर मिल जायँ। दो सैकंड के पीछे बाहें नीचे झुकाओ और पसलियों से मिला कर कस के दबाओ। एक घंटे तक, या आवश्यक हो तो अधिक देर तक, प्रत्येक मिनट में पन्द्रह पन्द्रह वार ऐसाही करते रहो। इससे यह प्रयोजन है कि साँस चलने लगे। पर से गले का सहलाना भी गुण करता है।

गर्म कपडे से रोगी के शरीर को ढकने और मलने से रक्त चलने लगता है और फिर गर्मी आ जाती है। गर्म बालू की थैलियों और गुनगुने पानी की बोतलों से सेंक भी करना चाहिये।

जब निगलने की सामर्थ्य हो जाय तो एक चमचा गरम क़हवा या गरम पानी और शराब देना चाहिये।

ऐसे लोग जो तीन घंटे तक मरे के समान जान पड़ते थे, उत्तम उपायों से बच गये हैं।

(२) घाव

५०—घाव बड़े न हों तो विना रक्त धोये कपड़े की पट्टी देने या स्टिकिङ्ग पलास्टर लगाने से भली भांति अच्छे हो जाते हैं। परन्तु घाव में मिट्टी भर गई हो तो गुनगुने पानी की धीमी २ धार से धो डालना चाहिए। घावों को ढका रखना चाहिए कि भीतर जाकर मक्खियाँ अडे न दे दें जिससे कीडे पड जायँ। घायल अंग का वहता हुआ रक्त घाव के ऊपर पट्टी वांधने और उस अग को ऊपर उठाये रहने से वंद हो जाता है।

(३) मोच

पूरा आराम करना ही इसका मुख्य उपचार है। जिस अग में मोच आगई हो उसमें रोगी की इच्छा के अनुसार कपडा लपेट कर उसे गर्म या ठंढे पानी से भिगोते रहो। इसका स्मरण रखना चाहिए कि कुछ दिन तक जोड़ निर्बल रहता है।

(४) हड्डी का उखड़ जाना

जब किसी हड्डी का सिरा अपनी जगह से सरक जाता है तब उसे हड्डी का उखड़ना कहते हैं। वह अच्छी तरह घूम नहीं सकती और उसकी सूरत वदल जाती है। ऐसे आदमी को तुरन्त किसी डाक्टर के पास ले जाना चाहिए।

(५) हड्डी टूटना

हड्डियों का टूटजाना अंग की सूरत वदल जाने से जान पड़ता है और जव वह अंग टटोला जाता है, तव हड्डियों के सिरे आपस में रगडते हैं। किसी डाक्टर की तुरन्त सहायता लेनी चाहिये। जहाँ तक हो सके रोगी को वहुत ही कम हिलाना डुलाना चाहिये, नही तो हड्डियों की नोक से मांस फट जायगा।

(६) गले का बंद हो जाना

जो कुछ गले में अटक गया हो तो अँगुली से निकालने या नीचे ठेलने का यत्न करो। फुर्ती से पीठ पर थपकने या मुँह में पानी डालने से कभी २ आराम हो जाता है।

(७) आग से जलना

५१—जब किसी स्त्री के कपडों में आग लग जाय तब लेट कर लोटने लगे। इससे आग बुझ जायगी। इधर उधर दौड़ने से हवा लग कर आग और भडकती है। जो पानी पास भरा हो तो उस पर जल्दी डालना चाहिये। मोटा कपड़ा चारों ओर लपेटने से आग बुझ जाती है।

जो खाल जल गई हो तो उस पर ठढे पानी में भिगो कर कपडा रखने से आराम मिलता है। जो खाल न जाती रही हो तो, घी व तेल लगाना अच्छा होता है। फफोलों को छेद देना चाहिये, परन्तु खाल हटाना ठीक नहीं, क्योंकि इससे नीचे की नर्म खाल का वचाव रहता है। वहुत जलजाने की दशा में किसी डाक्टर की सहायता अवश्य लेना चाहिये।

(८) सांप इत्यादि का काटना

जो किसी के हाथ या पांव में विषैले साँप या कुत्ते ने काटा हो, तो घाव से कुछ ऊपर अच्छी तरह कस कर पट्टी या डोरा बांध दो कि विष और भागों में न फैलने पावे। फिर जहाँ तक दोनों दांतों का घाव हो उसकी जड तक का मांस काट डालो। जो रोगी ऐसा न करने दे तो घाव में लोहा लाल करके जला दो। गर्म पानी डालते रहो जिससे रक्त का वहना वंद हो जाय। गर्म ब्रांडी या और कोई शराब पानी मिला कर पाव २ घंटे में देना चाहिये। जहां यह उपाय न किये जा सकें घाव का रक्त चूस लेना चाहिये, परन्तु यह

स्मरण रहे कि चूसने वाले के होठों या मुँह में घाव न हों * ।

जिस अंग में बिच्छू, कनखजूरा या बर्र ने काटा हो, उस पर सिरका या नमक के पानी में भीगा कपड़ा रखने से दर्द में कमी हो जाती है।

(६) विष

पहिला काम यह होना चाहिये कि छाँट करके विष निकाल दिया जाय। एक बडे चमचा भर राइ या नमक गर्म पानी में पीने से प्रायः यह काम निकल जाता है। गले को पर के सिरे से सह-लाना और गुनगुना पानी पीना चाहिये।

अफ़ीम और धतूरे से गहरी नीद आती है। छाँट कराने के पीछे तीक्ष्ण क़हवा पिलाना और इधर उधर टहलाना चाहिये। पीतल के बर्तनों के कसाव का विष दूर करने के लिये अंडे की सफ़ेदी पानी या दूध में पिलाना चाहिये। जो अंडे न मिल सकें तो तेल से काम लेना चाहिये, परन्तु पहिले अधिक छाँट कराना उचित है।

डाक्टर और अस्पताल

(१) डाक्टर

५२—जो किसी की घड़ी ठीक नहीं चलती तो वह अपनी पडोसियों से सुधारने को नहीं कहता, किन्तु उसको किसी घड़ी-साज के पास ले जाना है। जब हम बीमार पड़ जायं तो हमको उचित है कि किसी डाकृर के पास जायं और मूर्खों की सम्मति न लें, क्योंकि उनमें से कोई कुछ कहता है और कोई कुछ।

---

* एक तरह की दवा जिसको "लिकर अमोनिया" कहते हैं, मिल सके तो तीस २ बूंद थोड़े से पानी में मिलाकर पाव २ घंटे में दी जाय तो लाभ होता है।

केवल मिथ्या चिकित्सक के पास, जो जादू और टोने टुटके की बात चीत करता है, या अपनी चिकित्सा की डींग मारता है, न जाओ, किन्तु किसी अच्छे सुशिक्षित डाक्टर पसन्द करो।

जब तुम्हें कोई अच्छा डाक्टर मिल जाय तब उसके कहने पर चलो और उस पर भरोसा रक्खो। एक डाक्टर को छोड़ दूसरे के पास मत मारे मारे फिरो।

(२) अस्पताल इत्यादि

चिकित्सालय और अस्पताल देश के भिन्न भिन्न भागों में खोले गये हैं, जहाँ का नियम यह है कि अच्छी दवाइयाँ मिलती हैं और चतुर डाक्टर रहते हैं। कोई कोई मूर्ख यह समझ कर अस्पताल नहीं जाते कि वहाँ मर जायंगे। निस्सन्देह अस्पताल में लोग मर भी जाते हैं; परन्तु इसका कारण यही है कि रोगी उसी समय अस्पताल में जाते हैं जब जीने की आशा नहीं रहती।

बीमार होने पर किसी अच्छे डाक्टर को बुलाओ, या किसी चिकित्सालय या अस्पताल में तुरन्त जाओ। छोटे पेड़ का उखाड़ लेना सुगम है, परन्तु बड़ा पेड़ नहीं उखड़ सकता। यही दशा बीमारी की है।

इसके पीछे जैसा डाक्टर कहे वैसा करो। कोई कोई लोग या तो दवा जो उन्हें दी जाती है खाते ही नहीं, या खाते हैं तो उस रीति से नहीं जो उन्हें बताई गई है। उन्हें जो आराम न हो तो क्या अचम्भा है।

जल्द जल्द दवा न बदलो। कोई रोगी थोड़े दिनों तक दवा खाकर किसी अधूरे हकीम के पास चले जाते हैं। इस तरह फिर जब रोग असाध्य हो जाता है तब अस्पताल में लौट आते हैं।

(११) जन्म और मरण का लेखा

५३—सरकार की आज्ञा से उत्पत्ति और मृत्यु की संख्या लिखी जाती है और प्रत्येक दस वरस में मनुष्य-संख्या होती है। मूर्ख इसके लाभ नहीं जानते। वहुतेरे समझते हैं कि टिकस वढ़ाने के प्रयोजन यह किया जाता है। इससे विरुद्ध इससे वहुत लाभ होता है और इससे और टिकस से कुछ लगाव नहीं है।

प्रत्येक पिता की यही अभिलाषा रहती है कि मेरी संतान आरोग्य और आनंद से रहे। वड़े होने पर जब लड़के विदेश जाते हैं, तव पिता यह चाहता है कि वे चिट्ठियाँ भेजा करें जिससे उन को आरोग्यता या वीमारी का हाल मिलता रहे।

सरकार का भी कुछ कुछ यही अभिप्राय है। अच्छा राजा अपनी प्रजा के वाप के समान है। लाखों प्रजा की दशा राजा तभी जान सकता है जव उसके अधिकारी जन्म और मृत्यु की रिपोर्ट भेजें। जब यथोचित संख्या से उत्पत्ति कम होती है तब जानो कि प्रजा की दशा अच्छी नहीं है। जब मरण की संख्या वढ़ जाती है तव उसका कारण ढूंढा जाता है और उसके दूर करने का उपाय सोचा जाता है। जो जन्म और मरण की रिपोर्ट न की जाय तो सरकार की वैसी ही दशा होगी जैसी उस बाप की जो यह नहीं जानता कि मेरी संतान जीती है या मर गई; और ऐसी दशा में होने के कारण उनके लाभ की कोई बात नहीं कर सकती।

इँगलिस्तान में कुछ काल से जन्म और मरण का लेखा लिखा जाता है, और उससे वहुत लाभ हुआ है। इससे लोगों की आरोग्यता बढ़ाने के लिये वहुत कुछ किया गया है। पहिले समय में हर साल प्रत्येक हज़ार सिपाहियों में अठारह के लगभग

मरते थे। अब उतने ही में साल भर में केवल आठ ही मरते हैं। सरकार चाहती है कि इस देश में भी उसी तरह बीमारी और मौत घट जाय।

---

(१२) आचरण की आवश्यकता

५४—बाप अपने बच्चों को बहुत अच्छे अच्छे उपदेश करे, परन्तु जो वे उन पर ध्यान न दें, तो सब व्यर्थ है। यही दशा आरोग्यता की जानो। आरोग्यता और पुष्ट रहने की रीति बता दी गई है। पढ़ने वालों को उनसे कुछ लाभ होगा या नहीं, इस बात के आधीन है कि वे कहाँ तक उन सदुपदेशों का आचरण करते हैं।

बंगाले के एक बड़े गाँव में बहुत से लोग ज्वर से मर गये। मजिस्ट्रेट साहिब इसके कारण की खोज में वहाँ गये, तो उनको जान पड़ा कि मैला और गड्हों का पानी पिया जाता है। उन्होंने दश कुएं खुदवा दिये जिनसे अच्छा साफ पानी मिलने लगा। जब वे दुबारा वहाँ गये तब उनको विदित हुआ कि उन कुओं का पानी काम में नहीं लाया गया। लोगों ने इस बात को मान लिया कि पानी अच्छा है, परन्तु उन्होंने कहा कि हमारे यहाँ की यही चाल है और हम उसी पर चलते हैं। वह उनकी बड़ी मूर्खता थी। अच्छी चाल पर हमें चलना और बुरी चाल छोड़ना चाहिये।

निर्धन और अज्ञान पहिले यह समझते हैं कि यह बड़े कष्ट की बात है कि हम से दबाव डाल कर साफ रहने के लिये कहा जाता है पर वे धीरे धीरे इसके लाभ को समझने लगते हैं। जो लोग आरोग्यता की ओर ध्यान नहीं देते:

वे ही बीमार पड कर क्लेश उठाते हैं। जब धनी मनुष्य बीमार पडते है, तब उन्हें रुपये का सहारा होता है और नौकरों से सहायता मिलती है। निर्धनी के पास दो में से एक नहीं।

जो तुम और आरोग्य रहना चाहो तो ताज़ी हवा और साफ़ पानी का सेवन करो और ऐसे खाने खाओ जो हितकारी हो। सफाई पर भी विशेष ध्यान रक्खो। मलिनता से रोग उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न

१—आरोग्यता को क्या कहते हैं? हम आरोग्यता की दशा में क्या कर सकते है? बीमारी से क्या परिवर्तन होता है? कौन रहता है? किसको अपना जीवन भला जान पड़ता है? जब कोई लडका बीमार पड़ जाता है तब क्या होता है? जब किसी की मा बीमार हो जाती है तब क्या होता है? जब किसी का बाप बीमार हो जाता है तब क्या होता है? हमको आरोग्यता की क़दर कब जान पड़ती है?

२—कोई २ मूर्खों की समझ में बीमारी होने का क्या कारण होता है?

३—आरोग्यता की विद्या का क्या अर्थ है? इंगलिस्तान में ज्वर की दशा में क्या परिवर्तन हुआ है? कोढ़ की दशा में क्या? पहिले शीतला से क्या नुकसान होता था? अब पहिले की अपेक्षा इंगलिस्तान में शीतला से क्यों कम लोग मरते हैं? इस छोटी सी किताब से क्या प्रयोजन है?

४—हमारे जीवन के लिये किस चीज की सब से अधिक आवश्यकता है? हवा का होना हमें कैसे जान पड़ता है?

ज़मीन किस चीज से घिरी हुई है ? हवा का समुद्र कितना गहरा है ? एक प्याला कहवा में हम कौन सी चार चीजें पीते हैं ? इस विषय में कि हवा किन चीजों से बनी है ? पहिले लोगों का क्या अनुमान था ? विद्वानों ने अब क्या सिद्ध किया है ?

५—हमारे आस पास कौन सी तीन तरह की चीजें हैं ? दृढ़, द्रव और गैस किसे कहते हैं ? हवा के गैसों को हम क्या कर सकते हैं ? उनमें से एक को क्या कहते हैं ? उसके क्या फायदे हैं ? हवा में कौन से गैस मिले हुये हैं ? क्यों मिले हैं ? हवा में कितनी आक्सीजन है और कितनी नाइट्रोजन ?

६—हवा में कौन सी तीसरी चीज़ पाई जाती है ? वह किस से बनी है ? कार्बानिक एसिड गैस का लपट और प्रकाश पर क्या असर होता है ? यह पेडों के किस काम का है ? हवा में कार्बानिक एसिड गैस किस परिमाण से मिला है ? हवा में दूसरी कौनसी चीज़ पाई जाती है ? उसके क्या लाभ हैं ? उन चार चीजों के नाम बताओ जो हवा में मिली हैं ?

७—किस विष से लोग प्रायः मर जाते हैं ? ब्लैक होल में लोगों की क्या दशा हुई थी ? हवा के बिगड़ने का कोई एक कारण बताओ ? हवा सदैव हमारे लिये क्या करती रहती है ? जो हवा सांस लेने में हमारे भीतर जाती है वह क्या हो जाती है ? उससे क्या काम निकलता है ? बिगड़ा हुआ रक्त कैसा हो जाता है ?

८—जो हवा सांस के साथ बाहर निकलती है उसमें कौन सी तीन चीजें मिली रहती हैं ? जो हम किसी बन्द कमरे में सोवें तो हमारे आस पास की हवा किस चीज़ से भर जाती है ? कैसे जानते हो कि तुम्हारी सांस में पानी का अंश है ? सांस के पानी

में क्या चीज़ मिली रहती है ? बंद कमरे में लोगों की सांस के साथ साथ कौन सी चीज़ भीतर जाती है ?

९—किस दूसरी रीति से हवा बिगड़ जाती है ? बंद बर्तन में दिया क्यों जल्द बुझ जाता है ? हवा के बिगड़ने की तीसरी रीति क्या है ? जब कोई पेड़ सूख जाता है, या जीव जन्तु मर जाता है, तब क्या होता है ? चीज़ों के सड़ने से जिस जिस तरह हवा बिगड़ जाती है उसका वर्णन करो ?

१०—जो हवा साफ़ न होती जाती तो जमीन की क्या दशा हो जाती ? हवा के साफ़ होने के तीन मुख्य कारण कौन से हैं ? गैसों के आपस में मिलने से तुम क्या समझते हो ? चलती हुई हवाओं से क्या फ़ायदा है ? पौधे हवा की कौन सी चीज़ को सोख लेते हैं और कौन सी बाहर निकाल देते हैं ?

११—ताज़ी हवा के क्या लाभ हैं ? किन चीज़ों से पास की हवा को न बिड़गने देना चाहिये ? ताज़ी हवा की किन को अधिक आवश्यकता है ? बाहर ताज़ी हवा होने के सिवाय और कहाॅ इस की आवश्यकता है ? हवा कैसे रुक जाती है ?

१२—विना पानी के क्या दशा होगी ? हमारे शरीर में पानी का कितना भाग है ? इतना पानी क्यों है ? पानी कहाॅ जाता है ? पानी बिगड़ा हुआ हो तो क्या होगा ? बहुत सी बीमारी का क्या कारण है ? पीने के सिवाय पानी से और क्या लाभ हैं ? पानी से पौधों को क्या लाभ हैं ?

१३—पानी कहाॅ से बहुत मिलता है ? समुद्र क्यों नहीं भर जाता ? सूर्य की गर्मी से पानी का क्या होता है ? मेह कैसे बरसता है ? बरसात के दिनों में नदियों की क्या दशा होती है ? गर्मी में

क्या होता है ? पानी का चक्कर किस तरह हुआ करता है ? मेह का पानी कैसे बिगड जाता है ?

१४—बरसात में नदियों का मैला पानी कैसे साफ़ होता है ? दलदल का पानी क्यों बुरा होता है ? कुछ विष कैसे दूर हो सकता है ? उन सब बातों को बताओ जिनसे नदियों का पानी बिगड़ जाता है ? किन नदियों में बिगाड सब से अधिक होता है ? नदियों की किस तरह पर चौकसी करनी चाहिये ?

१५—तालावों का पानी कैसे बिगड़ जाता है ? कौन से तालावों का पानी बुरा होता है ? क्या करना चाहिये ? तालावों का पानी कैसे साफ रह सकता है ? किन किन बातों के लिये अलग अलग तालाव होना चाहिये ? आदमी की तरह पशुओं को किस तरह नुकसान होता है ? प्रायः अच्छा पानी किस तरह मिल सकता है ?

१६—अच्छे कुओं में पानी कहाँ से आता है ? जिन कुओं में जमीन के ऊपर का पानी जाता है वह क्यों अच्छे नहीं होते। इस देश के कुओं में कौन से साधारण दोष हैं ? कुओं का पानी साफ़ रखने के लिये क्या उपाय करना चाहिये ? कौन सी बातों से कुओं को अधिक हानि पहुंचती है ? कुओं के पास के मैले से क्यों नुकसान पहुँचता है ?

१७—अच्छा पानी कैसा होता है ? पानी को भारी और हलका कब कहते हैं ? अब इंगलिस्तान के बहुत से नगरों में पानी किस तरह मिलता है ? बुरे पानी को काम में लाने से पहले क्या करना चाहिये ? पानी कैसे छाना जाता है ? पानी पीने की सबसे अच्छी चीज़ क्यों है ? मादक पदार्थों का क्या असर होता है।

१८—व्यर्थ वस्तुओं के विषय में शरीर की क्या चेष्टा रहती है ? व्यर्थ वस्तु चमड़े से कैसे निकल जाती हैं ? पसीना किसे कहते हैं ? पसीने के साथ क्या निकलता है ? छोटी छोटी नलियों के मुँह कैसे खुले रहते हैं ? जब वह बन्द हो जाते हैं तब क्या होता है ? और भी क्या साफ़ रखना चाहिये ?

१९—हमें कै बार नहाना चाहिये ? नहाने के लिये कौन सा समय सबसे अच्छा है ? साफ़ पानी क्यों काम में लाना चाहिये ? नहाने के पीछे क्या करना चाहिये ? नहाने से लोग कभी कभी क्यों कर बीमार पड़ जाते हैं ? किनको गुनगुना पानी काम में लाना चाहिये ? बीमार को कैसे नहलाना चाहिये ?

२०—हमको भूख क्यों लगती है और पत्थर की मूर्ति को नहीं ? रेल के एंजिन में कहाँ से बल आता है ? हमारे शरीर में कैसे बल होता है ? हम जो खाना खाते हैं उससे कौन सी कमी पूरी होती है ? बल बढाने के सिवाय खाने से और क्या होता है ? प्रति दिन शरीर में कितनी गर्मी पैदा होती है ?

२१—खाने के पदार्थों में क्योंकर अंतर होता है ? किस बात के लिये हमें खाने की आवश्यकता होती है ? बच्चों के पोषण की सब चीज़ें किसमें पाई जाती हैं ? आदमियों का मुख्य भोजन क्या है ? अन्नों में क्या अतर है ? किस किस तरह का खाना बलदायक होता है ? तेल से क्या फायदा होता है ? जो लोग विशेष कर चाँवल, घी व मिठाई खाते हैं वे कैसे होते हैं ?

२२—किस तरह के खाने से नुक़सान होता है ? खाने में सबसे अधिक सावधानी कब करनी चाहिये ? उस समय किस चीज़ से बचाव करना चाहिये ? मसालों को कैसे खाना चाहिये ? पान खाना क्यों नुक़सान करता है ? तमाकू पीने की

आदत न डालना क्यों अच्छा है? कौन सी बातें बहुत नुक़सान करती हैं? खाना पकाने में किस बात पर बहुत ध्यान देना चाहिये?

२३—हमको कब खाना चाहिये? खाना ठीक समय पर क्यों खाना चाहिये? हमको सवेरे थोड़ा सा खाना क्यों खा लेना चाहिये? दो बार अच्छी तरह कब खाना चाहिये? बहुत से लोग किस तरह खाने से अपना नुक़सान करते हैं? खाना अच्छी तरह कुचल कर क्यों खाना चाहिये?

२४—जो पौधे अंधेरे में लगाये जाते हैं कैसे देख पड़ते हैं? उजाले के न होने से आदमियों पर क्या असर होता है? अंधेरे मकान की बाबत क्या कहावत है? उजाले से घर को क्या फायदा होता है? बन्द रहने से किनको नुकसान पहुँचता है? कभी कभी धूप लगने से क्या होता है। बचाव के लिये क्या उपाय करना उचित है?

२५—कपड़ों को कैसे बदल कर पहिनना चाहिये? बंगाले में बहुत से लोग जाड़े के दिनों में कैसे मरते हैं? शरीर के दो बहुत सुकुमार अंग कौन कौन से हैं? उनको कैसे बचाना चाहिये? रात के समय कपड़े क्यों बदलना चाहिये? कैसे कपड़ों से नुकसान होता है?

२६—पट्ठे क्या हैं? पट्ठे कैसे बलवान् होते हैं? साँस पर कसरत का क्या असर होता है? कसरत से भीतर की व्यर्थ वस्तु कैसे साफ हो जाती हैं? कसरत से हमें और क्या फ़ायदा पहुँचता है। कसरत न करने से लोगों की क्या दशा हो जाती है?

२७—किनको खेल पसन्द हैं? लड़कों को खेल से क्या फ़ायदा होता है? लड़कों को कहाँ बहुत कम कसरत करना

पड़ती है ? कसरत न करने से किन लोगों को नुक़सान होता है ? कभी कभी उनकी क्या दशा हुई है ? कसरत से दिमाग़ (भेजा) कैसे बलवान् होता है ? कसरत कब न करनी चाहिये ?

२८—विना सोये हमारी क्या दशा होगी ? सोने से हमें क्या फ़ायदा पहुँचता है ? थोड़ा या वहुत सोने से क्या नुक़सान होता है ? बच्चे, लड़के, लड़कियाँ और आदमियों को कै घंटे सोना चाहिये ? नींद की वावत क्या कहावत है ?

२६—किन वातों से बुरे स्वप्न दिखाई देते हैं ? स्वप्न क्या है ? कौन सी वात स्वप्न से मालूम होती है ? किन को स्वप्न दिखाई देते हैं ? आदमी ज़मीन पर कव सो सकते हैं ? यह कव नुक़सान करता है ? चारपाई से ज्वर का कैसे वचाव होता है ? जब ज़मीन में सील हो तो क्या करना चाहिये ? विछौने को क्यों साफ़ रखना चाहिये ?

३०—वन्द कमरों में सोना क्यों नुक़सान करता है ? किस तरह की सोने की वुरी आदत से ताज़ी हवा नहीं मिलती ? आदमियों को खुले मैदान में कव सोना चाहिये और कव नहीं ? जहाँ हवा के झकोरे लगते हैं वहाँ सोना क्यों वुरा है ? कव रात के समय शरीर को विशेष कर गर्म रखना चाहिये ?

३१—मकान कहाँ न वनाना चाहिये ? कैसी ज़मीन पसंद करनी चाहिये ? और कहाँ न वनाना चाहिये ? मकानों की कुर्सी क्यों ऊँची होनी चाहिये ? छत क्यों ढालू होनी चाहिये ? टेढ़ी तङ्ग गलियाँ क्यों अच्छी नहीं होतीं ? कैसे मकानों को सस्ते भाड़े पर भी न लेना चाहिये ?

३२—एक स्त्री ने अपनी वहिन से कुशल पूछी तो उसने क्या उत्तर दिया ? उसकी वहिन ने क्या कारण वतलाया ?

उस स्त्री ने क्या वहाना किया ? वहिन ने क्या जवाव दिया ? उस स्त्री को क्या करने पर लाचार किया ?

३३—हवा के संचार से क्या प्रयोजन है ? मकान में सब से आवश्यक वात क्या है ? हर एक आदमी के रहने के लिये कितनी जगह चाहिये ? झोपडी में कम जगह की क्यों आवश्यकता है ? पक्के मकानों में ताजी हवा की अधिक आवश्यकता क्यों पडती है ? कौन से कमरे सवसे वुरे होते हैं ? कभी कभी सोने के कमरों में हवा क्यों कम आती है ?

३४—और कौन सी चीज़ से हवा विगड़ जाती है जैसी कि जीव धारियों से ? हवा के आने जाने के लिये कितनी खिडकियों की आवश्यकता है ? वुरी हवा किस तरह निकल जा सकती है और अच्छी हवा आसकती है ? कार्वोनिक एसिड गैस के विष से लोग क्योंकर मर जाते हैं। हम कैसे यह वात जान सकते हैं कि कमरे की हवा साफ़ है या नहीं ? स्त्रियों के कमरे में कौन सी चीज़ वहुतायत से रहनी चाहिये ?

३५—मकानों को कै वार साफ करना चाहिये ? नित्य धोने से मकानों को क्यों नुक़सान पहुँचता है ? मकानों का कूडा कहाँ न फेकना चाहिये ? इसको क्या करना चाहिये ? कूडे का गडहा मकान के पास क्यों न होना चाहिये ? लोग ऐसा क्यों करते हैं ? इससे क्या वात होती है ? पाखाने की दुर्गन्ध किस चीज से दूर हो जाती है ? अव पाखाने से क्या नुकसान होता है ? इससे क्या फ़ायदा हो सकता है ?

३६—मकान के आस पास की क्या चौकसी करनी चाहिये ? मकान से घुडसाल का काम क्यों न लेना चाहिये ? खाद के ढेर कहाँ रखने चाहिये ? गडहों को क्यों पाट देना चाहिये ? मुहरियों की क्या चौकसी करनी चाहिये ? पूरा उपाय क्या है ? मलेरिया किस वात से दूर हो जाती है ?

३७—गावों और शहरों की आरोग्यता की देख भाल कौन करता है? इसमें सब का फायदा क्यों है? कौन से काम विशेष कर अफ़सरों से सम्बन्ध रखते हैं? कीचड़ किसे कहते हैं? इंगलिस्तान में इसकी सफ़ाई क्योंकर होनी है? ऐसा उपाय हिन्दुस्तान में क्यों नही किया जा सकता? सस्ते नल किस तरह बन सकते हैं?

३८—बमपुलिस की क्या चौकसी करनी चाहिये? गली के कूड़े को क्या करना चाहिये? नालियाँ किस तरह की बनवाना चाहिये? बहुतायत से ताजी हवा किस तरह मिल सकती है? चमार और रंगरेज़ों को कहाँ पर काम करने के लिये लाचार करना चाहिये? क़ब्रस्तान और मरघट के लिये क्या नियम होने चाहिये?

३९—बीमार पड़ने पर दवा करने की अपेक्षा कौनसी बात अच्छी है? कोई कोई लोग दस्तों की दवा क्यों खा लेते हैं? यह क्यों नुकसान करती है? कब इससे डर होता है? कब दवा में जल्दी करनी चाहिये? थोड़ी सी बीमारी किस तरह अच्छी हो सकती है?

४०—बहुत से बीमार आदमी कैसे मर जाते हैं? पहिली आवश्यक बात कौनसी है और क्यों? सफ़ाई के लिये क्या करना चाहिये? खाने में क्या चौकसी करनी चाहिये? चुप रहने व मेहरबानी करने की क्यों आवश्यकता है?

४१—लड़कों को किन चार चीज़ों की विशेष कर आवश्यकता है? बच्चों का खाना क्या होना चाहिये? बच्चों के कब टीका लगाना चाहिये? किस बात से बच्चों को बहुत नुक़सान पहुँचता है? उन्हें सफ़ाई की आदतें क्यों सिखानी चाहिये? रात में क्या चौकसी करनी चाहिये?

४२—बहुत से आदमी हिन्दुस्तान में किस बीमारी से मरते हैं ? मलेरिया विशेष कर कहाँ पैदा होती है ? कब यह बहुत भयानक होती है ? इंगलिस्तान से जूडी कैसे जाती रही ? ज्वर के उपचार में हिन्दुस्तानी वैद्य कौन सी भूल बहुधा करते हैं ?

४३—ज्वर की सब से अच्छी दवा कौन सी मालूम हुई है ? ज्वर से बचने के लिये कौन से नियमों पर ध्यान देना चाहिये ? जब ज्वर फैला हो किस बात की सावधानी करनी चाहिये ? सब से बुरा ज्वर कैसे पैदा होता है ? इसका विष शरीर में कैसे समा जाता है ?

४४—संग्रहिणी किसे कहते हैं ? इस बीमारी के होने का क्या कारण है ? प्रायः किस चीज़ से आराम हो जाता है ? अतिसार की क्या पहिचान है ? क्या करना चाहिये ? क्यों बहुत चौकसी करनी चाहिये ? संग्रहिणी और अतिसार से बचने के लिये क्या उपाय हैं ?

४५—कौन सी बीमारी बडी भयानक है ? शीतला के समान बीमारियों के फैलने की बाबत डाक्टरों की क्या सम्मति है ? किससे बीज जम जाते हैं ? उनकी बाढ कैसे रुक जाती है ? विशेष कर हैज़ा के बीज किस तरह फैलते हैं ? जब हैज़ा फैला हो तो कौन से उपाय करना चाहिये ? किस पर भरोसा करना चाहिये ?

४६—साधारण रीति से हैजा किस तरह फैलता है ? यह बीमारी बहुधा कैसे अच्छी हो जाती है ? जब हैज़ा फैला हो, तो मकान में क्या रखना चाहिये ? बीमार को किस तरह रखना चाहिये ? क्या उपाय करना चाहिये कि बीमारी न फैलने पावे ? हैज़ा के रोकने में भूतों की मानता करके बचने

से क्या नुकसान होता है? किस बात पर ध्यान देने से हैज़ा नही होता ?

४७—शीतला को लङ्का मे क्या कहते हैं? शीतला के रोकने की पहिले कौनसी युक्ति की गई थी? उससे अच्छा कौन सा उपाय निकाला गया है ? कोई कोई अनपढे टीके को व्यर्थ क्यों समझते हैं? टीका लगाने में कौन सी बात की चौकसी करनी चाहिये? लोगों को कब टीका लगवाना चाहिये?

४८—कौनसे लोग वे फ़ीस लिये लडकों के टीका लगा देते हैं? बुद्धिमानों को इससे क्या फ़ायदा होता है? कोई कोई मूर्ख क्या अनुमान करते हैं ? यह क्यों उनकी भूल है? शीतला की बीमारी में क्यों अधिक चौकसी करनी चाहिये? क्या उपाय करना चाहिये। प्रायः बीमारी किस तरह फैलती है।

४९—जब कोई आदमी पानी में गिर पड़े तब क्या करना चाहिये? डूबने से आदमी क्योंकर मर जाता है? डूबा हुआ आदमी क्योंकर आराम हो सकता है? जब आदमी डूब कर मरा हुआ सा मालूम हो तो पहिले क्या करना चाहिये? सॉस फिर आने के लिये क्या करना चाहिये? रक्त का संचार कैसे हो सकता है और गर्मी फिर किस तरह आसकती है।

५०—घावों का उपचार कैसे करना चाहिये ? मोच का क्यों कर? हड्डी कब उखड जाती है? ऐसी दशा में क्या करना चाहिये? टूटी हुई हड्डियॉ कैसे जान पड़ती हैं? गला बन्द हो जाने पर क्या करना चाहिये?

५१—जो किसी स्त्री के कपडों में आग लग जाय तो उसे क्या करना चाहिये ? किस लिये ? कम जले हुये कैसे आराम हो सकते हैं ? यदि खाल न जाती रही हो तो जलने के लिये कौन सा अच्छा उपचार है ? छालों को

क्या करना चाहिये ? जब बहुत जल जाय, तो क्या करना चाहिये ?

५२—बीमार होने पर किसकी सम्मति लेना चाहिये ? कैसे डाक्टरों की दवा न करनी चाहिये ? अच्छे डाक्टर और अच्छी दवायें कहाँ मिलतीं हैं ? अस्पताल में बहुत से लोग क्यों मरते हैं ? किन उपदेशों पर चलना चाहिये ?

५३—अब सर्कार मौत और पैदाइश का हाल क्यों जानना चाहती है ? जब पैदाइश कम होती है तब उससे क्या जान पड़ता है ? जब लोग बहुत मरते हैं तब सर्कार क्या करती है ? अँगरेज़ी सिपाहियों में मौत कितनी कम हो गई है ?

५४—सदुपदेश कब व्यर्थ होता है ? इस किताब से कैसे फ़ायदा पहुँच सकता है ? एक बड़े गाँव के रहने वालों ने अच्छे कुओं से फायदा क्यों नहीं उठाया ? किन बातों के मानना चाहिये ? बीमारी से किसको बहुत क्लेश होता है ? आरोग्यता के लिये विशेष कर किस किस बात की आवश्यकता है ?

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

दक्षिण महाराष्ट्र जैनसभाके चौदहवें वार्षिकोत्सवके सभापति स्याद्वाद वारिधि पं० गोपालदासजीका व्याख्यान.

मंगलाचरण।

दोहा—वन्दौं श्रीजिनचन्द्रवच मिथ्या तमक्षयकार ॥
जिहसेवतवेवतस्वपद भव संताप निवार ॥ १ ॥
शिवमगदर्शक वीर जिन दोषावरण विहीन ॥
ज्ञायक लोकालोकप्रभु करहु अमङ्गलछीन ॥ २ ॥

सबसे पहले मै महाराज पंचम जार्जको धन्यवाद देता हू कि, जिनके निष्कटक राज्यमें हम स्वतन्त्रता पूर्वक धार्मिक तथा सामाजिक उन्नतिका प्रयत्न कर इसलोक और परलोक सबधी आत्महित साधन कर सकते हैं।

आज बड़े सौभाग्यका दिन है कि, आप महानुभावोंने मुझ तुच्छ व्यक्तिको ऐसे महान् पदका सन्मान देकर मेरा गौरव वढाया है। ऐसी महती सभाके सभापतित्वका भार उठानेका मेरे जीवनमे यह पहिला ही मौका है। इसलिये सम्भव है कि, इस कार्यके सम्पादनमें अनेक त्रुटियां रह जांय। परन्तु मैं आशा करता हूं कि, आप सरीखे उदार महाशय मेरी त्रुटियोंकी उपेक्षा कर जैसे हस नीरको त्याग क्षीरका ही ग्रहण करता है, उस ही प्रकार आप भी मेरे इस तुच्छ व्याख्यानको सुनकर प्रसन्न होगें।

आकाशके वहु मध्यभागमें संस्थित द्रव्यादेशसे अनादि निधन और पर्या-यापेक्षासे प्रतिक्षण परिणामी जीवादिक द्रव्योंके समुदायात्मक सात राजूके घनस्वरूप ऊर्ध्वाधो मध्य संज्ञक तीन विभागोंमें विभक्त इस लोकमें अपने ही अपराधसे अनादि सन्तानबद्ध दर्शन मोहादिक द्रव्यकर्म तथा रागादिक भावकर्मोंके वशीभूत घटीयन्त्रकी तरह पुद्गलादि पच परावर्तनोंको पूरा करता हुआ यह जीव अनादिकालसे घोर दु खात्मक चतुर्गतिमें पर्य्र. भ्रमण कर रहा हैं। नरक और तिर्यंच इन दो गतियोंमें प्राय' दु खसे और देवगतिमें इन्द्रियजनित सुख किन्तु पारमार्थिक दुःखसे अपने हिता-हित विचार करनेको छुटकारा ही नहीं मिलता। तथा मनुष्यगतिमें भी वहुभाग तो दिनरात जठराग्निको शमन करनेकी चिन्तासे व्याकुलित चित्त हुए अपनी मौतके दिन पूरे करते हैं। और शेष एक भागमेंसे वहुभाग पूर्वबद्ध पुण्यके उदयसे प्राप्त इष्ट विषयाग्निमें भोगतृष्णासे प्रेरित निरन्तर आत्माहुति किया करते हैं। बाकी कुछ इने गिने जिनके काललब्धिके निमित्तसे कर्मभार कुछ हलका होगया है, आत्महितकी खोजमें उद्यमशील दृष्टिगोचर होते हैं। परन्तु उनमें भी अनेक महाशय सदुपदेशके अभावसे मृग-तृष्णामें जल-सकल्पभ्रान्त मृगोंकी तरह इतस्तत. भटकते हुए अभीष्ट फलसे वंचित रहते हैं। आज इस लेखमें हमको इस ही विषयका विवेचन करना है कि, इस जीवका वास्तविक हित क्या है और उस हित साधनकी साक्षात् तथा परम्परा प्रणाली किस प्रकार है।

आत्महित।

जीवके आल्हादात्म गुणविशेषको सुख कहते हैं। यह सुख गुण अनादिकालसे ज्ञानावरणादिक अष्टकर्मोंके निमित्तसे वैभाविक परिणतिरूप हो रहा है। सुख गुणकी इस वैभाविक परिणतिको ही दु'ख कहते हैं। इस आकुलतात्मक दु खके दो भेद हैं–एक साता और दूसरा असाता। संसारमें अनेक प्रकारके पदार्थ हैं जो प्रति समय यथायोग्य

निमित्त मिलनेपर स्वाभाविक तथा वैभाविक पर्यायरूप परिणमन करते रहते हैं। यदि परमार्थ दृष्टिसे देखा जाय तो कोई भी पदार्थ न इष्ट है और न अनिष्ट है। यदि पदार्थोंमें ही इष्टानिष्टता होती तो एक पदार्थ जो एक मनुष्यको इष्ट है वह सबहीको इष्ट होता और जो एकको अनिष्ट है। वह सबहीको अनिष्ट होता। परन्तु ससारमे इससे विपरीत देखा जाता है इससे सिद्ध होता है कि, पदार्थोंमें इष्टानिष्टता नहीं है। किन्तु जीवोंने भ्रमवश किसी पदार्थको इष्ट और किसीको अनिष्ट मान रक्खा है। मोहनीयकर्मके उदयसे दुरभिनिवेशपूर्वक इष्टानिष्ट पदार्थोंमें यह जीव रागद्वेषको प्राप्त होता है जिससे निरन्तर ज्ञानावरणादिक कर्मोंका बन्ध करके इस ससारमें भ्रमण करता हुआ इष्टानिष्ट सयोग वियोगमें अपनेको सुखी दुखी मानता है। भ्रमवश इस जीवने जिसको सुख मान रक्खा है वह वास्तवमें आकुलतात्मक होनेसे दुःख ही है। ये सासारिक आकुलतात्मक सुख दुःख आत्माके स्वाभाविक सुख गुणका कर्मजन्य विकृत परिणाम है। कर्मोंसे मुक्त होनेपर उक्त गुणकी स्वाभाविक पर्यायको ही यथार्थ सुख अर्थात् वास्तविक आत्महित कहते हैं।

आत्महितका साक्षात् साधन—

मुनिधर्म है। आत्माके सुख गुणको विकृत करनेवाले ज्ञानावरणादिक अष्टकर्म हैं। इस कारण जब तक ये कर्म आत्मासे जुदे न होंगे तब तक इस जीवको यथार्थ सुख नहीं मिल सकता। न्यायका यह सिद्धान्त है कि जिस कारणसे जिस कार्यकी उत्पत्ति होती है उस कारणके अभावसे उस कार्यकी उत्पत्तिका भी अभाव हो जाता है। उक्त न्यायके अनुसार यह बात सुतरां सिद्ध है कि, जिन कारणोंसे कर्मका सम्बन्ध होता है। उन कारणोंके अभावसे कर्मका वियोग अवश्य हो जायगा। मिथ्याज्ञानपूर्वक रागद्वेषसे कर्मका बन्ध होता है अतः सम्यग्ज्ञानपूर्वक रागद्वेषकी निवृत्तिसे यह जीव कर्मोंसे मुक्त हो सकता है। एकदेश ज्ञानकी प्राप्ति तथा रागद्वेषकी निवृत्ति यद्यपि गृहस्थाश्रममें भी होसकती है परन्तु पूर्णतया ज्ञानकी प्राप्ति तथा रागद्वे-

षकी निवृत्ति मुनि अवस्थामें ही होती है इसलिये आत्महितका साक्षात साधन मुनि धर्म ही है। परन्तु जो महाशय सिंहवृत्तिरूप मुनिधर्मको धारण करनेमें असमर्थ हैं वे—

आत्महितका परम्परा साधन

सागारधर्मका आराधन कर अपनी कर्तव्यताका पालन करते हैं जो महानुभाव पूर्वभवके सस्कारसे दीक्षोचित उत्तम कुलमें जन्म लेकर गर्भाधानादि सस्कार विधिसे सस्कृत होते हैं उक्त धर्मको धारण करनेके वे ही उचित पात्र हैं। यह सागारधर्म तीन विभागोंमें विभाजित है। उन तीन विभागोंमेंसे प्रथम भाग—

ब्रह्मचर्याश्रम—

है। गर्भसे अष्टम वर्षमें ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य पुत्र जिनमदिरमें जाकर अर्हत्पूजनपूर्वक शिरोमुडन मौंजीबधन और सात लडका यज्ञोपवीत धारणकर स्थूलहिंसादिक पापोंको त्याग गुरुकी साक्षीसे ब्रह्मचर्य व्रतको धारण करे। यह ब्रह्मचारी शिखा तथा श्वेत अथवा रक्त वस्त्र (अन्तरीय और उत्तरीय) धारण करे। तथा अपने आचरणके योग्य जिनदासादिक दीक्षित नामको धारण करे। शृङ्गारादिक क्रियाओंसे सदा उपेक्षित रहै। और राजपुत्रके सिवाय अन्य समस्त ब्रह्मचारी भिक्षावृत्तिसे निर्वाह करैं। इस प्रकार वेष धारणकर यावज्जीव विद्या तथा धर्मके आराधन करनेवालेको नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं। यहां इतना विशेष है कि जो महाशय इस उपनयन सस्कारके पश्चात् केवल यज्ञोपवीत धारणकर विद्याभ्यासके अनन्तर किसी उचित कन्याके साथ पाणिग्रहण कर लेते हैं वे उपनय ब्रह्मचारी कहलाते हैं। जो क्षुल्लक रूपसे विद्याभ्यास समाप्तकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते हैं वे अवलम्ब ब्रह्मचारी कहलाते हैं। जो विना किसी वेषके विद्याध्ययनकर विवाह करलेते हैं वे अदीक्षा ब्रह्मचारी कहलाते हैं। और जो नग्नवेषसे विद्या

भ्यासकर राजा तथा कुटुम्बियोंके आग्रहसे गृहस्थाश्रमको अवलम्बन करते हैं वे गूढब्रह्मचारी कहलाते हैं। तथा जो महाशय गृहस्थाश्रमको त्याग विषयभोगोसे विरक्त होकर यावज्जीव ब्रह्मचर्यव्रतको धारण करते हैं वे भी नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। इस ब्रह्मचर्याश्रममें पांचो ही प्रकारके ब्रह्मचारी यद्यपि ब्रह्मचर्यव्रतके पालन और भिक्षावृत्तिसे निर्वाह इन दोनों क्रियाओमें समान हैं तथापि चारित्रके अन्य भेदोंकी अपेक्षासे इनमें तारतम्य है। अर्थात् पाक्षिक अवस्थासे लगाकर नवमी प्रतिमातक ब्रह्मचर्याश्रममें चारित्र पाया जाता है। इस ब्रह्मचर्याश्रममें विद्यासाधनकी प्रधानता है। प्राचीन कालमें इन ब्रह्मचारियोंमेंसे कितने ही ब्रह्मचारी तो गृहस्थाचार्यके समीप विद्याध्ययन करते थे। तथा कितने ही ब्रह्मचारी मुनि तथा विद्वान् ब्रह्मचारीयोंके साथ देशाटन करते हुए विद्यादेवीकी उपासना करते थे। परन्तु खेदके साथ कहना पड़ता है कि आज न तो वे गृहस्थाचार्य ही है और न वे विद्वान् ब्रह्मचारी और मुनि ही हैं कि, जिनके निमित्तसे हमारी सन्तान स्वतन्त्रतापूर्वक किसी प्रकारके द्रव्यव्ययके विना विद्या सपादन कर सके। आज हमको इस विद्यासाधनके निमित्तभूत पाठशाला, विद्यालय, कालेज, स्कूल, बोर्डिंग आदिक वनानेके लिये घर घर भिक्षा मागनी पडती है और फिर भी यथेष्ट सफलता प्राप्त नहीं होती। परतु लाचार होकर हमको प्राप्तोनिर्वाह्यतेऽधुना की नीतिका अवलम्बन करके वर्तमान देशकालानुरूप रीति नीतिके अनुसार प्रयत्नशील होकर उसमें यथा सभव सुधार करते हुए विद्योन्नतिके कार्यमें तनमनधनसे उद्योग करना चाहिये। विद्याविषय शिक्षाप्रणाली और सस्था प्रवन्ध इस प्रकार दो विभागोंमें विभक्त हो सकता है। इन दो विभागोंमेंसे पहिले—

शिक्षाप्रणाली-

पर विवेचन किया जाता है। संसारके समस्त प्राणियोंकी यह इच्छा रहती है कि, हमको सुखकी प्राप्ति हो और सदाकाल ऐसा ही उपाय

करते रहते हैं। परन्तु सुख तथा सुखके साधनका यथार्थ स्वरूप न जाननेके कारण अभीष्ट फलको प्राप्त नहीं होते। यथार्थ सुख मोक्षमें है इसलिये पुरुषका असली प्रयोजन अर्थात् परमपुरुषार्थ मोक्ष है। मोक्षका साधन धर्म है। इसलिये दूसरा पुरुषार्थ धर्म है। इस धर्मपुरुषार्थका पूर्णतया साधन यत्याश्रममे ही हो सकता है। और इस यत्याश्रमको वे ही महानुभाव धारण कर सकते हैं कि, जो शारीरिक तथा मानसिक शक्तिशाली होनेपर विषयभोगोंसे नितान्तविरक्त होगये हैं। जो महाशय विषयभोगोंसे विरक्त होनेपर भी शारीरिक तथा मानसिक शक्तिकी हीनताके कारण मुनिपदको धारण नहीं कर सकते। वे दशमी तथा ग्यारवीं प्रतिमास्वरूप वानप्रस्थ आश्रमको स्वीकार करके धर्मपुरुषार्थका एकदेश साधन करते हैं। तथा जिन महाशयोंकी विषयाकांक्षा भी पूर्णतया नहीं घटी है देवद्विजाग्नि साक्षीपूर्वक योग्य कन्यासे पाणिग्रहण करके न्यायरूप भोगोंको भोगते हुए कामपुरुषार्थ तथा उसके साधनभूत धनार्जनरूप अर्थपुरुषार्थ और यथाशक्ति धर्मपुरुषार्थ इसप्रकार धर्म अर्थ और कामस्वरूप त्रिवर्गका साधन करते हुए गृहस्थाश्रमका पालन करते हैं। उक्त चारों पुरुषार्थोंमे मोक्ष और काम ये दो पुरुषार्थ साध्यरूप हैं तथा धर्म और अर्थ ये दो पुरुषार्थ साधनरूप हैं। किसी पुरुषार्थका साधन तद्विषयिक विद्या प्राप्ति किये विना अत्यन्त दुःसाध्य है और गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेपर चित्त अनेक चिन्ताओंसे व्याकुलित हो जाता है। इसलिये इतर तीन आश्रमोंकी साधनभूत विद्याओंकी आराधनाके लिये अनेक चिन्ताओंसे अलिप्त कुमार अवस्थामें ब्रह्मचर्य आश्रमका विधान है। इस ब्रह्मचर्य आश्रममें किन २ विद्याओंके अभ्यास करनेकी आवश्यकता है आगे इस ही विषयपर विवेचन किया जाता है। नीतिकारोंने कहा है कि—

दोहा—कला बहत्तरि पुरुषकी तामें दो सरदार ॥
एक जीवकी जीविका एक जीव उद्धार ॥ १ ॥

काव्य—अनन्तपारं किलशब्द शास्त्रं ।
स्वल्पं तदायुर्वहवश्च विघ्नाः ॥
सारं ततोग्राह्यमपास्य फल्गु ।
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥ २ ॥

भावार्थ—धर्म पुरुषार्थ और अर्थ पुरुषार्थ इन दो पुरुषार्थोंकी कारणभूत धार्मिक और औद्योगिक इन दो प्रकारकी विद्याओंका अभ्यास करना परमावश्यक है। किसी भी विद्याकी प्राप्ति उस भाषाके परिज्ञानके विना नहीं हो सकती। जिस भाषामे ग्रन्थकारोंने उक्त विद्याओंका निरूपण किया है। हमारे प्राचीन ऋषियोंने संस्कृत भाषामे प्रायः समस्त विषयोंकी रचना की थी। परन्तु हमारे दुर्भाग्यवश कुछ जालिमोंद्वारा और कुछ हमारी उपेक्षासे हमारा संस्कृत साहित्य प्रायः नष्ट भ्रष्ट होगया, इसलिये संस्कृत भाषामे हमको समस्त आवश्यक विषय नहीं मिलते हैं। इसलिये औद्योगिक विद्याकेलिये हमको अंग्रेजी साहित्यका भी आश्रय लेना पडता है। इन सवका खुलासा यह हुआ कि, विद्याओंकी प्राप्तिकेलिये हमको संस्कृत और अंगरेजी भाषाका परिज्ञान करनेकी आवश्यकता है। भाषाओंके दो भेद है। मातृभाषा और इतरभाषा। मातृभाषाके लिखने पढने और सीखनेमें जितने परिश्रमकी आवश्यकता है इतर भाषाओंके लिखने पढ़ने और सीखनेमे उससे कई गुणा परिश्रमकी आवश्यकता होती है। संस्कृत और अंगरेजी हमारी मातृभाषा नहीं है इसलिये मातृभाषाकी अपेक्षा इतर विद्याओंके अभ्यास करनेमें वहुत अधिक काल लगता है। योरुप, अमेरिका, जापान आदि देशोंने आशातीत उन्नति की है वह इस ही भांतिके अवलम्बनसे ही की है। परन्तु हमारे भोले भारतवासी लकीरके फकीर विना विद्याभ्यासके भाषाओंके परिज्ञान प्राप्त करनेहीमे अपना समय खोकर विद्याशून्य निकम्मे रह अपने अमूल्य जीवनको व्यर्थ खो रहे है। प्रत्येक भाषामें यह एक अपूर्व चमत्कार है कि किसी भी

लेखमें लेखकके अभिप्रायोंका प्रतिबिम्ब पडता है। इसलिये किसी मूल पुस्तकके अभ्यास करनेसे प्रकृत भाषाका मर्मज्ञ चतुर पाठक मूल ग्रन्थकर्ताके असली अभिप्रायतक पहुंच सकता है। परन्तु उक्त मूल ग्रन्थके इतर भाषामें अनुवादको पढनेसे मूल ग्रन्थकर्ताके अभिप्राय ज्ञात नहीं हो सकते। किन्तु उस अनुवादके पढनेसे पाठक अनुवादके केवल उन अभिप्रायोंतक पहुंच सकता है कि, जो अनुवादकने मूल ग्रन्थके अभ्याससे समझे हैं। सम्भव है कि, अनुवादक मूल ग्रन्थकर्ताके असली अभिप्रायोंको न पहुंचा हो तथा प्रत्येकभाषामें प्रत्येक विषयके आभिभावक शब्द न मिलनेकी भी सभावना है। इसलिये अनुवादित ग्रन्थोंका अभ्यास करनेसे मूलग्रन्थोंके अभ्यासकी अपेक्षा त्रुटि रहजानेकी संभावना है। परन्तु यह त्रुटि उस त्रुटिके सामने बहुत ही थोडी है कि, जो अमातृक भाषाओंका अभ्यास करते मूल विद्याओंसे वञ्चित रहनेसे होती है। इसलिये सर्व साधारणकेलिये राजमार्ग यही हो सकता है। कि, इष्ट विद्याओंका अभ्यास उन ग्रन्थोंका मातृभाषामें अनुवाद कराकर कराया जावै। आजकल इस भारतवर्षमें अगरेज महाशयोंका राज्य है इसलिये राजविद्या अगरेजी है। राजविद्याका अभ्यास किये विना आज कल मनुष्य मूर्ख समझा जाता है। व्यापारमें राजविद्याका आजकल इतना अधिकार वढ चढ रहा है। कि, उसके विना व्यापारके असली तत्वसे वञ्चित रहना पडता है इसलिये अगरेजी भाषाका परिज्ञान प्राप्तकरना हमारा प्रधान कर्तव्य है। शिक्षाप्रणाली चार विभागोंमें विभाजित होसकती है। अर्थात् १ प्राथमिक शिक्षालय (Primary School), २ प्रवेशिका विद्यालय (Anglo-Vernacular High school) ३, भाषा महाविद्यालय (Vernacular College) और ४ सस्कृत महाविद्यालय (Sanskrit College) भाषा महाविद्यालयके अन्ततक अगरेजी भाषाका उतना ज्ञान करा देना चाहिये कि, जितना आजकल अगरेजी हाईस्कूलोंमें

मेट्रिक्यूलेशनतक कराया जाता है। तथा मातृभाषाके साहित्यके साथ २ मातृभाषामें ही उन समस्त विद्याओका अभ्यास करा देना चाहिये जिनका कि, अभ्यास वर्तमानदेशकालानुसार आवश्यक है। तथा इतना संस्कृत भाषाका भी ज्ञान करा दिया जावे कि, जिससे विद्यार्थी सुगम संस्कृत ग्रन्थोंको समझ सके तथा संस्कृत विद्यालयमें अभ्यास करने योग्य हो जावे। इसके पश्चात् जिन महाशयोंको गृहस्थाश्रम सबन्धी चिन्ताओने नहीं सताया है, तथा जो महाशय उत्साहपूर्वक आगे भी विद्याभ्यास करना चाहते है, उनकेलिये आगे विद्याभ्यास करनेके दो मार्ग हैं। जो महाशय पाश्चिमात्य विद्वानोंके मूल ग्रन्थोंका अभ्यास करके सरकारी डिग्रिया प्राप्त करना चाहते है। उनको चाहिये कि वे सरकारी कालेजोंमें प्रवेश करके अपनी इच्छा पूर्ण करें और जो महाशय प्राचीन ऋषियोंक्त मूल न्याय धर्म अध्यात्म शास्त्रोंका अभ्यास करनेके अभिलाषी हैं उनकेलिये संस्कृतविद्यालय स्थापन करनेकी आवश्यकता है। शिक्षणप्रणालीका क्रम निरूपण करनेसे पहिले इस बातका विवेचन किया जाता है कि, शिक्षाप्रणालीमें हमको किन २ विद्याओंका समावेश इष्ट है। समस्त विद्या तीन विभागोमें विभक्त हो सकती है अर्थात् भाषा १, मूल विद्या २, और सहकारिणी विद्या ३, भाषा भी तीन भागोंमें विभक्त है। अर्थात्—

भाषाविभाग।

१ मातृभाषासाहित्य. (Vernacular Literature)

२ अगरेजीसाहित्य. (English Literature)

३ संस्कृतसाहित्य. (Sanskrit Literature.)

मूलविद्याविभाग

१ धार्मिकविद्या.

२ औद्योगिकविद्या.

धर्मविद्याविभाग।

१ प्रथमानुयोग (इतिहास) (History)
२ चरणानुयोग.
३ करणानुयोग (Geography & Astronomy)
४ द्रव्यानुयोग (पदार्थविज्ञान) (Science & Philosophy)

औद्योगिकविद्याविभाग।

१ शस्त्रविद्या.
२ कृपिविद्या (स्थल, जल,--भूगर्भ, खनि) (Agriculture Mineral &c).
३ मसिविद्या (Book Keeping)
४ वाणिज्यविद्या (Trade)
५ शिल्पविद्या (चित्रस्थपितादि) (Technical Engineering &c.)
६ इतर विद्या (संगीतादिक).

सहकारिणीविद्याविभाग।

१ गणितविद्या—
  १ अंकगणित (Arithmatic)
  २ रेखागणित (Euclid)
  ३ वीजगणित (Algebra)
  ४ क्षेत्रगणित (Mensuration)
२ नीतिविद्या.
  १ सामान्यनीति.
  २ राजनीति (Politicat knowledge)
३ वैद्यकविद्या (Physical Knowledge)
४ न्यायविद्या (Logic)

अब आगे शिक्षाप्रणालीका क्रम लिखा जाता है।

प्राथमिक शिक्षाक्रम।

खण्ड.	काल.	धर्मशास्त्र.	भाषा.	गणित.	मौखिक शिक्षा*	जागरफी.
१	६ मास	बालबोध जैनधर्म प्रथमभाग.	प्रथम पुस्तक.	पहाडे २० तक.	प्रथमभाग.	दिशाओंका ज्ञान.
२	,,	द्वितीयभाग.	द्वितीय पुस्तक.	पहाडे पूर्ण.	द्वितीयभाग.	जिला जागरफी.
३	१ वर्ष	तृतीयभाग.	तृतीय पुस्तक, भाषाव्याकरण पूर्वार्द्ध	साधारण जोड़, बाकी, गुणा और भाग.	तृतीयभाग.	प्रान्त जागरफी.
४	१ वर्ष	चतुर्थभाग.	चतुर्थ पुस्तक, भाषाव्याकरण पूर्ण.	मिश्र जोड, बाकी, गुणा, भाग, त्रैराशिक, जिन्सों-की फैलावट गुरुओंसे	चतुर्थभाग.	भारत जागरफी.

* इस विषयकी शिक्षाके लिये अध्यापक पशु, पक्षी, फल, फूल, अन्न आदि पदार्थोंके रंग, रूप, प्रकार, उपयोग आदिका ज्ञान करावें, और ज्ञान कराते समय सम्भवतः उन पदार्थोंको सन्मुख रक्खे।

प्रवेशिका शिक्षाक्रम.

खड	काल	धर्मशास्त्र.	भाषा साहित्य	गणित	इंगीलश	इतिहास जागरफी व पदार्थ विज्ञान.
१	एकवर्ष	पार्श्वपुराण	जैनपद्यसग्रह, भाषासारसग्रह.	भिन्न, दशमलव व मुनीमी	Primer and I Reader	जैन जागरफी व भारतका इतिहास.
२	,,	श्रावकाचार छहढालासार्थ.	छन्दप्रभाकर. उपमिति भवप्रपञ्चा कथा	अकगणित पूर्ण	II Reader	इग्लेडका इतिहास पदार्थ विज्ञान.
३	,,	मोक्षमार्ग-प्रकाशक.	चरित्र गठन प्रबोध चन्द्रिका	रेखागणित १ भाग वीज गणित जोड बाकी गुणा भाग	III Reader & Grammer (Etymology)	इतिहास (फ्रास) पदार्थ विज्ञान रसायन (महेशचरण कृत)
४	,,	जैनसिद्धान्त प्रवेशिका, चर्चाशतक.	मुद्राराक्षस. हरिश्चन्द्र नाटक, सुशीला उपन्यास.	रेखागणित ४ भाग, बीज गणित, क्षेत्र गणित,	IV Reader & Grammer	इतिहास (जर्मन) रसायन और नैपोलियन वोनापार्ट.

हिन्दीकालेज ।

खड.	काल.	धर्मशास्त्र.	सस्कृत साहित्य.	न्याय.	इंग्लिश.	औद्योगिक.
१	१ वर्ष	जैनसिद्धान्तदर्पण.	सस्कृत शिक्षिका.	प्रमाणनय-दीपिका.	Matric course.	स्वाधीनता.
२	„	समयसारनाटक, प्रवचनसारकेपद्य.	क्षत्रचूडामणि. हितोपदेश.	फिलोसोफी.	Do.	सम्पत्तिशास्त्र.

संस्कृत कालेज ।

उपाध्याय परीक्षा ।

खण्ड.	काल.	धर्मशास्त्र.	न्याय.	साहित्य.	व्याकरण.
१	१ वर्ष	सागार धर्मामृत त्रैवर्णिकाचार (ब्रह्मसूरिकृत)	न्यायदीपिका परीक्षामुख मूलसूत्र.	चन्द्रप्रभकाव्य.	जैनेन्द्र वा शाकटायन स्त्री प्रत्यान्त.
२	„	सर्वार्थसिद्धि	प्रमेयरत्नमाला आप्तमिमासामूल.	अलकारचिन्तामणि. पार्श्वनाथ काव्य.	पूर्वार्द्ध.

विशारद परीक्षा।

खण्ड	काल	धर्मशास्त्र	न्याय.	साहित्य	व्याकरण.
१	१ वर्ष	गोमटसारजीवकाण्ड पञ्चाध्यायी १ अध्याय.	आप्त परीक्षा सप्तभंगीतरंगिणी	धर्मशर्माभ्युदय जीवंधर चम्पू,	तिङन्त
२	१ वर्ष	गोमटसारकर्मकाण्ड, पञ्चाध्यायी पूर्ण	प्रमेयकमल मार्तण्ड	द्विसंधानकाव्य, विक्रान्त कौरवीय नाटक	पूर्ण

आचार्य परीक्षा।

खण्ड	काल.	धर्मशास्त्र.	न्याय.	साहित्य	व्याकरण.
१	१ वर्ष.	लब्धिसार राजवार्तिक	अष्टसहस्री.	गद्यचिन्तामणि काव्यानुशासन (हेमचन्द्र)	जैनेन्द्र महावृत्ति अथवा अमोघवृत्ति दो अध्याय.
२	,,	नाटकत्रयी.	श्लोक वार्तिक	यशस्तिलक. [illegible]	पूर्ण.

कन्या शिक्षा.

प्राथमिक शिक्षा.

१ धर्मविषय. २ भाषाविषय. ३ गणित. सीनापीरोना

प्रवेशिका

१ धर्मविषय. पाकशास्त्र. अंकगणित.

हिन्दीकालेज.

१ धर्मविषय.

उपर्युक्त पठनक्रममें प्राय· जैनियोकी वनाई हुई पुस्तकें रक्खी गई है। तथा कितनी ही पुस्तकें अन्यमतावलम्बियोंकी बनाई हुई रक्खी हैं। और कुछ पुस्तकें उपलब्ध न होनेके कारण विषयके नामसे ही अंकित की गई हैं। जो पुस्तकें अन्यमतावलम्बीकृत रक्खी हैं, उनका विषय प्रायः जिनमतसे अविरुद्ध है और यदि किसी पुस्तकमें जिनमतसे विरुद्ध विषय हो तो जैन विद्वानोंका कर्तव्य है कि वे उक्त पुस्तकोंके सदृश विषयवाली जैनमतसे अविरुद्ध पुस्तकोंकी रचना करें और उसमे विरुद्ध विषयोंकी उल्लेखपूर्वक समालोचना करके यथार्थ स्वरूपका निरूपण करें। तथा अनुपलब्ध पुस्तकोंकी रचना करके पठनक्रमकी त्रुटियोंको पूर्ण करें। पाठ्य पुस्तकोंकी रचना करनेके लिये अनुभवी विद्वानोंकी एक कमेटी वनाई जावे। और उस कमेटीसे पास कराके पुस्तक प्रचारमें लाई जावें। आनरेवल मिस्टर गोखलेके बिलका समर्थन करते हुए हम सरकारसे भी प्रार्थना करते हैं कि, प्राथमिक शिक्षाका प्रचार मुफ्त और वलपूर्वक किया जावे।

गृहस्थाश्रमरूपी गाडीको चलानेवाले पुरुष और स्त्री ये दो पहिये हैं। इसलिये गृहस्थाश्रमके योग्य पात्र बनानेके लिये जैसे वालकोंको शिक्षाकी आवश्यकता है। उस ही प्रकार योग्य गृहिणी बनानेकेलिये कन्याओंको भी शिक्षा देनेकी आवश्यकता है। जिस

घरमें शिक्षिता स्त्री नहीं है। वहा वर्णाश्रम धर्मका यथोचित पालन नहीं हो सकता। बाल्यावस्थामें सन्तानको उचित शिक्षासे भूपित करना माताका ही कर्तव्य है। अनेक महाशयोंका कथन है कि शिक्षासे स्त्रिया दुश्चरित्रा हो जाती है यह उनका भ्रम है। पुराण और इतिहासोंसे यह स्पष्ट सुतरा सिद्ध है। कि सीता, द्रौपदी, अजना, मनोरमादिक अनुकरणीय सर्व ही सती शिक्षिता थीं। स्त्रियोंको दुश्चरित्रा बनानेका कारण दूपित शिक्षा है। असभ्य और अश्लील पुस्तकोंके अभ्याससे स्त्रियोंके चरित्रमें धब्बा लग जाता है। इसलिये स्त्रियोंकी शिक्षाकी उत्तमतापर पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। स्त्रियोंको धार्मिक तथा गृह सम्बन्धी पाकादिककी और घरका हिसाब रखने योग्य गणितकी शिक्षा तो अवश्य ही देनी चाहिये। शिक्षा प्रचारके लिये—

संस्थाओंके प्रबन्ध—

की आवश्यकता है। प्रत्येक ग्राममें जहा जैनियोंकी बस्ती कमसेकम दश घरकी भी हो वहा एक २ पाठशाला स्थापन की जावे। जिसमें प्राथमिक शिक्षा दी जावे। प्रत्येक नगरमें जहा जैनियोंकी वस्ती कमसे-कम सौ घरकी हो वहा प्राथमिक और प्रवेशिका पाठशाला खोली जावे। जिसमें प्राथमिक और प्रवेशिकाकी शिक्षा दी जावे। भाषाओंके हिसाबसे भारतवर्षको चार विभागोंमें विभाजित करना चाहिये। अर्थात्

१ हिन्दीविभाग. ३ गुजरातविभाग.
२ दक्षिण विभाग. ४ कर्नाटक विभाग

प्रत्येक विभागमें अपनी २ मातृभाषामें शिक्षा दी जावे। सब विभागोंमें कमसेकम एक भाषामहाविद्यालय खोला जावे, जिसमें प्रवेशिका और भाषामहाविद्यालयकी शिक्षा दी जावे। भारतवर्षमें कमसेकम एक संस्कृतमहाविद्यालय खोला जावे, जिसमें संस्कृत भाषामें न्याय व्याकरण साहित्य और धर्मशास्त्रकी शिक्षा दी जावे। भारतवर्षकी समस्तशिक्षा-

सम्बन्धी संस्थाओंका प्रबन्ध करनेके लिये विद्वानोंकी एक सभा बनाई जावे, जिसमें संस्कृतके पंडित और ग्रेज्युएट शामिल किये जावें। इस विद्वज्जन महासभाके अन्तर्गत चार प्रान्तिकसभा नियत की जावे, जो उपर्युक्त प्रत्येक विभागका प्रबन्ध करें। प्रत्येक विभागके लिये कमसे-कम एक एक निरीक्षक नियत किया जावे तथा परीक्षाकेलिये एक परीक्षालय खोला जावे, जो भारतवर्षके समस्त विद्यार्थियोंकी परीक्षा लिया करे। असमर्थ विद्यार्थी स्थानीय श्रावकोंके घर मधुकरी वृत्तिसे भोजनकर विद्याभ्यास करे। जहातक हो ये सस्थाए ब्रह्मचर्याश्रमके स्वरूपमें नियत की जावें। इन शिक्षालयोंके साथ एक एक बोर्डिंगहाउस भी रहे जिसमे समर्थ अथवा छात्रवृत्ति प्राप्त विद्यार्थियोंके भोजन तथा समस्त विद्यार्थियोंके निवासका प्रबन्ध किया जावे। शिक्षालय तथा बोर्डिंगोंमें शिक्षक अध्यक्ष सुपरिटेन्डेंट पदपर अनुभवी सदाचारी महाशय नियत किये जावें विद्यार्थियोंके शारीरिक स्वास्थ्य तथा सदाचारपर पूरा पूरा ध्यान दिया जावे। विद्यार्थियोंको स्वार्थत्यागकी भी शिक्षा दी जावे कि जिसमें कुछ विद्यार्थी विद्या प्राप्त करके नैष्ठिक ब्रह्मचारी अथवा वानप्रस्थ तथा यत्याश्रमी वनकर देश देशान्तरमें देशाटन कर जैनधर्मकी विजयपताका फहराकर जैनधर्मको सार्वजनिक धर्म बना समस्त ससारका हित साधन करे। इस प्रकार सक्षेपसे ब्रह्मचर्याश्रमका कथन करके अब आगे गृहस्थाश्रमपर कुछ विवेचन किया जाता है।

गृहस्थाश्रम।

ब्रह्मचर्याश्रमको समाप्त करके गुरुकी आज्ञासे जो महानुभाव गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते है, उनको धर्म अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थोंके साथ साथ सामाजिक नियमोंका भी पालन करना पड़ता है। इसलिये गृहस्थाश्रमके कर्तव्य धर्म अर्थ काम और समाज इन चार विभागोंमें विभक्त हो सकते हैं। विषयभोगोकी वासना इस जीवके अनादिकालसे लग रही

है, और इस ही वासनाके निमित्तसे यह जीव इस संसारमें नाना प्रकारके दुःख भोग रहा है । इसलिये काम पुरुषार्थके निरूपण करनेकी कुछ आवश्यकता न समझकर धार्मिक आर्थिक और सामाजिक कर्तव्योंपर कुछ सक्षेपसे विवेचन किया जाता है। उक्त तीन विषयोंमेंसे पहिले धार्मिक विषयका निरूपण करते हैं।

गृहस्थधर्म ।

अनादिकालसे घोर दुःखसतप्त प्राणियोंको दुःखसे निकाल मोक्षके उत्तम सुखमें पहुचावे उसे धर्म कहते हैं। जीवद्रव्यका सम्यक्त्वगुण अनादिकालसे दर्शनमोहनीयकर्मके निमित्तसे विकृत भावको प्राप्त हो रहा है। सम्यक्त्वके इस विकृत भावको ही मिथ्यात्व कहते हैं मिथ्यात्वके सम्बन्धसे ही ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमसे प्रकाशमान ज्ञान भी मिथ्याज्ञान कहलाता है तथा चारित्रमोहनीयकर्मके निमित्तसे आत्माके चारित्र गुणका भी विकृत परिणाम हो रहा है । मोहनीयकर्मका क्षय होनेसे जीवके सम्यक्त्व और चारित्र गुण स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं। तथा मोहनीयकर्मका क्षय होनेसे कुछ ही पीछे ज्ञानदर्शनावरण और अतरायके क्षयसे पूर्णज्ञानको प्राप्त हो जाता है। कुछ कालके वाद योगोंका भी अभावकर सम्यक्त्व ज्ञान और चारित्र इन तीन गुणोंकी पूर्णता हो जाती है। इन तीनों गुणोंकी पूर्णताको ही धर्म कहते हैं और यही धर्म मोक्षका सच्चा उपाय है। इन तीनों गुणोंमें सम्यक्त्व गुण प्रधान है। जब तक सम्यक्त्व गुणकी प्राप्ति नहीं होती तब तक ज्ञान और चारित्र सम्यग् व्यपदेशको प्राप्त नहीं होते। चारित्रगुणके दो भेद हैं। देशचारित्र और सकलचारित्र। सकलचारित्र मुनि अवस्थामें होता है। जो महाशय सकलचारित्रका पालन करनेमें असमर्थ होते हैं वे देशचारित्रको ग्रहणकर गृहस्थधर्मका पालन करते हैं। पदार्थोंके यथार्थ श्रद्धानको सम्यक्त्व, यथार्थ जाननेको सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

हिंसा असत्य चौर्य मैथुन और परिग्रह इन पाच पापोंकी पूर्णतया निवृत्तिको सकलचारित्र और एकदेशनिवृत्तिको देशचारित्र कहते हैं। सम्यक्त्व सहित देशचारित्रके पालनकरनेको ही गृहस्थधर्म कहते हैं। इस गृहस्थधर्मको श्रावकधर्म और उसके पालनेवालेको श्रावक कहते है। श्रावकके तीन भेद हैं पाक्षिक १, नैष्ठिक २, और साधक ३, जो सम्यक्त्व और अष्ट मूल गुणोंका निरतिचार पालन नहीं कर सकता अर्थात् सदोष पालन करे उसको पाक्षिक श्रावक कहते हैं। अष्ट मूलगुण इस प्रकार है। मद्यत्याग १, मासत्याग २, मधुत्याग ३, रात्रिभोजनत्याग ४, पचोदुम्बरत्याग ५, पचपरमेष्ठीकास्तवन ६ जीवदया ७, और जलगालन ८, सम्यक्त्व और मूलगुण तथा उत्तरगुणोंके सागोपाग प्रतिमारूप निर्वाह करनेवालेको नैष्ठिक श्रावक कहते हैं। नैष्ठिक श्रावकके ११ भेद हैं जिनका सक्षेप स्वरूप इस प्रकार है। १ सम्यक्त्व और मूलगुणके निर्दोष पालनेको दर्शन प्रतिमा कहते हैं। २ अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह, प्रमाण सज्ञक पच अणुव्रत, दिग्व्रत, देशव्रत, और अनर्थदण्ड सज्ञक तीन गुणव्रत, तथा भोगोपभोग परिमाण प्रोषधोपवास सामायिक और अतिथि सविभाग सज्ञक चार शिक्षाव्रत, इस प्रकार १२ उत्तरगुणोंके निर्दोष पालनेको व्रतप्रतिमा कहते हैं। ३ त्रिकाल सामायिक करनेको सामायिक प्रतिमा कहते हैं। ४ पर्वदिनोंमें प्रोषधोपवास व्रत करनेको प्रोषधप्रतिमा कहते हैं। ५ सजीव पदार्थके भक्षणके त्यागको सचित्तत्यागप्रतिमा कहते हैं। ६ दिनमें मैथुन त्यागको दिवामैथुनत्यागप्रतिमा कहते हैं। ७ स्त्रीमात्रके सेवनत्यागको ब्रह्मचर्यप्रतिमा कहते हैं। ८ कृष्यादिक हिंसाके हेतुभूत आरंभके त्यागको आरभत्यागप्रतिमा कहते हैं। ९ धनधान्यादिक परिग्रहके त्यागको परिग्रहत्यागप्रतिमा कहते हैं १० आरम्भादिकमें अनुमतिके त्यागको अनुमतित्यागप्रतिमा कहते हैं। ११ उद्दिष्टभोजनके त्यागको उद्दिष्ट-

त्यागप्रतिमा कहते हैं। मरणसमय स्वरूपकी सावधानता रखनेवालेको साधक श्रावक कहते हैं। इस प्रकार गृहस्थधर्मका यहां नाम मात्र कथन किया है। इसका सविस्तर स्वरूप श्रावकाचारोंसे जानना। जब तक धर्मके स्वरूपको नहीं जानोगे तब तक धर्ममें प्रीति कदापि नहीं हो सकती। नीतिकारोंका भी वाक्य है कि--

काव्य--न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं,
स तं सदा निन्दति नात्रचित्रम्।
यथा किरातीकरिकुम्भलब्धां
मुक्तां परित्यज्य बिभर्तिगुञ्जाम्॥ १॥

धर्मका महत्त्व न जानकर ही भोले भाईयोंके हृदयमें धर्मसे ग्लानि हो रही है। इसलिये जो महाशय अपनेको सच्चा सुखी बनाना चाहते हैं उनका प्रधान कर्तव्य धर्म शास्त्रोंका स्वाध्याय करना है। धर्म साधनके अनेक अंगोंमें स्वाध्याय प्रधान अंग है। इस स्वाध्यायको शास्त्रकारोंने अन्तरङ्गतपोंमें वर्णन किया है। स्वाध्याय करनेमें मन, वचन, काय, तीनों कारण सांसारिक विषयोंसे हटकर स्वाध्यायमें लग जाते हैं। इसलिये जितने कालतक यह जीव स्वाध्याय करता है, उतने कालतक परम निर्जरा होती है। स्वाध्यायकी सिद्धिके वास्ते पुस्तकोंकी प्रतिकी बहुत भारी आवश्यकता है। हमारे धर्म शास्त्र प्रायः संस्कृत और प्राकृत भाषाओंमें हैं। और आजकल इन दोनों ही भाषाओंका प्रचार बहुत ही कम हो गया है। इसलिये विद्वानोंका कर्तव्य है कि धर्मशास्त्रोंका देशभाषामें अनुवाद कर दें। और धनाढ्योंका कर्तव्य है कि उनको छपाकर विना मूल्य अथवा अल्पमूल्यमें देकर सर्वसाधारणमें पुस्तकोंका प्रचार कर दें। छापेमें सरेसका वेलन तथा लेथोमें अशुद्ध स्याही लगती है और कहीं २ अस्पृश्य शूद्रोंके हाथसे सब काम लिया जाता है इसलिये हमारा

कर्तव्य है कि, परमपवित्र जिनवाणीको छपानेके लिये एक स्वतन्त्र प्रेस बनावें। जिसमें रबरका पवित्र बेलन और शुद्ध स्याही काममें लाई-जावे तथा कर्मचारी म्लेच्छ अथवा अस्पृश्य शूद्र न रक्खे जावें। जब-तक इस प्रकारका प्रेस तय्यार न होवे तब तक जिनको हस्तलिखित शुद्ध ग्रन्थोंकी सुगमतासे प्राप्ति नहीं है वे उपलब्ध मुद्रित ग्रन्थोंका ही स्वाध्याय करें। स्वाध्याय न करनेकी अपेक्षा उपलब्ध ग्रन्थोंसे स्वाध्याय करना कहीं बढ़कर है। सुलभतासे पुस्तक प्राप्तिका सबसे बढ़कर साधन प्रत्येक नगर और ग्रामोंमें **सरस्वती भवनका**—स्थापन करना है। हमारे जिन पूर्वाचार्योंने अपने मुख्य धर्म, तप और ध्यानको गौणकरके हमारे उपकारके लिये अनेक ग्रन्थोंकी रचना की। आज उनकी सन्तानमें हम ऐसे अभागे उत्पन्न हुए कि, उन अमूल्य ग्रन्थोंको भण्डारोंमें जीर्णशीर्ण देखते हुए अज्ञान और प्रमादके वशसे कभी उनको धूप भी नहीं दिखलाते। हमारी इस असावधानतासे हजारों ग्रन्थ दीमकोंकी जठराग्निको शमनकरके हमसे हमेशाके लिये बिदा हो गये। किसी भी मतकी चिरस्थितिका यदि कोई उपाय है सो उस मतके साहित्यकी रक्षा करना ही है। इसलिये यदि आप इस जिनधर्मको कुछ कालतक कायम रखना चाहते हो तो जगह २ पर सरस्वतीभवन नियतकरके जिनवाणीकी रक्षा और उसका घर घर प्रचार करो। यद्यपि सरस्वतीभवनकेलिये बाबू देवकुमारजीका प्रयत्न प्रशंसा योग्य है। परन्तु ऐसी योग्यताका सर्वत्र मिलना दुःसाध्य है। इसलिये सरस्वतीभवनकेलिये सर्वत्र भिन्नस्थान बनानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जैनमंदिर अथवा मठोंके ही किसी कमरेमें सरस्वतीभवनका कार्य बहुत अच्छी तरह चल सकता है। और यही रीति हमारे यहा प्राचीन कालसे चली आ रही है। प्रत्येक मंदिरोंमें सर्वत्र शास्त्र भंडार पाये जाते हैं। यह सब कुछ

है। परन्तु जब मठ व मदिरोंकी व्यवस्थापर विचार किया जाता है तो, हृदय कांपने लग जाता है मदिर तथा मठोंके प्रबन्धकर्ता प्रायः पुराने ढरेंके आलसी महात्मा हैं। मदिरभडारोंके हिसाब किताबका कुछ भी पता नहीं है। जिन लक्ष्मीके लालोंके मदिरभडारका रुपया जमा हुआ तो मानों वह उनकी मौरूसी पूंजी हो गई। अगर किसीने हिसाब मागा तो उसकी कम्बख्ती आ गई। इस प्रकार मंदिर व मठोंकी दुर्व्यवस्था होनेसे मदिरोंकी आमदनी घट गई और हमारे धर्म साधनमें बडी हानि पहुच रही है। इसलिये मठ मदिर तीर्थक्षेत्रादिकोंका सतोष-जनक प्रबन्ध होनेकी बडी भारी आवश्यकता है। यद्यपि इस सभाके तथा बबई प्रातिकसभाके प्रयत्नसे अनेक तीर्थक्षेत्रोंका सतोषजनक प्रबन्ध हो गया है परन्तु अभी अनेक तीर्थक्षेत्रोंके प्रबन्धकी आवश्यकता है। मदिरादिकका प्रबन्ध करनेकेलिये स्थानीय गृहस्थोंकी नियमानुसार सभाएँ स्थापित होकर हिसाब किताब तथा अन्य सब कार्यवाहीकी प्रतिवर्ष रिपोर्ट छपकर प्रकाशित होनी चाहिये। जिसप्रकार मदिरोंकी दुर्व्यवस्था हो रही है उस ही प्रकार व्यापारियोंके धर्मादायकी भी बुरी हालत है। जिन महाशयोंके धर्मादायका रुपया जमा है उसको उन्होंने अपना निज द्रव्य समझ रक्खा है। बहुत महाशयोंका तो काम ही इस फडसे चल रहा है। यदि धर्मादायके द्रव्यकी सुव्यवस्था की जावे तो उस द्रव्यसे कई सस्थाओंका काम अच्छी तरहसे चल सकता है। प्रत्येक व्यापारीको इस बातकी प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि वर्षके अन्तमें उक्त खातेका रुपया किसी सस्थाको भेजकर उक्त खातेको बराबर कर दें

कर्मभूमिकी आदिमें ऋषभदेवस्वामीने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इस प्रकार तीन वर्णोंकी स्थापना की थी। पीछे भरतचक्रवर्तीने क्षत्रिय वर्णमेंसे धर्मात्माओंको छाटकर ब्राह्मणवर्णकी स्थापना की। ये ब्राह्मण निरन्तर आत्मकल्याण करते हुए अपनी विद्यासे इतर तीन वर्णोंके

अनेक प्रकारसे उपकार करते थे। उन ही ब्राह्मणोंकी सन्तानमें हमारे दक्षिणवासी उपाध्याय हैं। आजकल हमारे उपाध्याय महाशय विद्याविहीन और निर्माल्योपजीवी होकर अत्यन्त हीन अवस्थाको प्राप्त होगये। यदि ये महाशय निर्माल्यभक्षणको छोडकर अपनेको विद्यासे भूषित करें और उचित अवस्थामें वानप्रस्थ तथा मुनिपदको ग्रहण करके अनेक देशोंमें देशाटन करते हुए धर्मोपदेश करें तो यह जैनधर्म शीघ्र ही राष्ट्रधर्मका गौरव प्राप्तकर ससारके समस्त जीवोंका यथार्थ कल्याण करे। आज यह कहते हमको वडा हर्ष होता है कि जबसे बीसवीं शताद्वीका प्रारम्भ हुआ है तबसे लोगोंके हृदयमेंसे पक्षपातका पचडा निकल गया है अब वे बाबावाक्यको प्रमाण माननेके लिये तैयार नहीं हैं। आज अनेक महाशय सत्यकी खोजमे लग चुके हैं। ऐसे समयमें यदि जैनधर्मके सत्य और अटल सिद्धान्त पबलिकके सम्मुख रक्खे जाय तो आशा है कि, जैनधर्मके सिद्धान्तोंको सत्यान्वेषी महाशय सच्चे उत्साहसे स्वीकार करेंगे। विस्तारके भयसे इस समय जैन सिद्धान्तविषयपर कुछ कहकर आपका समय लेना नहीं चाहता। यदि कुछ समय मिला तो फिर किसी दिन आपको उक्त विषयपर कुछ सुनाऊगा अब अन्तमें जातिके अगुआ विद्वानोंसे प्रार्थना है कि वे गृहस्थाश्रमसे उपेक्षित होकर ब्रह्मचारी बन देशदेशान्तरोंमें देशाटन करते हुए सारे ससारमे जैनधर्मके अटल सिद्धान्त **अहिंसापरमोधर्मकी** विजयपताका फहराकर अतुल पुण्यका उपार्जन करे। इसप्रकार गृहस्थाश्रमके धार्मिकविषयको समाप्त करके आगे सामाजिक विषयपर विवेचन किया जाता है।

सामाजिक व्यवस्था।

श्लोकः—द्वौ हि धर्मौ गृहस्थानां लौकिकःपारलौकिकः।
लोकाश्रयाभवेदाद्यः परस्यादागमाश्रयः॥ १॥

सर्वमेव हि जैनानां प्रमाणंलौकिकोविधिः ।
यत्रसम्यक्त्वहानिर्न यत्रनोव्रतदूषणम् ॥ २ ॥

उपर्युक्त श्लोकोंका भावार्थ इस प्रकार है कि, गृहस्थके दो धर्म हैं। लौकिक (सामाजिक) और दूसरा पारलौकिक (धार्मिक) लौकिक धर्म सामाजिक नियमोंके आश्रयसे चलना है। और पारलौकिक धर्म धर्म शास्त्रोंके नियमोंके अनुसार चलना है। किन्तु जो सामाजिक नियम सम्यक्त्व और चारित्रमें दोषोत्पादक हों वे सामाजिक नियम उपादेय नहीं हैं। अर्थात् धर्मशास्त्रोंसे अविरुद्ध ही सामाजिक नियम होने चाहिये संसारमें जीवोंके मोहनीयकर्मकी तीव्र मंद उदयादिक अवस्थाके निमित्तसे श्रद्धान और आचरणमें अनेक भेद हो गये हैं। श्रद्धानके भेदसे धर्मभेद और आचरणके भेदसे समाज भेदकी उत्पत्ति होती है। किसी समाजमें धर्म और आचरण सदृश है और किसीमें आचरणकी समानता होनेपर भी धर्मकी सदृशता नहीं है। जिन मनुष्योंका परस्परमें पंक्तिभोजन और विवाह सम्बन्ध होता है। उनका ही एक समाज बन जाता है। और जिनका पंक्तिभोजन और विवाहसम्बन्ध परस्पर नहीं होता उनका समाज भी भिन्न होता है। समाजके मूलभेद दो हैं। एक आर्य और दूसरे म्लेच्छ। जो मनुष्य मांसोपजीवी हैं वे म्लेच्छ कहलाते हैं। और जो मांसोपजीवी नहीं हैं वे आर्य कहलाते हैं। किन्तु जो मनुष्य स्वयं तो मांसोपजीवी नहीं हैं परन्तु मांसोपजीवियोंके साथ उनका पंक्तिभोजन और विवाहसम्बन्ध है वे भी म्लेच्छ ही हैं। आर्य चार भागोंमें विभाजित हैं। अर्थात् जो शस्त्रोपजीवी हैं वे क्षत्रिय कहलाते हैं। जो मसिकृषिवाणिज्यसे आजीविका करते हैं उनको वैश्य कहते हैं। जो शिल्प और सेवोपजीवी हैं वे शूद्र कहलाते हैं। और जो आजीविकाका कुछभी उपाय न करके धर्म साधनपूर्वक स्वपरोपकार करते हुए इतर वर्णद्वारा भक्तिपूर्वक प्राप्तद्रव्यसे संतोषपूर्वक अपना जीवन निर्वाह करते हैं वे ब्राह्मण कहलाते हैं।

ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ये तीन वर्णवाले उच्चकुली और मोक्षके पात्र है। शूद्र तथा म्लेच्छ नीचकुली मोक्षजानेके योग्य नहीं है। इस ही प्रकार मुनिलिंगको उच्चकुली ही धारण कर सकते है। उच्चकुली नीचकुलीके हाथका भोजन भी ग्रहण नहीं करते है। सन्तानक्रमसे जिनके उच्चाचरण चला आया है वे उच्चगोत्री और जिनके नीचाचरण चला आया है वे नीचगोत्री कहलाते है। तदुक्त गोम्मट्टसारे।

गाथा—सन्ताणकमेणागय जीवायरणस्सगोद मिदिसण्णां। उच्चंणीचचरणं उच्चंणीचं हवेगोदम्॥ १॥

हिंसादिक बाह्य तथा रागद्वेषादिक अभ्यन्तर क्रियाविशेषके त्यागको निश्चय चारित्र कहते है और अशुभ कार्योंसे निवृत्त हो शुभकार्योंमें प्रवृत्तिको व्यवहार चारित्र कहते है। गोत्रके लक्षणमे आचरण शब्दसे व्यवहार चारित्र ही अभिप्रेत है। अर्थात् शुभप्रवृत्तिको उच्चाचरण और अशुभ प्रवृत्तिको नीचाचरण कहते है। दुष्ट तथा परचक्रसे प्रजाकी रक्षाकर उसकी एवजमे भूमिकरादिक वसूल कर आजीविका करनेको असिकर्म कहते हैं। राजा तथा व्यापारीका लेनदेनका हिसाब लिखकर आजीविका करनेको मसिकर्म कहते है। भोगोपभोगकी सामग्रीको पृथ्वीमेंसे उत्पन्न करके आजीविका करनेको कृषिकर्म कहते है। भोगोपभोगकी कच्ची सामग्रीको स्वय तैयार करके अथवा अन्यसे तैयार कराकर तथा तैयार की हुई पक्की सामग्रीका क्रय विक्रयकर आजीविका करनेको वाणिज्यकर्म कहते है। ये चारो ही कर्म शुभकर्म है। इसलिये इनसे आजीविका करनेवाले भी उच्चकुली है। यद्यपि मसिकर्ममे स्वामी सेवककी लोक प्रसिद्ध है। परन्तु वास्तवमें स्वामित्व तथा सेवकत्व नहीं है। राज्य तथा व्यापारका कार्य अत्यन्त महत्त्वका है इसलिये उसको एक मनुष्य पूर्णरूपसे करनेमे असमर्थ है, अतएव अपने रिश्तेदार भाईबन्धु तथा जातीय सज्जनोंकी सहायतासे उसको पूरा करता है। और उनको परिश्रमका

फलस्वरूप कुछ देकर उनसे अपनी बराबरीका व्यवहार रखता है। भोगोपभोगकी सामग्रीको शारीरिक परिश्रमसे तैयार करके उसके प्रतिफलमे इनामके स्वरूपमे अथवा ठहराकर द्रव्य लेकर आजीविका करनेको शिल्पकर्म कहते हैं। तथा सगीतादिक नानाप्रकारकी विद्याओंसे दूसरेके चित्तको प्रसन्नकरके उनसे इनामके स्वरूपमे अथवा ठहराकर कुछ द्रव्यलेकर आजीविका करनेको विद्याकर्म कहते है। यह दोनों ही कर्म अशुभ हैं। क्योंकि इन कर्मोंमें अपनेसे दूसरेको उच्च मानकर गूढरूपसे याचनाका प्रयोग करना पडता है। और इस ही कारणसे इन कर्मोंसे आजीविका करनेवाले नीचकुली हैं। परन्तु जो महाशय निरपेक्षवृत्तिसे अपनी विद्याओंद्वारा परका उपकार करते हैं और उपकार्य महाशय भक्तिपूर्वक उपकारकी भेटके स्वरूपमें कुछ अर्पण करते हैं, ऐसी भेटको ग्रहण करना नीचकर्म नहीं है। अब यहांपर यह शङ्का उठ सकती है कि, जब उच्चता और नीचता आचरणके निमित्तसे है तो, यदि कोई चण्डाल नीचकर्म छोडकर उच्चकर्म करने लगे तो उच्चकर्मका प्रारम्भ करते ही उच्चकुली हो सकता है या नहीं? इस शङ्काका समाधान इस प्रकार है। यह जीव अनादि सन्तानबद्धकर्मके उदयसे प्रतिक्षण कर्म नोकर्म वर्गणाओंका ग्रहण करता रहता है। जिस प्रकार कर्म वर्गणा शुभाशुभ अनेक प्रकार है उस ही तरह नोकर्म वर्गणा भी अनेक भेदरूप है। जिस समय जीवके शुभाचरणरूप परिणाम होते हैं, उस समय शुभ नोकर्मका बन्ध होता है, और जब अशुभ परिणाम होते हैं तब अशुभ नोकर्मका बन्ध होता है। जिस प्रकार कर्ममें स्थिति बन्ध होता है उस ही प्रकार नोकर्ममें भी स्थितिबन्ध होता है। इसलिये जो जीव चिरकालसे अशुभाचरण कर रहा है, उस जीवके अशुभनोकर्मका सत्त्व अधिक है। यद्यपि भूतभवका नोकर्म वर्तमानभवमें जीवके साथ नहीं आता है। तथापि मातापिताके रजवीर्यसे जो इसका शरीर बनता है

उसमें अनेक अशुभाचरणी पूर्वजोंके अशुभ नोकर्मकी सन्तान आती है। इस प्रकार अशुभाचरणी पुरुषका शरीर नोकर्म वर्गणाओंके अशुभ परमाणुओंसे बना हुआ है। यदि किसी जीवने अशुभाचरण छोड दिया तो उसके अशुभ परमाणुओंके बन्धका तो उस ही समय अभाव हो जाता है। परन्तु सत्तामें जो अशुभपरमाणु मौजूद हैं वे तो बन्धाभावमें निर्जराको प्राप्त नहीं होते, किन्तु उनकी निर्जरा अपनी२ स्थिति पूरी होनेपर होगी। इससे सिद्ध होता है कि नीचकुली अशुभाचरणके छोडनेपर भी तत्काल शुद्ध नहीं हो जाता। किन्तु उसके शुद्ध होनेके लिये कुछ कालकी आवश्यकता होती है। जो कालशुद्धिको नहीं मानते उनके सूतक तथा सघ बाह्यादिक प्रायश्चित्तकी शुद्धि नहीं हो सकती। बहुतसे महाशयोंका ऐसा कथन है कि जो अशुद्ध है वह हमेशा अशुद्ध ही रहेगा कभी भी शुद्ध नहीं होगा उनका कहना प्रमाणबाधित है। क्योंकि जो अशुभाचरणी अशुभाचरणको छोडकर शुभाचरणकी तरफ लग जाते हैं उनके अशुभपरमाणुओंके बन्धका अभाव हो जाता है और पूर्वबद्ध परिमाणुओंकी कालक्रमसे निर्जरा हो जाती है, ऐसा न माननेसे या तो शुभाचरणियोंके भी अशुभ नोकर्मका बन्ध मानना पड़ेगा, या पूर्वबद्ध नोकर्मकी स्थिति पूरी होनेपर भी निर्जराका अभाव मानना पडेगा और ये दोनों ही बातें सिद्धान्तसे विरुद्ध हैं, तथा अवसर्पिणीके छठे और उत्सर्पिणीके प्रथम और द्वितीय कालवर्ती अशुद्धाचरणियोंकी सन्तान स्वरूप परम विशुद्ध तीर्थंकरोंमें भी अशुद्धताका प्रसंग आवेगा। गोत्रके लक्षण निरूपक गाथासूत्रमें जो आचरणका विशेषण सन्तानक्रमेण गत पडा हुआ है उसका भी उपर्युक्त युक्तियोंसे अविरुद्ध यही अभिप्राय है कि शुद्धि होनेकेलिये कुछकालकी आवश्यकता है।

जैन धर्मको राष्ट्रधर्म बनानेकी बात सुनकर हमारे बहुतसे भाई विचलित चित्त हुए हैं। उन्होंने समझ रक्खा है कि जैसे आर्यसमाजी मुसलमानोंको आर्य बनाकर तत्काल उनके हाथका भोजन खाने लगते हैं,

उस ही प्रकार जैन धर्मको राष्ट्रधर्म बनानेवाले भी नीचकुलियोंको जैनी बना-कर उनके हाथका भोजन खाने लगेंगे। सो ऐसा समझना उनका भ्रम है। सार्वधर्म परिषदका उद्देश्य जीवमात्रका जैनधर्मके द्वारा कल्याण करना है। सामाजिक व्यवस्थामें वह विलकुल हस्तक्षेप नहीं करेगी। त्रै-वर्णिचारादिक ग्रन्थोंसे यह बात पाई जाती है कि, उच्चवर्णका मनुष्य समवर्ण अथवा अपनेसे नीचवर्णकी कन्याके साथ विवाह कर सकता है। परन्तु अपनेसे उच्चवर्णकी कन्याके साथ विवाह नहीं कर सकता। समानवर्णके मनुष्य और स्त्रीसे जो सन्तान पैदा होगी उस सन्तानका वर्ण वही होगा जोकि उसके मातापिताका है और जो भिन्नवर्णवाले माता-पितासे सन्तान उत्पन्न होगी वह सन्तान मिश्रवर्ण कहलावेगी, ये मिश्रवर्ण जातिया भी कालक्रमसे अपने २ पिताके वर्णको प्राप्त हो जाती है। मनु-ष्यसमाजमें उत्पत्तिकी अपेक्षासे दो भेद है। एक शुद्धकुलोद्भव और दूसरा अपध्वसज। जो शील व्रतधारी मातापितासे उत्पन्न होते हैं वे शुद्धकुलोद्भव कहलाते हैं और जो व्यभिचारसे उत्पन्न होते है वे अपध्वसज कहलाते है। एक गर्भाशयमे अनेक वीर्योंके मिलनेको व्याभिचार कहते है। एक पुरुषके अक्षतयोनि अनेक स्त्रियोंसे समोग करनेपर व्यभिचार नहीं होता किन्तु एक स्त्रीके दो पुरुषोंके साथ समोग करनेपर ही व्यभिचार दोष होता है। इसलिये पुरुष अनेक विवाह करनेपर भी व्यभिचारी नहीं है किन्तु स्त्री दूसरा विवाह करते ही व्यभिचारिणी हो जाती है। वीर्य ऐसा सचिक्कण पदार्थ है कि एक वार गर्भाशयमें पहुचनेपर यदि वीर्य वहासे निकल भी जाय तोभी गर्भाशयमें वीर्यके सूक्ष्मांश रह जानेकी अधिक सभावना है। कालान्तरमें उस ही गर्भाशयमे दूसरे मनुष्यका वीर्य पहुचनेसे वीर्य सकर हो जाता है और उस मिश्रित वीर्यसे जो सन्तान उत्पन्न होती है वह उत्तम सन्तान नहीं होती, किन्तु अधम सन्तान होती है। ऐसी सन्तान मोक्षकी अधिकारिणी नहीं है। इसलिये व्यभिचारसे

उत्पन्न मनुष्योंकी मोक्षके पात्र न होनेसे शूद्र सज्ञा है। त्रैवर्णिचारमें कहा है "शूद्राणातु सधर्माण: सर्वेऽपध्वसजा: स्मृता:। उत्तम वर्णवालोंमेंसे यदि कोई इस प्रकारसे अपध्वसज उत्पन्न हो जाते है तो वे जातिसे बहिष्कृत कर दिये जाते है और ऐसे अनेक मनुष्योंकी मिलकर दस्सा जाति हो जाती है। जिन दस्सोंमे उपर्युक्त व्यभिचारका प्रचार रहता है वे दस्से अशुद्ध ही समझे जाते हैं। परन्तु जो दस्से इस अधम कार्यका परित्याग करके अपने आचरणको सुधार लेते है उनकी सन्तान कई पुश्तमें जाकर शुद्ध हो जाती है। त्रैर्णिकाचारमें इसकेलिये इस प्रकार कहा है—

श्लोक—जात्युत्कर्षो युगेज्ञेयः सप्तमे पंचमेऽपिवा।
कर्मणांव्यत्ययेपिस्यात्पूर्ववच्चाधरोत्तरे॥ १॥

अर्थात् आचरणके सुधारनेसे नीच वर्ण पाच छह और सात पुश्तमें यथाक्रम उच्चवर्ण होजाता है और उच्चवर्ण आचरणके बिगाडनेसे पाच छह और सात पुश्तमें यथाक्रम नीचवर्ण हो जाता है। इसलिये जिन दस्सोंको शुद्धाचरणरूप प्रवर्तते हुए उपर्युक्त प्रमाण काल व्यतीत होगया है वे दस्से अब बीसोंके समान होगये हैं और उनके साथ पंक्ति-भोजन और विवाह सबन्ध करनेमें कुछ दोष नहीं है।

मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टसे ज्ञात होता है कि जैनियोंकी सख्या पाहिलेकी अपेक्षा घट गई है। इस घटीका प्रथम कारण स्वास्थ्य रक्षाकी असावधानता प्रतीत होती है। स्वास्थ्यकी रक्षा ठीक २ न होनेसे जन्मसंख्याकी अपेक्षा मृत्युसख्या अधिक होती है। घटीका दूसरा कारण अनेक पुरुषोंका विना विवाह किये ही जीवन समाप्तकर मरजाना है। अनेक पुरुषोंके अविवाहित रहजानेका कारण यह है कि जैन समाज अनेक जातियोंमें विभक्त हो गया है, इसलिये प्रत्येक जातिकी सख्या बहुत न्यून होगई है और थोडे पुरुषोंमे अनेक रिस्तेदारिया होनेके सबबसे गोत्र टालकर वर मिलना कठिन होगया है ऐसी अवस्थामें अनेक पुरुष

अविवाहित रहजाते हैं। घटीका तीसरा कारण बालविवाह है बालविवाहके होनेसे कच्ची उमरमें कच्चा वीर्य स्खलित होता है, जिससे प्रथम तो सन्ताने उत्पत्तिही नहीं होती, कदाचित् सन्तान उत्पन्न भी हुई तो शीघ्र ही मरजाती है, कदाचित् अधिक कालतक भी जीवित रही तो बिलकुल निर्बल और विद्यादिक सद्गुणोंको धारण करनेके अयोग्य होती है। घटीका चौथा कारण वृद्धविवाह है। धनके लोभी मातापिता धनतृष्णासे अन्धे होकर अपनी प्रिय पुत्रिया योग्य वरको न देकर पुरुषार्थहीन वृद्ध नपुंसकोंके हवाले कर उनको जन्मभरके लिये घोर दुःखमें पटक देते हैं। वृद्धोंके संसर्गसे सन्तानकी उत्पत्ति भी नहीं होती और वे दुःखिनी बाला व्यभिचारका शरण लेकर उभय कुलको कलंकित करती हैं। घटीका पांचवा कारण अविद्या है अर्थात् बहुतसे महाशय जैन कुलमें उत्पन्न होकर भी अज्ञानवश यह भी नहीं जानते कि हम किस धर्मको अवलम्बन करनेवाले हैं और मर्दुमशुमारीके समय अपनेको हिन्दू लिखा देते हैं इसलिये संख्याकी वृद्धिके वास्ते हमारा कर्तव्य है कि, बालविवाह, वृद्धविवाह और अविद्याका जैनसमाजमेंसे काला मुंह कर दें और स्वास्थ्यकी रक्षाकी तरफ पूरा २ ध्यान दें। तथा उत्तम कुलियोंकी अपने २ वर्णमें भी जो पंक्तिभोजन और विवाहसम्बन्धकी संकीर्णता हो रही है उसको दूरकरके उदारताका परिचय दें। अब विधवाओंके कर्तव्यपर विवेचन किया जाता है।

एक पुरुष अनेक कन्याओंके साथ जिस प्रकार विवाह करलेता है उस ही प्रकार एक स्त्री भी अपने पूर्व पतिके मरण होनेपर दूसरे पुरुषके साथ विवाह करलेवें तो उसमें कुछ हानि नहीं है। ऐसे विचारवाले भोले महाशय विधवाओंको पुनर्विवाह करनेकी सम्मति प्रदान करते हैं। परन्तु उनका ऐसा विचार अविचारित रम्य है। स्त्री और पुरुषमें मनुष्यत्वकी अपेक्षा समानता होनेपर भी अनेक विशेषोंकी अपेक्षासे महान् अन्तर है। प्रथम तो स्त्री और पुरुषमें

भोज्य भोजक सम्बन्ध है। भोजनसे भरे हुए ऐसे अनेक थालोंमें जिनमेंसे किसी भी पुरुषने भोजन नहीं किया है एक पुरुष भोजन कर सकता है, परन्तु यदि एक थालमें किसी एक पुरुषने भोजन कर लिया है तो उस थालमे दूसरा पुरुष कदापि भोजन नहीं करता है। क्योंकि वह भोजन उच्छिष्ट होजाता है। उस ही प्रकार एक पुरुष अनेक अभुक्त स्त्रियोंका भोग कर सकता है, परन्तु भुक्त स्त्रीको उच्छिष्ट होनेसे कोई भी सत्पुरुष नहीं भोगता। विवाहका प्रयोजन हमारे बहुतसे भोलेभाइयोंने काम वासनाकी तृप्ति ही समझ रक्खा है। यदि कामवासनाकी तृप्ति ही विवाहका प्रयोजन होता तो विवाहबन्धनकी कुछ भी आवश्यकता न थी। विवाह-बन्धनके विना भी पशुओंकी तरह कामवासना तृप्त हो सकती थी। विवाह-बन्धनका मुख्य प्रयोजन उत्तम सन्तानकी उत्पत्ति करना है। जैसा कि, पहिले कहा जा चुका है। उत्तम सन्तानकी उत्पत्ति एक पुरुषके अनेक अभुक्त स्त्री सभोग करनेसे हो सकती है किन्तु एक स्त्रीके अनेक पुरु-षोंके साथ सभोग करनेपर उत्तम सन्तानकी उत्पत्ति कदापि नहीं होस-कती। विधवाओंको वैराग्यका उपदेश देकर विषयभोगोंसे विरक्त करा कर आर्यिकाकी दीक्षा दिलानी चाहिये और जो असमर्थ होनेके कारण आर्यिका नहीं हो सकती हैं उनको चाहिये कि वे वैधव्य दीक्षा धारण करके स्त्रीसमाजमे विद्या और धर्मका प्रचार करें। उत्तरदेशकी अपेक्षा दक्षिणदेशमें विद्या और धर्मका प्रचार कुछ न्यून होरहा है, इसकारण सभाका प्रधान कर्तव्य यह है कि अपने देशके स्त्रीसमाज तथा पुरुषसमा जमें विद्या और धर्मका प्रचार करनेमें तन मन धनसे प्रयत्न करें।

आजकल भारतवर्षका और इतर विदेशोंका लौकिक विद्या और वाणि-ज्यके सम्बन्धमें ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध होगया है कि विना विदेश गये लौकिक विद्या और वाणिज्यकी यथेष्ट उन्नति नहीं होसक्ती। परन्तु जब विदेशमें आचार निर्वाहपर विचार किया जाता है तो प्रतीत होता है कि

विदेशमे आचरण निर्वाह बहुत ही कष्ट साध्य है और इस ही कारणसे विदेश जानेवाले महाशय समाजसे बहिष्कृत किये जाते है, यद्यपि विदेशमें आचरण निर्वाह कष्ट साध्य है, तथापि असभव नहीं है। इसलिये जो महाशय अपने आचरण निर्वाहकी पूर्ण सामग्रीका प्रबन्ध करके विदेशको जाते है उनको समाजसे वहिष्कृत करना अनुचित प्रतीत होता है। परन्तु जो महाशय उत्तम खाद्य तथा अनुचित स्पर्शसे अलिप्त आचरण निर्वाहकी सामग्री एकत्र किये विना ही विदेश चले जाते है वे अनुचित स्पर्शादि दोषोसे अलिप्त नहीं रह सकते, इसलिये ऐसी अवस्थामें विदेश जानेवाले महाशय अवश्य ही प्रायश्चित्तके पात्र हैं। किन्तु जिन देशोंमें आचरण निर्वाहकी उत्तम सामग्रीके मिलनेका सुभीता हो उन देशोमे जानेवाले महाशयोंको वहिष्कृत करना समुचित नहीं दिखता।

आजकल हमलोगोंमें परस्परका ईर्षा द्वेष यहातक बढगया है कि, एक २ जातिमे कई धडे होगये हैं और धीरे धीरे होते जाते हैं। एक दूसरेकी बुराई करनेमें बिलकुल नहीं हिचकता, पचायती नियमोंकी कोई परवाह नहीं करता और पचायती दडोंका कोई पालन नहीं करता। पचायत स्थापन करनेका मुख्य उद्देश समाजमें शान्ति स्थापन था। परन्तु उस उद्देशको पैरोंसे कुचलकर अदालतोंमें मुकद्दमेबाजी करके बडे २ धनाढ्य लगोटी लगाकर फकीर बन गये। अदालतमें जाकर भी दूसरोंका ही कहना मजूर करना पडता है। अगर समाजमें से ही कुछ सज्जनोंको परस्परके झगडे तय करनेका अधिकार दे दिया जाता तो अदालतोंमें अपनी कठिन कमाईका द्रव्य व्यर्थ नहीं खोना पडता। परन्तु 'गई सो गई अब राखि रहीको' के अनुसार हमारा कर्तव्य है कि, जातीय पचायतोंका गठन इस खूबीके साथ करें कि, जिससे हमारी सामाजिक व्यवस्थाभी ठीक होजाय और परस्परके दीवानी और फौजदारी झगडे भी पचायतसे फैसिल होजाया करें।

आर्थिक व्यवस्था ।

जो महाशय विषयभोगोंको सर्वथा त्यागनेमें असमर्थ हैं और सिंह-वृत्ति मुनिधर्मको जो धारण नहीं कर सकते हैं वे अन्यायरूप भोगोंका त्यागकरके न्यायरूप भोगोंका सेवन करते हुए गृहस्थाश्रमका निर्वाह करते हैं। इस आश्रमके निर्वाहकेलिये धनकी बडी भारी आवश्यकता है। इस लिये जिन गृहस्थोंके पास धन नहीं है उनकेलिये यह गृहस्थाश्रम जीवन बडा ही दुःखमय है। निर्धन पुरुष सदा विह्वल चित्त रहते हैं और उनका प्रायः सर्वत्र निरादर ही होता है। मित्र पुत्र स्त्री आदिक सदा रुष्ट रहते हैं। इसलिये गृहस्थका प्रधान कर्तव्य धन उपार्जन करना है। मनुष्य समाज आजीविकाके भेदसे चार वर्णोंमें विभक्त है। अर्थात् क्षत्रियोंकी आजीविका असिकर्म वैश्योंकी कृषि मषि वाणिज्य और शूद्रोंकी शिल्प और विद्या है। ब्राह्मण वर्णकी कोई खास आजीविका नहीं है। किन्तु इतर तीन वर्णोंके दिये हुए भक्तिपूर्वक दानसे सन्तोषपूर्वक अपना निर्वाह करते हुए धर्मसेवन करते हैं। किसी समयमें यह भारतवर्ष धन और विद्यामें संसारके समस्त देशोंका शिरोमणि गिना जाता था—समस्त देशोंने इस भारतके धन और विद्यासे अपनेको विभवशाली बनाया है। परन्तु खेदके साथ कहना पडता है कि, जो भारत एक दिन सबका गुरु था आज वह उनका शिष्य हो गया है। जो भारत एक दिन धनकुवेर समझा जाता था आज हमारी ही असावधानतासे वह एक दरिद्र भिखारी बन गया है। आज वह अपनी जठराग्नि शमन करनेके लिये दूसरोंके मुहकी ओर ताक रहा है। क्या आप कभी इसका विचार करते है कि, हम ऐसे क्यो होगये। प्यारे भाइयो इसका कारण और कुछ नहीं है किन्तु हम अपने ही प्रमाद अविद्या और परस्परकी ईर्षा आदिक दोषोंसे इस अवस्थाको पहुच गये है। किन्तु

बडे हर्षका विषय है कि, भारतके कुछ शुभचिन्तकोंकी कृपा और प्रयत्नसे मुर्दोंसे बाजी लगाकर सोनेवाला भारत जाग्रत हुआ है। जगह २ सभा सुसाइटीये होने लगी हैं। अनेक पाठशाला स्कूल ब्रह्मचर्याश्रम और गुरुकुल खुलगये हैं और खुल रहे हैं। ऐसे शुभ चिह्नोंसे आशा होती है कि अब भारतके कुछ अच्छे दिन आने वाले हैं। इस समयमें हमारा कर्तव्य है कि, जिन प्रमाद, अविद्या, विलासप्रियता, निर्बलता, जन्मभूमिवत्सलता, सन्तोष, भयभीतता फूट और ईर्षादिक दोषोंसे हमारी यह अवनत अवस्था हुई है उनको बहिष्कृत करके उद्योग, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि, पराक्रम, स्वदेशप्रेम, एकता और सत्यप्रियता आदिक गुणोंसे अपनेको विभूषित करके पुन इस भारतको उन्नतिके शिखरपर पहुचा देवें। किसी देशको समृद्धिशाली बनानेका प्रधान उपाय उस देशके कृषि शिल्प और वाणिज्यकी उन्नति है। जिन २ देशवासियोंने कृषि शिल्प और वाणिज्यकी उन्नति की है वे आज धन कुबेर बनरहे हैं और जिन्होंने कृषि शिल्प वाणिज्यको निरादर और प्रमादसे पद दलित किया है वे स्वयं पद दलित हो रहे हैं। जो पदार्थ हमारे देशमें उत्पन्न नहीं होते किन्तु दूसरे देशोंसे आते हैं, हमारा कर्तव्य है कि उन पदार्थोंको हम अपने देशमें ही उत्पन्न करें जिससे कि हमको दूसरे देशोंका मोहताज न रहना पडे। तथा कृषिके सम्बन्धमें विदेशियोंने जो नये २ आविष्कार किये हैं हमारा कर्तव्य है कि उनको अमलमें लाकर उससे लाभ उठावें। नवीन आविष्कारोंके प्रयोगसे पुराने प्रयोगोंकी अपेक्षा कई गुणा अधिक लाभ हो सकता है। जिस प्रकार पाश्चिमात्य विद्वानोंने कृषि आदिक के सम्बन्धमें नवीन २ आविष्कार किये हैं। उस ही प्रकार हमारा भी कर्तव्य है कि नवीन २ आविष्कार करें। भारतवर्षकी बहुतसी भूमि बजर पडी हुई है। जो हमारे बहुतसे भाई आलस्यका आश्रय लेकर निकम्मे बैठे रहते हैं, हमारे नेताओंका कर्तव्य है कि उन निकम्मोंका आलस्य छुडा-

कर ऊसर भूमिको आवाद कर भारतकी श्री वृद्धि करें। हमारा कर्तव्य है कि, भारतवसुधरासे अपनी तथा विदेशियोकी जरूरतके पदार्थ उत्पन्न करके भारतके धनको विदेश जानेसे रोकें और विदेशका धन भारतमे लाकर इस दरिद्रभारतको पुनः पहलासा सपत्तिशाली बना दें। भारतके शिल्पकी जैसी अधोदशा हुई है उसका चिन्तवन करनेसे भी कलेजा थर्राने लगता है। आज अगर विदेशी लोग भारतसे अपना हाथ खींच लें तो हमारे सब काम बद हो जाय। और बातोंकी कथा तो दूर रही हम दिवावत्ती तथा चूल्हेमें आग जलाना भी विदेशियोंकी कृपाभूत दियासलाईके विना नहीं कर सकते। हमारे यहांकी कच्ची सामग्री रुई वगैरह एक रुपयेकी तीन सेर यहासे सात समुद्र पार जाती है और उस ही सामग्रीके कपड़े आदि तीन रुपयेके एक सेरके भावमें हमें ही बेचे जाते हैं। हमारे प्रमाद और अविद्यासे हमारे हिस्सेकी रोटी दूसरोंके पेटमें जाती है और हम भूखके मारे तडफडा और चिल्ला रहे हैं। हमारी मूर्खतासे हमारा ही करोडों और अर्बों रुपया तीन तथा चार आने सैंकडेके सूदपर विदेशियोके पास जमा है। जिससे कि वे सैंकडों कारखाने खोलकर लाखों रुपये पैदाकर अपने देशको समृद्धिशाली बना रहे है और हम निःसार व्याजमें सतोष करते हुए तोंद फुलाकर तकियेके सहारे लेटे लेटे अपने जीवनको कृतकृत्य समझ रहे हैं। हमारे भारतवासी शिल्पकार विद्याके विना विदेशी शिल्पकारोंसे परास्त होकर अपने रोजगारको छोड़ बैठे है और थोडी बहुत अग्रेजी सीखकर विदेशियोंकी सेवा करके ही अपना निर्वाह कर रहे हैं। परन्तु खेद है कि इस भेडाचालसे आज ऐसे महात्माओंकी इतनी वहुतायत हो गई है कि, अब उन बिचारोंको नौकरी भी नहीं मिलती और अपना मौरुसी रोजगार करनेमें अब बाबू साहब अपनी हतक समझने लगे हैं। इस प्रकार यह दीन हीन भारत दिनपर दिन रसातलको चला जा रहा है। हम लोग लैक्-

कर रक्खें और कुछ भाग धर्म कार्यमें लगावें और शेषको खर्चमें लगावें। प्रमाद और अविद्याके निमित्तसे हमारे अनेक भाइयोंकी आमद इतनी कमती होगई है कि धर्म और विपत्तिकालके लिये अलग निकालनेकी बात तो अलग रहो। वे उस आमदनीसे अपना निर्वाह भी नहीं कर सकते हैं और ऐसी अवस्थामें वे ऋणके चक्करमें पडकर जन्मभरके लिये दुःखी हो जाते हैं। बहुतसे महाशय वस्त्रादिककी बाहरी चकाचकीके झूठे शौकमें फसकर अपनी आमदनीसे अधिक खर्चकी पूर्ति करने के लिये ऋणका आश्रय लेते हैं और जब ऋण चुकानेमें असमर्थ होते हैं तब नाना प्रकारके अन्यायोंमें प्रवृत्त होकर अपने जीवनको नष्ट भ्रष्ट करदेते हैं। तथा ऋण न चुकानेके कारण कुरकी कारागार आदिक अनेक भयानक घटनाओंका सामना करना पड़ता है। एक बार खाकर तथा एक पैसेके चनोंसे पेट भर कर अथवा भूखे ही सोजाना अच्छा है परन्तु ऋणका भार सिरपर लेना कदापि श्रेयस्कर नहीं है। हमारे बहुतसे भाई अपनी आमदनीमें जिसतिस प्रकार भोजन वस्त्रका तो निर्वाह करलेते हैं परन्तु जब उनकी सन्तानके विवाहका मौका आता है तब उनका धैर्य विदा हो जाता है—विवेक उनसे कोसों दूर भाग जाता है। और ईर्षा अभिमान उनपर पूरा २ अधिकार जमा लेता है। "अमुक पुरुषने अपने विवाहमें दो मिठाई बनाई थी मैं जबतक पांच मिठाई नहीं बनाऊ तो मेरी बात बिलकुल फीकी पड जायगी। हमारे बापदादोंने किसी भी विवाहमें दो हजारसे कम नहीं लगाये। अब जो हमने वैसा विवाह नहीं किया तो हमारी नाक कट जायगी" इस प्रकार मिथ्या अभिमान और झूठी ईर्षाके चक्करमें पडकर अपने पास धनके न होनेपर भी मकान तथा जेवर गिरवी रखकर अथवा मकान ज़ेवरके अभावमें ऋण लेकर झूठी तारीफ लूट सदाके लिये

अपनेको आपत्तिमें डाल देते है। बहुतसे भाई इस झूटी तारीफके लूटनेके लिये अपनी बेटीतकको बेचनेमें नहीं शरमाते। बहुतसे भाईयोंको जातिके पचोंकी उदरज्वाला बुझानेके लिये ही अपनी कन्याका विक्रय करना पड़ता है। धिक्कार है उन कन्याविक्रय करनेवालोंको और कोटिशः धिक्कार है उन पचोंको जो कन्याविक्रयके धनसे बने हुए लड्डू उडाकर मूछों-पर ताव देते है। पचोंका कर्तव्य है कि जो महाशय कन्या विक्रय करें उनके विवाह भोजनमें कदापि शामिल न हो और जो उनके विवाह क्रियाओंमें शामिल होना चाहें वे महाशय अपने घर भोजन करके शामिल होवें। धर्मके अगोंमें भी धन खर्च करनेकी उपयोगितापर हमें अवश्य विचार रखना चाहिये। धर्मके प्रतिष्ठादिक अगोंमें आजकल धन खर्च करनेकी उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि विद्यावृद्धि विषयमें खर्च करनेकी आवश्यकता है। इसलिये समयानुकूल विचार करके आवश्यक अगोंमे ही धन खर्च करना ही धनकी सच्ची उपयोगिता है। धनकी उपयोगिताकी तरह समयकी उपयोगिताकी भी बडी आवश्यकता है। जो समयकी कदर नहीं करते समय उनकी भी कदर नहीं करता। और जो समयकी कदर करते है आज उनकी दुनियाभरमें खूब कदर हो रही है। हम लोगोंने निकम्मे बैठकर समयके दुरुपयोग करनेको ही सुख समझ रक्खा है। हमारे बहुतसे भाइयोंके पास लाखों और करोंडोका धन है। वे जोखमका सब काम गुमास्ताके भरोसे छोडकर सोने और गप्प उडानेमें ही समय बिताकर अपने मनुष्य जन्मको सफल मानते हैं। परन्तु प्यारे भाइयो मनुष्य जन्म पानेकी यह सच्ची सफलता नहीं है। आपको अपने युवराजसे जो कि जहाजोंमें खलासीका काम करके अनुभव प्राप्त कर रहे है, कुछ शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये। इस प्रकार गृहस्थाश्रमका सक्षिप्त स्वरूप कहकर अब वानप्रस्थ और यत्याश्रम विषयपर अति सक्षेपसे विवेचन करके मैंअपने व्याख्यानको समाप्त करूगा।

वानप्रस्थ और यत्याश्रम ।

गृहस्थ धर्मके प्रतिमाओंकी अपेक्षासे जो ग्यारह भेद किये थे । उनमेंसे दसवीं और ग्यारहवीं प्रतिमाके चारित्र निर्वाहको वानप्रस्थ-आश्रम कहते है । इन प्रतिमाओंका विस्तृत स्वरूप श्रावकाचारसे जानना । जो महाशय दिगम्बर रूप धारण करके अट्ठाईस मूलगुणका तथा चौरासी लाख उत्तरगुणका पालन करते है वे यति कहलाते है और इन यतिओंके चारित्र निर्वाहको यत्याश्रम कहते है। यतिओंके चारित्रका सविस्तर कथन चरणानुयोगके ग्रन्थोंसे जानना ।

आज खेदके साथ कहना पडता है कि चतुर्थकालमे जो जगह २ पर मुनियोके सघोंका विहार होता था और जिससे जैनधर्मकी सच्ची प्रभावना होती थी । आज उन सिंहवृत्तिधारी ऋषियोंके दर्शन भी दुर्लभ होगये है । उन प्राचीन ऋषियोकी पद परपरामे आज जो भट्टारक महाशय हमारे सम्मुख उपस्थित है वे आरभ परिग्रहयुक्त होकर आगमानुसार मुनिपदसे च्युत होगये हैं । इन महाशयोंसे हमारी सविनय प्रार्थना है कि वे आरभ परिग्रहका त्याग करके प्रायश्चित्त पूर्वक पुनर्दीक्षित होकर सूत्रानुसार अट्ठाईस मूलगुणका पालन कर समाजकी दृष्टिमें पुनः यथार्थ गौरवके पात्र बने। पूर्वाचार्योंकी स्पष्ट आज्ञा यही है कि किसी व्रतको धारण करनेके पहले इस बातका अच्छी तरह विवेचन कर लेना चाहिये कि, मैं इस व्रतका निर्वाह कर सकूंगा या नहीं और विचारपूर्वक ग्रहण किये हुए व्रतका प्रयत्नपूर्वक निर्वाह करना चाहिये । कदाचित् प्रमादसे गृहीत व्रतमे कुछ दोष लग जाय तो प्रायश्चित लेकर पुनः दृढतापूर्वक व्रतका पालन करना ही कर्त्तव्य है ।

जिस प्रकार प्रजाके शासनकेलिये न्यायनिष्ठ राजाकी आवश्यकता है। अथवा जिस प्रकार मुनि समाजके शासनके लिये धर्माचार्यकी जरूरत है, उस ही प्रकार गार्हस्थ्य समाजके शासनकेलिये गृहस्थाचार्यकी आवश्य

कता है। यद्यपि स्वतन्त्रता एक महत्त्वपूर्ण गुण है और जो इस गुणके पात्र हैं वे इससे नानाप्रकारके लाभ उठा सकते हैं। परन्तु अपात्रके पल्ले पडकर इस गुणसे लामके वदले हानि ही होती है। नीतिकारनेभी ऐसाही कहा है कि—

गुणागुणज्ञेषु गुणा भवन्ती इत्यादि।

भावार्थ—अज्ञानी मनुष्य गृहस्थाचार्यके विना मदोन्मत्त स्वच्छन्द हस्तीकी तरह गृहस्थाश्रमरूपी वागको विध्वन्स करडालते हैं। इसलिये हमारा कर्त्तव्य है कि अपने समाजमेंसे किसी विद्वान धर्मात्माको गृहस्थाचार्यके पदपर नियुक्त करके समाजकी दीक्षा शिक्षाका भार उसके सुपुर्द करें। अपनी कठिन कमाईके द्रव्यमें से उचित दान देकर अनेक विद्यालय, औषधालय, अनाथालय, अन्नसत्रादिक उपयोगी संस्था स्थापन करके उक्त गृहस्थाचार्यको उसका प्रबन्धकर्त्ता बनावें। इन गृहस्थाचार्यके निर्वाहके लिये हमारा कर्तव्य है कि हम भक्तिपूर्वक अपनी शक्त्यनुसार उनकी हरतरहसे सहायता करें और वे सन्तोषपूर्वक अपना निर्वाह करते हुए हरतरह समाजका उपकार करें। संस्थाओंके सञ्चालनके लिये हमको चाहिये कि उचित नियम बना दें। जो गृहस्थाचार्य अपने कर्त्तव्यसे च्युत होकर अन्यायमें प्रवर्तने लग जाय तो हमारा कर्त्तव्य है कि उसको गृहस्थाचार्यके पदसे च्युत करके उस पदपर किसी अन्य योग्य महाशयका आयोजन करें। इस प्रकार संक्षेपसे आवश्यक विषयोंका विवेचन करके मैं अपने व्याख्यानको समाप्त करताहू। मेरे इस व्याख्यानमें संभव है कि, अज्ञान और प्रमादसे अनेक त्रुटियां रहगई हों जिनके लिये मैं आशा करताहूं कि आपसरीखे उदारचित्त महाशय क्षमा प्रदान करेंगे। अब मैं सब्जैक्ट कमेटीके चुनेजानेकी प्रार्थना करके मैं अपना आसन ग्रहण करताहूं।

ॐ

जैनहितैषी

जैनियोंके साहित्य, इतिहास, समाज और धर्मसम्बन्धी लेखोंसे विभूषित

मासिकपत्र।

सम्पादक और प्रकाशक—श्रीनाथूराम प्रेमी।

आठवाँ भाग।	कार्तिक श्री वीर नि० संवत् २४३८	प्रथमांक

विषयसूची। पृष्ठ

Printed by G N Kulkarni at his Karnatak Press, No 7, Girgaon Back Road Bombay for the Proprietors

जैनहितैषीके नियम।

१ जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य डांकखर्च सहित १॥) पेशगी है।

२. प्रतिवर्ष अच्छे २ ग्रन्थ उपहारमें दिये जाते हैं और उनके छोटे बड़ेपनके अनुसार कुछ उपहारी खर्च अधिक भी लिया जाता है। इस सालका उपहारी खर्च ॥) है। कुल मूल्य उपहारी खर्चसहित २) है

३ इसके ग्राहक सालके शुरूहीसे बनाये जाते है, 'बीचमें नहीं बीचमें ग्राहक बननेवालोंको पिछले सब अक शुरू सालसे मगाना पड़ेंगे, साल दिवालीसे शुरू होती है।

४ जिस साल जो ग्रन्थ उपहारके लिये नियत होगा वही दिया जायगा। उसके बदले दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं दिया जायगा।

५ प्राप्त अकसे पहिलेका अक यदि न मिला होगा, तो भेज दिया जायगा। दो दो महिने बाद लिखने वालोंको पहिलेके अक फी अक दो आना मूल्यसे भेजे जावेंगे।

६ बैरग पत्र नहीं लिये जाते। उत्तरके लिये टिकट भेजना चाहिये।

७ बदलेके पत्र, समालोचनाकी पुस्तकें, लेख वगैरह "सम्पादक, जैनहितैषी, पो० गिरगांव-बम्बई"के पतेसे भेजना चाहिये।

८ प्रबध सम्बधी सब बातोंका पत्रव्यवहार मैनेजर, जैनग्रंथरत्नाकरकार्यालय पो० गिरगांव, बम्बईसे करना चाहिये।

हम बबईके नये सहयोगी 'स्याद्वादीका, सादर स्वागत करते हैं, और अपने पाठकोंसे उसको आश्रय देनेकी भी सिफारिश करते हैं। साथ ही गर्भस्थ सहयोगिनी जैनरत्नमालाके अवतारकी प्रतिक्षा करते हैं।

नम सिद्धेभ्य

जैनहितैषी.

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥ १ ॥

आठवाँ भाग] कार्तिक श्रीवीर नि० सं० २४३८ [प्रथमांक ।

आकारनिरूपण ।

[स्वर्गीय गाधी वीरचन्द राघवजी, बी ए, एम. आर. ए. एस के वाशिंगटन–अमेरिकामें दिये हुए एक व्याख्यानका अनुवाद ।]

इस व्याख्यानके उदाहरणीय भागको लेनेके पहिले मैं 'आकार-विज्ञान ' पर कुछ कहना चाहता हूं । पाश्चात्य विद्वानोंका सामान्य विचार आकार और कहावतोंके सम्बन्धमें यह है कि, इनकी जड़ मनुष्यके मनकी प्राथमिक अवस्थाको प्रगट करती है । उनका विचार है कि, जिस समय मनुष्यकी उत्पत्ति हुई, उस समय उनका विचार बच्चोंके समान था । इस कारण उन्होंने पहिले तो अपने विचारोंको चित्रों (तसवीरों) के द्वारा प्रगट किये और फिर पीछेसे उन्हें भावरूपमें जाहिर किये । परन्तु उनका यह कथन वास्तवमें कोई असली बुनियाद नहीं रखता । क्योंकि जबतक अपने मनमें पूर्णभाव न बना लिया जाय, तबतक कोई उसका चित्र नहीं बना सकता है । इसलिये पहिले विचार उत्पन्न होते है, पीछे उन विचारोंको चित्रों तथा आकारोंसे समझाते है ।

आकारके प्रयोग करनेके कारण है। देखो, ऊंचे विचार ... मेरी समझमें विज्ञानको साधारण वाक्योंमें क्यों नहीं समझा [illegible]ते ? तत्त्व ऐसे गू[illegible] इसके चार कारण है, एक तो यह है कि, बहुतसे होते है कि, उन्हें हर एकके साम्हने यों ही नहीं फेंक देना चाहिये, मोती कहीं सुअरके आगे फेंके जाते है ? बहुतसे मनुष्य है, जो गूढ तत्त्वोंके गुणोंको नहीं समझते है। इस कारण उन्हें आकारमें प्रगट करना चाहिये। बस, छुपाना पहिला कारण है। दूसरा कारण यह है कि, यदि वे सामान्य भाषामें कहे जावें, तो सबको उनका पता लग जाय, और बहुत लोग उन्हें दूसरोंको तथा अपने आपको पीडा देनेके काममें ले आवें। इस तरह रक्षण दूसरा कारण है। तीसरा कारण उनको नित्य वा अमर कर देना है। यदि कोई बात मामूली भाषामें प्रगट की जाय, तो सभव है कि कुछ समयके पश्चात् हम उसे भूल जावें। परन्तु यदि उसी बातको चित्रद्वारा प्रगट करें, तो हम उसको अधिक समय तक याद रख सकते है। चौथा कारण यह है कि आकारसे जो असर होता है, वह मामूली भाषाके असरसे अधिक बलिष्ठ होता है।

आकारोंका प्रयोग सब ही प्राचीन जातियोंने किया है। रूम मिश्र यूनानवालोंने भी इनको काममें लिया है। हिन्दू, पारसी और मिश्रवाले तो इन आकार प्रयोगोंके लिये विशेषतासे प्रसिद्ध रहे है। रौसीक्रूसी, मैसनवाले और गुप्त सभाओंके सदस्य इनको काममें लाते थे। परन्तु पीछेसे वे उनके असली भावार्थको भूल गये।

हिन्दूलोग प्राचीन समयसे ॐ का प्रयोग कर रहे हैं जिसका कि अर्थ अब उत्पादक, रक्षक और नाशक तत्त्व लगाया जाता है।

यह भी ख्याल है कि, इस चिन्हका उच्चारण मनुष्यकी गुप्त शक्तियोंपर एक वहुत बड़ा तान्त्रिक असर रखता था। परन्तु हिन्दूलोग ॐके असली मतलबको भूल गये है। मेरी जैनजाति इस चिन्हके वास्तविक अर्थकी अब भी रक्षा कर रही है। इसी पकार स्वस्तिकको भी हमारे प्राचीन तत्त्वज्ञानके भावार्थ समझानेवाले पश्चिमी भाई नहीं समझे और उन्होंने उसका उलटा अर्थ लगा दिया। वास्तवमें इस आकारका विचार वहुत ऊंचे दर्जेका था। परन्तु पीछेसे लोगोंने यह समझा कि, वह क्रॉस अर्थात् स्वस्तिक केवल पुरुष और स्त्रीकी जननेन्द्रियके मिलानको प्रगट करता है। जब हम इस शारीरिक संसारमें है और हमारी इच्छाएं भी पुद्गलकी ओर है, तो हम समझते है कि, इन इन्द्रियोंका मिलान अपनी उन्नतिके लिये आवश्यक है। परन्तु ऊंचे स्थानपर आत्मा लिंगरहित है। इस कारण जो शारीरिक संसारसे ऊंचा जाना चाहते है, उनको लिंगविचाररहित होना चाहिये।

मै अब उदाहरणके द्वारा जैन स्वस्तिकके भावको बतलाता हू।
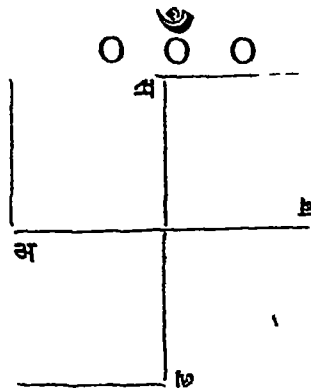
इसमें अ ब और स ड ये दो लकीरें विना किसी और आकारके यूनानी क्रॉस वनाती है। हम इनमें चार लकीरें और मिलाते

है जैसा कि ऊपरके चित्रमें दिखलाया गया है। इनके ऊपर तीन वृत्ताकार और हैं और सबसे ऊपर आधे चन्द्रमाका आकार है जिसके कि बीचमें एक और वृत्त है। इस तरह हमारा स्वस्तिक पूरा होता है।

यदि कोई कथन अधूरा किया जाय तो उसका अर्थ उलटा लग जाता है। दो पक्तियोंका एक श्लोक था, जिसमें दूसरी पंक्तिका अर्थ पहिलीसे मिला हुआ था। उक्त दोनों पक्तियां एक साथ पढ़नी चाहिये थी, परन्तु ब्राह्मणोंने जो किसी समय जैनियोंसे शत्रुता रखते थे केवल दूसरी पक्तिको[*] लेकर यह अर्थ लगाया कि-" यदि मनुष्यको हाथीसे कुचल जानेका डर हो, तो भी जैनमन्दिरमें न जावे।" इससे यह अभिप्राय प्रगट किया गया कि, जैनमदिर ऐसा बुरा स्थान है कि, वहा अपनी रक्षाके लिये भी नहीं जाना चाहिये। परन्तु यदि इस दूसरी पंक्तिके साथ पहिली पक्तिको भी मिला लो, तो उसका अर्थ बदल जाता है। दोनों पंक्तियोंका अर्थ-समग्र श्लोकका यह अर्थ हो जाता है कि, यदि कोई जीवहत्या करके आया हो, या वेश्याके घरसे अथवा और किसी पापस्थानसे आया हो, या मदिरा पीकर आया हो तो उसे जैनमन्दिरमें नहीं जाना चाहिये, चाहे उस समय उसपर हाथी चढ़ा आता हो। स्वस्तिककी बात भी ठीक ऐसी ही है। यदि तुम केवल क्रॉस (आरपारकी लकीरें) या पासकी लकीरें लोगे, तो पूरा अर्थ नहीं निकल सकेगा। परन्तु यदि तीन वृत्त और अर्द्धचन्द्र मिला लिया जाय, तो सारा अर्थ तुम्हारे साम्हने है। अर्थ यह है—

जीवकी इस ससारमें चार अवस्थाएं हैं, जिनमें पहिली नरक अवस्था है। इस अवस्थासे उन्नति पाकर जीव तिर्यंच अवस्थाको

---

[*] हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्।

प्राप्त करता है जो कि मनुष्य अवस्थासे नीचे दर्जेकी है। फिर तीसरी मनुष्य अवस्थाको पाता है। इससे आगे चौथी देवलोककी अवस्था है। ये सब अवस्थाएं पुद्गल और जीवके भिन्न २ प्रकारके मिलावसे होती है। आत्मिक लोक वह है, जहां कि जीव पौद्गलिक बंधसे मुक्त होता है। उस लोकमें पहुंचनेके लिये तीन रत्नोंके पानेका यत्न करना चाहिये। ये तीन रत्न (तीन वृत्त) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। यदि ये प्राप्त हो गये, तो समझ लो कि, तुम्हारा मार्ग ठीक है। नहीं तो तुम्हारे लिये कोई निश्चित मार्ग नहीं है। तुम ऐसे संसाररूपी समुद्रमें डोलते हो, जिसमें इस बातका पता नहीं पड़ सकता है कि, किधरको जावें। यदि ये रत्न तुम्हारे पास है, तो तुम्हारी बुनियाद ठीक है। अर्थात् यदि तुम्हें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी प्राप्ति हो गई है, तो तुम उन्नतिके शिखरपर बराबर ऊंचे ऊंचे चढ़ते चले जाओगे, यहां तक कि मोक्षको पा जाओगे। मोक्षप्राप्तिके आरंभको चन्द्राकारसे प्रगट किया है। क्यों कि बढ़ते हुए चन्द्रमाकी यह वह पहिली अवस्था है, जिससे वह आगे अधिक २ बढ़ता जाता है। जब जीव इस अवस्थाको पहुंच जाता है, तब वह केवलज्ञानी होता है। इस तरह जैनी अपने स्वस्तिकका उस अर्थसे कोई सम्बन्ध नहीं बतलाते है, जिसमें पुरुषस्त्रीकी इन्द्रियके मिलानका तथा पुरुष और स्त्रीकी जननेन्द्रियकी पूजाका विचार है, जिसका आधार लिंग है, और इस पौद्गलिक लोकमें भी जो सबसे नीचेका विचार है और इस कारण जो हमको पुरुष और स्त्रीकी अवस्थासे बढ़कर अवस्थापर कभी नहीं पहुचा सकता है।

हम जब मंदिर जाते है, तब प्रतिदिन प्रातःकाल स्वस्तिक बनाते है। इसके बनानेका मन्तव्य यह है कि, यह हमको उस बड़े तत्व-

का स्मरण करावे कि, ससारभ्रमणसे छूटनेके लिये तीन रत्नोंकी प्राप्ति करना चाहिए। इन रत्नोंकी प्राप्ति होनेपर इष्ट स्थान मिल सकता है। इन आकारोंसे हमारे विचार पक्के हो जाते है।

आरपारवाली दो लकीरें जीव और पुद्गलको दिखलाती हैं। अर्द्धचन्द्रके बीचमें जो वृत्त है, वह मोक्षावस्थाको प्रगट करता है, जब कि पुद्गल उसके साथ नहीं रहता।

स्मिथसन वालोंकी सस्था मैंने अभी देखी है और वहा कई क्रॉसों-को भी देखा है। यह स्वस्तिक कहलाता है। इसका शब्दार्थ 'भलाभाग्य' है। डाक्टर विलसनने मुझे बतलाया था कि, इनमेंसे बहुतसे जो मैने देखे है, वे अमेरिकाकी दक्षिणी रियासतोंमें मिले है। ये चिह्न मिट्टीके वर्तनों और प्रत्येक दिन काममें आनेवाली वस्तुओंपर बने हुए मिले हैं। बनानेवाले समझते थे कि, इससे हमारा 'भला भाग्य' होगा। भारतवर्पमें भी भाग्यवान् होनेके लिये अपने वर्तनोंपर बहुतसे लोग ऐसा आकार बना लेते है।

और भी अनेक चिह्न है, जिन्हें जैनी काममें लाते हैं। उनमेंसे एक जनेऊ (यज्ञोपवीत) का भी है। इसे ब्राह्मण और जैनी दोनों काममें लाते है। परन्तु इसके विपयमें अभिप्राय दोनोंके जुदे २ हैं। ब्राह्मण जनेऊ तत्त्वको जडवादसम्मतिसे बयान करते है। उनका कथन है कि, इसके तीन धागे सतोगुण रजोगुण और तमोगुणको प्रगट करते है जो कि आदिके पुद्गलके तीन गुण हैं। जैनी कहते हैं कि, ये तीन सूत तीर्थंकरोंके तीन समूहोंको प्रगट करते हैं जो कि भूत, वर्तमान और भविष्यकालके है। तीर्थंकर तो अनन्त हुए है, परन्तु उनमेंसे हम यहा तीन ही लेते हैं। अतीत अनागत-कालमें चौवीस २ तीर्थंकर हुए हैं और आगामीकालमें चौवीस

होंगे। जनेऊको हम कंधेपर रखते है। इसका आशय यह है कि, हम उक्त तीर्थंकरोंके कहे हुए वाक्योंको अपने कधेपर विचारके लिये रखते है और उनपर नित्य अमल करते हैं। यह इस बातका सूचक है कि. हमारे तीर्थंकरोंने जो कुछ उपदेश दिया है, उसको मानने और उसपर अमल करनेके लिये हम तयार है। *

जैनियोंका एक और आकार मधुविन्दुकका है। भारतवर्षके प्राय. प्रत्येक भागके जैनमन्दिरोंमें उपदेशके लिये बड़े २ कमरे रहते है। और उन कमरोंकी दीवालोंपर बहुतसी तसवीरें रहती है। मै जब आठ वर्षका बालक था, तब अपने पिताके साथ जैन-साधुओंका उपदेश सुननेके लिये जाया करता था। एक दिन हम वहां आधा घंटा पहिले पहुच गये, इसलिये यथेष्ट समय मिल जानेसे मैने दीवारोंकी तसवीरोंपर बड़े ध्यान और शौकसे नजर डाली। एक तसवीर जिसने मेरे ध्यानको विशेषरूपसे आकर्षित किया. इस प्रकारकी थी—" एक आदमी कुएके बीचमें उसके पास ही ऊगे हुए वृक्षकी शाखासे लटक रहा है। कुएके किनारे एक बड़ा हाथी खड़ा हुआ है, जो लटके हुए आदमीको नहीं पा सक-नेके कारण अपनी सूंड़से वृक्षको इसलिये हिला रहा है कि, उसे कुएमें पटक दूं। कुएकी दीवारोंपर नीचेकी ओर चार साप, लटके हुए मनुष्यको काटनेकी गरजसे ऊपरको फण कर रहे है। नीचे तलीमें एक और बडा साप उस मनुष्यकी ओर मुह फैलाए हुए है। मनुष्य जिस शाखाको पकड़कर लटक रहा है, उसे एक काला

* दिगम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थकारोंने जनेऊको सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप रत्नत्रयका चिह्न माना है। किसी आचार्यने उपर्युक्त प्रकारसे तीन चौवीसि-योंको प्रगट करनेवाला माना है या नहीं, हम कह नहीं सकते।

सम्पादक।

और एक सफेद चूहा काट रहा है। वृक्षकी एक ऊंची शाखापर एक शहदका छत्ता है, जिसपर बहुतसी मधुमक्खियां झूम रही हैं। हाथीके इस प्रयत्नसे कि, यह मनुष्य वृक्षको हिलानेसे छूटकर गिर पड़े शहदकी बूंद टपककर लटके हुए मनुष्यके मुहमें पड़ती है। एक साधु[1] श्वेत वस्त्र धारण किए हुए हाथीके साम्हने कुएकी दूसरी तरफ खड़ा है और उस मनुष्यको सब डरोंसे छुटाकर सहायता देना चाहता है।" यह तो मै समझ गया था कि, यह मनुष्य कितनी पीड़ामें है। परन्तु मुझे विश्वास था कि, इसका कोई और ही गूढ अर्थ होगा। बहुत देरतक तसवीरकी तरफ देखकर मैंने अपने पिताजीसे पूछा कि, इसका क्या अभिप्राय है? उन्होंने कहा, बेटा, यदि मै बतलाऊ तो क्या तुम समझ जाओगे? अच्छा सुनो, " एक समय कई एक मनुष्य एक बड़े जगलमें जहा कि, भयकर जानवर थे, जा रहे थे। जब वे बीच जगलमें पहुचे, तब उनपर बहुतसे डाकुओंने हमला किया। निदान वे अपनी जान बचाकर भागे। यह आदमी भी जिसे कि तुम कुएमें लटका देख रहे हो, उनमेंसे एक है। यह जगलमें भूल गया था, रास्ता नहीं पाता था। उसी समय एक हाथीने इसका पीछा किया। इसने सोचा कि, यदि शीघ्र रक्षाके स्थानमें नहीं पहुचा. तो मारा जाऊगा। यह दौडा हुआ जा रहा था कि, थोडी दूर पर एक कुआ दिखलाई दिया। बचनेका कोई उपाय न देखकर यह उसमें कूद पड़ा और उस वृक्षकी टहनीको पकड़के लटक रहा, जो कुएके ऊपर छाया हुआ था और जिसके पाये कुएमें लटक रहे थे। इतनेमें ही वहा एक साधु आ पहुचा और उसने मौतसे बचनेका

[1] ब्रह्मविलासमें साधुकी जगह एक विद्याधरका अपनी स्त्रीसहित आकाशमार्गसे आना लिखा है- परन्तु धर्मपरीक्षामें साधुपुरुष ही बतलाया है। सम्पादक।

उपाय बतलाना चाहा। परन्तु इस लटके हुए मनुष्यने कह दिया कि, मै आरामसे हूं। मुझे किसी प्रकारकी सहायताकी आवश्यकता नहीं है। हाथी मेरे पास आ नहीं सकता है, मै शाखाको अच्छी तरहसे पकड़े हुए हूं, इसलिये गिर नहीं सकता हू और ऊपरसे मधुकी बूंदे मेरे मुंहमें टपक रही है, जो कि बहुत ही मीठी हैं। मै बहुत ही आनन्दमें हूं। मुझे यह मिठास चख लेने दो। साधुने कहा, जिस शाखाको तू पकड़े हुए है, उसे दो चूहे काट रहे हैं, और कुएमें तेरे नीचे एक बड़ा भारी सांप है, जो तुझे खानेके लिये उद्यत हो रहा है। परन्तु आदमीने जिद्द की और यह कहा कि, इन चूहोंको वृक्षकी शाखा काटनेमें बड़ा समय लगेगा। ऐसी छोटी २ बातोंसे मै नहीं डरता। मै तो मजेसे मधु (शहद) का स्वाद लूंगा।" मै इतना बता देनेसे ही सन्तुष्ट नहीं हुआ। मैने अपने पिताजीसे कहा कि, इस कौतुकमें कोई गूढ़ तत्व अवश्य है। उन्होंने जब देखा कि, मेरी हार्दिक इच्छा जाननेकी है, तब कहा कि, " यह चित्र एक साङ्केतिक आकार है। यह बड़ा जगल तो संसार है। आदमी जो कुएमें लटक रहा है, वह साधारण मनुष्य (जीव) है। कुआ और सारी डरकी वस्तुएं उस आदमीके जीवनको प्रगट करती है। हाथी उसके पीछे मौत है। सर्प कुएकी तलीमें वह नीच जीवन है, जिसे वे लोग प्राप्त करते है जो इस बातका यत्न नहीं करते कि हम बच जावें, जो अपनी शक्तिको व्यर्थ ही पापमें गमाते है, न उन्नतिकी इच्छा करते है और न यत्न करते है। और इस तरह जो केवल वर्तमान जीवनका ख्याल करते है। दीवारों परके सांप क्रोध मान माया लोभके आकार है। वृक्षका तना हमारे इस सांसारिक जीवनके थोड़ेसे समयको (आयुको) प्रगट

करता है । दो चूहे काले और सफेद समयको बतलाते है (हमारा एक मास शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षमें विभाजित है) जो कि हमारी सासारिक आयुको पूरा करता है । मक्खिया जो छत्तेमें है, इन्द्रियोंको प्रगट करती है । मधुबिन्दु विषयसुख है और साधु धर्म है* इसतरह सारे आकारका अभिप्राय यह है कि, यह सासारिक जीव समझना है कि, मै सासारिक जीवनसे शीघ्र अलग नहीं होऊगा । यह इन्द्रियोंके सुख भोगकर सतुष्ट होता है, असली धर्मको अगीकार नहीं करता है । क्योंकि इसे क्रोध मान माया लोभरूप चार सापोंने घेर रक्खा है । (अपूर्ण)

चेतनदास, बी. ए, एस. सी.,

ललितपुर ।

विद्वद्रत्नमाला ।

(९)

भगवज्जिनसेन और गुणभद्राचार्य ।

[गतवर्षके १०–११ अकसे आगे]

आदिपुराण जिनसेनस्वामीकी सबसे अन्तिम रचना है। यह पार्श्वाभ्युदयसे लगभग ३० वर्ष पीछे और वर्द्धमानपुराणसे लगभग ६० वर्ष पीछे जब कि कविकी अवस्था ९० वर्षसे ऊपर होगी, रचा गया है । इसीसे इसमें जिनसेनस्वामीके सारे जीवनके अध्ययनका और विचारोंका सार संग्रह हो गया है । इसमें कविके कवि-

---

* ब्रह्मविलासमें बढे अजगरको निगोद, चार सापोको चार गतिया, कुआको भ्रम, विद्याधरको गुरु और मक्खियोंको रोग बतलाया है । पर धर्मपरीक्षामें प्राय ऐसा ही है । सम्पादक.

त्वका परिपाक हुआ दिखलाई देता है । इतनी आयुके रचे हुए ग्रन्थ वहुत कम विद्वानोंके पाये जाते है और जो पाये जाते है, वे अनुभूत और सिद्ध सिद्धान्तोंके आकर होते है। आदिपुराणके स्वाध्यायसे जैनधर्मके गूढ़से गूढ़ रहस्योंका ज्ञान होता है और साथ ही उच्चकोटिके काव्यका सुमधुर सुस्निग्ध आस्वाद मिलता है। मेरे विचारसे इसकी कवितामें जो सुन्दरता, कोमलता और स्वाभाविकता है, वह पार्श्वाभ्युदयमें भी नहीं है।

आदिपुराणके अन्तके ९ सर्ग गुणभद्रस्वामीके वनाये हुए है, ऐसा पूर्वमें कहा जा चुका है। ये पाच सर्ग आदिपुराणमें शामिल करनेके सर्वथा योग्य हुए है। अपने पूज्य गुरुकी कविताकी समता करनेमें गुणभद्रस्वामीने वैसी ही सफलता प्राप्त की है, जैसी कि बाणभट्टके पुत्रने अपने पिताकी अधूरी कादम्बरीको पूर्ण करनेमें पाई है। यह कार्य गुणभद्रके सिवाय दूसरेसे शायद ही ऐसा अच्छा होता। यह लेख इच्छासे बहुत अधिक बढ़ गया है, इसलिये गुण भद्रस्वामीका कवित्व कैसा है यह बतलानेके लिये अधिक स्थान न रोक कर हम उस भूमिकाके थोड़ेसे श्लोक ही यहां उद्धृत कर देते है, जो कि उन्होंने आदिपुराणका शेष भाग पूर्ण करनेका प्रारंभ करते समय लिखे है—

निर्मितोऽस्य पुराणस्य सर्वसारो महात्मभिः ।
तच्छेषे यतमानाना प्रसादस्येव नः श्रमः ॥ ११ ॥

अर्थात् इस पुराणका मुख्य सारभाग महात्मा जिनसेन बना चुके । अब उसके शेष भागको पूरा करनेका हमारा परिश्रम वैसा ही जैसा एक महलके थोडेसे बाकी रहे कार्यको पूरा करना ।

इक्षोरिवास्य पूर्वार्द्धमेवाभावि रसावहम् ।
यथा तथाऽस्तु निष्पत्तिरिति प्रारभ्यते मया ॥ १४ ॥

जिस तरह गन्नेका पूर्वभाग (नीचेका हिस्सा) अतिशय रसीला होता है, उसी प्रकारसे इस आदिपुराणका पूर्वभाग हुआ है। अब आगेके भागमें गन्नेके ऊपरके भाग समान जैसे तैसे रसकी प्राप्ति होगी, ऐसा समझकर मैं उसे प्रारंभ करता हूं। अभिप्राय यह कि, वह पूर्वार्धके समान सरस नहीं हो सकेगा। कैसी सुन्दर उपमा है।

अथवाऽग्रं भवेदस्य विरसं नेति निश्चयः।
धर्मोग्रं ननु केनापि नादर्शि विरसं क्वचित् ॥१६॥

अथवा ऐसा भी निश्चय होता है कि, इसका अग्रभाग विरस नहीं होगा। क्योंकि धर्मके अन्तको किसीने कभी विरस होते नहीं देखा है–सरस ही होता है और यह धर्मस्वरूप है।

गुरूणामेव माहात्म्यं यदपि स्वादु मद्वचः।
तरूणां हि स्वभावोऽसौ यत्फलं स्वादु जायते ॥१७॥

यदि मेरे वचन सरस वा सुस्वादु हों, तो इसमें मेरे गुरुमहाराजका ही माहात्म्य समझना चाहिये। क्योंकि यह वृक्षोंका ही स्वभाव है–उन्हींकी खूबी है, जो उनके फल मीठे होते हैं।

निर्यान्ति हृदयाद्वाचो हृदि मे गुरवः स्थिताः।
ते तत्र संस्करिष्यन्ते तन्न मेऽत्र परिश्रमः ॥१८॥

हृदयसे वाणीकी उत्पत्ति होती है और हृदयमें मेरे गुरुमहाराज विराजमान है, सो वे वहापर बैठे हुए सस्कार करेंगे ही (रचना करेंगे ही) इसलिये मुझे इस शेष भागके रचनेमें परिश्रम नहीं करना पडेगा।

मतिर्मे केवलं सूते कृतिं राज्ञीव तत्सुताम्।
धियस्तां वर्तयिष्यन्ति धात्रीकल्पाः कवीशिनाम् ॥ २२ ॥

रानी जैसे अपनी पुत्रीको केवल उत्पन्न करती है—पालती नहीं है, उसी प्रकारसे मेरी बुद्धि इस काव्यरूपी कृतिको केवल

उत्पन्न करेगी। परन्तु उसका पालनपोषण दाईके समान कवी-श्वरोंकी बुद्धि ही करेगी।

सत्कवेरर्जुनस्येव शराः शब्दास्तु योजिताः।
कर्णे दुस्संस्कृतं प्राप्य तुदन्ति हृदयं भृशम् ॥३९॥

अर्जुनके छोड़े हुए बाण जिस तरह दुस्संस्कृत अर्थात् दुस्सा-सनके बहकाये हुए कर्णके हृदयमें अतिशय पीड़ा उत्पन्न करते थे, उसी प्रकारसे सत्कविके योजित किये हुए शब्द दुस्संस्कृत अर्थात् बुरे संस्कारोंवाले पुरुषोंके कानोंके समीप पहुचकर उनके हृदयमें चूभते है—उन्हें बुरे लगते है।

पुराणं मार्गमासाद्य जिनसेनानुगा ध्रुवम्।
भवाब्धेः पारमिच्छन्ति पुराणस्य किमुच्यते ॥ ४० ॥

भगवान् जिनसेनके अनुयायी उनके पुराणके मार्गके आश्रयसे संसाररूपी समुद्रके भी पार पहुंचनेकी इच्छा करते है, फिर मेरे लिये इस पुराणसागरका पार करना क्या कठिन है? अर्थात् यह तो सहज ही पूरा हो जायगा।

गुणभद्रस्वामीके बनाये हुए अभीतक तीन ग्रन्थ प्राप्य है, एक आदिपुराणका शेषभाग तथा उत्तरपुराण, दूसरा आत्मानुशासन और तीसरा जिनदत्त चरित्र। इनमेंसे आदिपुराणके शेष भागके विषयमें तो ऊपर कहा जा चुका है। उत्तरपुराणका अभीतक मैने स्वाध्याय नहीं किया है, इसलिये उसकी विशेष आलोचना तो नहीं की जा सकती है, तो भी आदिपुराणके शेषभागके समान उसकी कविता भी उच्चश्रेणीकी होगी। तंजौरके श्रीयुक्त कुप्पू-स्वामीशास्त्रीने जीवंधरचरित्रको उत्तरपुराणसे जुदा निकालकर छपवाया है, उसे विद्वानोंने बहुत पसन्द किया है, इससे भी उत्तर-

पुराणके कवित्वकी उत्तमताका अनुमान होता है। उसमें तेईस तीर्थंकरोंका और उनके तीर्थमें होनेवाले शलाकापुरुषोंका चरित्र है। जितनी संक्षेपतासे यह ग्रन्थ पूर्ण किया गया है, यदि उतनी संक्षेपतासे नहीं किया जाता, आदिपुराणके समान विस्तारसे रचा जाता, तो इससे कई गुना होता। पर जितना है, उतना भी कुछ थोडा नहीं है, आठ हजार श्लोकोंमें है।

आत्मानुशासन—यह २७२ पद्योंका छोटासा परन्तु बहुत ही उत्तम ग्रन्थ है। इसकी रचना कब हुई है, इसके जाननेका कोई साधन नहीं है। क्योंकि इसके अन्तमें शिवाय निम्नलिखित श्लोकके जिसमें कि ग्रन्थकर्त्ताका और उसके गुरुका उल्लेख है और कुछ भी नहीं लिखा है—

जिनसेनाचार्य्यपादस्मरणाधीनचेतसाम्।
गुणभद्रभदन्तानां कृतिरात्मानुशासनम्॥

तौ भी ऐसा अनुमान होता है कि, यह महापुराणका शेष भाग पूर्ण करनेके पहिले बनाया गया होगा। क्योंकि इस ग्रन्थकी भाषा टीकाके प्रारभमें जो कि स्वर्गीय पं० टोडरमल्लजीकी बनाई हुई है, किसी सस्कृतटीकाके आधारसे लिखा है कि "यह आत्मानुशासन गुणभद्रस्वामीने लोकसेन मुनिके सम्बोधनके लिये बनाया है।" और उत्तरपुराणकी प्रशस्तिमें लोकसेन मुनिको विदितसकलशास्त्र, मुनीश, कवि, अविकलवृत्त आदि विशेषण दिये गये है। इससे यह कल्पना हो सकती है कि, उत्तरपुराण बननेके समय यदि लोकसेन 'विदितसकलशास्त्र' थे, तो फिर उसके पश्चात् उन्हें सबोधनकी उतनी आवश्यकता नहीं थी, जितनी कि इस विशेषणके योग्य होनेके पहिले थी। अतएव जबतक और कोई बाधक

प्रमाण न मिले, तब तक यह मान लेना कुछ अनुचित नहीं दिखता है कि, आत्मानुशासन उत्तरपुराणके पहिले बना है।

आत्मानुशासन[1] आत्माका शासन करनेके लिये—उसको वशीभूत करनेके लिये न्यायी शासकके समान है। अध्यात्मके प्रेमी इसके अध्ययनसे अभूतपूर्व शान्ति लाभ करते है। इसकी रचना-शैली भर्तृहरिके वैराग्यशतकके ढंगकी है और उसीके समान प्रभावशालिनी भी है। थोडेसे पद्य यहा उद्धृत कर दिये जाते है—

हे चन्द्रमः किमिति लाञ्छनवानभूस्त्वं
तद्वान् भवेः किमिति तन्मय एव नाभूः।
किं ज्योत्स्नयामलमलं तव घोषयन्त्या
स्वर्भानुवन्ननु तथा सति नाऽसि लक्ष्यः॥ २४१॥

अर्थात्—हे चन्द्रमा! तू कालिमारूप थोडेसे कलकसे युक्त क्यों हुआ? यदि कलंकवान् ही होना था, तो सर्वथा कलंकमय ही क्यों न हुआ? तेरी इस चांदनीसे जो कि तेरे कलंकको और भी अधिक साफ २ बतला रही है, क्या लाभ है? यदि तू राहुके समान सबका सब काला होता, तो तेरा दोष किसीकी दृष्टिमें तो नहीं आता—तुझे कोई टोकता तो नहीं? ऊंचा पद प्राप्त करके उसमें जो नीचताका कार्य करता है, उसको लक्ष्य करके यह अन्योक्ति कही गई है।

लोकाधिपाः क्षितिभुजो भुवि येन जाता-
स्तस्मिन्विधौ सति हि सर्वजनप्रसिद्धे।
शोच्यं तदेव यदमी स्पृहणीयवीर्या-
स्तेषां बुधाश्च बत किङ्करतां प्रयान्ति॥ ९५॥

---

[1] यह ग्रन्थ भाषाटीका सहित छप चुका है। सनातनजैनग्रन्थमालाके प्रथम गुच्छकमें मूलमात्र भी छपा है।

जिस लोकप्रसिद्ध धर्मके सेवनसे राजादि पुरुष लोकके स्वामी होते है, उसके होते हुए जो बड़े २ पराक्रमी पडित उन राजाओं-के दास बनते है, उनकी दशा बड़ी शोचनीय है—उनपर बड़ा तरस आता है। अभिप्राय यह है कि, ये लोग धर्महीका सेवन क्यों नहीं करते हैं जिसके कि कारण राजादिकोंके सुख प्राप्त होते हैं।

सत्यं वदात्र यदि जन्मनि बन्धुकृत्य-
माप्तं त्वया किमपि बन्धुजनाद्धितार्थम्।
एतावदेव परमस्ति मृतस्य पश्चात्—
संभूय कायमहितं तव भस्मयन्ति ॥८३॥

हे भाई। यदि तूने अपने बन्धुजनोंसे इस जन्ममें कुछ बन्धुता-रूप लाभ उठाया हो तो, सच सच बता दे। हमको तो इनका इतना ही उपकार भासता है कि, मरनेके पीछे ये सब इकट्ठे होकर तेरे अपकार करनेवाले शरीरको जला देते है।

प्रियामनुभवत्स्वयं भवति कातरं केवलं
परेष्वनुभवत्सु तां विषयिषु स्फुटं ल्हादते।
मनो ननु नपुंसकं त्विति न शब्दतश्चार्थत
सुधी कथमनेन सन्नुभयथा पुमान् जीयते ॥ १३८॥

मन केवल शब्दसे ही नपुसक नहीं है किन्तु अर्थसे भी है। क्योंकि यह स्वय तो स्त्रीको भोग नहीं सकता है। केवल कायर होता है और दूसरोंको अर्थात् स्पर्शादि इन्द्रियोंको भोगते देखकर प्रसन्न होता है। तब ऐसा नपुसक मन सुधी (बुद्धिमान्) पुरुषको जो कि शब्दसे और अर्थसे सर्वथा पुल्लिंग है, कैसे जीत सकता है। अभिप्राय यह कि, मनको बलवान् समझकर उसके जीतनेका उपाय करनेमें त्रुटि नहीं करनी चाहिये।

ज्ञानमेव फलं ज्ञाने ननु श्लाघ्यमनश्वरम् ।
अहो मोहस्य माहात्म्यमन्यदप्यत्र मृग्यते ॥ १७६ ॥

ज्ञानका फल ज्ञानही है, जो कि सर्वथा प्रशंसा योग्य और अविनाशी है। इसको छोड़ जो उससे दूसरे सांसारिक फलोंकी इच्छा की जाती है, सो अवश्यही मोहका वा मूर्खताका माहात्म्य है। अभिप्राय यह कि, ज्ञान होनेसे निराकुलतारूप जो सुख होता है, उसे छोडकर लोग विषयसुखोंको टटोलते है, सो मूर्खता है।

जिनदत्त चरित्र—यह ग्रन्थ अभी तक देखनेमें नहीं आया, परन्तु इसका एक भाषा पद्यानुवाद पं० **बख्तावरमल रतनलालका** बनाया हुआ **मुंशी अमनसिंहजीने** छपवाया था। एक तो अनुवादक महाशय स्वयं संस्कृतज्ञ नहीं थे किसी दूसरे विद्वान्से अर्थ पूँछकर उन्होंने अनुवाद किया था। दूसरे कविताशक्ति भी उनमें विशेष नहीं जान पड़ती है! इसका उक्त अनुवाद परसे मूल ग्रथके कवित्वका अनुमान नहीं हो सकता है। दूसरे यह भी सन्देह है कि, गुणभद्र नामके एक और आचार्य होगये है, यह उनका तो नहीं है। इन कारणोंसे इस ग्रन्थके विषयमें विशेष कुछ नहीं कहा जा सकता है। यह ग्रन्थ नव सर्गात्मक है और इसमें **जिनदत्त** नामक एक शेठकी कथा है।

एक **भावसंग्रह** नामका ग्रन्थ भी गुणभद्राचार्यका बनाया हुआ कहा जाता है, परन्तु अभी तक हमें उसके दर्शन नहीं हुए है।

श्रीयुक्त तात्या नेमिनाथ पांगलने मराठीके '**विविधज्ञानविस्तार**' नामक मासिकपत्रमें गुणभद्रस्वामीके विषयमें एक दन्तकथाका उल्लेख किया है। यद्यपि ठीक ऐसीही कथा सुप्रसिद्ध कवि

बाणभट्टके विषयमें भी सुनी जाती है और विद्वानोंमें उसका प्रचार भी विशेषतासे है, इससे उसके सत्य होनेमें भी सन्देह है, तो भी हम पाठकोंके जाननेके लिये यहा उसे उद्धृत कर देते हैं—

"जिस समय जिनसेनस्वामीको ज्ञात हुआ कि, अब मेरा अन्त समय निकट है और महापुराणको मै पूरा नहीं कर सकूगा, तब उन्होंने इस बातकी चिन्ता की कि, मेरे शिष्योंमें ऐसा कौन है, जो इस ग्रन्थको योग्यताके साथ पूर्ण कर देगा। और अपने दो शिष्योंको जो कि सबसे अधिक विद्वान् समझे जाते थे, पास बुलाकर कहा कि, यह जो साम्हने सूखावृक्ष खडा है, इसका काव्यवाणीमें वर्णन करो। तब उन दोनोंमेसे पहिलेने कहा—

" शुष्कं काष्ठं तिष्ठत्यग्रे।"

फिर दूसरेने कहा—

"नीरसतरुरिह विलसति पुरत.।"

यह दूसरा और कोई नहीं था, गुणभद्रस्वामी थे। इनके सरस उत्तरको सुनकर जिनसेनस्वामीने इन्हींको योग्य समझा और इन्हें ही आज्ञा दी कि तुम शेष ग्रन्थको पूर्ण करना।"

(शेष आगे।)

---

१ बाणभट्ट जब अपनी अधूरी कादम्बरीको छोडकर मृत्युशय्यापर पडे थे, तब उन्होंने भी अपने दो पुत्रोंसे इसी प्रकार पूछा था और ऐसा ही उत्तर पाया था।

विधवाओंका मंगल गान।

'दया करी हमपर भगवान। अब होगा सच्चा कल्यान॥
बड़े हुए बूढोंके कान। सम्मेलन[1] है किया महान॥
बोलो जयजय दयानिधान।
आओ, गावें मंगल गान॥ १॥

चलती थी चिर दिनसे बात। कोई न करता था दृक्पात॥
हित कोई करता था एक। तो होते थे शत्रु अनेक।
लेकिन अब मिल गया विधान।
गाओ सब मिल मगल गान॥ २॥

जब सुनते 'हा विधवा व्याह'। तब देखी कुछ ऐसी राह॥
ओल्ड[2]—धर्म्मके एडीकाँग[3]। अड़ा धर्म्मकी देते टाँग॥
पर न रही अब खींचा तान।
इससे गाओ मंगल गान॥ ३॥

कुछ बूढोंने कर मन्तव्य। सभा एक खोली है भव्य॥
पास[4] हुए है जो प्रस्ताव। उनमें गूढ भरे है भाव॥
जिनसे अब अपना भी मान।
होगा, गाओ मंगल गान॥ ४॥

खूब चले है बूढे चाल। व्याह करें मिल बूढे-बाल॥
लेकिन हमें गये वे भूल। चलो करें उनको अनुकूल॥

---

१ जैनहितैषीके पिछले वर्षके ७-८ वें अकमें जो 'वृद्ध महासभाका सम्मेलन' नामक लेख प्रकाशित हुआ है, उसको लक्ष्य करके यह कविता लिखी गई है। जिन पाठकोंने उक्त लेख नहीं पढा हो, वे अब अवश्य पढ लेवें। २. प्राचीन। ३ मुसाहिब। ४. स्वीकृत।

होवेगा तब उनको ध्यान ।
गावेंगीं हम मगलगान ॥ ५ ॥

बाल बधूसे करके ब्याह । उन्हें मिलेगा कौन उछाह ॥
बच्चे क्या जाने व्यवहार । जिनको हुए, हुए दिन चार ॥
चलो खोल दें, उनके कान ।
गा, गाकर सब मगल गान ॥ ६ ॥

चलो दिलावें उनको याद । नहीं करेंगे, कभी विवाद ॥
उनके ही हितकी है बात । कहो करेंगे, क्यों उत्पात ? ॥
सिर नीचा कर लेंगे मान ।
तब गावें हम मगल गान ॥ ७ ॥

सचमुच विद्यालय ससार । जिसमें शिक्षाका विस्तार ॥
जो जितना करता अभ्यास । वह उतना पाता आभास ॥
पाया है हमने भी ज्ञान ।
चलो सुनावें मगल गान ॥ ८ ॥

सम्मेलनके वृद्धे सभ्य । जिनने पाया ज्ञान अलभ्य ॥
शिक्षित हुए जहा वह लोग । नीच-ऊच कितने भोग ॥
हुए वहीं हम है सज्ञान ।
क्यों न करें फिर मगलगान ॥ ९ ॥

इसीलिये वृद्धोंके सग । नाता अपना लगा अभग ॥
वह सहपाठी निस्सन्देह । आवेगा उनको गत नेह ॥
हसी-खुशीसे कर सम्मान ।
साथ करेंगे मगल गान ॥ १० ॥

अगर बचाना चाहो नेशन[1] । तो जल्दीसे डेपूटेशन ॥
भेजो उन वृद्धोंके पास । जो सम्मेलनके जन खास ॥

---

1 जाति ।

वह सुनकर सब कथा महान।
गावेंगे मिल मंगल गान ॥ ११ " ॥

पुण्य तीर्थ काशीकी भूमि। छुएं जिसे गंगाकी ऊर्मि ॥
बंगाली टोलेके पास। महिलाओंका जमघट खास ॥
जुड़ा, जहां था है चौगान।
हुआ वहीं यह मंगल गान ॥ १२ ॥

विदुषी–विधवा आईं अनेक। उनमें थी 'कमला' भी एक ॥
उसकाही था यह उद्योग। जो आ, दिया सबोंने योग ॥
ऊपर जो कुछ हुआ बयान।
वह कमलाका मंगल गान ॥ १३ ॥

सुनकर सबने कर स्वीकार। धन्यवादकी, की बौछार ॥
कमलाको ही सभापतित्व। देकर कहा, विचारो तत्त्व ॥
विहँसी कमला गौरववान।
गाने लगी सुमगल गान ॥ १४ ॥

हे महिलाओ! धीरजवान। दिया आपने मुझको मान ॥
है सबका ही यह औदार्य। मुझको सौंपा गुरुतर कार्य ॥
हम सबका रक्षक भगवान।
करने देगा मंगल गान ॥ १५ ॥

बजीं मन्द ध्वनिसे करताल। कुछ ठहरी कमला तत्काल ॥
कहा, एकसा समय सदैव। रखता नहीं, बदलता दैव ॥
अब सुखका है हुआ विहान।
दिक गातीं हैं मंगल गान ॥ १६ ॥

नहीं जानते जो आचार। उन पुरुषोंने अत्याचार ॥
करके हम सबका प्रतिबन्ध। तोड़ा है सुखसे सम्बन्ध ॥

आया उनको होश निदान ।
वह भी गाते मगल गान ॥ १७ ॥

सदा सत्यकी होती जीत। समझ यही हम रहीं विनीत ॥
कभी प्रकृतिका प्रबल प्रवाह । रोक सका नहिं कोई नाह ॥
कहो, कौन फिर वह बलवान ? ।
रोक सके जो मगल गान ॥ १८ ॥

आखिर हुई वहीं अब बात । नाश हुआ सारा व्यतिपात ॥
जहा न्यायका रहा प्रकाश । सुख–उन्नतिका वहीं उजास ॥
उडा मेलका सदा निशान ।
हुआ बढ नहिं मगल गान ॥ १९ ॥

आप यहां आई कर प्यार । मैं इसका मानू आभार ॥
हुआ आपको जो कुछ क्लेश । क्षमा करेंगी, सुन उद्देश ॥
बूढोंने भी छेडी तान ।
गाया है कुछ मगल गान ॥ २० ॥

कुछ थोडेसे लोग जवान । बूडोंके हकका अवसान ॥
करना चाहें करके द्वन्द । ' हो बूढोंकी शादी बंद ' ॥
इसी लिये कुछ वृद्ध महान ।
तमक उठे कर मगल गान ॥ २१ ॥

मरी नसोंमें आया जोश । सम्मेलन करके आक्रोश ॥
किया कहा है ? जगह न ज्ञात। हुआ, 'हितैषी'[1] में है ख्यात॥
भला ' हितैशी' का भगवान ।
करे, गाय हम मगल गान ॥ २२ ॥

नीति सरोवरमें अवगाह । सिद्ध किया है वृद्धविवाह ॥
तरुणोंको बतला कर डॉट । खूब किये हैं खट्टे दॉत ॥

---

1 जैनहितैषी, भाग सातवा, अक ७–८ वा ।

दिये खोजके प्रौढ़ प्रमाण ।
खासा गाया मंगल गान ॥ २३ ॥
पास किये है जो प्रस्ताव । उनसे मिला हमें भी दाव ॥
सुनकर प्रस्तावोंका सार । सभी कहें, है वृद्ध उदार ॥
ओत प्रोत उसमें है ज्ञान ।
फल जिसका है मंगल गान ॥ २४ ॥
लेकिन उनने की है भूल। पत्ते सींचे तजके मूल ॥
सुकुमारी कन्यासे ब्याह । करके होंगे व्यर्थ तबाह ॥
जब पत्नी होगी नादान ।
तब होगा क्या मंगल गान ॥ २५ ॥
पहिले धन होगा बरबाद । पीछे होगा घर आबाद ॥
सिखलाना होगा व्यवहार । बोल–चाल–आचार–विचार ॥
तोतेको सिखला कर ज्ञान ।
कौन गायगा मंगल गान ? ॥ २६ ॥
अज्ञानी, कर ध्रुवका त्याग । अध्रुवसे करते अनुराग ॥
इससे चलो दिलावें याद । उनका होगा दूर प्रमाद ॥
तब आवेगा उनको ध्यान ।
गावेंगे मिल मंगल गान ॥ २७ ॥
हम करके सेवा भरपूर । उनका क्लेश करेंगी दूर ॥
जरा इशारे पर सब काम । होनेसे होगा आराम ॥
चिन्ताका करके अवसान
वृद्ध गॉयगे मंगल गान ॥ २८ ॥
शुद्ध रहेंगे सब व्यवहार । होगा नाहिं व्यभिचार प्रचार ॥
विधवा होनेका आतंक। छोड़ रहेंगे बेनिश्शंक ॥

बढ़ जावेगा उनका मान ।
और गावेंगे मंगल गान ॥ २९ ॥

करना पडती सेवा व्यर्थ । खर्च बहुत होता है अर्थ ॥
धोखा देकर सड़ियल माल । मढ देते हैं गले दलाल ॥
पछताते है वृद्ध निदान ।
गा सकते नहिं मंगल गान ॥ ३० ॥

अगर हमारी मानें बात । तो सुखकी होगी बरसात ॥
होगा सुभग फसल सन्तान । नेशन[1]को होगा अभिमान ॥
लज्जित होंगे हठी जवान ।
गावेंगी हम मंगल गान ॥ ३१ ॥

जो नेचरका[2] जानें तत्व । वह स्त्रीका समझें स्वत्व ॥
दम्पतिका जगमें अधिकार । रक्खा विधिने तुल्य विचार ॥
अब उपजा है हमको ज्ञान ।
जिससे होगा मंगल गान ॥ ३२ ॥

समय बहुत बीता अब आज । होगा शायद विकल समाज
इससे करती कथन समाप्त । होवे यश अपना जगव्याप्त ॥
"नहीं नहीं" हम देती मान ।
और गाइये मंगल गान ॥ ३३ ॥

सबने कहकर सहित सनेह । बरसा दिया थैंक्सका[3] मेह ।
कमलाने माना आभार । कहा, कहू अब उपसंहार ॥
सब बहने ऐसा ही ध्यान ।
देकर गावें मंगल गान ॥ ३४ ॥

तो होगा अपना कल्याण । फिर पावेंगे सुख निज प्राण ॥
इसी तरहसे हम प्रतिवर्ष । अगर मनावेंगे उत्कर्ष ॥

---

१ जाति २ प्रकृति ३ धन्यवाद

तो होगा अपना भी मान ।
बन्द न होगा मंगल गान ॥ ३५ ॥

अब अपने सारे मन्तव्य । जो है अभी अछूते-भव्य ॥
लिखकर उन बूढ़ोंके पास भेजो, जो है बुद्धि-निवास ॥
सुनकर वह मतलबकी तान ।
नाचेंगें, गा मंगल गान ॥ ३६ ॥

हुआ मिलन जो यह अभिराम । विधवामण्डल इसका नाम ॥
चिरस्थाई दफ्तर भी एक । इसका खोलो सहित विवेक ॥
द्रव्य और संग्रह हो मान ।
कहा हुआ है मगलगान ॥ ३७ ॥

यह मंडल जब अगले साल । होवे, उसमें वह सब हाल ॥
पेश किया जावे सानन्द । जिससे हो उत्साह अमन्द ॥
अपना भी हो पुनरुत्थान ।
फिर ऐसा हो मगल गान ॥ ३८ ॥

जितनी बहिनें पावे मान । फिर सुहागका अच्युतदान ॥
दिये जाँय उन सबको थैक्स । जिससे यत्न न होवें लैक्स[1] ॥
आवेगी बुड्ढोंमें ज्ञान ।
खूब करेंगे मंगल गान ॥ ३९ ॥

अब होगा अगला दरबार । कहां? आप सब करें विचार ॥
बोली 'सहदेवी' कर जोड़ । हो प्रयागमें' यह शुभ जोड़[2] ॥
मै सब बहनोंका सम्मान ।
करके गाऊ मंगल गान ॥ ४० ॥

मान लिया सबने साभार । दिये थैक्स उसको कइ बार ।
कर 'कमला' फिर लेकचर बन्द । बैठी, पाये थैक्स अमन्द ॥

---

१ निर्व्बल ढीले, २ सम्मेलन

मीर सुनी यह अबला तान ॥
कैसा गाया मंगल गान ॥ ४१

मीर ।

निष्पृह महात्मा मन्दनीस ।

ईस्वीसन्‌से३०५वर्ष पहिले सीरियाके सुप्रसिद्ध बादशाह सेल्यूकसने भारतवर्षपर चढाई की थी, परन्तु इस चढाईमें उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई, उलटी हानि उठाना पडी। उत्तर भारतवर्षके तत्कालीन प्रतापी-सम्राट चन्द्रगुप्तसे पराजित हो कर उसे सन्धि करना पडी, समग्र आरिआना देश देना पडा और अपनी लडकी देकर चन्द्रगुप्तके साथ विवाहसूत्रमें बद्ध होना पडा। इस सधिके स्थापित हो चुकने पर सेल्यूकसने मेगास्थनीस नामके एक विद्वानको दूत बनाकर चन्द्रगुप्तके दरबारमें भेजा। मेगास्थनीस कई वर्षोंतक चन्द्रगुप्तकी राजधानी पाटलीपुत्र (पटना) में रहा और इस बीचमें उसनें भारतवर्षके विषयमें इंडिका नामका एक बडाभारी ग्रन्थ ग्रीकभाषामें लिखा। दुर्भाग्यवशात यद्यपि उक्त समग्र ग्रन्थ नष्ट हो चुका है, तो भी ग्रीकादि देशोंके उसके पश्चाद्वर्ती कई ग्रन्थकारोंने जो उक्त ग्रन्थके बहुतसे प्रकरण अपने ग्रन्थोंमें उद्धृत किये थे, उन्हें अनेक पाश्चात्य विद्वानोंने संग्रह करके एक स्वतन्त्र ग्रन्थके रूपमें प्रकाशित किये हैं। यह सग्रह ही इस समय मेगास्थनीसका भारतविवरण[1] कहलाता है।

---

१ श्रीरजनीकान्त गुह, एम ए नामक एक बगाली विद्वानने यह ग्रन्थ प्रो० शीयानवेक कृत विस्तृत भूमिका सहित मूल ग्रीक और लेटिन भाषासे बगला भाषामें अनुवादित करके हाल ही प्रकाशित किया है।

उस समय ग्रीक देशवासियोंसे भारतवर्षका बहुतही कम परिचय था और इस देशके आचार विचार, व्यवहार, धर्म आदि विदेशियोंके लिये सर्वथा ही विलक्षण थे। इस लिये जिसका केवल इस देशके साथ राजनैतिक सम्बन्ध था और जो यहाकी भाषाओंसे जैसा चाहिये वैसा परिचित नहीं था ऐसे एक विदेशी राजदूतके द्वारा भारतवर्षका निर्भ्रान्त और विश्वस्त विवरण तो नहीं लिखा जा सकता है, तो भी इस देशके लिये जहा कि प्राचीन इतिहासका प्राय अभाव है, मेगास्थनीसका भारतविवरण बड़े भारी महत्त्वकी वस्तु है और उससे आजसे लगभग २२०० वर्ष पहिलेके भारतका जो अस्पष्ट परन्तु मूल्यवान् भ्रान्ति पूर्ण और सारमूलक स्वरूप मालुम होता है, वह ऐतिहासिकोंकी दृष्टिमें बहुतही आदरणीय वस्तु है।

मेगास्थनीसने भारतवर्षमें सात जातियोंका उल्लेख किया है, जिनमें एक **पंडितोंकी जाति** (philosophic) थी इस जातिको उसने **ब्राह्मण** और **श्रमण** इन दो श्रेणियोंमें विभक्त बतलाई है। श्रमणोंके विषयमें पाश्चात्य पडितोंमें मतभेद है। कोई २ कहते है कि, श्रमणोंसे मतलब बौद्धोंका है और कोई २ इसे अस्वीकार करते है। अपने २ पक्षको पुष्ट करनेके लिये दोनों-हीने बीसों प्रमाण दिये है और अभी तक उक्त प्रमाणोंमें बौद्ध विषयक प्रमाणही समीचीन समझे गये है। परन्तु हमारी समझमें मेगास्थनीसने श्रमणोंका जो स्वरूप बतलाया है, वह न वेदानुयायी पडितोंका है और न बौद्धोंका ही है किन्तु इन दोनोंसे पृथक दिगम्बर जैनसाधुओंका है। क्योंकि एक तो **श्रमण** शब्द बौद्ध साधुओंके समान जैन साधुओंके लिये भी व्यवहृत होता है और जैनग्रन्थोंमे इस शब्दका प्रचार भी अधिकताके साथ देखा

जाता है, दूसरे श्रमणोंको उसने नग्न रहनेवाला, मद्य, मांस मत्स्य तथा इन्द्रियसंभोगका त्यागी बतलाया है। इससे भी मालूम होता है कि ये श्रमण दिगम्बर जैनसाधुही होंगे। क्योंकि नग्नवृत्ति की सबसे अधिक महिमा एक जैनधर्मने ही गाई है। बौद्धसाधु नग्न नहीं रहते है और बौद्धधर्ममें जीवके मारनेमें वा उसे कष्ट देनेमें ही पाप बतलाया है। *मरे हुए जीवके मास खानेका निषेध नहीं किया है।* अतएव वे श्रमण जैन मुनिही होंगे। मेगास्थनीसके इस लेखसे कि "वे सन्यासी[1] स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते हैं, मत्स्य, मास और अग्निपक्व खाद्यको नहीं खाते है, फलभोजन करके ही सन्तुष्ट रहते हैं, परन्तु उन्हें (फलोंको) वृक्षसे नहीं तोडते हैं, जो फल पृथ्वी-पर गिर पडते हैं, उन्हींको ग्रहण करलेते हैं और तुंगभद्रा (Togalena) नदीका जलपान करते हैं। वे जीवन भर नग्न हो-कर विचरते रहते है, वे कहा करते हैं कि, "इस शरीरकी सृष्टि आत्माके लिये एक प्रकारसे परिच्छदरूप हुई है।" जैनसाधुओंका ही आभास होता है। परन्तु इसमें जो "अग्निपक्व खाद्य नहीं खाते हैं तथा वृक्षोंसे पडे हुए फलोंको खाकर तुगभद्राका जलपान करते हैं" लिखा है, वह अवश्य ही खटकता है और जैनमुनिकी चर्यासे नहीं मिलता है। परन्तु हमारी समझमें मेगास्थ-नीसने भ्रमसे ऐसा लिख दिया है। इस भ्रमका कारण यह हो सकता है कि, उसने श्रमणोंको वनमें तपश्चर्यादि करते हुए देखकर परन्तु नगरोंमें आहारके लिये जाते न देखकर अन्य वेदानुयायी साधु-ओंके समान यह अनुमान कर लिया होगा कि जब ये वनोंमें रहते हैं

---

१ इन्हें मेगास्थनीसने 'ब्राह्मणोंमें एक श्रेणीके सन्यासी' ऐसा लिखा है। हमारी समझमें इसका अभिप्राय 'श्रमण' ही होगा।

तत्र अवश्यही यहींसे फल चुनकर खा लेते होंगे। 'अग्निपक्व' खाद्य नहीं खाते है ' इसका अभिप्राय जैनसाधुओंके सम्बन्धमें इतना ही हो सकता है कि, वे स्वयं अग्निसे पकाकर कोई वस्तु नहीं खाते है किसी द्वारा पकी पकाई मिलनेपर खाते है, और फल तोडकर नहीं खाते है, स्वयं पड़े हुए खाते है इसका अभिप्राय यह हो सकता है कि, फल वृक्षोंसे तोड़ कर नहीं खाते है कोई (श्रावक) लाकर फल देता है, तो खाते है।

मेगास्थनीस इन साधुओंमेंसे एक मन्दनीस वा दन्दमिस नामके साधुका उल्लेख किया है। वह नग्न रहता था और एक सम्प्रदायका प्रधान गुरु वा अधिकारी था। हमारा अनुमान है कि, वह बहुत करके जैनसाधु होगा और उसकी सम्प्रदाय जैनसम्प्रदाय होगी। संभव है कि, इतिहासके पारगत पंडितोंके समीप हमारा यह अनुमान ठीक न हो, और मन्दनीस किसी अन्य सम्प्रदायका साधु ठहरे। क्योंकि उसके उत्तरमें कर्त्तृवादित्वकी कई जगह झलक दिखती है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, मन्दनीसका आख्यान बहुत ही शिक्षाप्रद है और इस बातका साक्षी है कि, पूर्वकालके साधु पुरुष कैसे निःस्पृह और निर्भय होते थे। इससे प्रत्येक पुरुष चाहे वह किसी ही सम्प्रदायका हो, बहुत कुछ सीख ले सकता है। वह आख्यान यह है।

जिस समय जगद्विजयी सम्राट सिकन्दरने मन्दनीसकी कीर्ति सुनी, उस समय उसने उसे उसके धर्मकी शिक्षाको प्राप्त करनेके लिये बुलवाया। ईजिना निवासी सीनिक सम्प्रदायके प्रसिद्ध दार्शनिक अनिसिक्रिटेस बुलानेके लिये भेजे गये। उन्होंने महात्मा मन्दनीसके समीप उपस्थित होकर कहा—"हे ब्राह्मणकुलके

शिक्षक, कल्याण हो। महान् देव जियुसके[1] पुत्र और समग्र मानव जातिके प्रभु राजा सिकन्दर आपको बुलवाते हैं। यदि आप उनके समीप चलेंगे तो प्रचुर और बहुमूल्य उपहार प्राप्त करेंगे और यदि नहीं जावेंगे तो वे आपका सिर काट डालेंगे।" डान्डा-नीसने मृदु और मधुर हास्यके साथ राजदूतकी बातें सुनी। उन्होंने पत्तोंकी शय्यापरसे मस्तक नहीं उठाया, पड़े ही पड़े उदासीनताके साथ यह उत्तर दिया कि "महतो महीयान् ' परमेश्वर किसीका अपकार करना नहीं जानता है। किन्तु इस लोकका त्याग करने-वालोंको वह जीवनालोक प्रत्यर्पण करता है। इसलिये वह ही हमारा एक मात्र प्रभु है। उसने नरहत्याका निषेध किया है और युद्धके लिये कभी किसीको उत्तेजित नहीं किया है। सिकन्दर कभी ईश्वर नहीं हो सकता है। क्योंकि उसे मृत्युके मुखमें पतित होना पड़ेगा। वह अब भी टिबिरबोया नदीको पार नहीं कर सका है समग्र पृथिवीमें वासगृह नहीं बना सका है. गाडीस (Gades) की सीमा पार नहीं हो सका है, और जगत्के मध्यभागमें सूर्यका अयनकाल नहीं देख सका है। फिर वह कैसे ईश्वर हो जायगा? बहुतसी जातियां तो आजतक उसका नाम भी नहीं जानती हैं. यदि अपने अधिकृत भूखंडमें उसको संतोष नहीं हो सकता है, तो वह गंगानदीको पार करे। वह उस पार ऐसा देश पायगा, जो मनुष्योपयोगी आहार जुटानेको समर्थ है। सिकन्दर जो कुछ देना चाहता है और जो कुछ उपहार तुम्हारे मुंहसे देना सुना है वह सर्व ही मेरे समीप तुच्छ अकिञ्चित्कर है। ये पत्ते हमारे गृह हैं समीपवर्ती वनस्पतियां हमारे खाद्यद्रव्य हैं, जल पेय है। इनके अतिरिक्त लोग और जो कुछ पदार्थ आकुलतासे श्रमपूर्वक संग्रह

---

1 देवराज, देव और मनुष्योंका पिता।

करते है, वे सब हमारे समीप तुच्छ है। क्योंकि वे सब पदार्थ ध्वसशील (विनाशीक) है, और उन्हें जो चाहते है और जिन्हें वे प्राप्त है, उन सबके लिये ही वे दु.खके कारण है। इसलिये इस स[ाधु] निराकुलता निरुद्वेगपूर्वक विश्राम करते है। अभी हम नेत्र बन्द करके पर्णशय्यापर सोते है, क्योंकि हमारे पास रक्षा करनेके लिये कुछ भी नहीं है। किन्तु यदि हमें स्वर्णरक्षा करनी होती, तो निद्रा दूर भाग जाती। माता जिस तरह सन्तानको दूध पिलाती है, उसी तरह पृथ्वी हमारे सारे अभावोंको पूर्ण करती है। हम जहां जानेकी इच्छा करते है जाते है, और नहीं जाना चाहते है, तो कोई दुश्चिन्ता हमको जानेके लिये विवश नहीं कर सकती है। सिकन्दर हमारा शिरच्छेद करना चाहता है, पर वह हमारे आत्माका छेद नहीं कर सकता है। वह केवल भूपतित नीरव मस्तकको प[ा]सकेगा। आत्मा तो पृथिवीसे जिस देहको पाई है, उसे जीर्ण वस्त्रके समान पृथ्वीपरही पडी छोडकर अपने प्रभुके पास पहुच जायगा। जिस समय उसने हमें देहमें आच्छादित किया था, उस समय उसका अभिप्राय यह देखनेका था कि, हम इस लोकमें अवतीर्ण होकर किस प्रकार जीवन व्यतीत करते है और पीछे जब हम उसके सम्मुख उपस्थित होवेंगे, तब वह हमसे जीवनका हिसाब पूछेगा। उसके पास खड़े होकर हम अपना अपकार निरीक्षण करेंगे और जिन्होंने हमारा अपकार किया है, उनका भी विचार पर्य्यवेक्षण करेंगे। क्योंकि, उत्पीड़ितकी गहरी निश्वास और क्रन्दनो उत्पीड़कके दंडमें परिणत होता है।"

"जो धनकी आकाक्षा रखते है अथवा मृत्युको डरते है, सिकन्दर उनको ये सब भय और विभीषिकाए प्रदर्शित करै, हम धन

१ 'श्रमण' भी एक प्रकारके ब्राह्मण ही थे।

और मृत्यु दोनोंको तुच्छ समझते है । क्योंकि ब्राह्मण[1] स्वर्णका लोभ नहीं करते है और मृत्युसे भी नहीं डरते है । अतएव जाओ और सिकन्दरसे कहो कि, मन्दनीस आपसे कुछ नहीं चाहता है किन्तु यदि आप समझें कि उससे कुछ प्रयोजन है, तो उसके पास जानेके लिये आप कुछ सकोच वा घृणा नहीं करें ।"

जिस समय द्विभाषीके द्वारा सिकन्दरने ये सब बातें सुनी, उस समय वह ऐसे विलक्षण पुरुषको देखनेके लिये और भी व्यग्र हुआ । जिसने नाना जातियोंको जीता था, उसीको एक नग्न शरीर वृद्धने थोड़ेसे शब्दोंमें ही पराजित कर दिया ।

सत्यकी जय ।

स्याद्वादवारिधि प० गोपालदासजीने दस्सोंको पूजाअधिकारी बतला कर और जैनगजटके पूर्व सम्पादक बाबू जुगलकिशोरजीने शूद्रोंको पूजाके अधिकारी कहकर अपने ऊपर जो आपत्ति और अपमानका तूफान बुलाया है, वह किसीसे छुपा नहीं है। यह सुनकर बहुतसे सज्जन यह सोचते होंगे कि, " इन लोगोंने खड़े बैठे यह झगड़ा क्यों मोल लिया ? इनका कहना तो सत्य है परन्तु एक तो शास्त्राद्रूढिः बलीयसी होती है और दूसरे नीतिकारोंने यह भी कहा है कि यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्ध नाचरणीयं नो करणीयम् अर्थात् जो आचरण लोकके विरुद्ध हो—वह चाहे शुद्ध भी हो—यथार्थ भी हो परन्तु उसे नहीं करना चाहिये और ऐसी बातोंके प्रगट करनेसे लाभ ही क्या है । हमें तो वस्तुका स्वरूप समझ लेना और अपनी आत्माका कल्याण करना चाहिये। परन्तु हमारी समझमें ऐसा सोचनेवाले दुर्बल—हृदय और सत्यके

साहसहीन अनुयायी है। भले ही ऐसे लोग शान्तिप्रिय और दूरदर्शी कहलावें परन्तु हम अपने अधःपतित समाजके लिये इनकी आवश्यकता नहीं देखते है। इस समय जैनसमाजके लिये ऐसे सुधारकोंकी वा सचालकोंकी आवश्यकता है, जो सत्यके अनन्य सेवक है और जो सत्यके पक्षको खड़ा करनेके लिये सब प्रकारके कष्ट, अपमान सहनेके लिये तयार रहते है। क्योंकि अन्तमें सत्यका ही विजय होता है और सत्यके प्रचारके विना सत्यका स्वरूप समझाये विना किसी भी समाजका न आज तक उत्थान हुआ है और न होगा।

जो लोग मूर्खोंके वा रूढीके गुलामोंके भयसे वा अपने अपमानादिके भयसे सत्यको छुपानेकी कोशिश करते है, वे सत्यके महत्वको नहीं समझते है। वे इस बातको भूल जाते है कि, एक न एक दिन कस्तूरीके आमोदके समान सत्य प्रगट होगा और आखिर हमारी गणना सत्यके घातकोंमें की जायगी। जो लोग सत्यके सच्चे सेवक नहीं है, उन्हें किसी भी समाजकी उन्नति करनेवाली सभा या मंडलीका सभासद होनेका भी अधिकार नहीं है। उन्हें यह भी आशा छोड़ देना चाहिये कि, हमारे द्वारा इस समाजका कुछ उपकार होगा। क्योंकि परोपकारके पवित्र सिंहासनपर सत्यापलापकोंके पैर नहीं ठहर सकते है।

पंडित गोपालदासजीके वा बाबू जुगलकिशोरजीके अपमानित करनेके लिये मूर्ख समाजकी ओरसे जो प्रयत्न हो रहे है, वास्तवमें देखा जाय तो वे बहुत ही तुच्छ हैं। जिन लोगोंने सत्यका पक्ष लिया है, उनके लिये इससे सैकड़ों गुणें कष्टकर षड्यंत्र रचे गये है और उनके जीवन कष्ट ही कष्टमें पूरे हो गये हैं। इस प्रकारकी घटनाओंसे प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास भरे पड़े है।

रोमके इतिहासमें लिखा है कि, ईसाइयोंकी बाईबिलका जब वहांकी देशभाषामें अनुवाद करनेका कुछ लोगोंने प्रयत्न किया, तो उन्हें फासी पर चढना पड़ा और कारागारवास आदि दंड भोगना पड़े। परन्तु वही बाइबिल आज पृथ्वीकी कई सौ भाषाओंमें अनुवादित हो कर गली २ कूचों २ में फैल रही है। "बाईबिलका देशभाषामें अनुवाद करनेसे उसकी पवित्रता नष्ट नहीं होगी, किन्तु उसका प्रचार अधिक होगा" यह जो सत्यसिद्ध बात थी वह पोपके हर प्रकारके प्रबन्धसे यहां तक कि प्राणदण्डकी व्यवस्था कर देनेपर भी नहीं छुपी। जैनसमाजमें भी ग्रन्थोंके छपानेका प्रचार करनेवालोंके विरुद्ध क्या थोड़े षड्यंत्र रचे गये है, छपे ग्रन्थोंके न लेनेकी लाखों प्रतिज्ञाए कराई गई, हस्ताक्षर कराये गये, गालिया दी गई, तिरस्कार किये गये, परन्तु आखिर सत्यकी जय हुई। छापेके विरोधियोंके घरोंमें भी आज छापेके ग्रन्थ पहुंचे गये गये हैं।

कोलम्बसने जब अपने इस विचारको प्रकाशित किया था कि, पश्चिमकी ओर भी कोई पृथ्वीका खड है, तब लोगोंने उसको विक्षिप्त हवाई किला बनानेवाला और मूर्ख कहकर तिरस्कार किया था। परन्तु अन्तमें उसने अपने असीम परिश्रम और साहसमे अमेरिकाखंडका पता लगाकर अपनी हसी करनेवालोंके मुखको फिका करके सत्यकी सत्यता दिखलाई थी।

सुप्रसिद्ध ज्योतिषी ग्यालिलियोसने जब इटली निवासियों-की मान्यताके विरुद्ध यह कहा था कि, "पृथ्वी चलती है और सूर्य अस्थिर है" तब उसे कठिन कारागारकी शिक्षा दी गई थी। परन्तु आज इटली तो क्या सारा यूरोप इस मतका मानने-वाला है और ग्यालिलियोसका बड़े सन्मानके साथ स्मरण करता है।

भगवान् महावीरने जब अपने पवित्र और सच्चे धर्मका उपदेश देना प्रारंभ किया था, तब लोग उन्हें नास्तिक, इन्द्रजालिया आदि कहकर अपनी गतानुगतिक प्रकृतिको शान्त करते थे। उनके अनुयायी आचार्योंको अपने कर्मवादपर विश्वास उत्पन्न करानेके लिये उस समयके ईश्वरवादी तथा अनात्मवादी लोगोंके द्वारा क्या थोड़े अपमानादि सहना पड़े होंगे? यदि वे उन लोगोंके भयसे अपने सत्य पदार्थोंको छुपाते, तो क्या कभी यह संभव हो सकता था कि, उनके लाखों करोड़ों अनुयायी हो जाते।

साराश यह कि, पंडितजी तथा बाबू जुगलकिशोरजीका जो अपमान और परिहास हो रहा है, वह स्वाभाविक है और सत्यका प्रचार करानेवालोंके इतिहासमें वह एक बहुत ही मामूली बात है। दीर्घकालके अंधकारके पश्चात् जब किसी धर्म वा समाजके उत्थानका प्रारंभ होता है, तब ऐसे अनेक पुरुषोंका जन्म होता है और वे अज्ञानताके विचारोंको नष्ट करनेके लिये निर्भय होकर अपने सत्य विचारोंको इसी तरह प्रगट करते हैं। यद्यपि उनके सत्य विचारोंका तत्कालही सत्कार नहीं होने लगता है, पर इसमें सन्देह नहीं है कि समय आनेपर उनके विचार मान्य हो जाते है और एकदिन जिनको सुनकर लोग भड़क उठते थे, उन्हें ही लोग प्रसन्नतासे अनायास मानने लगते है।

वास्तवमें देखा जाय, तो अभी जैनसमाजमें सुधारकयुगका सूत्रपात ही हुआ है। आगे ऐसे २ अनेक विषय उपस्थित होनेवाले है, जो रूढीके सर्वथा विरुद्ध है। केवल हमारे प्राचीन ग्रन्थ ही जिनके अस्पष्ट रूपको अपने कलेवरोंमें छुपाये हुए है। उनके उपस्थित होनेपर गतानुगतिक लोग इस 'दस्सोंबीसों' के मामलेसे भी

अधिक उपद्रव उठावेंगे और जितनी उनकी शक्ति है, उसे खर्च करके उनका विरोध करेंगे। इस लिये उस समयके लिये हमको अभीसे तयार हो रहना चाहिये। और अपना कर्तव्य स्थिर कर लेना चाहिये। यदि हमारे हृदयमें जैन समाजकी उन्नति करनेकी कुछ भी वासना है, यदि हम इसे ससारमें प्रतिष्ठा पूर्वक जीवित देखना चाहते है, तो हमें अपमान, तिरस्कार, बहिष्कार, कष्ट, आदि किसी भी बातसे नहीं डरना चाहिये और ऐसा अभ्यास करना चाहिये जिससे ऐसी बातोंसे हमारे विचार शिथिल होनेके बदले और भी अधिक दृढ तथा अटल होवें। स्मरण रक्खो, आज जो लोग हमें अपमानकी दृष्टिसे देखते हैं, वे ही कल हमारा असाधारण सत्कार करेंगे और हमारे अनुयायी बनकर हमारे स्थिर किये हुए मन्तव्योंके प्रचारक बनेंगे। 'दस्सोंबीसों'के मामलेमें हमारे लिये जो कुछ किया जा रहा है, उसकी ओर हमें दृष्टि निक्षेप भी नहीं करना चाहिये और अपने कार्यमें आगे बढते जाना चाहिये। ऐसी घटनाएं तो सुधारकोंके इतिहासमें तुच्छ समझकर छोड दी जाती है। हमें अपने हितशत्रुओंको अपनें उत्तम कार्योंसे परास्त करना चाहिये—बातोंसे या व्यर्थका वाद विवाद करके नहीं। अलमितिविस्तरेण।

सभापतिकी जगह खाली।

हमारी सभाका अधिवेशन बहुत ही शीघ्र होनेवाला है। जिन धनाढ्य सज्जनोंकी इच्छा इस अपूर्व पदको सुशोभित करनेकी हो, वे कृपाकरके अपने किसी कृपोपजीवीसे पत्र लिखवाकर सूचित करें। हमारी सभा अपने सभापतिमें निम्न लिखित बातोंकी आवश्यकता समझती है—

१. कमसे कम लखपती हो और सभाके फंडमें हजार रुपयेसे कम चन्दा न दे।

२. वह इतना पढ़ा लिखा अवश्य हो कि, प्रस्तावादिकोंके नीचे अपनी सही कर दिया करे।

३. देखनेमें रौबीला हो, शरीर सम्पत्तिमें कमसे कम उसकी तोंद अवश्य ही कुछ बढ़ी हो और सदा प्रसन्न मुख रहता हो। सेठानी भी उसकी ऐसी ही हो, क्योंकि महिलापरिषदकी सभापतिनीका आसन उसीको दिया जायगा।

४. साथमें कोई पंडित या परिचारक ऐसा रहता हो, जो सभापतिकी सारपूर्ण और लम्बी स्पीच तयार कर दे और मौकेपर उसे यह कहकर सबको पढ़के सुना दे कि, सेठजी अपने व्याख्यानको तबियत ठीक नहीं होनेके कारण मुझसे पढ़ देनेका आग्रह करते है।

५. सभामें जो प्रस्तावादि होते है, उन्हें चाहे जरा भी न समझे परन्तु दुसरोंकी चेष्टा देखकर अपनी भी ऐसी यथायोग्य प्रसन्न उदासादि भावों युक्त मुद्रा बना लिया करें, जिससे दूसरे समझें कि, सभापति साहेब समझदार—परन्तु शान्त चित्त है।

६. उसे प्रबन्धकारिणीकमेटी, सब्जैक्टकमेटी, स्वागतकारिणी कमेटी, प्रस्ताव, समर्थन, अनुमोदन, पास, डेलीगेट, बालंटियर, प्रोग्राम, सभासद आदि चुने हुए शब्द जो सभामें अकसर काममें आते है, यादकर रखना चाहिये—जिससे लोग यह न समझने पावें कि, शेठजीका सभासे नया नया ही परिचय है।

७. उसके बाप दादाओंने वा उसने स्वयं एक दो मन्दिर बनवा कर प्रतिष्ठाएं करवाई हों, चाहे वे केवल मान बड़ाईके लिये बिना जरूरतके ही करवाई हों और जातिके दो चार बड़े २ भोज भी कर-

वाये हों, क्योंकि ऐसी बातोंका उल्लेख सभापतिके जीवनचरित्रमें करनेसे उसमें कुछ खूबी आ जाती है।

सभापतिका स्वागत करनेकेलिये खूब तयारिया की जा रही हैं। बड़े २ पडित और बडे २ ग्रेज्युएट स्वागतके लिये स्टेशनपर उपस्थित होंगे और जयजयकी ध्वनि करते तथा पुष्पवर्षा करते हुए लावेंगे। अतएव जिन्हें यह अलभ्यपूर्व सत्कार पानेकी इच्छा हो वे विलम्ब न करें।

इस वर्ष दो एक पढ़े लिखे आदमी इस पदके लिये उम्मेद्वार हो रहे है और अधिकाश लोगोंने उनके लिये सिफारिश भी की है, परन्तु सभाके कर्त्ताओंने यह महत्वका पद धनिकोंके लिये ही रिजर्व कर रक्खा है, इसलिये यह चिन्ता नहीं करनी चाहिये कि, हमें लोग चुनेंगे या नहीं। प्रबन्धकारिणी और स्वागतकारिणी कमेटीके सारे सभ्य हमारे हाथमें हैं। बस सूचना मिलनेकी देरी है कि, बेड़ा पार।

सैक्रेटरी।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

१. नवीनवर्षका आरंभ।

आज जैनहितैषी अपने नवीन वर्षमें प्रवेश करता है और फिर नये उत्साहके साथ अपने कार्यक्षेत्रमें अवतीर्ण होता है। यद्यपि गत वर्ष कईएक कौटुम्बिक संकटोंके कारण फिर भी हम इसे समय-पर नहीं निकाल सके थे और आकार प्रकारमें भी कुछ विशेष उन्नति नहीं कर सके थे, तो भी हर्ष है कि, जैनियोंने और सर्व साधारणने इसको आदरकी दृष्टिसे देखा और इसके विषयमें अपने अभिप्राय प्रगट करके हमको उत्साहित किया। पाठकोंके अवलोक-

नार्थ उनमेंसे कुछ पत्र सम्पादकोंके अभिप्राय आगामी अंकमें प्रकाशित किये जावेंगे । गतवर्ष जो हमने हितैषीको सचित्र निकालनेका विचार किया था, उसको पूर्ण करनेके लिये हम लगभग एक महीने पहिले बम्बईके कई चित्रकारोंसे और चित्र प्रकाशित करनेवालोंसे मिले और इस विषयमें अनुसधान किया, तो मालूम हुआ कि, हम जिस प्रकारके पौराणिक कथाओंके आधारसे सोचे हुए तथा अन्यान्य काल्पनिक चित्र प्रकाशित करना चाहते है, उनकी बनवाई ब्लाक तयार करवाई और छपवाईमें प्रत्येक चित्रके पीछे २९–३० रुपयेसे कम खर्च नहीं पड सकता है। इस खर्चको सुनकर और हितैषीकी ग्राहकसंख्याका विचार करके हम ठडे हो गये । पाठक आप ही सोच सकते है कि, जिस पत्रकी ग्राहकसंख्या केवल ६००–७०० ही है, उसके पीछे यह तीनसौ चारसौ रुपया सालके खर्चका नया भार कैसे उठाया जा सकता है? इससे तो अच्छा यही है कि, चित्रोंके बदले हम इसकी पृष्ठसंख्यामें ही कुछ और वृद्धि कर दें और चित्रोंके लिये उस दिनकी प्रतीक्षा करते रहे जब कमसे कम डेड़ दो हजार ग्राहकोंके हाथमें यह पहुंचने लगेगा । आशा है कि, पाठक हमारे इस विचारसे सहमत होंगे और इसकी ग्राहकसंख्या बढ़ानेका निरन्तर प्रयत्न करेंगे। इस साल उपहारमें जो महान् ग्रन्थ दिया जानेवाला है उसके कारण ग्राहकसंख्यामें वृद्धि होनेकी बहुत कुछ आशा है।

---

२. वेदोंमें हिंसाका अभाव ।

काशीके महामहोपाध्याय पं० शिवकुमारशास्त्री सनातनधर्मके स्तंभ समझे जाते हैं और वेदानुयायी विद्वानोंमेंसे आप सर्व शिरोमाणि पंडित समझे जाते हैं । काशीमें एक ' समुद्रयात्रा ' विषयक

मुकद्दमा बहुत दिनोंसे चल रहा था। उसमें आपने एक बड़ी भारी लम्बी चौड़ी गवाह नाना ग्रन्थोंके प्रमाणोंसहित दी थी। जिसमें समुद्रयात्राका निषेध करते हुए "श्राद्धमें मछली खाना दूषित नहीं है। "देवताको भोग लगाकर मछली खानेमें दोष नहीं है" "मधुपर्कमें पशुका मारना धर्म था।" मधुपर्कमें मांस देना या बकरीका मास देना विधि थी।" कलिमें गोमास देना निषिद्ध है. परन्तु बकरीका मांस देना निषिद्ध नहीं। नरमेध भी धर्म था।" अश्वमेध भी धर्म था। गोको यज्ञमें वध करना भी धर्म था आदि बातें प्रकरण पाकर कही थीं। जिससे मालूम होता है कि, ब्राह्मणोंके वेदादि ग्रन्थोंमें हिंसाके विधानोंकी कमी नहीं है। परन्तु रामगढ़ (सीकर) के वि०वा प० बालचन्द्र शास्त्री नामके एक विद्वान्ने कलकत्तेमे एक विज्ञापन छपवा कर प्रकाशित किया है कि. "पं० शिवकुमारजीकी उक्त बातें सर्वथा वेदोंके विरुद्ध हैं। चारों वेदोंमें कहीं भी हिंसाका विधान नहीं है। वाममार्गियोंके ग्रन्थ देखकर सायण और महीधरादि वेदके टीकाकारोंने भूलें की है। मांसाहारियोंने हमारे बहुतसे ग्रन्थ बिगाड़ दिये हैं। वास्तवमें हमारे ग्रन्थोंमें कहीं भी हिंसाका विधान नहीं है। इस विषयमें मैं हर किसीसे शास्त्रार्थ करनेके लिये तयार हूं। जो विद्वान् समक्ष न मिल सकें. वे अपने लेख हिन्दीपत्रोंमें प्रकाशित करें, मैं उत्तर दूंगा।" अच्छा है. हम भी यही चाहते हैं कि, किसी भी ग्रन्थमें हिंसाका विधान न पाया जावे। न किसी धर्मके ग्रन्थमें हिंसाका विधान मिलेगा और न हिंसा होगी। परन्तु हमारी समझमें वेदोंमें और मनुस्मृति आदि ग्रन्थोंमें जो पद पदपर हिंसाका विधान किया गया है, उसका अपलाप 'एकाक्षरी कोष' की सहायता और 'धातूनामनेकार्था:' सूत्रकी उदार शरण लिये विना होना कठिन है। अभीतक तो वेदा-

नुयायी विद्वान् 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' की दुहाई देकर अहिंसोपासक बनते थे, पर अब कहते है कि, वेदमें हिंसा ही नहीं है। यदि यह पिछली बात सिद्ध हो गई तो जैनियोंको बहुत संतोष होगा।

---

३. जीवज्योतिका फोटू।

पाश्चात्यदेशोंमें एक आख्यायिका प्रसिद्ध है कि, जीव एक प्रकारकी ज्योति है। इस कल्पनामें सत्यांश कितना है यह जाननेके लिये एक बड़े भारी वैद्यने एक आसन्नमरण मनुष्यके मुखपर काच का पात्र रखकर जीवज्योति देखनेका प्रयत्न किया था, पर उसमें सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। इस आख्यायिकाका और कल्पनाका स्वरूप प्रगट करनेके लिये शिकागो (अमेरिका) के 'पाट्रिक ओडोनेल' नामक डाक्टर जो कि एक्सकिरण शास्त्रमें अतिशय प्रवीण है, बहुत दिनोंसे प्रयत्न कर रहे है, और अब प्रकाशित हुआ है कि, उन्हें उसमें असाधारण सफलता प्राप्त हुई है। उन्होंने एक आसन्नमृत्यु मनुष्यके शरीरसे निकलती हुई जीवज्योतिका फोटू लेलिया है। इस सफलतासे लोगोंका ऐसा भ्रम हो सकता है कि, जीव भी एक पौद्गलिक पदार्थ है। क्योंकि फोटू उसी चीजका लिया जा सकता है, जिसकी रचना परमाणुओंसे हुई है। परन्तु जैनधर्मके सिद्धान्तानुसार यह जीव ज्योति जिसका कि, डाक्टर साहबने फोटू लिया है जीवात्मा नहीं किन्तु जीवके साथ रहनेवाला तैजस शरीर होगा जो कि पौद्गलिक होता है और जिसका एक्सकिरणोंकी सहायतासे फोटू लिया जाना संभव है। जीवात्मा अरूपीनिराकार है, चैतन्य मात्र है और ज्योति एक रूपगुणका भेद है रूप नेत्रेन्द्रिय ग्राह्य पुद्गलका गुण है। इसलिये उस ज्योतिका फोटू होना संभव है। किन्तु आत्मा अरूपी होनेसे उसका फोटू होना सर्वथा असंभव है।

---

४. शरीरके चारों ओरका तेजोवलय।

डाक्टर केल्नर नामके एक और डाक्टर इंग्लेंडमें हैं, उन्होंने भी इसी प्रकारका एक अनुसधान किया है। वे कहते है कि, दो स्वच्छ काचके पात्रोंमें 'डायसीओनिन' नामक नीले रंगके पदार्थसे मिले हुए पानीको भर दो, फिर एक पात्रके पानीमेंसे कुछ समय तक बाहर प्रकाशकी ओर देखते रहो और तत्कालही दूसरे पात्रके पानीमेंसे अंधेरेमें बैठे हुए मनुष्यकी ओर देखो, तो उसके शरीरके चारों ओर कुछ अन्तरपर दो प्रकारके तेजोवलय दिखलाई देंगे। इन तेजोवलयोंकी चौडाई अनुमान ६ इंच होती है और उनसे सारा शरीर वेष्टित रहता है। एक विशेषता यह है कि, उनका आकार पुरुषोंमें स्त्रियोंमें, निरोगी पुरुषोंमें और रोगी पुरुषोंमें जुदे २ प्रकारका दिखलाई देता है। अभी तक इन तेजोवलयोंका फोटो नहीं लिया जा सका है। जान पडता है कि, यह तेजो-वलय भी जैनधर्मोक्त तेजस शरीर होगा।

---

५ कौंसिलमें दो विचारणीय बिल।

भारत सरकारकी कानून बनानेवाली सभामें इस वर्ष दो बड़े महत्वके बिल पेश हुए है। सारे देशभरमें इस समय उक्त बिलोंकी चर्चा हो रही है और अपने २ विचारोंके अनुसार सब ही समाजके लोग उनका विधि और निषेधरूपसे आन्दोलन कर रहे है। हमारा जैनसमाज देशका एक प्रधान समाज समझा जाता है। इस लिये उसकी ओरसे इन बिलोंके विषयमें कुछ आन्दोलन अवश्य होना चाहिये था। परन्तु हम देखते हैं कि, न तो जैनियोंकी किसी सभाने अभी तक इन बिलोंका समर्थ किया है और न किसीने निषेध

किया है। और इसका कारण जैनियोंके समाचारपत्रोंकी इस विषय सम्बन्धी चुपकी ही मालूम पड़ती है। जो हो, आज हम अपने पाठकोंको इन दोनों बिलोंका स्वरूप क्या है, सो बतला देना चाहते हैं जिससे कि लोगोंको उनके विषयमें अपना मत स्थिर करनेका सुभीता हो जाय।

पहिला बिल आनरेबल मि० गोपालकृष्ण गोखलेने पेश किया है, जिसका अभिप्राय भारतवर्षमें बलात् शिक्षाका कानून जारी कराना है। इस देशमें अंग्रेजी राज्य स्थापित हुए पचास वर्ष-से अधिक हो गये तो भी यहां शिक्षाका प्रचार जितना होना चाहिये उतना नहीं हुआ है बहुतही थोड़ा हुआ है। यद्यपि इस शिक्षाप्रचारकी कमीके बहुतसे कारण है परन्तु उनमें प्रधान कारण लोगोंकी निर्धनता, विद्याविषयक अरुचि, और पाठशालाओंकी कमी हैं। और ये कारण तब ही दूर हो सकते है, जब बलात् शिक्षाका कानून जारी किया जाय। इस कानूनका अभिप्राय यह है कि, प्रत्येक माता पिता इस बातपर मजबूर किये जावें कि, वे अपने पढने योग्य लड़के लड़कियोंको कमसे कम प्राथमिक शिक्षा अवश्य दिलावें, जिनके लड़के लड़किया पाठशालाओंके होते हुए भी पढनेको न जावें उनको आर्थिक दंड किया जाय। नीच ऊंच धनिक निर्धन आदि सर्वस्थितिके लोगोंमें शिक्षा प्रचारका इससे अच्छा और कोई उपाय नहीं है। यह कानून जब पूर्ण रीतिसे अमलमें लाया जावेगा, तब प्राथमिक पाठशालाओंकी संख्या बढेगी। यहा तक कि, प्रायः प्रत्येक ग्राममें शालाएं खोली जावेंगी और निर्धन बालकोंसे फीस न ली जायगी। फल यह होगा कि, थोडे ही समयमें दूसरे देशोंके समान यहां भी १०० में ९९ मनुष्य पढे लिखे हो जावेंगे।

बडौदा, गोंडल आदि देशी रियासतोंमें इस बलात्‌शिक्षणके कानूनसे यथेष्ट लाभ हुआ है। इस बिलका दो चार मुसलमानों और इनेगिने पुराने ढगके हिन्दुओंको छोड़कर प्राय: सब ही शिक्षित पुरुषोंने तथा सभा सुसाइटियोंने अनुमोदन किया है और सरकारसे प्रार्थना की है कि, वह शीघ्रही इस कानूनको बना डाले। हम आशा करते हैं कि, इसी प्रकार हमारा जैनसमाज भी, इस विद्या प्रसारक बिलका अनुमोदन करेगा और स्थान २ में सभा करके अपनी सहानुभूतिकी सूचना भारत सरकारको दिये विना नहीं रहेगा।

दूसरा बिल आनरेबल बाबू भूपेन्द्रनाथ बसुने पेश किया है। उसका नाम है 'सिविल मेरेज एक्टका संशोधन'। सन् १८७२ में एक 'सिविल मेरेज एक्ट नामका कानून बनाया गया था। जिसका अभिप्राय यह था कि, "यदि एक जातिका पुरुष किसी अन्य ज्ञातिकी स्त्रीके साथ विवाह करना चाहे और वे दोनों पुरुष स्त्री यह स्वीकार करें कि, हम हिन्दू, पारसी, मुसलमान, यहूदि, क्रिश्चिन, जैन, बौद्ध अथवा सिक्ख इनमेंसे किसी भी धर्मके अनुयायी नहीं हैं। तो उनके विवाहकी रजिष्ट्री कर दी जायगी और वह विवाह जायज समझा जावेगा।" वसू बाबूका बिल इस कानूनमें यह संशोधन कराना चाहता है कि, इसमें जो पुरुष स्त्रीको यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि, हम हिन्दू मुसलमान आदि किसी भी धर्मके अनुयायी नहीं हैं। वह न करना पडे और इसमें जो यह बधन है कि जो हिन्दू मुसलमान पारसी आदि नहीं हो, वही इस कानूनसे विवाह कर सकेगा, सो न रहै। इस समय इस बिलके सम्बन्धमें प्राय सारे देशमें दो पक्ष खडे हो गये हैं। जिनमेंसे एक तो इसको बहुत ही लाभकारी समझता है और जी जानसे इसका अनुमोदन करता है और

दूसरा इसको हिन्दूओंकी समाज रचनाको विशृंखल करनेवाला वर्णसंकरी बिल कहता है और घोर विरोध कर रहा है। दोनोंही पक्षोंकी ओरसे बड़े २ साधक बाधक प्रमाण दिये जा रहे हैं। पूनाके मराठी केसरीमें इस विषयका बहुतसा साहित्य प्रकाशित हुआ है और हो रहा है।

जो लोग इस बिलके विरोधी है, वे कहते है कि, इससे १. हिन्दू समाजकी विशृंखला होगी। २. स्वधर्म निर्दिष्ट विवाहपद्धतिको छोड़कर रजिष्ट्रारके साह्मने विवाह करनेवाले एक प्रकारके बलवाई है। वे मानों इस बिलके द्वारा यह चाहते है कि हम बलवा तो करेंगे। परन्तु बलवाई होनेपर भी हमें अपने पूर्वके धर्ममें रहने दो। यह बड़ा अन्याय है। ३. इस रजिष्टरी विवाहपद्धतिका अवलम्बन करनेवाले लोगोंके लड़के बच्चे अभी केवल माबापकी सम्पतिके अधिकारी होते हैं। परन्तु इस बिलसे मा बापके पुरुषाओंकी सम्पत्तिके भी अधिकारी हो सकेंगे। इससे धर्मशृंखला बिगड जायगी। ४. अपने धर्ममें रहकर रजिष्टरी विवाहपद्धति स्वीकार करनेकी स्वतंत्रता इस बिलसे सब हिन्दूओंको मिलेगी। ५. इस बिलसे हिन्दूओंको अपना धर्म छोड़े बिना म्लेच्छोंके साथ विवाह सम्बन्ध करनेकी स्वतत्रता मिलेगी। ६. इससे सगोत्रियोंमें विवाह करना भी जायज हो जायगा। ७. इससे सरकारकी दूसरे धर्मोंमें हस्तक्षेप न करनेकी नीतिका घात होगा इत्यादि। अब जो लोग इस बिलको अच्छा समझते हैं, उनकी भी सुन लीजिये—

वे कहते है कि, १. यह कोई नवीन बिल नहीं है। इससे जो लोगोंको अन्तर्जातिसे वा विजातिसे विवाह करते समय लाचार होकर कहना पड़ता था कि, हम हिन्दू, जैनी आदि नहीं हैं, सो नहीं

कहना पड़ेगा। २ अपने धर्मकी जिसे और सब बातें मान्य होतीं है, परन्तु एक प्रचलित जातिभेदकी पद्धति मान्य नहीं होती है और इसलिये जो अपनी पसन्दगीके अनुसार योग्य कन्यासे विवाह करना चाहता है, उसे बलात् यह कहना पड़ता है कि, मैं अमुक धर्मको नहीं मानता हू। इस बिलसे यह अनिष्ट टल जायगा। ३. किसीकी किसी धर्मपर श्रद्धा होते हुए भी उससे समाजका यह कहलाना कि मै अमुक धर्मको नहीं मानता हू, बड़ा भारी जुल्म है। इस अन्यायका उक्त बिलसे प्रतीकार होगा। ४. अन्यजातीय वा अन्यधर्मी स्त्रीसे विवाह करनेवाले मनुष्यको सामाजिक वा धार्मिक बिषयोंमें बहिष्कृत करनेका जो समाजको वा जातिको अधिकार है, वह ज्योंका त्यों रहेगा। इस बिलसे उसपर कोई आंच नहीं आवेगी। ५. इससे पूर्वजोपार्जित सम्पत्तिके अधिकारमें कोई नई रद्बदल नहीं होगी जाति भ्रष्ट वा धर्मभ्रष्ट हुए लोगोंके वारसहक्ककी रक्षाके लिये पहिले ही सन् १८५० में एक बिल बन चुका है। ६. इससे हिन्दूओंकी सामयिक कुटुम्बपद्धतिमें धक्का लगेगा तथा कुटुम्बमें वर्णसंकरता आवेगी, यह भय भी निराधार है। ७. जन्मसे हिन्दू परन्तु जुदी जुदी जातिके अथवा एक ही जातिके अन्तर्गत भेदोंके वर वधू हों, तो भी रजिष्ट्री कराते समय दोनोंको कहना पडता है कि, हम हिन्दू नहीं है, यह आपत्ति इस बिलसे दूर हो जायगी। ८. पुराणादि ग्रन्थोंमें वर्णन किये हुए गांधर्व और राक्षसादि विवाहोंसे जोकि शिष्टसमत थे, यह पुरुषस्त्रीकी प्रसन्नतापूर्वक किया हुआ नियमित विवाह विधान बहुत कुछ श्रेष्ठ है। यह विवाह गान्धर्व और स्वयवर विवाहके समान होनेपर भी सामाजिक नैतिक दृष्टीसे उसकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। केवल धनके लोभसे बुड्ढोंके गलेमें जिस विधिसे कन्याएं बांध दी जाती हैं, उसकी अपेक्षा इस विवाह-

विधिकी पवित्रता विद्वान पुरुष तो अच्छी ही समझेंगे । ९. इस विलसे जो यह शंका की जाती है की हिंदुओंमें 'छोड़छुट्टी' की पद्धति रूढ हो जायगी, सो भी व्यर्थ है। क्योंकि अभीतक १७७२ के कायदेसे एक भी 'वैवाहिक इस्तीफा' नहीं हुआ है। १०. यह सव चाहने लगे है कि, हिन्दुओंकी संख्या वढ़े और दूसरे धर्मवालोंको हिन्दूधर्मकी दीक्षा देनेका भी उपक्रम हुआ है। फिर जातिभेदको न मानकर विवाह करनेवाले परन्तु हिन्दूधर्मके मूल भूत तत्त्वोंको माननेवाले लोगोको हिन्दू कहनेका अधिकार न रहना कहांतक बुद्धिमत्ताका काम हो सकता है? हिन्दूओंमें जिस प्रकार नाना प्रकारकी विवाह पद्धतियोंको माननेवाली अनेक जातियां है, उसी प्रकार इस प्रकारके विवाहको माननेवाले लोगोंकी एक विशिष्ट जाति समझी जाने लगे, तो क्या अन्याय है? ११. प्राचीन ग्रन्थोमें ब्राह्मणे, क्षत्रियादि जातियोंमें अनुलोम प्रतिलोम विवाहोंके सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं जो उस समय जायज समझे गये है। सुप्रसिद्ध राजा चन्द्रगुप्तने सेल्यूकसकी (म्लेच्छ) राजकन्यासे विवाह किया था। मेवाड़के एक राजपूतराजाका ईराणकी एक राजकन्याके साथ विवाह करनेका उदाहरण इतिहास प्रसिद्ध है। काठियावाड़के अनेक राजा वा सरदार मुसलमान स्त्रियोंसे अव भी विवाह करते है और उनकी सन्तति उत्तराधिकारिणी होती है। जैनियों और हिन्दूओंमें परस्पर विवाहसम्वन्ध होते है। इस प्रकार यह विल किसी भी तरह अनिष्टकारक नहीं है।

जैन समाजको इन दोनों पक्षके साधक बाधक प्रमाणोंपर विचार करके अपना मत स्थिर करना चाहिये।

विविधविषय ।

जैनियोंकी संख्यामें कमी—बम्बई प्रान्तकी मनुष्यगणनाकी निश्चित सख्या अब प्रकाशित हुई है, वह २७०६९८४२ है। उससे मालूम होता है कि, हिन्दुओंकी प्रतिशत ५-३, मुसलमानोंकी ६-४, पारसियोंकी ५-६, और क्रिश्चियनोंकी ११-६ वृद्धि हुई है परन्तु जैनियोंकी वृद्धि न होकर उलटी प्रतिशत ९ की कमी हुई है। जैनियोंके लिये यह बड़ी चिन्ताका विषय है। इसके कारण सोचकर इनको टालनेका उपाय करना चाहिये।

सार्वजनिक पुस्तकालय—अपनी प्रजाको विदुषी बनानेके लिये बडोदा महाराज बडा भारी उद्योग कर रहे हैं। बड़ोदाके चलते फिरते पुस्तकालयोंकी बात पाठक पढही चुके हैं, अब उन्होंने सार्वजनिक पुस्तयालयोंके लिये एक नया कानून बनाया है। वह यह कि, यदि किसी ग्रामके लोग सार्वजनिक पुस्तकालय खोलना चाहें तो वे स्वय मिलकर जितना चन्दा करेंगे, उतनाही चन्दा लोकलबोर्ड फडसे और उतनाही सेंट्रललायब्रेरी डिपार्टमेंटसे सहायता स्वरूप दिलवाया जायगा अर्थात् यदि किसी नगरके लोग ५०० चन्दा करें, तो उन्हें ५००) लोकलबोर्डसे और ५००) से० ला० डि० से मिल जायगा, इस तरह १५००) का खासा पुस्तकालय बन जायगा। पुस्तकालयकी इमारतोंके लिये भी इसी प्रकारसे अर्थात् ⅓ प्रजाका और ⅔ सहायताका नियम है। महाराजकी इस उदारताके कारण इस समय २४१ से अधिक पुस्तकालय बड़ोदा राज्यमें स्थापित हो चुके हैं।

नम. सिद्धेभ्य

जैनहितैषी.

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥ १ ॥

आठवाँ भाग] मार्गशिर श्रीवीर नि० सं० २४३८ [दूसरा अंक

आकार निरूपण ।

[मि० गाधी, बी. ए, एम. आर. ए. एस. के वाशिंगटनमें दिए हुए एक अंग्रेजी व्याख्यानका अनुवाद.]

(२)

एक और आकार सात अंधे आदमियों और एक हाथीका है। सात अंधे आदमी यह जानना चाहते थे कि, हाथी कैसा होता है। वे उस स्थानपर गये जहां हाथी था। किसीने उसके कानपर हाथ रक्खा, किसीने टांगपर और किसीने दुम आदि स्थानोंपर। जब लोगोंने पूछा कि, हाथी कैसा होता है, तो एकने कहा—हाथी ऐसा होता है जैसा छाज अर्थात् सूप। दूसरेने कहा—नहीं महाशय, तुम असत्य कहते हो—हाथी थंभ जैसा होता है। तीसरेने कहा—नहीं, तुमने धोखा खाया—वह गावदुम कैसा होता है। औरोंने भी इसी तरह बताया। तब उसके मालिकने कहा—मित्रो, तुम सबहीने गलती खाई। तुमने हाथीको सब तरफसे नहीं देखा। यदि

ऐसा करते, तो एक तरफी बात न कहते। इस आकारसे जैनी यह बात सिद्ध करते है कि, किसीको ऐसा उपदेश नहीं देना चाहिये कि (वस्तुका) धर्म इसी प्रकार (एकान्तरूप) है और प्र-कार नहीं। जैनियोंकी एक कहावत है, जिसका यह भाव है कि, छहदर्शन एक ही पूरे (यथार्थ) दर्शनके भाग है। यदि उनको अलग अलग लो, तो वे असत्य है।

जैनियोंका एक और आकार यह है—एक आमका वृक्ष है और छह मनुष्य है। वे मनुष्य एक ही सभाके सभासद थे। उन्होंने आम चखना चाहा, इसलिये वे एक आमके बागमें गये। एक आमके वृक्षके पास पहुच कर उनमेंसे एकने कहा,—इस झाड़के फल वडे सुहावने और स्वादिष्ट है। हमको चाहिये कि, इस सारे झा-ड़को काट डालें और आम खावें। दूसरेने कहा,—हमको सब झा-डोंका क्या करना है? एक वडी शाखा काट लें। उससे काम चल जायगा। तीसरेने कहा,—नहीं, छोटी शाखा काफी होगी। चौथेने कहा,—छोटीसे भी छोटी शाखा हमको सन्तुष्ट कर देगी। पाचवेंने कहा,—केवल खानेलायक आम गिरा लेने ही से काम चल जायगा। अन्तिम मनुष्यने कहा,— इन सब बातोंसे हमको क्या करना है? वृक्षको काटने या शाखा काटनेसे क्या प्रयोजन? जो आम नीचे गिरे है, वे ही काफी है। लोग समझते है कि, यह आकार आलस्यकी शिक्षा देता है। परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। यह जीव रक्षाका उपदेश देता है। इससे यह भी सीख मिलती है कि, थोडेसेके लिये वहुतको हानि नहीं पहुचाना चाहिये।*

* वास्तवमें यह आकार जीवके कषायानुरंजित परिणामोंकी तरतमताको प्रगट करता है।

सम्पादक.

हम आपको और भी जैन आकारोंके सम्बन्धमें वतलाते। परन्तु इससे हमारा सारा समय एक ही ओर लग जायगा। इसलिये अब हम कुछ ब्राह्मणोंके आकारोंका वर्णन करेंगे। उनमें कोई २ हमारे भी होंगे जैनियोंके भी होंगे,—

भारतवर्षके कुल धर्मोंमें ॐ शब्दका प्रयोग होता है। यह शब्द अ, उ और म् इन तीन अक्षरोंसे वना हुआ है। जब इन तीनोंकी संधिकी जाती है, तब ॐ वा 'ओम्' होता है। ब्राह्मण कहते है कि, ये तीन अक्षर उत्पत्ति, रक्षण और विनाश तत्त्वको प्रगट करते हैं। जब अ का उच्चारण किया जाता है, तब कण्ठसे स्वास आती है। इसलिये वह 'उत्पत्ति'को प्रगट करता है। उ के उच्चारणमें थोड़ी देरके लिये स्वास रुकती है–स्थिर होती है इस कारण वह 'रक्षण' तत्त्वको वतलाता है। म्के उच्चारणमें कुछ समयके लिये वायु रुकती है और फिर नासिकामेंसे निकलती है। इससे इसको 'विनाश'और 'पुनर्जन्म'का सूचक मानते हैं। जैनी ओम् को अ, अ, आ, उ और म् इन पांच अक्षरोंसे वना हुआ मानते हैं। इनमें चार स्वर है और पांचवाँ व्यंजन है। सबकी संधि होकर ओम् वनता है। ये पांच अक्षर पंचपरमेष्ठीके द्योतक है। पहिला अक्षर अ अर्हत् शब्दका पहिला अक्षर है। जब तक वे इस संसारमें रहते है, अपने सम्प्रदायके गुरु होते हैं। दूसरा अक्षर अ अशरीरी अर्थात् सिद्ध-का वाचक है। तीसरा अक्षर आ आचार्यका वाचक है, जो कि अर्हंतके वरावर तो नहीं होते, परन्तु साधुओंके नायक होते हैं, जो मोक्ष प्राप्त करेंगे वा सिद्ध होंगे। चौथा अक्षर उ उपाध्याय वाचक है, जिनके कि साधु शिष्य होते है। पांचवाँ अक्षर म् मुनि शब्दका सूचक है। जब हम ओम् शब्द कहते हैं, तब हमारे ध्या-

नमें पचपरमेष्ठी आजाते हैं। इस प्रकार हमारा अर्थ 'आध्यात्मिक' है और ब्राह्मणोंका 'भौतिक' है। पचपरमेष्ठीके गुण विलक्षण हैं। प्रथम परमेष्टीके गुण १२ दूसरेके ८ तीसरेके ३६ चौथेके २५, और पाचवेंके २७ होते है। यदि किसी मनुष्यमें १२ गुणपाओ तो वह श्रीअरहंत है। यदि २९ गुणपाओ, तो उपाध्याय है। इसी प्रकार २७ पाओ, तो वह मुनि है। ये सब गुण मिलाकर १०८ होते है। इसीलिये मालामें १०८ दाने होते हैं। माला फेरते समय हम अपने ध्यानमें इन पंचपरमेष्ठियोंका और उनके गुणोंका विचार करते है, जो कि हमको मोक्षके मार्गमें सहायता देते है।

हिन्दूओंके मन्दिरोंमें बहुतसी देवी और देवताओंकी प्रतिमाएं होती हैं। कलकत्तेमें आपने सुना होगा कि, एक ऐसी मूर्ति है जिसके साम्हने बहुतसे पशु वध किये जाते हैं। यह पशुवधका रिवाज अभी तक उक्त शहरसे लुप्त नहीं हुआ हैं। साधारण मनुष्यको वह शकल बहुत डरावनी मालूम होती है। देवीके मुहसे लम्बी लाल जीभ निकली हुई दर्शकके दिलमें होल पैदा कर देती है। इसके इधर उधर कई छोटे २ देवी देवता हैं और इसके सिरपर शिवकी मूर्ति है। इसका अर्थ आत्मिक और भौतिक दोनों अभिप्राय लिए हुए है। देवीकी जो दश भुजाए हैं, वे सब उत्पादक शक्तियोंको प्रगट करती है। पाच एक प्रकारकी और पांच उनके विरुद्ध। दक्षिण ओरकी भुजाएं एक प्रकारकी शक्तियोंको प्रगट करती हैं और वाम ओरकी उनसे उल्टी- शक्तियोंको। दाहिनी ओर एक देवताकी सूरत है, जिसका आकार मनुष्यकासा परन्तु सिर हाथीकासा है। दाहिनी ओर लक्ष्मी देवी है। पशुके सिरवाले मनुष्याकारसे समझना चाहिये कि मनुष्य पशुकी

इच्छाएँ रखनेवाला है, इस लिये उसके पास लक्ष्मी अर्थात् दौलत है। बाई ओर इससे उल्टी शक्ति आत्मिक है और इस कारण इस ओर मनुष्यका आकार सम्पूर्ण है, तथा ज्ञानदेवी सरस्वतीकी मूर्ति है। उसको (आत्मज्ञ मनुष्यको) दौलतकी इच्छा नहीं है। वह मूर्ति एक प्रकारसे बड़ी अच्छी मूर्ति है, परन्तु पीछेसे लोग उसके असली मतलबको भूल गये और संसारमें फँस गये। उन्होंने यह समझा कि, संसारकी शक्ति एक भावरूप नहीं है, बल्कि एक व्यक्ति विशेष है। जिसकी वे शक्तियां है, उसको हम प्रसन्न करना चाहते है। इसलिये वे देवीके साम्हने पशुका बलिदान करते हैं। यह हिन्दुओंके लिये जो कि बड़े दयावान् और शान्तिप्रिय है, बड़े शोककी बात है। वे सत्यताको भूल गये है। उन्होंने धार्मिक लेखोंको मटियामेट कर डाला है। बहुतसे नये वाक्य मिला लिये हैं। अक्षर बदलकर सतीका होना भी शास्त्रोक्त बतला दिया है।

भारतवर्षकी सब संप्रदायों और जातियोंके लोग अपने मस्तक पर किसी सुगन्धित वस्तुसे जुदे २ प्रकारके तिलक लगाते है। इसके लिये जैनी संदल (चन्दन) को काममें लाते हैं। बहुत थोड़े लोग इन तिलकोंके लगानेका मतलब समझते है। जैनी अपने तिलकको हृदयके आकार–भौंहोंके बिलकुल बीचमें बनाते हैं * हमारे शरीर विचारके अनुसार वह रगोंका केन्द्र है जो कि प्रकाश या दिव्य दृष्टीका स्थान है जब हम व्रत पालते है, तब हमको वे बहुतसी बातें इस केन्द्रमें होकर दिखती है, जिनको हम ऐन्द्रीय चक्षुसे नहीं देख सकते है। जब हम तिलक लगाते

---

* दिगम्बर सम्प्रदायमें तिलकका आकार मानस्तभाकार माना है।

सम्पादक,

हैं, तब हमारा अभिप्राय इस बातका होता है कि हम इस केन्द्रसे प्रकाश प्राप्त करेंगे। मन्दिरोंमें जानेसे हमारा यह अभिप्राय नहीं होता कि, हमें वहां सम्पदाकी प्राप्ति हो। किन्तु यह प्रयोजन रहता है कि, हमको वह शक्ति प्राप्त हो जाय जिससे बहुत अधिक ज्ञानकी प्राप्ति हो। हम केवल धार्मिक सम्पत्ति चाहते हैं। ब्राह्मण अपने मस्तकपर तीन लकीरें बनाते हैं। ब्राह्मण इससे तीन शक्तियोंका मतलब लेते है। ये शक्तियां उत्पादन रक्षण और नाशन है। परन्तु जैनी इन भौतिक शक्तियोंका कुछ भी विचार नहीं करते है। वे कहते है कि, हमारा हृदय अच्छे आचार विचारोंके द्वारा हमको उच्च अवस्थापर ले जा सकता है।

अपने मन्दिरोंमें हम पूजन करते समय चौकी या तिपाईपर जो आकार बनाते है, उनमेंसे एक आकार आठ पँखुरीवाले कमलका होता है—
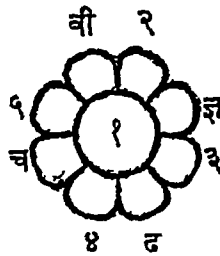
इस कमलकी पँखुरियोंमें हम बड़े २ तत्त्वों वा विचारोंका स्थान बांधते है। जैसे पांच परमेष्ठी है। पहिले अर्थात् अर्हत् (१) को हम बीचमें विचार करते हैं। सिद्ध (२) ऊपरके सिरेपर, आचार्य (३) दाहिनी ओर, उपाध्याय (४) तलीमें और अन्य साधु (५) बाईं ओर। बीचमें कोणोंकी पँखुरियोंमें सम्यक् ज्ञान (ज्ञ) सम्यग्दर्शन (द) सम्यक्चारित्र (च) और वीर्य (वी) है।

जब माला हमारे हाथमें होती है, तब हम श्रीअरहंतका विचार करते है और उनके गुणोंका ध्यान करते है। इसी प्रकार सिद्धोंके गुणोंका ध्यान करते है और इसी प्रकार औरोंका। जब हम इन गुणोंका विचार करते है, तब हमारा ध्यान और कहीं नहीं जाता और मनको दृढता मिलती है।

कईएक प्रकारके आकार पारसी यूनानी और रूमी लोगोंमें भी प्रचलित है। मिश्रके लोगोंमें सर्पका आकार माना जाता है, जिसका अर्थ अनादि है। और बिल्लीका आकार मानते है. जिसका अर्थ चन्द्रमा बतलाते है। रूमी और यूनानी हजरत ईसासे बहुत पहिले क्रॉसको मानते आये है। इसका कोई गूढ अर्थ होगा। क्रॉसका प्रयोग सब मुल्कोंमें पाया जाता है। 'रोजीक्रूशी' भी क्रॉसको रखते है। वे यह अर्थ लगाते है—
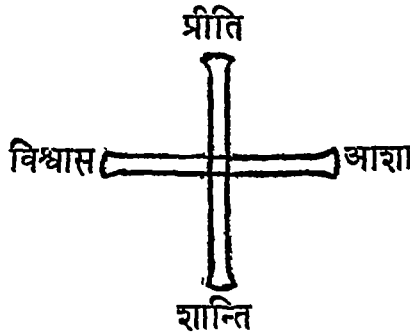
रोजीक्रूशी लोगोंका यह कहना है कि यदि मनुष्य प्रीति आशा शान्ति और विश्वासपर अमल करे तो वह केन्द्रपर पहुंच जायगा इसका असली अभिप्राय यह था कि, अपने उसी अंगका बलिदान करदेवे।

पारसीलोग अग्निकी पूजा करते है। अग्निका मूल सूर्य है। सूर्य आत्मिक शक्तिका आकार है। वह आत्मिक शक्तिका मूल समझा जाता था। पारसी पूजनके समय यह आकार बनाते है.—
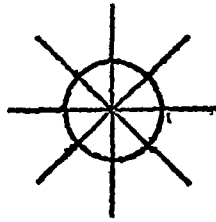
चेतनदास बी. ए. एस. सी.।

विषयी भ्रमर

(१)

होकर अति अनुरक्त, किया रातोंकी गतें।
महा मधुर मधुपान, भूलि अति वे सब वातें॥
अब हिमतै लखि क्राति, कमलिनीकी मुरझाई।
स्वार्थ साधु उस ओर, न देखें आख उठाई॥

(२)

आज पान करके कमलनिके, सुमधुर रसका।
कल होता बेकल अलि लखि, बकुलनकी कलिका॥
नित नित नव अभिलाष, मलिन–मानस जो करता।
'एक प्रीतिव्रत' उससे कहु, कैसे सध सकता॥

(३)

कमलनिके सहवास रह्यौ, पर तोष न पायौ॥
बकुल चमेलनिहूकौ संग, न जिसे सुहायौ॥

उस मधुकरको देखि, रीझते नीम सुमनपर ।
कौतुक होता है विषयी, जीवोंकी रुचिपर ॥

(४)

मधुपराम मत शोक करौ छूटे झझटसे ।
विचरो जाय करीरनके, फूलनपर सुखसे ॥
सारहीन कीनी तुषारने. शोभा छीनी ।
अवन कामकी रही मालती जाय न चीनी[1] ॥

शिवसहाय चौवे,
देवरी (सागर)

भट्टारक ।

(४)

(भाग ७ अक १०–११ से आगे)

ये गृहस्थ हैं या मुनि ?

पूर्वके और वर्तमानके भट्टारकोंका स्वरूप दिखलाया जा चुका। अब यह सोचना चाहिये कि, जो धर्मके साक्षात् और परम्परारूप दो मार्ग है—मुनिमार्ग और गृहस्थमार्ग, उनमेंसे ये किस मार्गमें गिने जा सकते है ।

दिगम्बर सम्प्रदायमें मुनियोंका और गृहस्थोंका जो स्वरूप कहा है और जिसे वीसपंथी तेरहपंथी सब ही स्वीकार करते है, उसके अनुसार यदि किसीसे पूछा जाय कि, भट्टारक कौन है, मुनि या गृहस्थ वा अनगार या सागार ? तो वह विचारके यही उत्तर देगा कि, ये एक प्रकारके गृहस्थ है । क्योंकि इनका परिग्रहसे

---

१ चीनी न जाय अर्थात् पहिचानी नहीं जाती ।

संसर्ग नहीं छूटा है, बड़े भारी परिग्रहके ये स्वामी होते हैं। यद्यपि पहिलेके भट्टारक केवल वस्त्रादि मात्र ही परिग्रह रखते थे और अबके भट्टारक लक्षाधीशों सरीखा परिग्रह रखते हैं, इस अपेक्षा इनके परिग्रहमें न्यूनाधिकता अवश्य हुई है, परन्तु जब केवल एक लंगोटी मात्र परिग्रह रखने वाला और प्राय सब आचरण मुनियों सरीखे पालनेवाला ऐलक, श्रावकोंमेंही गिना जाता है, तब इन्हें श्रावक वा गृहस्थ क्यों न कहेंगे ? ये तो साक्षात् गृहस्थ हैं। हा, यह बात दूसरी है कि, सामान्य श्रावक वा गृहस्थ और ये एक-हीसे नहीं हो सकते हैं साधारण गृहस्थोंकी अपेक्षा इनका पद ऊंचा माना जा सकता है और इनके आचरणोंके अनुसार पहिलीसे लेकर सातवीं आठवीं प्रतिमा तककी कल्पना इनके पद सम्बन्धमें की जा सकती है।

अच्छा मानलिया कि, ये एक प्रकारके श्रावक वा गृहस्थ हैं। परन्तु इनसे भी तो पूछ लीजिये कि, आप कौन है ? इनसे बिना पूछे एकतरफा फैसला कर देना भी तो ठीक नहीं है। ये तो कहते हैं कि, " हम दिगम्बर सम्प्रदायके मुनिही नहीं बल्कि आचार्य हैं और भगवान कुन्दकुन्दादि आचार्योंके पट्टके परम्पराधिकारी हैं। पंचम कालके दोषसे हमने वस्त्रादि परिग्रहको धारण कर लिया है, विवश होकर हमने वस्त्र धारण किये है, परन्तु वास्तवमें हैं हम दिगम्बर मुनि।' इनकी बहुतसी क्रियाएँ भी ऐसी हैं, जिनसे इन्हें गृहस्थोंकी पंक्तिमें बिठाना ठीक नहीं जान पड़ता है। जब किसी पुरुषको भट्टारककी दीक्षा दी जाती है, तब उसे केशलोंच करना पड़ता है और नग्न भी होना पडता है। कोई २ भट्टारक प्रतिवर्ष एक वार नग्न होनेकी क्रिया करते हैं। भोजनके समय

भी बहुतसे भट्टारक नग्न होते हैं। इससे यों मुनि ही मालूम होते है और हमेशासे ये अपनेको मुनि ही समझते आये हैं। ईडरके भंडारमें एक प्राचीन तथा जीर्ण पुस्तक है, उसमें भट्टारक दीक्षाकी विधि लिखी है। उसका थोड़ासा अंश जो हमारे पास पं० **नन्दनलालजी** अध्यापक ने कृपाकरके भेजा है, उससे मालूम होता है कि, पहिले गृहस्थ या श्रावकको भट्टारककी दीक्षा नहीं दी जाती थी किन्तु किसी योग्य मुनिको तलाश करके उसे भट्टारक पदपर प्रतिष्ठित करते थे। उसे सूरिमंत्र देते थे और उसमें आचार्यके गुणोंका आरोपण करते थे। इसके सिवाय उसमें भट्टारकके लिये धर्माचार्याधिपति, मुनि लब्धाचार्यपद, जिनधर्मोद्धरणधीर, आदि विशेषण भी दिये है। इससे साफ मालूम होता है कि, भट्टारक वास्तवमें गृहस्थ नहीं हैं, मुनि तथा आचार्य है। और कम से कम उस पंथके लोग जिसने भट्टारकोंको अपने धर्मगुरुके रूपमें स्वीकार किया है, प्रारभसे अबतक उन्हें मुनि वा आचार्य ही मानते आये है। नन्दिसंघ, सेनसंघ आदिकी जो गुर्वावली वा पट्टावली है, उनमें भी पूर्व गुरुओंकी परम्परासे भट्टारकोंकी परम्परा मिलाई गई है और उनका जो नामकरण होता है, वह भी पूर्व गुरुओंके समान होता है। जैसे गुणचन्द्र, रत्नकीर्ति, वीरसेन, सुरेन्द्रभूषण आदि।

भट्टारक दीक्षा विधानसे और भट्टारकोंके इतिहाससे इस बातका आभास तो जरूर होता है कि, देश कालकी अनुकूलता नहीं होनेसे ही मुनियों वा आचार्योंके स्थानमें भट्टारकोंकी स्थापना की गई थी और समाजके बहुत बड़े भागने इस सुधार वा रिफार्मको स्वीकार कर लिया था। परन्तु इस विषयका प्रतिपादन वा विवेचन

किसी भट्टारकका वा अन्य विद्वानका किया हुआ देखनेमें नहीं आया कि, यह मार्ग शास्त्रोक्त कैसे हो सकता है। जिस तरह श्वेताम्बराचार्योंने वस्त्रादि सहित अवस्थामें भी मुनिपना सिद्ध किया है और इस विषयके अनेक खंडन मंडन युक्त ग्रन्थ रच डाले है, उस तरह भट्टारकोंने अपने परिग्रह युक्त वेषमें निर्ग्रन्थपनेकी सिद्धिका कोई ग्रन्थ बनाया हो, ऐसा अभीतक सुननेमें नहीं आया है। यदि बनाया हो, तो मुझे मालूम नहीं है। इस समय हमारे सम्प्रदायमें जिन ग्रन्थोंका विशेषतासे प्रचार है और जिनकी विशेष मान्यता है, उनमें तो जगह २ ऐसे ही वाक्य मिलते हैं। जिनसे भट्टारक पदकी अशास्त्रोक्तता ही सिद्ध होती है। बल्कि यह पद गृहस्थोंके साधारण पदसे भी नीचा और अपूज्य ठहरता है। कुछ प्रमाण यहां उद्धृत किये जाते हैं:—

बालग्गकोडिमत्तपरिग्गहगहणो ण होइ साहूणं।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं एक्कठाणम्मि॥१७॥
जहजायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गहदि अत्थेसु।
जइ लेइ अप्पबहुअं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदं॥१८॥
जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स।
सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिओ निरायारो॥१९॥

[सूत्र पाहुड]

अर्थात्—साधुओंके पास बालकी नोंकके बराबर भी परिग्रह नहीं होता है। वे एक स्थानहीमें खड़े होकर श्रावकों द्वारा दिये हुए भोजनको अपने हाथमें रखकर खा लेते हैं ॥१७॥ जन्मते बालकके समान नग्न दिगम्बररूप धारण करनेवाले साधु तिलके छिलके बराबर भी परिग्रहको ग्रहण नहीं करते है। यदि वे थोडा बहुत परिग्रह ग्रहण कर लें, तो निगोद गतिको जाते है ॥१८॥

जिस लिंग वा वेषमें थोड़ा बहुत भी परिग्रहका ग्रहण किया जाता है, जिन वचनमें उस लिंगको गर्हित अर्थात् निन्दनीय बतलाया है। क्योंकि परिग्रहरहित ही निरागार वा मुनि होते है॥ १९॥

णवि सिज्झइ वच्छधरो जिणसासणे जहवि होइ तिच्छयरो।
णग्गो वि मोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे॥ २३॥

अर्थात्—चाहे तीर्थंकर भी हो, परन्तु वह भी यपि वस्त्र सहित अवस्थामें हो, तो मुक्त नहीं होता है। क्योंकि नग्न दिगम्बर ही एक मोक्षमार्ग है, शेष सबही उन्मार्ग है॥ २३॥

सुत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो।
खेडे वि ण कायव्वं पाणियपत्तं सचेलस्स॥ ७॥
णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं।
एक्को वि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे॥ १०॥
(सूत्र पाहुड)

अर्थात्—जो कोई सूत्रके अर्थ और पदसे विनष्ट है, अर्थात उसके विपरीत प्रवर्तता है, उसको मिथ्यादृष्टि जानना चाहिये। इस कारण वस्त्रधारी मुनिको कौतुक मात्रसे भी दिगम्बर मुनिके समान हाथपर भोजन न कराना चाहिये॥ ७॥ वस्त्रको न धारण करना, पाणिपात्र अर्थात् हाथपर रखकर भोजन करना यही अद्वितीय मोक्षमार्ग जिनेन्द्र देवने बतलाया है। शेष सबही अमार्ग हैं। ॥ १०॥

जे जिणलिंगधरे वि मुणि, इट्ठपरिग्गह लिंति।
छद्दिकरे वि णु तेवि जिय, सो पुण छद्दि गिलंति॥ २१७॥
केणवि अप्पा वंचियउ, सिरलुंचवि छारेण।
सयलवि संगह परिहरिय, जिणवरलिंगधरेण॥ २१६॥
[परमात्माप्रकाश]

अर्थात्–हे जीव, जो मुनिलिंगका धारण करके इष्ट परिग्रहको ग्रहण करते है, वे कै (छर्दि) करके फिर उसी कैको खाते है ॥ २१७ ॥ किस जीवसे आत्मा ठगा गया ? जिसने जिनवरका लिंग धारण करके और राखसे मस्तकका लोंच करके समस्त परिग्रहका त्याग नहीं किया ॥ २१६ ॥

जे पंचचेलसत्ता गंथग्गाही य जायणासीला ।
आधाकम्ममि रया ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥ ७९ ॥

[मोक्षपाहुड)

जो पाच प्रकारके वस्त्रोंमें आसक्त है, परिग्रहके ग्रहण करनेवाले है, याचना सहित है, और अधःकर्म आदि दोषोंमें रत हैं, वे मोक्ष मार्गसे भ्रष्ट है ।

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥

(रत्नकरड श्रा०)

जो विषयोंकी आशासे रहित है, आरभ और परिग्रह जिसके नहीं है और जो ज्ञान ध्यान तथा तपमें रत रहता है, वह तपस्वी प्रशसाके योग्य है। (जो आरंभ परिग्रहादि सहित है, वह निंद्य है) ।

इत्यादि प्रमाणोंसे स्पष्टतया प्रगट होता है कि, दिगम्बर सम्प्रदायकी धर्मपद्धतिके अनुसार भट्टारक मुनियोंकी वा आचार्योंकी गणनामें कभी नहीं आ सकते हैं । वल्कि भ्रष्ट लिंगियोंकी श्रेणीमें आकर उनका पद गृहस्थोंसे भी नीचा हो जाता है और उनका मानना पूजना भी दूषित ठहरता है ।

कई लोग कहते हैं कि, भट्टारक मुनि नहीं किन्तु गृहस्थाचार्य हैं । परन्तु यह केवल एक कल्पना है और इसकी उत्पत्ति वहुतसे

भट्टारकोंको प्रतिष्ठादि कार्य कराते व्रतविधानादि बतलाते तथा श्रावकोंके पंचायती झगड़ोंमें पड़ते देखकर हुई है। वास्तवमें गृहस्थाचार्यके लक्षण भट्टारकोंसे घटित नहीं होते है। इन्द्रनंदिकृत नीतिसारमें गृहस्थाचार्यका लक्षण हमने देखा है; परन्तु इस समय उक्त ग्रन्थके न रहनेसे हम उसे यहां नहीं लिख सक्ते।

अब भट्टारकोंकी जरूरत है या नहीं?

अब इस बातका विचार करना चाहिये कि, वर्तमान समयमें भट्टारकोंकी जरूरत है या नहीं। मेरी समझमें जिस तरह राष्ट्रशकटको सुखपूर्वक चलानेके लिये राजकार्य धुरंधर संचालकोंकी हमेशा जरूरत रहती है, उसी प्रकारसे धर्मरथको सुव्यवस्थित पद्धतिसे चलानेके लिये धर्मोपदेशकोंकी वा धर्मज्ञोंकी आवश्यकता रहती है। पृथ्वीमें इस समय जितने धर्म प्रचलित है उन सबहीमें धर्मोपदेशक व धर्मगुरु मौजूद है और वे ही अपने २ धर्मोंके प्रधान संचालक समझे जाते है। गुरुओंकी नियुक्ति जिस तरह प्रत्येक धर्ममें प्राचीन कालसे आवश्यक समझी आ रही है, उसी तरहसे अब भी है। समयमें और जैन समाजमें असाधारण परिवर्तन हो जानेपर भी उनकी आवश्यकता कम नहीं हो गई है। यदि कोई यह समझता हो कि, जिस धर्मके अनुयायियोंमें शिक्षित कम हो, अशिक्षितोंकी संख्या अधिक हो, उसीमें धर्मवाहक गुरुओं उपदेशकोंकी जरूरत रहती है शिक्षितोंमें नहीं, तो यह भूल है। इंग्लेंड अमेरिका जर्मनी आदि पाश्चात्य देशोंमें अशिक्षितोंका प्रायः नाम शेष हो चुका है शिक्षित दिखलाई देते है, तो भी वहांके ईसाई धर्ममें पादरियोंकी आवश्यकता कम नहीं हुई है। अब भी वहां ईसाई धर्मकी बागडोर पादरियोंके हाथमेंसे किसीने छीनी नहीं है। और आगे छीनी जायगी इसके कोई लक्षण नहीं दिखलाई देते हैं।

भाविक प्रवृत्ति ससारकी ओर रहती है। पीछे जीविकादिके प्रपंच ऐसे लगे हैं कि, उन्हें चलानेके लिये उन्हें अपने जीवनका सबसे बड़ा भाग खर्च करना पडता है उन्हें इतना अवकाश नहीं मिल सकता है कि वे ऐहिक प्रपंचोंके समान पारलौकिक कार्योंमें भी अपने समयको व्यय करें। मुख्यतासे वे ऐहिक कार्योंहीके सम्पादक हैं। और यह नियम है कि, जब तक किसी कार्यकी ओर कोई पूरा २ लक्ष न लगावे, तब तक उस कार्यका सम्पादन सम्यक रीतिसे नहीं हो सकता है। इसलिये साधारण जैनसमाज कोई इस बातकी आशा करे कि, वह ऐहिक कार्योंके सामान धार्मिक कार्योंका भी भली भांति सम्पादन कर लेगा, तो उसका भ्रम है।

धार्मिक कार्योंके सम्यक् प्रकार चलानेके लिये ऐसे लोगोंकी जरूरत है, जो अपना खास समय धर्मतत्त्वोंके अनुसंधान तथा सम्पादनमें ही व्यय कर सकें। जिस तरह ज्योतिष, वैद्यक, विज्ञान, आदि विषयोंका पारंगत विद्वान् होनेके लिये इस बातकी आवश्यकता है कि, एक पुरुष एक ही विषयमें अपनी सारी शक्तियोंको तथा सारे समयको लगादेवे, उसी प्रकारसे धर्म विद्याका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये भी यह आवश्यक है कि, उसमें पुरुष अपना सारा जीवन व्यय कर दे। इससे सिद्ध हुआ कि प्रत्येक धर्ममें एक इस प्रकारका वर्ग होना चाहिये जो केवल धार्मिक हो और जिसका जीवन केवल धर्मसे सम्पर्क रखनेवाला हो।

जैन धर्मकी शिक्षाका प्रचार करनेके लिये जैन समाजकी ओरसे, इस समय बहुत कुछ यत्न हो रहा है, और उससे बहुतसे जैन धर्मके ज्ञाता तयार हो रहें है। परन्तु ज्यों ही वे पढ़लिखकर तयार होते है, त्योंही सासारिक चिन्ताएं उनका गला आ दबाती हैं, और

आगे उन्हें अपना समय जो केवल धर्मविचारमें ही खर्च करना चाहिये था, जीविकादिके कार्योंमें लगाना पड़ता है, इससे उनका धर्मज्ञान कमालियत पर नहीं पहुँच सकता है और उनसे धर्मका उपकार भी यथेष्ट नहीं हो सकता है। इसलिये ऐसे लोगोंकी बहुत आवश्यकता जान पड़ती है, जो जीवन भर जैनधर्मका अध्ययन मनन तथा परिशीलन करें और साधारण जनसमुदायको जो केवल ऐहिकप्रपंचोंमें उलझा रहता है, धर्मका उपदेश देते रहकर उनके जीवनको अधर्ममय न होने दें। वे लोग चाहे भट्टारक हों, चाहे मुनि हों चाहे उपदेशक हों और चाहे इनसे जुदे और किसी नये नामके ही धारक हों।

एक बात और है, वह यह कि, साधारण जन समुदाय पर जितना इस वर्गके लोगोंका प्रभाव पड़ता है, उतना उन लोगोंका नहीं पड़ सकता है, जिनका जीवन केवल प्रवृत्तिमय होता है। और ऐसे प्रभावके विना जिन धार्मिक संस्थाओंकी प्रत्येक समयमें आवश्यकता रहा करती है और जिनसे धर्म प्रचारमें असाधारण सहायता मिलती है, उनकी स्थापना नहीं हो सकती है। हमारे सम्प्रदायमें जो धार्मिक संस्थाओंकी सब सम्प्रदायोंसे अधिक कमी है, इसका एक कारण यह भी है कि, हमारे यहा इस प्रभावशाली वर्गकी सबसे अधिक कमी है, बल्कि ऐसा कहना चाहिये कि एक प्रकारसे अभावही है।

स्वरूप परिवर्तन।

यह तो निश्चय हो गया कि, जैनसमाजके लिये भट्टारकोंकी अथवा उनके समान एक वर्गकी आवश्यकता है। परन्तु इस बातका विचार करना बाकी ही है कि, वर्तमानमें जो भट्टारक है,

उन्हींसे हमारी धार्मिक आवश्यकताएं पूरी हो जावेंगी या उनके स्थानमें कोई नई नियुक्ति करनी पडेगी।

हमारी समझमें यह बात सभव नहीं जान पडती है कि, भट्टारकोंको लोग उनके वर्तमान स्वरूपमें धर्मगुरु स्वीकार करेंगे। क्योंकि दिगम्बर सम्प्रदायमें जिन ग्रन्थोंकी मान्यता है, उनके अनुसार जैसा कि पूर्वमें कहा जा चुका है, भट्टारकका पद न तो गृहस्थोंकी श्रेणीमें आ सकता है और न मुनियोंकी में। यद्यपि बीसपथके अनुयायी जिनकी सख्या लाखोंकी है, अब भी इन्हें अपना धर्मगुरु मानते है, परन्तु यह नहीं समझना चाहिये कि वे इनके चरित्रोंसे सन्तुष्ट है। वे यह जरूर चाहते है कि, इनके स्वरूपमें कुछ परिवर्तन हो जावे। इसके सिवाय बीसपथियोंमें जो समझदार है, धर्मके जानकार हैं, भोले भक्त नहीं है, वे भट्टारकोंको मुनि समझकर अपना गुरु नहीं मानते है अर्थात् वे गुरुके स्वरूपको अन्यथा कल्पित नहीं करते है किंतु धर्मके एक सचालक, प्रचारक वा उपदेशक समझकर उनका सत्कार करते है। इससे यादि भट्टारकोंके स्वरूपमें उचित परिवर्तन किया जाय, और शातितासे उसका अभिप्राय सर्वसाधारणपर प्रगट कर दिया जाय तो हमारी समझमें उसे तेरहपथी जो कि, इन्हें भेषी वा कुलिंगी समझते हैं और बीसपथी जो कि इन्हें शास्त्रोक्त नहीं किन्तु काम चलाऊ गुरु समझते है, दोनोंही स्वीकार कर लेंगे।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि, यह स्वरूप परिवर्तन कैसा किया जाय? इसके लिये हमें एक यह युक्ति सूझ पडती है कि, ये लोग अपनेको मुनि नहीं किन्तु सातवीं या आठवीं प्रतिमाके धारी गृहस्थही स्वीकार करें और सब लोग भी इन्हें यही समझकर आदर

सत्कारादि करें। इनकी दीक्षाके समय जो केशोत्पाटनके तथा नग्नादि होनेके ढोंग किये जाते है, वे नहीं किये जावें। केवल ब्रह्मचर्य्य प्रतिमाकी दीक्षा दी जावे और साथही जो इनका परिग्रह बेहद बढ़ गया है, वह बहुतही मामूली कर दिया जाय तथा जो प्रवृत्ति विशेष हो गई है, वह संकुचित कर दी जाय। नाम इनका भट्टारक ही रक्खा जाय और लोग इन्हें अपने गृहीगुरु समझें। इस पदकी दीक्षा उसीको दी जाय, जो विद्वान् हो, जिसे ससारसे विरक्ति होगई हो और जो भुक्तभोगी हो। अविवाहित और अनुभवहीन बालक तथा युवा इस जोखिमके पदके लिये नहीं मूडे जावें।

इस परिवर्तनका हमको विश्वास है कि कट्टर तेरहपंथी और भोले बीसपथी दोनोंही अनुमोदन करेंगे। वल्कि यह मार्ग चल गया, तो बीसपथ और तेरहपथमें जो वैमनस्य बढ़ गया है, वह कम होने लगेगा और धीरे २ दोनों एक हो जावेंगे।

इस विषयमें एक शका यह हो सकती है कि, जब परिवर्तन ही करना है तब ऐसा क्यों न किया जाय कि, ये भट्टारक फिरसे दिगम्बरमुनि बना दिये जावें। परन्तु समयके झुकावको देखते हुए यह बात साध्य नहीं जान पडती। अब पूर्वके समान दिगम्बर मुनियोंका फिरसे प्रादुर्भाव होना कठिन जान पड़ता है, और यदि हुआ भी तो वे इस भट्टारकके पदको क्यों स्वीकार करेंगे। जिसे हम अपने लाभके लिये संस्कारित करना चाहते है। दूसरी शंका यह हो सकती है कि, अभी हमारे नाम मात्र दिगम्बर गुरु तो हैं, इस परिवर्तनसे उनका भी लोप हो जायगा और फिर हम निगुरा रह जावेंगे। इसका समाधान यह है कि, यदि परिग्रही पुरुषोंको ही गुरु मानना है, तो ये जो सातवीं आठवीं प्रतिमाके धारी होंगे क्या

बुरे हैं ? इन्हें गुरु माननेके लिये किसने रोका है ? और यदि प्रत्यक्षमें हमारे दुर्भाग्यसे दिगम्बर गुरु नहीं हैं तो हमारे ग्रन्थोंमें तो उनका स्वरूप लिखा है। फिर हम निगुरा कैसे ? प्रत्यक्ष किन्तु अपकृष्ट आदर्शकी अपेक्षा तो परोक्ष किन्तु सच्चा आदर्श कई गुणा अच्छा है। उस परोक्षसे भी हम अपना बहुत कुछ उपकार कर सकते हैं। तीसरी शंका यह है कि, भट्टारकोंके इस परिवर्तित स्वरूपका पहिले जैसा प्रभाव नहीं पड़ेगा, परन्तु यह भ्रम है। जिन्होंने ऐलक पन्नालालजीकी प्रभावना देखी है, उनके चित्तमें यह शका कभी स्थान नहीं पा सकती। जो लोग भट्टारकोंके परिवर्तित स्वरूपको धारण करेंगे, यदि उनका चरित्र निर्मल, शास्त्रोक्त होगा और उनमें पाडित्य तथा परोपकारदक्षता होगी तो निश्चय समझिये कि, उनका वर्तमान भट्टारकोंसे कई गुणा प्रभाव पडेगा और सब लोग उनके आगे मस्तक झुकावेंगे।

स्वरूप परिवर्तनसे लाभ।

१. सस्कारित भट्टारकोंके प्रयत्नसे जितने पट्टस्थान है, वे सब जैनियोंके विद्यापीठ वन जावेंगे, जितने पट्ट है प्राय उन सबके अधिकारमें बडे २ प्राचीन पुस्तकालय है, वे सब पुस्तकालय व्यवस्थित प्रबन्धयुक्त होकर जैनियोंका अपार उपकार करेंगे। प्रत्येक पट्टके आधीन लाखोंका धन है और हजारों रुपयोंकी आमदनी होती है। यदि उद्योग किया जायगा और सस्कारित भट्टारक चाहेंगे तो वे उसके द्वारा प्रत्येक पट्टस्थानपर विद्यालय और ब्रह्मचर्याश्रमादि स्थापित करके विद्याका आशातीत प्रचार कर सकेंगे।

२. गुजरात वागड़ आदि प्रान्तोंमें भेषीभट्टारकोंने अपनी स्वार्थसाधनाके लिये घोर अंधकार फैला रक्खा है, इन पट्टोंके सस्कार

होनेसे वहां ज्ञानका प्रकाश फैलेगा और धर्मकी जागृति हो कर वहां वर्तमान समयके अनुरूप अनेक सस्थाओंका बीजारोपण हो जायगा।

३. उत्तर हिन्दुस्थानके कई एक प्राचीन पट्ट जो अनुपयोगी समझ कर उठा दिये गये हैं अथवा खाली पड़े है, वे भर जावेंगे और उनके द्वारा उक्त प्रान्तोंमें धर्मोपदेश आदि होने लगेंगे।

४. तेरहपंथ और बीसपथका खिंचाव इन विद्वान् भट्टारकोंके शास्त्रोक्त उपदेशोंसे तथा निष्पक्ष प्रयत्नोंसे कम हो जायगा और दोनों पंथके लोग एक होकर धर्म सम्बन्धी कार्य करने लगेंगे।

५. वर्तमानकी सभा सुसाइटियोंको विद्यालयोंको सरस्वतीभंडारोंको, अनाथालयोंको, गरज यह कि सबही उपयोगी सस्थाओंको इनके प्रयत्नसे सब प्रकारकी सहायता मिलने लगेगी।

६. वर्तमानके भट्टारक लोग जो बहुतसे भोले भाइयोंपर बेतरह अन्याय कर रहे है, मनमाना मार्ग चला रहे है, मनमाने अत्याचार करते है, उनसे समाजका पिंड छूट जायगा और लोगोंको आर्थिक हानि उठानी पड़ती है वह नहीं उठानी पड़ेगी।

उपसंहार।

आशा है कि, हमारे पाठकोंने इस लेखको आद्योपान्त पढ़ा होगा। जिन्होंने न पढ़ा हो उनसे प्रार्थना है कि, एकवार पिछले सब अंक एकत्र करके अवश्य पढ़ें, और इस विषयमें अपनी सम्मति निश्चित करके सर्वसाधारणमें प्रकाशित करें, यदि इस लेखमें कोई विचार अनुचित प्रगट किया गया हो तो उसका सप्रमाण खंडन लिखें, नहीं तो अनुमोदन करके इस उपयोगी प्रस्तावका अनुमोदन करें।

सुना है कि, ईडरका भट्टारकपट्ट जो कि बहुत समयसे खाली है, शीघ्रही भरा जानेवाला है। ईडरके पंच सज्जन उसके भरनेके लिये यहां तक व्याकुल हैं कि, यदि कोई सुयोग्य पुरुष न मिले तो किसी मूर्खानन्दको ही गद्दी नशीन कर देंगे। इसी प्रकारसे मलखेडकी और अन्य एक स्थानकी गद्दीके भरे जानेके लिये भी यत्न हो रहा है। क्या ही अच्छा हो, यदि इस समय यह स्वरूप परिवर्तनका प्रस्ताव सर्वानुमोदित हो जाय और समाजके मुखिया इन खाली पट्टोंको नवीन प्रकारके भट्टारकों द्वाराही अलङ्कृत करके जैनधर्मका हितसाधन करें। एवमस्तु।

जैनहितैषीके विषयमें सहयोगियोंकी सम्मतियां।

हितवार्त्ता, कलकत्ता (भाग ८, सख्या ४४)—जैनहितैषीमें विचारपूर्ण गहन लेखोंके सिवाय किस्से कहानियों और कविताओंकी सहायतासे भी जैनधर्मके तत्त्व समझाये जाते है। भाषा सरल और सरस होती है।

लक्ष्मी, गया (भाग ८, सख्या १०)—इस पत्रके लेख जैनियोंके लिये विशेष हितकारी होते है। कुछ लेख सर्वसाधारणके पढ़ने योग्य भी होते है। जैन महात्माओंके जीवनचरित्र बहुत विचारपूर्ण रीतिसे लिखे जाते है। प्राकृतिक विषयोंपर कविताएं भी बहुत अच्छी निकलती हैं। जैनधर्मावलम्बी सज्जनोंको इस पत्रको अवश्य अपना देना चाहिये।

बिहारबन्धु, बांकीपूर (भाग ४, अक २२)—यद्यपि जैनहितैषी सातवर्षोंसे प्रकाशित होता है तथापि गत वर्षसे इसने बहुतही

उन्नति की है । इसमें जो लेख प्रकाशित होते हैं, वे केवल जैनियोंके लिये ही नहीं वल्कि अन्य धर्मावलम्बियोंके लिये भी शिक्षाप्रद और कामके होते है ।

भारतमित्र, कलकत्ता (भाग ३४, सख्या २४)—जैनहितैषीकी चैत्रकी संख्यामें कई लेख सुलिखित और सुपाठ्य है । 'बुड्ढेका विवाह' नामकी कविता समयानुकूल हो रही है । विवाहलोलुप वृद्धोंके पढ़ने योग्य है ।

शिक्षा, आरा (खंड १४, सख्या ११)—जैनहितैषी नाम होनेपर भी यह सबके हितकी बातें लिखता है। इस अकमें 'शिष्य-की परीक्षा' शीर्षक लेख वडे कामका है ।

सरस्वती, प्रयाग (सितम्बर १९११)—जैनहितैषीमें जैन धर्मावलम्बियोंके सिवाय अन्य लोगोंके लिये भी हितकर लेख रहते है । कभी २ इसमें ऐतिहासिक लेख बहुत अच्छे निकलते है ।

सनाढ्योपकारक, आगरा (भाग १८, अंक ४–५)—जैन-हितैषीमें जैनमतके अनुसार अच्छे २ लेख रहते है। टाइप भी अति उत्तम है । जैनी महाशय प्रेमीजीसे भलीभाति परिचित होंगे । जैसे आप योग्य है, वैसे आपके लेख भी अच्छे होते है । जैन महाशयोंके सिवाय और महानुभावोंके लेख भी इसमें होते है ।

अभ्युदय, प्रयाग (भाग ५, अंक ४०)—राष्ट्रधर्म और वर्ण-व्यवस्था शीर्षक लेखका कथन यद्यपि बहुत थोड़े मनुष्य करेंगे, फिर भी कुल लेखके सुपाठ्य होनेमें कुछ सन्देह नहीं । शिष्यकी परीक्षा शीर्षक लेख अत्युत्तम तथा मनन योग्य है ।

साधु, वड़ौदा (पंचम भाग, अक १२)—जैनहितैषीके प्रथमा-कमें आरोग्यतावाला लेख अच्छा है। बुड्ढेका व्याह गृहस्थमात्रके पढने

योग्य है। 'खुली चिट्ठी' मनन करने योग्य है। दूसरे अंकमें अन्योक्तिपचक और जिनसेन गुणभद्राचार्यका अपूर्ण लेख बहुत बढ़िया है। विद्या और बड़प्पन भी उत्तम लेखोंमें है। तीसरे अकमें गाधी वीरचद B A का व्याख्यान आध्यात्मिक आख्यायिकाए काल इत्यादि लेख बढ़िया है और सपादकीय विचार श्रेष्ठ है।

मारवाड़ी, नागपुर (वर्ष ३, अक २९)—जैनहितैषी अपने ग्राहकोंसे अनुरागके साथ खरीदा जायगा। मीर कविका "बुड्ढेका ब्याह" अच्छा लिखा गया है। 'अन्योक्तिपचक' भी उत्तम है। 'खुली चिट्ठी' भी बड़े मौकेकी और सारगर्भित है। पत्रकी भाषा खरी है।

मारवाड़ी, कलकत्ता (भाग २, अक ३३) जैनहितैषीके ७ वें भागका छठा अंक हमारे साम्हने है। इसमें छोटे बड़े कुल ६ लेख है। लेख प्राय सभी अच्छे है। कई लेख ऐसे हैं, जो जैनियोंके सिवाय अन्यान्य लोगोंके लिये भी लाभदायक हैं। 'बुड्ढेका ब्याह' शीर्षक कविता अत्युत्तम है।

नागरी प्रचारक, लखनौ (भाग ९, अक ९)—यह मासिकपत्र जैनियोंके उपकारार्थ प्रकाशित होता है। जैनधर्मसम्बन्धी विषयोंकी इसमें आलोचना होती है और साधारण पाठकोंके ज्ञातव्य विषयोंका भी इसमें अभाव नहीं होता है। जैनधर्मका मूलतत्त्व जाननेके अर्थ इस पत्रका पाठ करना उचित है। इसके लेख बड़े सुपाठ्य है। इसकी गणना नागरीके उच्च कोटिके सामायिक पत्रोंमे है। इस पत्रकी भाषा गंभीर भावपूर्ण और विशुद्ध नागरी है। जैनसमाजमें जिनसेनाचार्यका नाम बहुत प्रसिद्ध है। हेमाचार्यके

समान जिनसेन भी बहुत ग्रन्थोंकी रचना कर गये है। विद्वानोंके अनुसंधानसे जिनसेनाचार्यका समय ख्रिष्टकी अष्टम शताब्दीका शेष और नवम शताब्दिका प्रारंभ निश्चित किया गया है और उनके रचित आदिपुराण और पार्श्वकाव्य बहुत प्रचलित है। जिन-सेनाचार्य्यकी जीवनी इस पत्रमें बड़े अनुसधानके साथ प्रकाशित हो रही है, जिसके लिये प्रकाशकको धन्यवाद देना चाहिये। साधारण रूपसे जिनसेन आचार्य जैनहरिवशके भी निर्माता प्रख्यात थे, पर प्रबन्ध लेखकने बहुत अनुसंधान करके यह प्रमाणित कर दिया है कि हरिवंशका ग्रन्थकार जिनसेन नामक कोई दूसरा हो गया है। जैनग्रन्थोंके अधिक आविष्कार होनेसे और प्राचीन जैनविद्वानोंकी जीवनी प्रकाशित होनेसे भारतके लुप्त इति-हासका भी पता लग सकता है जैनग्रन्थोंके और जैनमतके प्रका-शक सब सज्जन भारत इतिहासके प्रधान सहायक है। इस निमित्त जैनहितैषीको हम भारतहितैषी मानते है और इसके प्रकाशकको धन्यवाद देते है।

जैनमित्र, बम्बई (वर्ष १२, अक १७)—जैनहितैषीका सम्पादन जबसे प्रेमीजीके हस्तगत हुआ है, तबसे इस पत्रके लेख जैनसमाजके लिये बहुत ही उपयोगी हो गये है। जैनसमाजमें इस पत्रकी सानी कोई नहीं रखता भविष्यमें इस पत्रके द्वारा जैनसमाजको बहुतसे नवीन२ उपयोगी विषय मिलनेकी आशा है। कविवर प्रेमीजी जैनसमा-जके एक लेखकरत्न है। आपके द्वारा संपादित पत्रके लिये अधिक कृपा लिखें। प्रत्येक जैनी भाईको इस पत्रका ग्राहक होकर प्रेमीजीके लेख, विचार एवं कविताका लाभ उठाना चाहिये।

दिगम्बरजैन सूरत (वर्ष ४, अंक ८) जैनहितैषीके सम्पादक उत्साही, अनुभवी और विद्वान है, इसलिये सारे जैनसमाजमें यह

मासिकपत्र एक नमूनारूप ही है। प्रत्येक जैनीको इसका ग्राहक होना चाहिये।

जैनगजट, जलेसर—ता. २८ मई, ५पूल (सन् १९११ अंक २९–३०) हमारे समाजमें जैनसमाचारपत्र आज दिन कितनेही निकल रहे हैं, कोई मासिक है, कोई पाक्षिक है, और कोई साप्ताहिक भी है परन्तु जैसी शान जैनहितैषीकी ब रही है वैसी कदाचित् दूसरेकी न होगी। यह पत्र हिन्दीमें कवि नाथूरामजी प्रेमी द्वारा सम्पादित होता है, और बम्बईके कर्नाटकप्रेसमें मुद्रित होता है।

यह पत्र लेखोंकी उत्तमत्तासे चित्तको आकर्षित करनेवाला है। इसके सपादक श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी हिन्दीके रसिक जैनसमाजमें क्या हिन्दूसमाजमें अपरिचित नहीं है, ये महात्मा हिन्दीके एक अच्छे लेखक और कवि हैं, इन्होंने कई पुस्तकोंका सस्कृत प्राकृत भाषाओंसे हिन्दीमें अनुवाद किया है, और कई नवीन भी रचना की है। इनके लेख जैनसमाजमें तो उत्तम श्रेणीके हैं ही किन्तु हिन्दी समाजमें भी बहुत उत्तम गिने जाते है। पहिले इन्होंने बहुत दिन-तक प्रसिद्ध पाक्षिकपत्र जैनमित्रका भी उपसम्पादन किया है। जैनमित्रकी अवस्था अब भी अच्छी है परन्तु इनके समयमें कुछ और ही बात थी। इससे आप समझ सक्ते है कि इनके द्वारा सम्पादित होनेवाले पत्रमें कितना अच्छापन होगा।

इस पत्रमें कागज स्याही टाइप बहुत अच्छे होने पर भी पत्रकी उत्तमताके प्रधान हेतु नहीं कहे जा सक्ते है। सर्वत्र लेखोंकी उत्तमतासेही पत्रकी असली शोभा बढती है, बुद्धिमान जनोंको ग्राह्य होता है। यह भी कारण इस पत्रमें न हो ऐसा नहीं है। इसके लेख सदाके लिये सगृहीत करनेलायक निकलते है। भाषाकी यो-

ग्यताका तो कहना ही क्या है हिन्दीके पत्रोंमेंसे अभीतक या तो सर-स्वतीकी लेखनी सर्वोत्तम समझी जाती है या इसकी समझनी चाहिये। इसके प्रत्येक अंकमें एक लेख जैनशास्त्रीय विषयपर ऐसा रहता है जिसका पढना क्या किन्तु वार वार मनन करना प्रत्येक जैनका कर्तव्य होना चाहिये। उसके पढ़ने और उसपर मनन करनेसे शास्त्रीय ज्ञानमें वहुत कुछ फेरफार तथा योग्यता प्राप्त हो सक्ती है। इसके वहुतसे लेख ऐसे होते है जो सर्वसामान्यकेलिये भी वहुत कुछ उपयोगी हो सकें, लेखकका उद्देश्य जान पडता है कि जैन-मतव्यके अनुकूल लिखते हुए भी हमारा पत्र, सर्व समत तथा सबको आदरणीय हो।

जैनेतर सहयोगियोंकी की हुई

निष्पक्ष समालोचना।

जैनहितैषीके गतवर्षके उपहारग्रन्थ उपमितिभवप्रपचाकथाकी निम्नलिखित समालोचनाकी है—

नागरी प्रचारक—लखनऊ मम्पादक—प **रूपनारायण पांडेय लिखते है कि—**

उपमितिभवप्रपचाकथा—प्रथम प्रस्ताव। नाथूरामप्रेमी द्वारा मूल सस्कृतसे अनुवादित। सन् १९११, पृष्ट २०४ "जैनग्रन्थरत्नाकर कार्य्यालय गिरगाव वम्बई"।

मूल ग्रन्थ सस्कृतमें है। कलकत्तेकी एशियाटिक सोसायटी नाम विद्वत्समाज-ने इस ग्रन्थका एक सस्करण प्रकाश किया है। अध्यापक पिटरसन और हर-मान जाकोवी साहवने उस ग्रन्थका सम्पादन किया है। उस ग्रन्थमें आठ प्र-स्ताव हैं, उनमेंसे प्रथम प्रस्तावका भाषानुवाद सेठ (?) नाथूराम प्रेमीने किया है और जैनहितैषिणी (?) पत्रिकाने इस अनुवादको उपहार स्वरूपमें अपने ग्राहकोंको वितरण किया है। मूल ग्रन्थ वडा मार्मिक है और जैन

सिद्धान्तोंका आकार है। जैन सिद्धान्तोंको सुगमतासे समझनेके लिये यह ग्रन्थ वडा सहायक है। जैनोंको इस ग्रन्थका स्वाध्याय करना अवश्यही कर्तव्य है। साधारण पाठक भी इस ग्रन्थका पाठ करके बहुत लाभ उठा सकते हैं। ग्रन्थकर्त्ता का नाम सिद्धर्षि है। खृ की नवम शताब्दिमें उनका समय विद्वानोंने निर्णय किया है। वौद्ध और अन्यान्य साम्प्रदायिकोंके ग्रन्थोंको उन्होंने वडे यत्नसे अध्ययन किया था, पर उनकी दीक्षा श्वेताम्बर मतके अनुसार हुई थी। इस अपूर्व ग्रन्थसे ग्रन्थकारके समयकी सामाजिक अवस्थाका आभास मिलता है। उस समयमें भिन्न धर्म्मावलम्बियोंको जैन लोग प्रीतिकी दृष्टिसे नहीं देखते थे, उनके प्रति असाधुवचनोंका प्रयोग भी करते थे। इस ग्रन्थकारने भी वर्णाश्रमी विद्वानोंको "दुर्विदग्ध" शव्दसे स्मरण किया है, उस समयमें सस्कृत और प्राकृत दोनों भाषायें प्रचलित थीं। पर वर्णाश्रमी विद्वान लोग संस्कृतमें व्युत्पन्न होते थे और प्राकृत साधारण प्रजाकी भाषा थी। सस्कृतज्ञ विद्वान लोग उस भाषाको नहीं समझते थे ओर उनका अनुराग उस भाषापर नहीं था इस निमित्त ग्रन्थकारने अपना ग्रन्थ सस्कृतमें ही रचा है। ग्रन्थकर्त्ताने सासारिकजीवोंकी अवस्थाको रूपक कथाके द्वारा वडे प्रभावसे वर्णन किया है। सद्गुरु की प्राप्तिसे जीव अपने कर्म्मजन्य दोषोंसे मुक्त हो कर किस प्रकार परमपदको प्राप्त हो सकता है—इसकी एक चित्तग्राही रूपक कथा इस ग्रन्थमें है और ग्रन्थ कर्त्ताने प्रस्तावके अन्तमें कथामें उल्लिखित सव पात्रोंका विश्लेषण करके आन्तरिक वृत्तियोंसे उनकी साम्यता दिखाकर पाठकोंके चित्तको मुग्ध किया है और ग्रन्थ पाठ करते समय जितनी शकायें उत्थित होती हैं उनको दूर किया है। इस प्रकारके सुपाठय ग्रथ वहुत कम देख पडते हैं। इसका अनुवाद भी वहुत अच्छा हुआ है। ग्रन्थकर्त्ताके भावको अनुवादकने वडी कुशलतासे प्रकाश किया है। हमने कई स्थानपर ग्रन्थसे मिलाकर अनुवादको पाठ किया है जिससे अनुवादककी कार्यदक्षत्ताका परिज्ञान हुआ है। इस ग्रन्थमें समुद्रयात्रा, जहाजका फटना, टूटना जलमें डूवना आदि विषयोंके उल्लेख होनेसे उस समयमें समुद्र-यात्राका प्रवन्ध इस देशमें प्रचलित था—ऐसा जान पडता है। उस समयमें कौन २ से दार्शनिक और पौराणिक मत भारतमें प्रचलित थे उनका सक्षिप्त सिद्धान्त कुविकल्पके नामसे इस ग्रन्थमें वताया गया है। "यह ससार एक अडेमेंसे उत्पन्न है (स्मार्तमत) अथवा ईश्वरका वनाया हुआ है (नैयायिक) अथवा व्रह्मा विष्णु आदिने इसे वनाया है (पौराणिक)

अथवा यह एक प्रकृतिका विकार है (साख्य) अथवा क्षण क्षणमें क्षय होनेवाला है (बौद्ध) अथवा रूप, वेदना, विज्ञान, सज्ञा और सस्कार पाच स्कन्धात्मक जीव, पाच भूतोंसे उत्पन्न हुआ है अथवा विज्ञान मात्र है (बौद्ध) अथवा यह जो कुछ है सो सब शून्य रूप है (माध्यमिक मत) अथवा कर्म कोई पदार्थ ही नहीं है (चार्वाक्) अथवा यह सब जगत् महादेवके अशसे नाना रूपका होता रहता है (पाशुपत दर्शन)"—इस वर्णनसे यह अनुभव होता है कि उस समयमें बौद्ध दर्शनोंका अधिक प्रभाव था—वेदान्त दर्शन वा उपनिषदका उस समय गौरव नहीं हुआ था। कारण उनका नाम ग्रन्थकारने नहीं लिखा है। इन दर्शनोंका उल्लेख करनेसे यह भी स्पष्ट हो गया कि ग्रन्थकारका सिद्धान्त इन दर्शनोंसे भिन्न है। ससार अनादिकालसे है, इसका बनानेवाला कोई ईस्वर नहीं है, सद्गुरुके उपदेशसे मलीन वासनाओंके दूर होनेसे जीव उच्च अवस्थाको पहुच सकता है और जैन शास्त्रोंमें उन उपदेशोंका सग्रह है—यह ग्रन्थकारका आशय पाया जाता है। प्रत्येक मनुष्यको अपने धर्मकी प्रशसा करनेका अधिकार है और अपने धर्म सिद्धान्तोंकी प्रशसा करते हुए धर्मान्तरके विषयमें यदि कोई विरुद्ध युक्ति वा कल्पनाकी अवतारण कीजाय तो उस नि[illegible] वह प्रस्तोता कटाक्षका पात्र नहीं होता है। कारण उसका विरोध द्वेषात्मक नहीं है, अपने धर्म मार्गमें आरूढ होनेके कारण अन्य धर्म उसको भ्रम सकुल जान पडते हैं। ग्रन्थकर्त्ताने सनातन धर्मियोंको कुविकल्पी समझा है, पर ग्रन्थकर्त्ता पाठकोंके विराग भाजन नहीं हो सकते हैं, क्योंकि उन्होंने अपने विश्वासके अनुरूप यदि दूसरे मतावलम्बियोंको विधर्म्मी कहा तो उस वचनको दोष दृष्टिसे नहीं देखना चाहिये। इसी प्रकारसे चीन देशीय बौद्ध यात्रियोंने भी सनातन धर्म्मियोंको विधर्म्मी लिखा है। इस प्रकारके शब्दोंको सुननेसे जिन वर्णाश्रमियोंके चित्तमें विकार उत्पन्न न होता हो उनको इस अनुवादके पढनेसे बहुत आनन्द प्राप्त होगा और जैनशास्त्रके सिद्धान्तोंसे अनायास परिज्ञान लाभ होगा। हम अनुवादकको बहुत धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि वह सम्पूर्ण ग्रन्थका अनुवाद करके साहित्यका उपकार साधन करेंगे, और जैन लोग इस अमूल्य ग्रन्थके अनुवादको जी लगाके पढकर अनुवादकको उत्साह प्रदान करेंगे। ग्रन्थका छापा और कागज अच्छा है और भाषा भी सरल है, इस प्रकारके ग्रन्थ पाठ करनेमें सबको प्रीति होती है।

(नागरी प्रचारक सितम्बर १९११)

महावीरप्रशादजी द्विवेदी उपमितिभवप्रपचाकथा—विक्रमके दशवें शतकमें गुजरातके श्रीमालनामक नगरमें वर्मलाभ नामका एक राजा था। उसके मन्त्री सुप्रभदेवके दो पुत्र थे—दत्त और शुभकर। दत्तके पुत्र माघकविने शिशुपालवध नामक महाकाव्य बनाया और शुभङ्करके पुत्र सिद्धर्षिने उपमितिभवप्रपचाकथा और भी कई ग्रंथ सिद्धर्षिने बनाये। यह कथा सस्कृतमे है, इसमें १६ हजार श्लोक है। वे आठ प्रकरणोंमें विभक्त हैं। इनमें कथाओंके बहाने सांसारिक प्रपञ्चोंकी उपमिति दिखाई गई है। जैन धर्मके गूढसे गूढ सिद्धान्तोंका सरल भाषामें कहानियोंके द्वारा बडी ही योग्यतासे प्रतिपादन किया गया है। इसी पुस्तकके पहले प्रस्तावका यह हिन्दी अनुवाद है। अनुवादकर्ता है—श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी यह दो सौसे अधिक पृष्ठोंकी सुन्दरता पूर्वक छपी हुई पुस्तक बम्बईके जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, गिरगावसे मिलती है। यह कार्यालय जैनधर्म सम्बन्धी अच्छी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित करके अपने धर्मकी उन्नति और हिन्दी साहित्य भाण्डारकी पूर्तिकर रहा है॥ जैनातिरिक्त जनोंको भी इस पुस्तकको देखनेसे लाभ हो सक्ता है और जैन धर्म विषयक बहुतसी बातें मालूम हो सकती है पुस्तककी भाषा बोधगम्य और प्राञ्जल है। (सरस्वती नवम्बर सन १९११)

विद्वद्रत्नमाला।

(१०)

भगवज्जिनसेन और गुणभद्राचार्य।

समकालीन राजाओंका परिचय।

अमोघवर्ष—जिनसेन और गुणभद्रस्वामीके समयमें जितने राजा होगये है, उन सबमें महाराजा अमोघवर्ष जैनधर्मके परम श्रद्धालु सहायक और उन्नायक समझे जाते है। जिनसेनस्वामीके ये परम भक्त थे, जैसा कि, गुणभद्रस्वामीने लिखा है—

> यस्य प्रांशुनखांशुजालविसरद्धारान्तराविर्भव-
> त्पादाम्भोजरजःपिशङ्गमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युतिः।

संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपतिः पूतोऽहमद्येत्यलं
स श्रीमान् जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मङ्गलम् ॥८॥

इसका अभिप्राय यह है कि, महाराजा अमोघवर्ष जिनसेन-स्वामीके चरणकमलोंमें मस्तकको रखकर आपको पवित्र मानते थे और उनका सदा स्मरण किया करते थे। अमोघवर्षकी बनाई हुई [1]प्रश्नोत्तररत्नमाला नामकी एक छोटीसी पुस्तक है। उसके अन्तमें जो निम्न लिखित श्लोक है, उससे मालूम होता है कि, उन्होंने—विवेकपूर्वक यह समझकर कि संसार सारहीन है, राज्यका त्याग कर दिया था।

विवेकात्त्यक्तराज्येन राज्ञेय रत्नमालिका।
रचितामोघवर्षेण सुधियां सदलङ्कृतिः॥

इस पुस्तकके प्रारभमें जो निम्न लिखित श्लोक है—

प्रणिपत्य वर्धमानं प्रश्नोत्तररत्नमालिकां वक्ष्ये।
नागनरामरवन्द्यं देवं देवाधिपं वीरम्॥

इससे यह भी शका नहीं रहती कि, उन्होंने किस धर्मके विवेकसे राज्यका त्याग किया था। इससे स्पष्टत मालूम होता है कि, वे महावीर भगवानके अनुयायी थे और उनके सच्चे उपदेशने उनके चित्तपर इतना प्रभाव डाला था कि, वे संसारके झगडोंसे मुक्त हो कर धर्मका सेवन करने लगे थे।

---

१ प्रश्नोत्तररत्नमालाको अभी तक श्वेताम्बरी भाई विमलदास कविकी बनाई हुई, और वैष्णव शकराचार्यकी बनाई हुई कहते थे, परन्तु ईसाकी ग्यारहवीं सदीमें इसका जो तिब्बती भाषामें अनुवाद हुआ था, उसके प्राप्त होनेसे अब यह बात निश्चित हो गई है कि, यह राष्ट्रकूटवशी अमोघवर्षकी ही बनाई हुई है उक्त तिब्बती अनुवादमें स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि, इसे अमोघवर्ष प्रथमने सस्कृतमें बनाई थी।

प्राचीन लेखों और पुस्तकोंमें अमोघवर्षका उल्लेख तीन नामोंसे मिलता है—अमोघवर्ष, नृपतुंगदेव और शर्वदेव। अपनी उदारता, दानशीलता और न्यायपरायणतासे अमोघवर्षने अपने अमोघवर्ष[१] नामको इतना प्रसिद्ध किया कि, पीछेसे यह एक प्रकारकी पदवी समझी जाने लगी और उसे राठौरवंशके तीन चार राजाओंने तथा परमारवंशीय महाराज मुंजने भी अपनी प्रतिष्ठाका कारण समझकर धारण की। इन पिछले तीन चार अमोघवर्षोंके कारण इतिहासमें ये अमोघवर्ष प्रथमअमोघवर्षके नामसे उल्लिखित होते हैं।

अमोघवर्ष राष्ट्रकूट वा राठौरवंशके राजा थे। राष्ट्रकूटवंशीय राजा तृतीय कृष्ण, ध्रुवराज, कर्कराज, द्वितीय कर्कराज, और द्वितीय प्रभूतवर्ष आदिके दानपत्रों तथा शिलालेखोंसे इनके पूर्व राजाओं-की परम्पराका पता इस प्रकार लगता है—१ गोविन्दराज, २ कक्कराज (पहिलेका पुत्र), ३ इन्द्रराज (पुत्र), ४ दन्तिदुर्ग अपर नाम वल्लभराज (पुत्र), ५ कृष्णराज अपर नाम शुभतुंग (चाचा, कक्क-राजका द्वितीय पुत्र), ६ गोविन्दराज द्वितीय, अपर नाम वल्लभराज (पुत्र), ७ ध्रुवराज अपर नाम निरुपम (छोटा भाई) ८ जगत्तुङ्ग अपर नाम गोविन्दराज तृतीय वा प्रभूतवर्ष और इनके पुत्र ९ अमोघ-वर्ष प्रथम। अमोघवर्षने शक संवत् ७३७ से ८०० तक राज्य किया है। उस समय राष्ट्रकूटोंका राज्य सारे महाराष्ट्र और कर्नाटक प्रान्तमें फैला हुआ था। सिवा इसके राठौर राजा दन्तिदुर्गने सोलंकी राजा कीर्तिवर्मा (द्वितीय) का महाराज्य छीन लिया था, वह तथा

---

१ अर्थिषु यथार्थतां य समभीष्टफलाप्तिलब्धतोषेषु।
वृद्धिं निनाय परमाममोघवर्षाभिधानस्य॥
(ध्रुवराजका दानपत्र इंडियन एटिक्वेरी १२-१८१)

गुजरातमें जो सोलंकी (चालुक्य) राज्यका शाखाराज्य स्थापित हुआ था, वह भी राठौरोंके हाथमें आ गया था। इस तरह ये दोनों राज्य भी राठौर राज्यके अन्तर्गत हो गये थे और दन्तिदुर्गसे लेकर खोट्टिगदेवके राज्यकाल तक (शक संवत् ८९४ तक) राठौर वंशके ही अधिकारमें रहे थे। शक संवत् ८९४ में मालवाके परमारराजा श्रीहर्षने राठौरोंपर विजय प्राप्तकी थी, और मान्यखेट नगरीको लूटी थी और उसी समय खोट्टिगदेवका देहान्त हुआ था। खोट्टिगदेव अमोघवर्ष प्रथमके [1]प्रपौत्रका पुत्र था। इसीके समय राठौरोंकी राज्यलक्ष्मी प्रभाहीन हुई।

अमोघवर्ष प्रथमके समय राष्ट्रकूटवंशकी स्वतंत्र राज्यलक्ष्मी उन्नतिके शिखरपर विराजमान थी, और अन्य राजाओंकी लक्ष्मीका परिहास करती थी। निम्नलिखित श्लोकोंसे मालूम होता है कि, अमोघवर्ष बड़े भारी प्रतापी वीर थे, वली थे, सोलंकी राजाओंके लिये वे प्रलयकालकी अग्निके समान थे, अन्य शत्रुओंकी स्त्रियोंको वैधव्यकी दीक्षा देनेवाले थे, उनकी सेना इतनी अधिक थी कि, उसके भारसे शेषनाग दबा जाता था। उन्होंने वेंगीमें किसी चालुक्यराजाको मारकरके उसके अपूर्व सुस्वादु खाद्यसे यमराजको सन्तुष्ट किया था। शत्रुओंको उनके मारे कहीं भी ठहरनेका अवकाश नहीं मिलता था, उनका निर्मल यश सब ओर फैल रहा था, और उनकी राजधानीका नगर मान्यखेट इतना विशाल और सुन्दर था कि, उसके साम्हने इन्द्रपुरीकी हँसी होती थी। मानों उन्होंने उसे

१ अमोघवर्षका पुत्र अकालवर्ष उसका जगतुंग (दूसरा) और उसका अमोघवर्ष द्वितीय। इस अमोघवर्षके तीन पुत्र थे—१ कृष्ण, २ निरुपम और ३ खोट्टिगदेव।

देवोंके गर्वको खर्व करनेके लिये अपनी राजधानीका स्थान बनाया था—

तस्य श्रीमदमोघवर्पनृपतेश्चालुक्यकालानलः
सूनुर्भूपतिरूर्जिताहितवधूवैधव्यदीक्षागुरुः।
आसीदिन्द्रपुराधिकं पुरमिदं श्रीमान्यखेटाभिधं
येनेद च सरः कृतं गुरुकरुप्रासादमन्तःपुरम् ॥

(इडियन् आण्टिक्वेरी १२।२६४-६७)

तत्सूनुरानतनृपो नृपतुङ्गदेवः
सोऽभूत् स्वसैन्यभरभङ्गरिताहिराजः।
यो मान्यखेटममरेन्द्रपुरोपहासि
गीर्वाणगर्वमिव खर्वयितुं व्यधत्त ॥

(एपिग्राफिआ इण्डिका ५।१९२-९६)

तस्माच्चामोघवर्षोऽभवदतुलबलो येन कोपादपूर्वं
श्चालुक्याभ्यूपखाद्यैर्जनितरतियमः प्रीणितोविङ्गवल्ल्याम्
वैरिश्चाण्डोदरान्तर्बहिरुपरितले यश लब्धावकाशं
तोयव्याजाद्विशुद्धं यश इव निहितं तज्जगतुङ्गसिन्धोः ॥
चतुर्थ गोविन्दराजका दानपत्र।

(इडियन आटिक्वेरी १२।२४९-५२)

अमोघवर्पके एक शिलालेखमें लिखा है—“ वङ्गाङ्गमगधमालवर्वेगीशैरर्चितो ” (इडियन एण्टिक्वेरी जि० १२ पृष्ठ २१८) जिससे मालूम होता है कि, वग अग मगध, मालव और वेंगीके राजा उनकी सेवा करते थे। अर्थात् अपने समयके वे एक महान् सम्राट थे।

अमोघवर्प जैसे वीर तथा उदार थे, उसी प्रकारसे विद्वान् भी थे। उन्होंने सस्कृत और कानड़ी भाषामें अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है, जिनमेंसे एक प्रश्नोत्तररत्नमालाका उल्लेख तो ऊपर हो चुका

है—जो छप चुकी है, दुसरा प्राप्य ग्रन्थ कवि—राजमार्ग है। यह अलंकारका ग्रन्थ है, और कानड़ी भाषाके उत्कृष्ट ग्रन्थोंमें गिना जाता है। इनके सिवाय और भी कई ग्रन्थ अमोघवर्षके सुने जाते हैं, परन्तु वे अप्राप्य है।

इतिहासज्ञोंने अमोघवर्षका राज्यकाल शक संवत् ७३६ से ७९९ तक निश्चय किया है। जिनसेनस्वामीका स्वर्गवास शक संवत् ७६९ के लगभग निश्चित किया जाचुका है। इससे समझना चाहिये कि, जिनसेनके शरीरत्यागके समय अमोघवर्ष महाराज राज्यही करते थे। राज्यका त्याग उन्होंने शक संवत् ८०० में किया है जब कि आचार्यपदपर गुणभद्रस्वामी विराजमान थे। यह बात अभी विवादापन्न ही है कि अमोघवर्षने राज्यको छोड़कर मुनिदीक्षा लेली थी, या केवल उदासीनता धारण करके श्रावककी कोई उत्कृष्ट प्रतिमाका चरित्र ग्रहणकर लिया था। हमारी समझमें यदि उन्होंने मुनिदीक्षा ली होती, तो प्रश्नोत्तररत्नमालामें वे अपना नाम 'अमोघवर्ष न लिखकर मुनि अवस्थामें धारण किया हुआ नाम लिखते। इसके सिवाय राज्यका त्याग करनेके समय उनकी अवस्था लगभग ८० वर्षकी थी, इसलिये भी उनका कठिन मुनिलिंग धारण करना संभव प्रतीत नहीं होता है।

अकालवर्ष—अमोघवर्षके पश्चात् उनका पुत्र अकालवर्ष जिसको कि 'द्वितीयकृष्ण' भी कहते हैं, सार्वभौम सम्राट हुआ था, जैसा कि द्वितीय कर्कराजके दानपत्रमें अमोघवर्षका वर्णन करनेके पश्चात् लिखा है:—

तस्मादकालवर्षोऽभूत्सार्वभौमक्षितीश्वरः।
यत्प्रतापपरित्रस्तो व्योम्नि चन्द्रायते रविः॥

परन्तु अकालवर्षका राज्यकाल शक ८११–८३३ तक निश्चित किया गया है। इससे मालूम होता है कि, अमोघवर्ष और अकालवर्षके वीचमें १०–११ वर्ष तक किसी दूसरे राजाने राज्य किया है और वह बहुत करके अमोघवर्षका पितृव्य (काका) इन्द्रराज[1] था, जैसा कि ध्रुवराजके दानपत्रके निम्नलिखित श्लोकसे विदित होता है—

राजाभूत्तत्पितृव्यो रिपुभवविभवोद्भूत्यभावैकहेतु-
र्लक्ष्मीवानिन्द्रराजो गुणिनृपनिकरान्तश्चमत्कारकारी।
रागादन्यान्व्युदस्य प्रकटितविषया यं नृपान्सेवमाना
राज्यश्रीरेव चक्रे सकलकविजनोद्गीततथ्यस्वभावम् ॥

शायद अमोघवर्षके राज्य त्याग करनेके समय अकालवर्ष वालक था, इस कारण राज्यका कार्य इन्द्रराज देखता होगा और इसीलिये अमोघवर्षके पश्चात् कहीं इन्द्रराजको और कहीं अकालवर्षको राजा माना है।

अकालवर्षभी अपने पिताके समान वडा भारी वीर और पराक्रमी राजा था। तृतीय कृष्णराजके दानपत्रमें जो कि वर्धा नगरके समीप एक कुएमें प्राप्त हुआ है–इसकी इस प्रकार प्रशसा लिखी है–

तस्योत्तर्जितगूर्जरो हृतहटल्लासोद्भटश्रीमदो
गौडाना विनयव्रतार्पणगुरुः सामुद्रनिद्राहरः।
द्वारस्थाङ्गकलिङ्गगाङ्गमगधैरभ्यर्चिताज्ञश्चिरं
सूनुः सूनृतवाग्भुवः परिवृढः श्रीकृष्णराजोऽभवत् ॥

इसका अभिप्राय यह है कि, उस अमोघवर्षका पुत्र श्रीकृष्णराज हुआ जिसने गुर्जर, गौड, समुद्र, अंग, कलिंग, गग, मगध

---

1 इन्द्रराजकी सन्तानने गुजरात देशमें राष्ट्रकूटवशका एक शाखाराज्य स्थापित किया था।

आदि देशोंके राजाओंको अपने वशवर्ती वा आज्ञानुवर्ती किये थे। गुणभद्रस्वामीने भी उत्तरपुराणके अन्तमें इस राजाकी बहुत प्रशंसा की है। दो श्लोक यहां उद्धृत किये जाते है—

यस्योत्तुंगमतंगजा निजमदस्रोतस्विनीसंगमा-
द्गाङ्गं वारि कलङ्कितं कटु मुहुः पीत्वाप्यगच्छत्तृषः।
कौमारं घनचन्दनं वनमपां पत्युस्तरंगानिलै-
र्मन्दान्दोलित (?) भास्करकरच्छायं समाशिश्रियन्॥ २६॥

दुग्धाब्धौ गिरिणा हरौ हतसुखागोपीकुचोद्घट्टनैः
पद्मे भानुकरैर्भिदेलिमदले वासायसंकोचने।
यस्योरः शरणे प्रथीयसि भुजस्तम्भान्तरोत्तम्भित-
स्थेये हारकलापतोरणगुणे श्रीः सौख्यमागाश्चिरम्॥ २७॥

यह नहीं कहा जा सकता है कि अमोघवर्षके समान अकाल-वर्ष भी जैनधर्मका श्रद्धालु था या नहीं। क्योंकि इस विषयका हमें अभी तक कोई उल्लेख नहीं मिला है। पर उसका सामन्त लोकादित्य जो कि वनवासदेशका राजा था और बंकापुरमें जिसकी राजधानी थी, जैनधर्मका भक्त रहा है, ऐसा जान पड़ता है। क्योंकि—

पद्मालयमुकुलकुलप्रविकासकसत्प्रतापततमहसि।
श्रीमति लोकादित्ये प्रध्वस्तप्रथितशत्रुसंतमसे॥ २९॥
चेल्लपताके चेल्लध्वजानुजे चेल्लकेतनतनूजे।
जैनेन्द्रधर्मवृद्धिविधायिनि स्वविधुवीध्रपृथुयशसि॥ ३०॥

"इत्यादि श्लोकोंमें गुणभद्रस्वामीने लोकादित्यको "जैनेन्द्र धर्म-वृद्धिविधायिनि विशेषण देकर कमसेकम इतना तो भी स्पष्ट कर दिया है कि, वह जैनधर्मका शुभचिन्तक तथा उसकी वृद्धि करने-वाला था।

जिनसेनस्वामीका जन्म समय शक सवत् ६७५ और मृत्युसमय शक स० ७७० निश्चित किया जाचुका है और उनके पश्चात् गुणभद्रस्वामी निदान शक संवत् ८२० तक जीते रहे हैं। इस बीचमें अर्थात् शक ६७५ से ८२० तकके समयमें राष्ट्रकूटवंशके चार पाच राजा राज्य कर चुके हैं। जिनमेंसे तीनका समय तो निश्चित है—[1]श्रीवल्लभ शक सवत् ७०५से ७३६ तक, अमोघवर्ष ७३६ से ७९९ तक और अकालवर्ष ८००से ८३३ तक। श्रीवल्लभसे पहिले शुभतुंग, दन्तिदुर्ग आदि राजा हुए हैं, परन्तु उनका निश्चित समय विदित नहीं है।

पूर्वके कवि वा आचार्य.

जिनसेनस्वामीने आदिपुराण वा महापुराणकी भूमिकामें जिन बहुतसे कवियों तथा आचार्योंका स्मरण किया है, यहां हम उनका उल्लेख कर देना भी ऐतिहासिक दृष्टिसे उपयोगी समझते हैं,—

१ सिद्धसेनकवि—इन्हें 'प्रवादिकरि केसरी' विशेषण दिया है, जिससे मालूम होता है कि, ये बड़े भारी नैयायिक वा तार्किक विद्वान् होंगे। कई लोगोंका अनुमान है कि, ये प्रसिद्ध श्वेताम्बर तार्किक 'सिद्धसेनदिवाकर'ही होंगे, जिन्होंने अनेक न्यायके ग्रन्थोंकी रचना की है।

२ समन्तभद्र—इनकी कवियोंके, वादियोंके, गमकोंके और वाग्मीजनोंके शिरोमणि कहकर स्तुतिकी है। गन्धहस्तिमहाभाष्य, रत्नकरड-श्रावकाचार और देवागम आदि ग्रन्थोंके कर्ता यही माने जाते हैं। न्यायशास्त्रके ये अद्वितीय विद्वान् हुए हैं।

---

1 इस राजाके समयमें हरिवंशपुराणकी रचना हुई थी।

३ श्रीदत्त—इन्हें बड़े भारी तपस्वी और वादिरूपीसिंहोंके भेदन करनेवाले बतलाये है।

४ यशोभद्र—इनके विषयमें कहा है कि, विद्वानोंकी सभामें इनका नाम सुनते ही वादियोंका गर्व गलित हो जाता था।

५ प्रभाचन्द्रकवि—जिन्होंने चन्द्रोदय (न्यायकुमुदचन्द्रोदय) करके जगतको आल्हादित किया। प्रमेयकमलमार्तंडके कर्त्ता भी येही समझे जाते है।

६ शिवकोटिमुनीश्वर—जिसके आराधनाचतुष्टय (भगवती आराधना) का आराधन करके यह संसार शीतीभूत वा शान्त हो गया।

७ जटाचार्य—काव्यका अनुचिन्तन करते समय जिनकी जटाएं चचल होकर ऐसी मालूम होती थीं, मानों अर्थका व्याख्यान कर हैं। जटाचार्यका दूसरा नाम सिंहनन्दि भी है। ऐसा आदि-पुराणकी टिप्पणीमें लिखा है।

८ काणभिक्षु—कथालकारके बनानेवाले।

९ देव—कवियोंके तीर्थंकर। बहुत करके यह आचार्य देवन-न्दिका सक्षिप्त नाम होगा।

१० भट्टाकलंक—११ श्रीपाद,–१२ पात्रकेसरी—इनके अतिशय निर्मलगुण विद्वानोंके हृदयमें हारके भावको प्राप्त होते है।

१३ वादिसिंह—कवित्व, वाग्मित्व, और गमकत्वकी सीमापर पहुंचे हुए। आश्चर्य नहीं कि, ‘ वादिसिंह ’ यह ‘ वादिभसिंहका ही नामान्तर हो जिस तरह वादिभसिंहके कवित्वको प्रगट करने-वाले गद्यचिन्तामणि और क्षत्रचूडामणि दो ग्रन्थ प्रगट हो चुके हैं, उसी प्रकारसे अपने नामानुसार तार्किकत्वको प्रगट करने वाली

उन्होंने आप्तमीमांसाकी भी कोई टीका लिखी है। जिसका उल्लेख अष्टसहस्रीकी उत्थानिकामें (श्रीमत्तावादीभसिंहनोपलालिता माप्तमीमांसा) मिलता है।

१४ वीरसेन—जिनसेनस्वामीके गुरु प्रसिद्धकवि और सिद्धान्त-ग्रन्थोंके टीकाकार।

१५ जयसेन—तपस्वी, शान्तमूर्ति, शास्त्रज्ञ, पंडिताग्रणी।

१६ कविपरमेश्वर—कवियोंद्वारा पूज्य और वागर्थसंग्रह पुराणका रचनेवाला।

समाप्त।

सत्यकी हार।

जैनहितैषीके पिछले अंकके ' सत्यकी जय ' शीर्षक लेखको मैंने विचारपूर्वक पढा। उससे मुझे ऐसा भास हुआ कि लेखकको इस बातका दृढ विश्वास है कि, सत्यको दबानेका चाहे जितना प्रयत्न किया जावे, परन्तु सत्य छुपता नहीं। आखिर सत्यकी ही जीत होती है। सत्यके प्रचारकोंको चाहे जितना कष्ट दिया जाय, उनका चाहे जितना अपमान किया जाय, परन्तु उनके पक्षकी जीत अवश्य होती है। परन्तु मेरी समझमें सर्वथा यह समझ लेना कि सत्यकी सदाही जीत होती है, ठीक नहीं है। यह एक प्रकारका भ्रम है। सत्यकी हार भी होती है। इस विषयमें प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् जॉन स्टुअर्टमिलने अपनी स्वाधीनता (लिबर्टी) नामक सर्वमान्य ग्रन्थमें बहुत अच्छा विवेचन किया है। उसे मैं यहा प्रकाशित कर देना उचित समझता हू—

"कुछ बातें ऐसी है, जो वास्तवमें है झूठ, पर देखनेमें सच मालूम होती है। उनको एकने सच कहा, दूसरेने सच कहा, तीसरेने सच कहा, इस तरह धीरे २ बहुत आदमी उन्हें सच मानने लगते है। यहां तक कि वे कुछ दिनोंमें सर्वसम्मत हो जाती है। परन्तु तजरुवेसे उनकी सचाई नहीं सिद्ध होती। यह सिद्धान्त कि सत्यका प्रचार करने वालोंको सतानेसे सत्यका लोप नहीं होता, इसी तरहका है। अर्थात् लोगोंने उसे सच मान लिया है, पर दरअसलमें है वह झूठ, द्वेष, द्रोह और विरोधके कारण सत्यका उच्छेद हो जानेके अनेक उदाहरण इतिहासमें भरे पड़े है। इन उदाहरणोंसे यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि, सत्यका प्रचार करनेवालोंको सतानेसे यदि सत्यका समूल नाश न भी हुआ, तो भी वह सैकडों वर्ष पीछे पड़ जाता है। अर्थात् वह सत्य इतना दब जाता है कि सौ सौ दो सौ वर्ष तक फिर वह सिर नहीं उठा सकता। यहापर मै सिर्फ धर्म सम्बन्धी उदाहरण देना चाहता हूं।"

"जर्मनीमें 'मार्टिन लूथर' नामका एक धार्मिक विद्वान् हो गया है। उसकी गिनती बहुत बड़े सुधारकोंमें है। रोमनकैथलिक सम्प्रदायके धर्माचार्य पोप और उसके अनुयायी धर्मोपाध्यायोंपर उसकी अश्रद्धा होगई। उसने बाइबलका अनुवाद पहलेपहल जर्मन भाषामें किया और यह सिद्धान्त निकाला कि जिस बातको अक्ल कबूल करे, उसीको सच मानना चाहिये। इस सिद्धान्तके प्रचारमें उसे कामयाबी भी हुई, परन्तु लूथरके पहिले इस सुधारके बीजका अंकुर कमसेकम बीस दफा तो ऊगा होगा, पर बीसों दफा रागद्वेषके कारण इन अंकुरोंका उच्छेद ही होता गया। लूथरके बाद भी जहां जहां द्रोह और द्वेषसे काम लिया गया और नये सिद्धान्तके

प्रचारकोंका जोर शोरसे विरोध किया गया, वहां वहा सत्यकी हार ही हुई, जीत नहीं हुई। यह एक प्रकारकी भारी भूल है, यह एक तरहकी झूठी कल्पना है कि, सच होने हीके कारण, सचमें कोई ऐसी विलक्षण शक्ति है कि सच बोलनेवालोंको या सच्चे सिद्धान्तोंको प्रचार करनेवालोंको कालकोठरीमें बन्द करने अथवा सूलीपर चढ़ा-नेसे भी सचकी जरूर ही जीत होती है। आदमी झूठके अकसर जितने अनुरागी या अभिमानी होते है उससे अधिक सचके नहीं होते; और कानूनहीको नहीं, किन्तु सामाजिक प्रतिबन्ध या दडको भी काफी तौरपर काममें लानेसे, झूठ और सच दोनोंका प्रचार बहुत करके रोक दिया जासकता है। हा सचमें एक यह विशेपता है, एक यह प्रधानता है कि कोई एक बार, दो बार, तीन बार या चाहे जितने बार उसका लोप करे, तो भी समय समयपर उसका पुनरुज्जीवन करनेवाले उसका फिरसे पता लगानेवाले बहुत करके पैदा हुआ ही करते हैं। ऐसे पुनरुज्जीवनके समय समाज और देशकी दशाको कुछ अधिक अनुकूल पाकर सच बात या सच सम्मति निर्मूल होनेसे बच जाती है। इस तरह कुछ दिनोंमें वह इतनी प्रबल हो उठती है कि, उसके विरोधी उसका लोप करनेके लिये चाहे जितना सिर उठावें तथापि वे उसका कुछ भी नहीं कर सकते। उसका प्रचार हो ही जाता है।"

इससे जो लोग सत्यके अनुयायी हैं, उन्हें केवल इस विश्वास पर कि सत्यकी सदा जीत होती है, चुप नहीं बैठे रहना चाहिये। यदि वे अपने सत्यका प्रचार करना चाहते हैं सत्य सिद्धान्तको असत्यपर विजयी देखना चाहते हैं, तो उन्हें अदम्य साहससे और अश्रान्त परिश्रमसे आन्दोलन करना चाहिये। सत्य प्रचारके जितने

साधन हैं—व्याख्यान, लेख, शास्त्रार्थ, उपदेश आदि उन सबको काममें लानेका तन मन धनसे प्रयत्न करना चाहिये और अपने विपक्षियोंके प्रयत्नोंसे द्विगुण चतुर्गुण प्रयत्न करना अपना कर्तव्य समझना चाहिये। क्योंकि डा० मिलके कथनानुसार असत्य पक्षके जितने अनुरागी वा अभिमानी होते है उतने सत्यपक्षके नहीं होते। यदि सत्यपक्षके अनुयायी यह समझकर बैठे रहेंगे कि, सत्यकी जीत अवश्य होगी, कुछ उद्योग नहीं करेंगे, तो विपक्षियोका प्रवल आन्दोलन उनके पक्षका गला घोंट डालेगा और इस तरह जव सत्यकी हार होगी, तव उस सत्यके सिरपर गतानुगतिक लोग असत्यकी पगड़ी वांध देंगें अर्थात् सत्यको असत्य ठहरा देंगे।

सत्यशोधक

विविधविषय।

जीवदयाप्रचारक सभा—फीरोजपुर (पंजाव) में इस नामकी एक सभा स्थापित हुई है। वह इस समय जीवदयाके प्रचारके लिये वहुत कुछ उद्योग कर रही है। अंग्रेजी हिन्दी उर्दू आदि भाषाओंमें छोटे २ ट्रेक्ट छपाकर और उन्हें सर्वसाधारणमें वितरण करके तथा समाचारपत्रोंमें मासभक्षण निषेधादिकके लेख प्रकाशित कराके वह खूव आन्दोलन कर रही है। इस सभाके मंत्री वावू अमोलकचन्दजी जैन उडेसरनिवासी है। जीवदयाके सच्चे अनुयायी जैनियोंको इस प्रकारकी एक नहीं सैकड़ों संस्थाएं स्थापित करके आपने मन्तव्यका प्रचार करना चाहिहे।

पदवीकी खरीद—यह वात प्रायः सवही लोग जानते हैं कि, काशीके पंडित पदवियों और व्यवस्थाओंके दूकानदार हैं। आप

जैसा रुपया खर्च कीजिये वैसीही पदवी और व्यवस्था ले लीजिये। काशीके जैनशासन द्वारा मालूम हुआ कि, एक श्वेताम्बर यति महाशय 'जैनाचार्य' की, पदवी प्राप्त करनेके लिये काशीके ब्राह्मण पंडितोंसे दर ठीक कर रहे हैं। और यति महाराजके भक्त कोई धनिक महाशय अपने गुरुको यह मूर्खोंके रिझानेवाला चमकदार हार खरीद देनेके लिये रुपयोंकी थैली देनेके लिये तयार हैं। धन्य काशीपुरी। और धन्य यतिमहाराज!!

नवीन शिक्षापद्धति—अमेरिकाके विद्वानोंने एक ऐसी शिक्षाप्रणालीका आविष्कार किया है, जिसके द्वारा वय प्राप्त होनेके पहिले ही बालक बालिकाओंकी बुद्धि आश्चर्यजनक रूपमें विकसित ही इस प्राणलीके द्वारा शिक्षा देनेसे 'लीना राईटवार्ली' नामकी एक लड़की केवल तीनवर्षकी अवस्थामें अंग्रेजी, लाटिन, ग्रीक और हिब्रू इन कई भाषाओंमें प्रार्थनापाठ करना सीख गई थी। 'विनिफ्रेड ष्टोनार' नामकी एक और लड़की तीनवर्षकी अवस्थामें कविता पाठ करने लगी थी, टाइपराइटरका काम सीखने लगी थी और कविताकी तुकें जोड़ने लगी। इस समय उक्त लड़की ९ वर्षकी है। इस अल्पवयमें ही वह पाच भाषाओंमें बातचीत करना सीख गई है। 'एडल्फ बार्ली' नामका एक लड़का इस शिक्षाप्रणालीसे १३ वर्षकी अवस्थामें प्रवेशिकोत्तीर्ण होकर 'ट्येल विश्वविद्यालय' की प्रसिद्ध तर्कसभाका मेम्बर होगया है, और राष्ट्रनीति तथा इतिहासका स्वाध्याय करता है। एक और बालक जिसकी अवस्था १४ वर्षकी है, आर्फटस कालेजसे उपाधि प्राप्त कर चुका है। बालकका नाम नोबार्ट है। इस शिक्षाप्रणालीका मुख्य सिद्धान्त यह है कि, बालकोंकी सोती हुई मानसिक शक्तियोंको कौशल पूर्वक छोटी ही उमरमें विकसित

करना चाहिये। उन्हें अपने विषयमें स्वाधीन भावसे विचार करने देनेका अभ्यास करना चाहिये और इसलिये उन्हें बराबर उत्साहित करते रहना चाहिये। हमारे देशके बालकों की बुद्धि रटा रटाकर नष्ट कर डाली जाती है और लोग उसपर निष्प्रयोजन दबाव डालकर विकासित नहीं होने देते है।

ग्रन्थवाचनका महत्व—गिबन नामक ग्रन्थकर्त्ताने अपने इतिहासमें कार्डोबाके खलीफोंका वैभव वर्णन करते हुए लिखा है कि, "**अब्दुलरहमान** नामके एक खलीफाने ५० वर्षतक राज्यैश्वर्यके अनन्त सुख भोगे थे। उसके सासारिक सुखोंका वर्णन नहीं हो सकता। उसके मरनेके बाद उसके खास सन्दूकमें एक कागज मिला था, जिसमें उसने लिखा था कि, जब मैंने हिसाब लगाया कि, मेरे राज्यैश्वर्यके ५० वर्षोंमेंसे सुखके दिन कितने गये, तब मालूम हुआ कि, जिन २ दिनोंमें मैंने विद्यामृतका पान किया था, वही सच्चे सुखके दिन थे और उनकी संख्या केवल १४ थी।" अभिप्राय यह कि, विद्याध्ययनका सुख ही सच्चा सुख है, विषयसामग्रियोंकी प्राप्ति और उनका सेवन नहीं।

हिन्दूविश्वविद्यालयका चन्दा—एक स्वतंत्र हिन्दू विश्व विद्यालयके स्थापित करनेके लिये माननीय पं० मदनमोहन मालवीय अविश्रांत परिश्रम कर रहे है। उनके उद्योगसे अबतक २६ लाख रुपयेसे उपर चन्दा हो चुका है। विश्वविद्यालयका पूरा खर्च निर्वाह करनेके लिये तीन करोड़ रुपये की जरूरत बतलाई जाती है। इस समय देशमें विद्याके लिये जैसा उत्साह प्रगट हो रहा है, उसे देखते हुए इतना चन्दा होना कोई बड़ी बात नहीं है। उद्योगीके लिये सब कुछ थोड़ा है।

प्राथमिकशिक्षा समिति—लाहोरमें हिन्दुओंकी ओरसे एक सभा स्थापित हुई है, जो उस नगरमें ३० हजार रुपया वार्षिक खर्च करके कई प्रायमरी स्कूल स्थापित करेगी जिनमें फीस न लगेगी और नीच जातिके बालकोंको भी शिक्षा देनेक लिये स्कूल खोले जावेंगे। ऐसी एक समिति बगालमें पहिलेही स्थापित हो चुकी है।

अमेरिकामें विद्यादान—हिसाब लगाया गया है कि, अमेरिकाके सर्व साधारण लोगोंने पिछले ३० वर्षोंमें ६० करोड रुपये विद्यादान किया है। वहा सब मिलाकर १३४ विश्वविद्यालय है। हमारे भारतमें केवल ५ ही हैं।

भारतमें विद्यार्थी—हमारे देशके छोटे बडे सब स्कूलों और कालेजोंमें ६२ लाख विद्यार्थी विद्याध्ययन कर रहें हैं, जिनमें ५३$\frac{3}{4}$ लाख लड़के और ८$\frac{1}{4}$ लाख लडकियां है। दूसरे देशोंसे मिलान करनेसे यह सख्या बहुत ही कम मालूम होती है, तौभी पहिलेकी अपेक्षा अब लोगोंका ध्यान विद्याध्ययन करानेकी ओर विशेष हो जाता है।

साहित्य समृद्धि—धीरे २ भारतमें पुस्तक प्रचारके साधनोंका और पुस्तकोंके प्रकाशनका कार्य बढ़ता जाता है। सन् १८७९-८०में इस देशमें केवल ५५१ छापेखाने थे, परन्तु सन् १९०९-१० में उनकी संख्या बढ़कर २१७३६ पर पहुंच गई है। समाचार पत्रोंकी तथा मासिकपत्रोंकी सख्या ६५६से १५५५ हुई है और देशीभाषाकी पुस्तकोंका प्रकाशन ४,३४६से बढकर ९,९२८ की संख्यापर पहुचा है। आगे यह कार्य बढता ही जायगा और इस वृद्धिके अनुसार देशमें ज्ञानका प्रसार बढ़ेगा।

जैनधर्मकी प्रभावना कैसे हो ?

१ जगह २ पाठशालाएं और स्कूल खोलनेसे तथा उनमें धर्मशिक्षाका प्रबन्ध करनेसे।

२ जैनग्रन्थोंको छपाकर उनका बहुत थोड़े मूल्यमें अथवा मुफ्तमें घर घर प्रचार करनेसे।

३ असमर्थ जैनबालकोंको पारितोषिक वा स्कालर्शिपें देकर पाठशालाओं स्कूलों वा कालेजोंमें पढ़ानेसे।

४ प्रत्येक नगरमें पुस्तकालय वा वाचनालय स्थापित करनेसे।

५ जैनधर्मके जानकर उपदेशक रखकर जगह जगह उपदेश दिलानेसे और हरकिसीको जैनी बनानेका उद्योग करनेसे।

६ विद्वानोंको त्यागी ब्रह्मचारी और साधु बनानेका यत्न करनेसे।

बंगालियोंमें जैनधर्मका परिचय।

यह सबही लोग जानते है कि, इस समय बंगालियोंमें शिक्षाका सबसे अधिक प्रचार है और उनमें निष्पक्ष सत्यशोधक विद्वानोंकी भी अधिकता है। परन्तु जैनधर्मका जो कि संसारका एक सर्वोत्तम धर्म है और जिसका तत्त्वज्ञान सबसे अधिक समीचीन है, बंगालियों-को बिलकुल परिचय नहीं है। क्योंकि उनकी बंगभाषामें जो कि एक बहुत ही प्रौढ भाषा है, अभीतक जैनधर्मका ज्ञान करानेवाला एक भी ग्रन्थ नहीं है। यह देखकर हमने जैनधर्मेरकिंचित् परिचय और जैनसिद्धान्तदिग्दर्शन नामकी दो पुस्तकें बंगभाषामें बना-कर तयार की हैं। इन्हें हमने कई बंगाली सज्जनोंको दिखलाई तो बहुत पसन्द की है और कहा है कि, इन्हें शीघ्रही छपाकर प्रकाशित करो तो हम लोगोंको जैनधर्मसम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करनेके लिये बहुत सुविधा हो जाय। तदनुसार हम इन दोनों पुस्तकोंको बंगाली विद्वानोंमें मुफ्त बाटनेकेलिये छपानेका प्रयत्न कर रहे हैं। पहिली पुस्तक तीन फार्मकी है, उसकी दो हजार प्रतियोंकी छपवाई १००) लगेगी और दूसरी चार फार्मकी है, उसकी दो हजारकी छपाई १९०) लगेगी। इस तरह दोनों पुस्तकोंमें २९०) खर्च पड़ेगा। यदि जैनधर्मका प्रचार चाहनेवाले केवल २९ सज्जन हमारे पास दश २ रुपया भेज देनेकी कृपा करें, तो यह शास्त्रदानका कार्य शीघ्रही हो जावे। आशा है कि, हमारे भाई इस कार्यमें अवश्यही उदारता दिखलावेंगे।

पन्नालाल बाकलीवाल,

ठि० भेलूपुरा जैनमंदिर—बनारस।

नम सिद्धेभ्य

जैनहितैषी.

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

आठवाँ भाग] पौष श्रीवीर नि० सं० २४३८ [तीसरा अंक

कर्नाटक-जैन-कवि ।

जैनहितैषीके पाठकोंने कर्नाटकी अथवा कनड़ी भाषाका नाम अवश्य सुना होगा। द्राविड़ीय भाषाओंमें यह एक श्रेष्ठ भाषा समझी जाती है। जिस तरह हिन्दी, गुजराती, मराठी, बगला आदि भाषाएं सस्कृतजन्य गिनी जाती है, उसी तरह कनड़ी भाषा नहीं गिनी जाती। बहुतसे भाषाकोविदोंके मतसे यह द्रविड़ जातिकी भाषाओंमें अन्यतम है। तामिलभाषाके समान यह भी बहुत प्राचीन भाषा है और इसका व्याकरण भी संस्कृतके समान सर्वांग-पूर्ण है। जिस समय हिन्दी, बगला, मराठी आदि भाषाओंका जन्म भी नहीं हुआ था, उस समय कनडी भाषाका साहित्य हजारों ग्रन्थरत्नोंसे परिपूर्ण हो रहा था। ईसाकी नवमी शताब्दिमें इस भाषाका फैलाव उत्तरमें गोदावरीके तीरसे लेकर दक्षिणमें कावेरी नदीतक हो रहा था। अर्थात् उस समय मध्यप्रान्त, वरार, महाराष्ट्र, उड़ीसा, निजाम, दक्षिण, मैसूर, कुर्ग, कनारा, उत्तरमलेबार

आदि अनेक प्रदेशोंमें इस भाषाका प्रसार और प्राबल्य था। यद्यपि इस समय वह बात नहीं रही है तो भी यह मैसूर, कुर्ग, निजामराज्य, मध्यप्रान्त और वरारके पश्चिमभागमें, बम्बईप्रान्तके दक्षिणी जिलोंमें और मद्रासके उत्तर पश्चिम तथा दक्षिणके अनेक जिलोंमें बोली जाती है।

कनडी भाषाको उन्नत प्रौढ़ और परिपूर्ण करनेका प्रथम श्रेय जैनाचार्यों और जैनकवियोंको दिया जाता है। यद्यपि ईसाकी दूसरी तीसरी सदीमें वनवास देशके कदंववंशीय राजाओंके दरबारमें बुद्धधर्मके उपदेशक जाया करते थे और उस समय वे कनडीभाषाका ज्ञान सम्पादन करके उसमें ग्रन्थ रचना भी करते थे—ऐसा पता लगा है, वल्कि उनके बनाये हुए कई ग्रन्थ भी उपलब्ध हुए है। तो भी यह निर्विवाद है कि, जैनियोंके हाथसे ही कनड़ी भाषाका उद्धार हुआ है और उन्हींने इस भाषाके साहित्यको एक उच्चश्रेणीकी भाषाके योग्य बनाया है। ऐसा अनु-संधान किया गया है कि, ईसाकी तेरहवीं सदी तक कनड़ी भाषामें जैनग्रन्थकारोंके सिवाय अन्य धर्मके ग्रन्थकार ही नहीं हुए है। अर्थात् तेरहवीं शताब्दि तक कनड़ी भाषाके जितने ग्रन्थकर्त्ता हुए है, वे सब जैनी ही हुए है। इससे इस बातका भी अनुमान होता है कि, उस समय कनड़ी भाषाभाषी प्रदेशोंमें जैनधर्मका कितना अधिक प्राबल्य था। गंगवंशीय, राष्ट्रकूटवंशीय (राठौर), चालुक्यवंशीय, (सोलंकी), और हयसालवंशीय राजाओंके दरबारोंमें तथा सौदत्ति, विजयनगर, मैसूर और कारकलके राजा-ओंके यहा जैनकवियोंका बडा भारी सन्मान रहा है। उस समय जैनकवियोंके सुयशके गीत सारे कर्नाटक देशमें गाये जाते थे।

परन्तु आगे यह बात न रही। रामानुजाचार्यके वैष्णवमतका प्रसार होनेसे और उसके पश्चात् बसवेश्वर (बसप्पा) के 'लिंगायत' मतका प्रचार होनेसे तथा कलचुरि राजवंशके नष्ट होनेसे जैनधर्मका ह्रास होने लगा और इसके साथ ही कनड़ीमें जैनकवियोंका होना भी कम होने लगा। तो भी उसके पीछेके कनड़ी साहित्यसे जैनकवियोंका सर्वथा नाम शेष नहीं हो गया। फिर भी सैकड़ों जैनकवि कनड़ी साहित्यकी शोभा बढ़ाते रहे। कनड़ी साहित्यके जितने प्राचीन अर्वाचीन काव्य, उपन्यास, नाटकादि ग्रन्थ इस समय उपलब्ध है, उनमेंसे लगभग दो तिहाई ग्रन्थ जैन विद्वानोंके बनाये हुए है, यह बात निःशंक होकर कही जा सकती है।

इस बातको सुनकर सब ही आश्चर्य करेंगे कि, दिगम्बरसम्प्रदायके जितने प्रधान २ आचार्य इस समय प्रसिद्ध है, वे प्रायः सब ही कर्नाटक देशके निवासी थे और वे न केवल संस्कृत प्राकृतके ही ग्रन्थकर्त्ता थे—जैसा कि उत्तर भारतके जैनी समझते है, किन्तु कनड़ीके भी प्रसिद्ध ग्रन्थकार थे। समन्तभद्र, पूज्यपाद, वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र, अकलंकभट्ट, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, भूतबलि, पुष्पदन्त, वादीभसिंह, पुष्पदन्त (यशोधरचरितके कर्त्ता), श्रीपाल आदि आचार्य जो दिगम्बर सम्प्रदायके स्तंभ समझे जाते है, और जिनके सस्कृत प्राकृत ग्रन्थोंका हमारे उत्तर भारतमें बहुत प्रचार है, प्रायः कर्णाटकी ही थे।

यद्यपि कनड़ी भाषाके जैनकवियों और ग्रन्थकारोंके समयादिका निर्णय करनेके लिये जितने साहित्यकी आवश्यकता है, इस समय उतना साहित्य उपलब्ध नहीं है और यह एक बड़े भारी खेदका

विषय है, तो भी विद्वानोंके प्रयत्नसे जितना साहित्य प्राप्त हुआ है, उसके द्वारा थोडेसे कवियोंका परिचय हम इस लेखके द्वारा हिन्दीके पाठकोंको करा देना चाहते हैं।

ईसाकी आठवीं, नवमी और दशवीं सदीके कवियोंने जिनप्राचीन जैनकवियोंकी भूरि भूरि प्रशसा की है, उनमें समन्तभद्र कविपरमेष्ठी और पूज्यपाद ये तीन मुख्य हैं। पिछले ग्रन्थकारोंने इनकी जिन शब्दोंमें स्तुति की है, उससे मालूम होता है कि, ये बहुत ही उच्च श्रेणीके विद्वान् थे और इन्हें लोग बहुत ही पूज्यदृष्टिसे देखते थे।

१. [1]समन्तभद्र—इनका जीवनकाल निश्चित नहीं है। 'कर्नाटककविचरित्र' नामक कनड़ी ग्रन्थके रचयिताका अनुमान है कि, ये शक संवत् ६० (ईस्वी सन् १३८) के लगभग हो गये हैं, परन्तु महामहोपाध्याय पं० सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम.ए. ने अपने History of the Mediæval School of Indian Logic नामक ग्रन्थमें इन्हें ईसाकी छठी शताब्दिका ग्रन्थकर्ता बतलाया है। हरिवंशपुराणमें जिनसेनाचार्यने इनकी [2]स्तुति की है, इससे यह तो निश्चय है कि, ये जिनसेनस्वामीसे पहिले हो गये है (जिनसेनने ईस्वी सन ७८३ में हरिवंशपुराणकी रचना की है।) इनका जन्म[3] कृष्णा, वेणा और भीमा नदियोंके मध्यवर्ती उत्कलिका नामक प्रदेशमें हुआ था।

---

१. जैनहितैषी अंक २-३ भाग ६ में समन्तभद्रस्वामीके विषयमें एक विस्तृत लेख प्रकाशित हो चुका है।

२ जीवसिद्धिविधायीह कृत युक्त्यनुशासनम्।
वचः समन्तभद्रस्य वीरस्येव विजृम्भते ॥२९॥ (हरिवंशका प्रथम सर्ग)

३ श्रुतावतारकथामें शुभनन्दि रविनंदि मुनियोंका स्थान उत्कलिका प्रदेश बतलाया है, समन्तभद्रका कोई दूसरा ग्राम है।

उक्त प्रदेशके मणुवक नामक ग्राममें इनका बहुत समय तक निवास रहा था। ये बड़े भारी विद्वान् और सच्चरित्र थे। वृद्धावस्थामें इन्हें पांडुरोग तथा भस्मकरोग हो गया था। इन्होंने जैनधर्मका प्रसार करनेके लिये नाना देशोंमें भ्रमण करके अनन्यसाधारण कीर्ति सम्पादन की थी। गन्धहस्तिमहाभाष्य, जीवसिद्धि, युक्त्यनुशासन, बृहत्स्वयंभूस्तवन, रत्नकंरडश्रावकाचार आदि कई संस्कृत ग्रन्थोंकी इन्होंने रचना की है। सिद्धान्तशास्त्रोंपर भी इन्होंने एक ४८ हजार श्लोक परिमित सरल संस्कृत टीका बनाई है। इनके रत्नकरंडपर कनडी भाषाकी एक प्राचीन टीका भी है। परन्तु अभतिक स्वय इनका बनाया हुआ कोई कनड़ी ग्रन्थ प्राप्त नहीं हुआ है।

२. कविपरमेष्ठी—इनका जीवनकाल भी अनिश्चित है। कनड़ीके सुप्रसिद्ध कवि आदिपपने इनकी बड़ी प्रशंसा की है। आदिपुराणके कर्त्ता जिनसेनने भी इनकी स्तुति की है और इन्हें वागर्थसंग्रह नामक पुराणका कर्ता बतलाया है, 'कवि परमेश्वर' वा 'कवीना परमेश्वर.' भी इनका नामान्तर मालूम पड़ता है। इनके बनाये हुए किसी ग्रन्थके आधारसे जो कि गद्यमय है, जिनसेनस्वामीने आदिपुराण की रचनाकी है।

३. पूज्यपाद यतीन्द्र—चामुंडराय, वृत्तविलास, नेमिचन्द्र और पार्श्व पंडित इत्यादि कनड़ी कवियोंके ग्रन्थोंमें और जिनसेन आदि संस्कृत कवियोंके ग्रन्थोंमें इनकी स्तुति की गई है। देवचन्द्र कविके राजावली नामक ग्रन्थसे और श्रवणबेलगुलके शिलालेखोंसे मालूम होता है कि, ये महात्मा कर्नाटकके कोलंगाल नामके ग्राममें एक ब्राह्मण कुलमें शककी चौथी शताब्दिके लगभग उत्पन्न हुए थे। इनके पिताका नाम माधवभट्ट और माताका नाम श्रीदेवी था।

अनगार-जीवनमें इनका प्रथम नामकरण देवनन्दी हुआ था। पीछे जब इन्हें धर्मके विषयमें कुछ शंका हुई और उसका समाधान करनेके लिये जब ये जिनेन्द्रदेवके समवसरणमें (विदेह) गये और [illegible] बोधको प्राप्त हुए, तब इन्हें लोग जिनेन्द्रबुद्धि कहने लगे। समवशरण सभासे लौटकर इन्होंने इतना घोर तपश्चरण किया कि, उसके कारण इनके नेत्र चले गये। वनवास देशकी राजधानी वंकापुरमें उस समय शान्तीश्वर वा शांतिनाथका एक सुप्रसिद्ध मन्दिर था। कहते हैं कि, पूज्यपाद यतीन्द्रने उक्त मंदिरमें जाकर शांतिस्तोत्रको इस तरह तन्मय होकर पढा कि, इनकी दृष्टि फिर पूर्ववत् हो गई। इसके पश्चात् उन्होंने जैन धर्मका प्रसार करनेके लिये नाना स्थानोंमें विहार करना और उपदेश देना प्रारंभ किया। उनके उपदेशके प्रभावसे सैकड़ों प्रसिद्ध पुरुष उनके शिष्य हो गये। गंगकुलका दुर्विनीत नामका राजा जिसका शासनकाल ईस्वीसन् ४[illegible] ५१३ तक माना जाता है, इनका प्रधान शिष्य था। इनके एक शिष्यका नाम वज्रनन्दी था, जिसने मदुरा वा 'दक्षिणमथुरा' में ४७० ईस्वीमें [1]द्राविड़संघकी स्थापना की थी। कहते हैं कि, तपस्या करते समय वनदेवता इनके चरणोंकी पूजा किया करते थे, इस कारण इनका नाम 'पूज्यपाद' पड़ गया था। एक आख्यायिका ऐसी भी प्रसिद्ध है कि, इनके पादतीर्थस्पर्शसे लोहा भी सोना हो जाता था। राजावली ग्रन्थमें लिखा है कि, मुंडिगुंड नामक ग्राम निवासी [2]पाणिन्याचार्य इनके मातुल थे। वे अपने व्याकरण

१ देवसेनसूरिने अपने दर्शनसारमें द्राविडसंघको पांच जैनाभासोंमें गिनाया है और उसका स्थापक वज्रनंदिको ही बतलाया है।

२ पाणिनि व्याकरण बहुत ही प्राचीन ग्रन्थ समझा जाता है। इतिहासज्ञोंने उसका समय ईस्वी सन्से कई सौ वर्ष पहिले निश्चय किया है, कह नहीं सकते, उसके विषयमें यह आख्यायिका कहां तक सत्य होगी।

ग्रन्थको पूर्ण करनेके पहिले ही कालके ग्रास बन गये थे और इनसे उक्त ग्रन्थको पूर्ण करनेका अनुरोध कर गये थे। तदनुसार इन्होंने उसे पूर्ण करके अपने मातुलकी आज्ञाका पालन किया था। 'गणरत्नमहोदधि'के कर्त्ताने इनका एक नाम 'चन्द्रगोमि' भी लिखा है। इन्होंने पाणिनि सूत्रवृत्ति, जैनेन्द्रव्याकरण सूत्र, सर्वार्थसिद्धि टीका-शब्दावतार, समाधितंत्र, इष्टोपदेश आदि ग्रन्थोंकी रचना की है। कनड़ी भाषामें भी इन्होंने ग्रन्थोंकी रचना की होगी, परन्तु अभी तक इनका कोई भी कनड़ी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है। ये बड़े भारी निष्णात वैद्य, सुप्रसिद्ध वैयाकरण, प्रतिभाशाली नैयायिक और पूज्य तपस्वी थे।

४. श्रीवर्धदेव—ये तुम्बुलूर नामके ग्राममें उत्पन्न हुए थे, इस कारण इनका एक नाम तुबुलूराचार्य भी है। इनका जीवनकाल ईसाका सातवॉ शतक है। वहुतसे ग्रन्थकारोंके लेखसे मालूम होता है कि, इन्होंने षट्खंड सूत्रोंपर (छठे महाबन्ध खंडको छोड़कर) एक 'चूड़ामणि' नामकी टीका जिसकी श्लोकसंख्या ८४ हजार है, रची है परंतु इस समय इनका कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। चामुंडराय, भट्टाकलंक, दंडी आदि महाकवियोंने इनकी स्तुति की है, जिससे अनुमान होता है कि, कनड़ीके समान ये सस्कृत ग्रन्थोंके भी कर्त्ता होंगे। इनकी बनाई हुई एक पंजिका टीका भी षट्खड सूत्रोंपर है, जो सात हजार श्लोक प्रमाण है।

५. विमलचन्द्र—दिगम्बरजैन-वादिश्रेष्ठके नामसे इनकी ख्याति है। ये प्रसिद्ध ग्रन्थकर्त्ता हुए है। श्रवणबेलगुलके शिलाशासन नं० ५४ में जो कि सवत् ११२८ का लिखा हुआ है, इनकी वहुत प्रशंसा की है।

६. उदय—यह चोलदेशके राजा सोमनाथका पुत्र था। इसका उदयादित्य नामका ग्रथ सुप्रसिद्ध है, इसका पूरा नाम उदयादित्य था। ईस्वी सन् ११९० के लगभग इसका अस्तित्व माना जाता है। यह जैनधर्मका उपासक था।

७. [1]नागार्जुन—वैद्यकशास्त्रके पारगत और रसायनशास्त्रके अद्वितीय विद्वान् नागार्जुनका नाम किसने न सुना होगा? ये जैनेन्द्र व्याकरणके कर्त्ता पूज्यपादके भानजे थे। कर्नाटकमें एक किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि, इन्होंने अपने रासायनिक ज्ञानसे बडे २ पहाडों को सुवर्णमय कर दिये थे। यत्र, मत्र, तंत्रादिमें इनकी कीर्ति दिगन्तव्यापिनी हो रही थी। शैलशिखरपर इन्होंने मल्लिकार्जुन (?) प्रतिष्ठा कराई थी। कहते है, जब ये उत्तर भारतमें भ्रमण कर रहे थे, तब दो स्त्रियोंने भुलाकर इनके प्राण ले लिये। इन्होंने नागार्जुन कल्पादि अनेक वैद्यक ग्रन्थोंकी रचना की है। नन्दिसूत्र और आवश्यकसूत्रके प्रारभमें 'नागार्जुनकक्षपुट' नामक वैद्यक ग्रन्थके बनानेवाले नागार्जुनकी बड़ी भारी प्रशंसा और स्तुति की गई है। विद्वानोंका अनुमान है कि, वह स्तुति इन्हीं नागार्जुनकी होगी।

८ जयबन्धुनन्दन—यह ग्रन्थकर्त्ता ईस्वीसन् ८०० में हुआ है। मद्रासके प्राच्यकोशालयमें इसका बनाया हुआ एक 'सूपशास्त्र' नामका गद्यपद्यमय ग्रन्थ मौजूद है।

---

[1] श्रीयुक्त त्र्यम्बक गुरुनाथकालेने नागार्जुनके विषयमें एक विस्तृत लेख प्रकाशित किया है। वारान्तरमें हम उसका सारभाग प्रकाशित करनेका यत्न करेंगे।

९. दुर्विनीत—इस नामके राजाने ईस्वीसन् ४७८ से ५१३ तक राज्य किया है। यह गंगनामके राजवंशमें उत्पन्न हुआ था। 'हेब्बूर'के ताम्रलेखमें इसका वृत्तान्त लिखा है। यह पूज्य-पाद यतीन्द्रका शिष्य था। कनड़ी ग्रन्थकारोंमें यह बहुत प्रसिद्ध है। इसने महाकवि **भारविके** 'किरातार्जुनीय काव्यकी' प्रथम सर्गसे लेकर पन्द्रहवें सर्ग तककी कनड़ी टीका बनाई है।

१०. श्रीविजय—इस नामका कवि महाराज नृपतुंग वा अमोघवर्षके समयमें हुआ है। चन्द्रप्रभपुराण, और चम्पुकाव्य नामक ग्रन्थ इसके बनाये हुए है। बहुतसे विद्वानोंका कथन है कि नृपतुंगके 'कविराजमार्ग'नामक ग्रन्थको भी इसीने बनाया था। दुर्ग-सिंह (कातंत्रव्याकरणका टीकाकार), **केशिराज** और **मंगरस** आदि विद्वान् कवियोंने इसकी बहुत प्रशंसा की है। श्रवणबेलगुलके शिलाशासनमें भी इसका उल्लेख है।

११. पंडितार्य—ईसाकी १४ वीं शताब्दीमें बुक्करायके समयमें हुए है। श्रवणबेलगुलके शिलाशासन नं० ८२में इनकी 'वाग्मीश्रेष्ठ' कहकर बड़ी प्रशसाकी है।

१२. नृपतुंग[1]—(ईस्वीसन् ८१४ से ८७७ तक) यह राष्ट्र-कूट वा राठौर वंशका राजा था। अमोघवर्ष, अतिशयधवल, शर्वदेव आदि इसके नामान्तर हैं। इसकी राजधानी मान्यखेटपुरमें थी, जिसे कि इस समय मलखेड़ कहते है। **प्रश्नोत्तररत्नमाला** संस्कृत और **कविराजमार्ग** कनडी ये दो ग्रन्थ इसके बनाये हुए कहे जाते है। कविराजमार्गको कोई २ **श्रीविजयका** बनाया हुआ भी बतलाते है।

---

१ जैनहितषीके गताकमें इनके विषयमें एक विस्तृत लेख प्रकाशित हो चुका है।

१३ गुणनन्दी—(ईस्वीसन् ९००) ये बलाकपिच्छके शिष्य थे। तर्क व्याकरण और साहित्य शास्त्रके बहुत बड़े विद्वान् थे। इनके ३०० शिष्य थे। आदिपंपके गुरु देवेन्द्र भी इन्हींके एक शिष्य थे। अनेक ग्रन्थकारोंने इन्हें कई काव्योंका रचयिता बतलाया है, परन्तु अभी तक इनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है। श्रवणबेलगुलके ४२–४३ और ४७ नम्बरके शिलालेखोंमें इनका उल्लेख मिलता है।

१४. आदिपप—इसका जन्म ईस्वी सन् ९०२ में ब्राह्मणकुलमें हुआ था। पिताका नाम अभिरामदेवराय था, जो पहिले वेदानुयायी था, परन्तु पीछे जैनधर्मका उपासक हो गया था। यह पुलिगेरीके चालुक्य राजा अरिकेसरीका दरबारी कवि और सेनापति था। कनडी भाषाका यह सर्वश्रेष्ठ कवि समझा जाता है। इसके बनाये हुए दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, एक आदिपुराण और दूसरा भारत (चम्पू)। आदिपुराणमें ऋषभदेवकी और भारतमें महाभारतकी कथा वर्णित है। इसने भारतमें अपने आश्रय देनेवाले राजा अरिकेसरीका अर्जुनके साथ जो साम्य दिखलाया है, वह बड़ा ही पाडित्यपूर्ण है। इसने भारतको छह महीनेमें और आदिपुराणको तीन महीनेमें रचकर पूर्ण किया था। उस समय इसकी अवस्था ३९ वर्षकी थी। प्राय प्रत्येक जैन विद्वानने इसकी प्रशसा की है। सुनते है, इस कविका एक ग्रन्थ मद्रास यूनीवर्सिटीके एम. ए के कोर्समें भरती है। (अपूर्ण)

एक प्रस्ताव।

(परवार जातिके विचार करने योग्य)

परवारजातिमें एक बात सबसे अनौखी है। वह यह कि, विवाह-सम्बन्धमें इसे आठ सांकें टालनी पड़ती है। दूसरी जातियोंमें जिस तरह गोत्र होते है, उसी तरहसे परवारोंमें सांके होती है। 'सांकें' शब्द 'शाखाओं'का अपभ्रंश है। परवारोंमें कुल १२ गोत्र हैं और प्रत्येक गोत्रके बारह २ अन्तर्गोत्र वा 'मूर' है। इस तरह सब मिलाकर १४४ सांकें होती है। और जातियोंकी अपेक्षा परवारोंमें यह विशेषता है कि, इसके गोत्रोंके भी और भेद होते है। जब किसी लड़का लड़कीका सम्बन्ध होता है, तब लड़केकी ओरकी आठ और लड़कीकी ओरकी आठ सांकें मिलाई जाती है। प्रथम कुलका मूर और गोत्र, दूसरे—आजे (पितामह) के मामाका मूर, तीसरे-बापके मामाका मूर, चौथे—आजीके मामाका मूर, पांचवें—लड़का या लड़कीके मामाका मूर, छठे—नाना (मातामह) के मामाका मूर, सातवें—मतारीके मामाका मूर, और आठवें नानी (माता-मही) के मामाका मूर। इन आठ सांकोंमेंसे पहिला मूर और गोत्र तो ऐसा है कि, वह सर्वत्र ही खेद देता है अर्थात् एक पक्षमें जो मूर और गोत्र है, वह दूसरे पक्षकी आठों ही सांकोंमें नहीं होना चाहिये। और शेष मूर विषम विषम अर्थात् तीसरे पाचवें, पाचवें तीसरे, पाचवें सातवें, सातवें तीसरे आदि परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं होने देते है। इस तरह एक बडेभारी गोरखधंधेके सुलझनेपर परवार जातिका विवाह सम्बन्ध निश्चित होता है।

इस गोरखधंधेके कारण परवारजाति बड़ी बड़ी हानियां सह रही है। उनमेंसे यहांपर हम दो चार बातोंका उल्लेख कर देना उचित समझते हैं,—

१. इच्छानुसार वर और कन्याका सम्बन्ध नहीं मिल सकता है। यदि घर वर आदि अच्छा मिलता है, तो सांकें नहीं मिलती हैं और सांकें मिल जाती है, तो योग्य वर नहीं मिलता है। तब लाचार जैसा तैसा सम्बन्ध जोड़कर बालक बालिकाओंको जन्म-भरके लिये, दुःखमें ढकेल देना पडता है।

२. सांकें मिलाना सम्बन्ध करनेका सबसे प्रधान कर्तव्य हो जाता है, इसलिये उसके मिलनेपर फिर ज्योतिष आदिकी विधि मिलानेकी ओर कुछ भी लक्ष्य नहीं दिया जाता है, जो कि भविष्यके ख्यालसे बहुत आवश्यक बात है।

३. सांकें नहीं मिलनेके कारण सैकडों युवाओंको बलात् अविवाहित रहना पड़ता है, जिससे कि उनका चारित्र मलीन हो जाता है, और उनमेंसे अधिकाश बिनैकयों वा दस्सोंमें मिलकर अपनी जातिकी संख्याको घटाते है।

४. इन सांकोंके सत्कारके कारण परवारजाति विवाहके सम्बन्धमें उत्तम सदाचारसपन्न और नीचको, विद्यावान् और मूर्खको, रूपवान् ओर कुरूपको, रोगी और निरोगीको सबको बराबर समझती है और इसके कारण परवारजातिसे गार्हस्थ्य सुख एक प्रकारसे बिदा ले चुका है।

५. इन आठ सांकोंके कष्टके मारे बाल्यविवाह और वृद्ध विवाह भी बहुतायतसे होते हैं। ज्यों ही कहीं सांकें मिल जाती है, त्यों ही लोग अपनी छोटीसे भी छोटी सन्तानका ब्याह कर डालते हैं। इस डरसे कि, आगे फिर कहीं सांकोंका योग नहीं जुडा तो मुश्किल होगी। इसी तरहसे किसी २ को इसीके कारण अपनी कन्याओंको

लाचार होकर चालीस २ वर्षके पुरुषोंके साथ ब्याह देना पड़ता है।

इन सब हानियोंपर विचार करके इस जातिके वे लोग जिनके चित्तोंपर कुछ शिक्षाका संस्कार हुआ है और जिन्हें जातिकी उन्नति अवनतिकी चिन्ता है, यह प्रस्ताव उपस्थित करते है कि, परवारोंमें इस समय जो आठ सांकें मिलाई जाती है, उनके स्थानमें चार सांकें मिलाई जाया करें। आजेके मामाकी, आजीके मामाकी, नानाके मामाकी और नानीके मामाकी, इस तरह चार सांकें मिलाना वन्द कर दी जावें। ऐसा करनेसे सम्बन्ध मिलनेमें बड़ा भारी सुभीता हो जायगा और गृहस्थोंके सिर परसे एक असह्य बोझा उतर जायगा।

इस प्रस्तावको सुनते ही वहुतसे लकीरके फकीर आपेसे बाहिर हो जावेंगे और बापदादोंके पांडित्यकी दुहाई देने लगेंगे। परन्तु यदि विचार करके देखा जाय, तो इस प्रस्तावको पास कर देनेसे न तो धर्मकी कोई हानि होवेगी और न लौकिकमें ही कोई इस कार्यको बुरा कहेगा। क्योंकि—

१. परवारोंको छोड़कर खंडेलवाल, अग्रवाल, गोलापूरब, हूमड़ आदि कोई भी जाति ऐसी नहीं है, जिसमें आठ गोत्र टालकर सम्बन्ध किये जाते हों। और तो क्या परवारोंका ही एक भेद ऐसा है, जिसमें चार सांकें मिलाई जाती है और इस कारण वे चौसके कहलाते हैं। परवारोंका उनके साथ भोजन व्यवहार भी है। यदि आठ गोत्र मिलाना ही कोई उच्चताका कार्य होता, तो परवारोंका चौसकोंके साथ और गोलापूरब आदि जातियोंके साथ भोजन व्यवहार नहीं होना चाहिये था। और चार गोत्र मिलानेवालों

को लौकिकमें कोई बुरा भी नहीं कहता है। बुरा तो उन्हें भी कोई नहीं कहता है जिनके यहा गोत्रोंका झगडा ही नहीं है। परवारोंकी एक शाखामें 'दुसखे' है और एकमें 'पद्मावती पुरवार' है। सुनते है कि, दुसखोंमें दो ही साकें मिलाई जाती है और पद्मावती पुरवारोंमें तो गोत्रही नहीं हैं। सम्बन्ध मिलाते समय वे केवल रिश्तेदारोंका विचार कर लेते है।

२. धार्मिक दृष्टिसे तो इस विषयमें कोई आक्षेप ही नहीं आ सकता है। क्योंकि हमारे प्रथमानुयोगके ग्रन्थोंमें दो चार नहीं सैकडों कथाएँ ऐसी है, जिनमें चार साकें और आठ साकें तो बडी वात है, मामाकी बेटीके साथ भी विवाह होनेका जिकर है। और कर्णाटक प्रान्तकी जैन जातियोंमें तो अभी तक यह प्रथा प्रचलित है। वहां मामाकी लड़कीके साथ विवाह करनेका प्रधान अधिकारी भानजा ही समझा जाता है।

३. जितनी लोकरूढिया है, वे अपने २ समयकी आवश्यकताओंके कारण जारी हुई है। परवार जाति एक समय इतनी बडी थी, उसमें इतनी अधिक मनुष्य सख्या थी कि, उसपर विचार करके इस जातिके पूर्वजोंने सोलह साकोंके मिलानेकी प्रथाका प्रचार किया था। परन्तु आगे जब परवार जातिकी क्षीणता हुई, तब लोगोंको इससे कष्ट होने लगा और एक बार यह कष्ट लोगोंके लिये इतना असह्य हो गया कि, उन्होंने आन्दोलन करके सोलह सांकोंकी जगह आठ साकोंके मिलानेकी पद्धतिका प्रचार कर दिया। दुराग्रही लोगोंकी कमी कमी किसी समाजमें नहीं रही है, तदनुसार वहुतसे लोगोंने इस नवीन चालको पसन्द नहीं की और उन्होंने अपनी सोलह साकोंकी लीक पीटनेमें ही धर्मा-

चारताकी शिखा समझी। फल यह हुआ कि, इस दुष्कर पद्धतिके जारी रखनेसे सोलह सांकों वा 'सोराठिया' परवारोंका धीरे २ क्षय होने लगा और इस समय तो शायद उनके दश वीस घर भी शेष नहीं है। अब आगे चलिये। एक समय जो आठ सांकें सुभीतेवाली दिखती थीं, कालान्तरमें वे भी कठिन दिखने लगीं। फिर लोगोंको कष्ट होने लगा और उन्होंने आठकी जगह चार साकोंके जारी रखनेमें अपनी रक्षा समझी। परन्तु इस दूसरी मुहीममें पहिली बारके समान सफलता नहीं हुई। रूढीका सत्कार करनेवाले बहुत हो गये थे, इसलिये बहुत थोड़े लोगोंने चौसका होना अच्छा समझा। यदि उक्त दूसरी मुहीममें सब लोग चौसके हो जाते, तो आज हमको यह प्रस्ताव पेश करनेकी ही आवश्यकता न पड़ती। जिस समय चौसके हुए थे, उस समयकी अपेक्षा इस समय आठ साकोंके कारण परवारोंको कई गुना कष्ट है, इसलिये अब तो इस पर अवश्य ही विचार करना चाहिये।

४. जितनी लोकरूढिया और जातीय पद्धतियां हैं, उन सबको जारी करनेवाले जातिके ही अगुए होते है। अपनी आवश्यकताओंको देखकर वे उन्हें धर्मकी अविरुद्धताका विचार करके जारी कर देते है और इसी प्रकारसे उन्हें बन्द भी कर देते है। परवार जातिकी इन साकोंको परमेश्वरने नहीं बनाई थीं, जातिके अगुओंने ही बनाई थीं, और उनके मिलानकी न्यूनाधिकता भी समयको देखकर अगुओंने ही की थी। तब यह बात सिद्ध है कि, इस समयके अगुए भी उनमें अपनी आवश्यकतानुसार कुछ घटा बढ़ी कर सकते है। जिन्हें खंडेलवाल जातिका इतिहास मालूम है, वे जानते होंगे कि, उस जातिके अगुओंने एक बार बीजावर्गियोंके

१२ गोत्र मिलाकर खडेलवालोंके ७२ के स्थानमें ८४ गोत्र कायम कर दिये थे। जब जातिके अगुओंको दूसरी जातिके गोत्रोंके मिलानेका भी अधिकार है, तब आठके स्थानमें चार साकोंकी पद्धतिका प्रचलित करना तो एक जरासी बात है।

हम जैनहितैषीके पाठकोंसे प्रार्थना करते हैं कि, वे इस आवश्यक प्रस्तावको परवार जातिकी प्रत्येक पचायतीमें उपस्थित करें और पचायतीकी जो राय विरुद्ध वा अनुकूल हो उसे समाचारपत्रोंमें प्रकाशित करनेके लिये भेजें। पत्रसम्पादकों से भी निवेदन हैं कि, वे भी अपने २ पत्रोंमें इस विषयकी चर्चा करें।

नाथूरामप्रेमी—देवरी
और
मौजीलाल सिंगई—नरसिंहपुर।

जन्महत्या।

"नरजन्म पाके मरण पाया लोकमें जिसने सदा,
सुख शान्तिकी सौहार्द्र छायामें न बैठा जो कदा।
योंहीं विताया जन्म उसने, व्यर्थ ही झगडा लिया,
पा जन्म जिसने इस जगतमें 'जन्म-घात' नही किया"॥

सिद्धान्त.

शेक्सपीयरके सब नाटकोंमें हेम्लेट उत्तम गिना जाता है इस नाटकी उत्तमता इसकी उत्कृष्ट रचनाके कारण नहीं किन्तु उसके नायकके अनुपमेय औन्नत्यके कारण है। शेक्सपीयरका हरएक नाटक 'दूसरी विश्वामित्रकी मायाविनी सृष्टि है' यह कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी किन्तु उसके और नाटक ऐसे नहीं हैं, जो कृतिमें हेम्लेट कि बराबरी कर सकें। शेक्सपीयरके और नाटक देखनेसे, यह बोध होता है कि

वह एक उत्तम कवि था, किन्तु हेम्लेटके देखनेके कारण तो उसे एक बड़ाभारी तत्त्वज्ञानी मानना पड़ता है। हेम्लेटको उत्तम कहनेका कारण यह है कि, उसका खेल एक प्राकृतिक जीवके दुःख और निराशाका सच्चा चित्र है। वह जीवनकी तरङ्गमालाओंमें एक वेग आनेके कारण जगतके गूढतत्त्वोंकी शोधको उद्यत हुआ था। पर जब उसके प्रयासका परिणाम 'हीरे' की जगह 'पत्थर' निकला, तब वह पश्चात्तापकी प्रज्वलित ज्वालामें रात दिन जलने लगा। यह स्थिति अकेले हेम्लेटकी ही नहीं हुई थी, किन्तु हरएक मनुष्यकी एक बार होती है। जब मनुष्यकी यह हालत होती है, तब वह मुक्तिमार्गके दरवाजेपर होता है। ऐसे समय जो धैर्य रक्खेगा, वह पार होनेका प्रयास कर सकेगा, किन्तु जिसने धैर्यका अवलम्बन छोड़ दिया, वह फिर जगतके दुःखोंमें लिप्त हो जायगा। मनुष्यकी ऐसी स्थिति हो जाने पर वह यह जतलाता है कि, जगतके दुःखसे छुटकारा मिलनेके लिए, और अपनी सच्ची स्वतत्रता प्राप्त करनेके लिये मुझे तीव्र इच्छा हुई है।

एक फ्रेश्च तत्वज्ञानीका कथन है कि--

"जिस मनुष्यके मस्तिष्कमें मनके द्वारा कभी जन्महत्या करनेका अर्थात् ससारसे मुक्त होनेका विचार न समाया, वह मनुष्य जीवनके लिये अयोग्य है।"

सचमुच इस प्रपञ्चपूर्ण बाजारमें--जहां पहिले सब चीजें उत्तम और सत्य दिखाई देती है--किन्तु बादमें खराब और झूठी हो जाती है--सन्तोष मानके बैठ रहना विचारशील मनुष्यका काम नहीं है।

संसारमें चारों ओर फँसानेवाला जाल बिछ रहा है। जिस २ वस्तुके मायापाशमें हम पड़ते है, वही वस्तु हमें गिरिफ्तार कर-

लेती है। जिस प्रकार पतङ्ग दीपकके प्रकाशमें भूलके—उसीपर धावा मारता है और उससे खुदको जला मारता है; उसी प्रकार हम लोग सुखकी आशासे नाशवान्, मिथ्या वस्तुओंके पीछे अपनी आयुका हरएक अमूल्य क्षण अपने ही नाशके लिये व्यतीत करते है। एक आग्ल कविका कथन है कि—

" हे सुख ! तू सचमुच सत्य है, किन्तु तेरी प्राप्तिके लिये मनुष्य अपने मानवीय जीवनको भ्रष्ट कर देते हैं यह भी सत्य है।"

हम सब इतने स्वार्थी और क्षुद्र हृदयके जीव हैं कि, यदि एक प्रामाणिक और उच्च हृदयके पुरुषकी तलाश की जाय, तो दिनमें ही मशाल जलाके ढूढनेकी नौबत आजाय। दुष्ट, लुच्चे और अभिमानी लोग, सम्पत्ति और ऐशमें अपने दिन, गुजारते हैं, पर सच्चे सद्गुणी, सत्यवादी, और सीधे साधे लोग उपवासपर उपवास करके अपने दिन बिताते है और दुःखका दुर्दैव उनके पीछे बराबर लगा फिरता है। सत्यके आश्रित लोगों पर एक बार विपत्तिका पहाड टूट पड़ता है। दुर्दिन सिर्फ उन्हें ही ढूढता फिरता है। ससारके असख्य प्राणियोंका दुःखसे रोना और उनका हताश होना देखके चित्तकी विचित्र दशा हो जाती है। जहा भयकर लडाइएँ शुरू हो रही है, वहा मनुष्य कहते हैं कि—" तू मुझे मारता है या मैं तुझे मारूं ? " एककी मौतसे दूसरेका जीवन चल रहा है। ससाररूपी समुद्र नित्य नई २ लहरें लेता है और जनसमाज उनके स्वागतके लिये एक एक पांव आगे बढ़ता है। पर एक लहरसे कुछ परिचित नहीं होने पाता कि, दूसरी लहर आ जाती है। सचमुच जीवन एक इन्द्रजाल है। एक मार्मिक कवि कहता है कि—

" हम यहीं बावले होके इधर उधर घूमते है, और जो कुछ भी नहीं, उसकी खोज करते है। बाहरसे हँसते हैं, बोलते है, और दूसरोंको चिन्तासे छूटनेका उपदेश देते है, किन्तु हमारे हृदयमें एक प्रकारके दुःखका विचार चला ही करता है। जिस समय हम अति ललित स्वरसे मीठा गान गाते है; उस समय भी हमारा अन्तःकरण दुःखसे भरा होता है।"

वही कवि आगे चलकर कहता है,—

" हे परमात्मन्! मै आयुके कांटेपर टिक रहा हूं। रात दिन शरीरसे खूनका सोता जारी है; और कालके बड़े भारी जड़ बोझने मुझे उसपर दबा रक्खा है। "

यह कहना बहुत ही आसान है कि, " हरएक बातमें सन्तोष और सुख मानना; मनुष्यका मुख्य कर्तव्य है। " किन्तु इस नियमका पालन करना सहज नहीं है। अधिक मनुष्योंकी बानके अनुसार यह नियम पेट भरनेके बाद याद आता है। उनके हृदयसे ये प्रश्न कभी नहीं निकलते है कि—मनुष्यजन्म किस लिये है? इसका मुख्य कर्तव्य क्या है? संकट और दुःख दोनों राक्षस हमारे हर एक मार्गमें टकरा जाते है। केवल फँसानेवाला, अस्वस्थ, अनिश्चयी, और सत्यसे दूर ले जानेवाला 'मन' हमारे पास है। हम जिसका बोलना, चलना, आकार, सर्वथा उत्तम और सर्वथा सुन्दर समझते है, वह शरीर वास्तवमें खराब, ग्लानियुक्त, और हजारों छिद्रोंवाला है। जिस ज्ञानको ज्ञान नहीं कह सकते, ऐसा हमारा ज्ञान है। जो संसार एक बार लुटेरोंके राज्य जैसा लगता है, एक बार भूले हुए कैदियों जैसा भासता है, ऐसे संसारमें हमारा रहना है। ऐसी स्थिति होने पर भी अपनेको संसारका आधारस्तम्भ मान बैठना

कितना अविचारपूर्ण और कितना असमर्थतापूर्ण विचार है। उसमें बैठे २ आनन्द गीत गाना, ससारमें स्वस्ति चाहना, क्या अपनी तरफ आते हुए सापको पकड़नेवाले बालककी तरह नहीं है? किसी विद्वानके कैसे उद्गार निकल पडे है कि—" मै जन्म ही न पाता, तो कैसा अच्छा होता ?"

जैसे शेक्सपियरके उक्त नाटकका पात्र अपने पहिले ही प्रवेशमें अपने स्वभावको जना देता है, उसी तरह मनुष्य प्राणी इस ससारमें रोता आता है। वह जानता है कि, यह संसार नाशवान् शोकोंसे भरा पड़ा है। ससारके सब मनुष्य रोते जान पडते हैं। कोई बिरले आत्मवादी यह खेल सूक्ष्मदृष्टिसे देखा करते है। मनुष्यका क्षुद्रत्व उसके मनोविकारोंकी नीचता, और उसका वृथाभिमान ये सब बातें सूक्ष्मदृष्टिवालोंको कौतूहलित करती हैं।

फोस्ट नामक कविका कथन है, कि—

" जो जो बातें मेरी आत्माको हानि पहुँचानेवाली है पर ऊपरसे सुन्दर जान पडती है, उनका नाश होओ। जिस महत्त्वकी अभिलाषाके कारण मेरा मन फँसता है, उस महत्वाभिलाषाका नाश होओ। नाम और कीर्तिके खोटे सपनेका नाश होओ। जो जो चीजें स्वामित्वका नाम पैदा करती है, उनका भी नाश होओ और जो जो चीजें मुझे इस दुनियामें फिर पैदा होनेका कारण बनती है, उन सबका मूलसे नाश होओ।"

जो अज्ञानी है, उन्हें इस जगतकी भयकर स्थिति मालूम नहीं होती और इसी कारण वे सुख या दुखमें परतन्त्रजीवन व्यतीत करते है। पर जो विवेकी हैं, उन्हें यह ससार नरकके समान दिखाई देता है। वे किसी तरह इससे छूटनेकी फिक्रमें रहते है। मुक्त

होनेके लिये जन्महत्याको छोड़ और दूसरा रास्ता नहीं है। जितने प्राणी है उनमें से जन्महत्याकी ताकत एक मात्र मनुष्यको ही है, और इसी कारण उसे सबसे श्रेष्ठ पद मिला है। इसी कारण स्वर्गके देव-जन्मकी भी अपेक्षा मनुष्यजन्मपाना अधिक पुनीत माना जाता है। यद्यपि देवताओंमें मनुष्योंसे सब बातें श्रेष्ठ है, उनकी बुद्धि और विचारशक्ति मनुष्योंसे बहुत कुछ बढ़ी हुई है, पर वे कम इसीलिए है कि, जन्महत्या नहीं कर सकते। जन्महत्या करनेका अधिकार केवल मनुष्योंको ही है कि, जिसके लिए प्राणीमात्रको कभी न कभी मनुष्यजन्म धारण करना ही पड़ता है।

यहा बहुतसे भाई कह सकते है कि, जब जन्महत्यासे ही बेड़ा पार है, तब तो यह बहुत ही सहज बात है। क्योंकि एक मजबूत रस्सी और हुक यही तो चाहिए। पर मै कहता हूं कि, भाइयो, यह काम आपके विचारसे भी कहीं सरल है। रस्सी या हुककी कोई जरूरत नहीं है, कष्ट उठानेकी आवश्यकता नहीं है, एक पलकके गिरने और उठनेमें जितनी तकलीफ होती है, उससे भी कहीं कम तकलीफ इसमें है।

"क्या डोर, छुरी या विषकी सहायताके विना, समुद्र, नदी, अथवा कुवेमें गिरे विना, गलेमें फॉसी डाले बिना, जन्महत्या हो सकती है? यदि सच मुच ऐसा हो, तो आश्चर्यका विषय है। हमें विश्वास नहीं होता कि, जन्महत्या करनेमें फूल तोड़नेके जितनी आसानी हो।" इस प्रश्नके लिए मेरे पास उत्तर मौजूद है कि, सचमुच यह साधन, यह उपाय बहुत ही सरल है। परन्तु इसकी रीति गुप्त है—अतिशय गुप्त है। यह रीति अनादि कालसे चली आ रही है। ज्यों ही इसके मिलनेकी योग्यता हुई कि, यह मिली। एक

बार इस कठिनतासे बाहिर निकले कि, स्वाधीन हुए। फिर जरा, जन्म, मृत्युका डर नहीं रहता। पाप, पुण्य, व्याधि, दुःख आदि सबसे छुटकारा मिल जाता है। क्योंकि यह जन्महत्या सर्वदा सम्पूर्ण होती है। इस प्रकार जन्महत्या करनेके बाद आनन्द और शोकका डर नहीं रहता, स्वर्ग, नरक और पुनर्जन्मादि सब मिथ्या होजाते हैं। कोई देव फिर उसे शिक्षा नहीं दे सकता है। उसपर शासन करनेकी किसीकी भी ताकत नहीं रहती है। क्योंकि यह जन्महत्या पूरी है।

तो ऐसी उत्तम जन्महत्या किस प्रकार करनी चाहिये? शास्त्रज्ञ कहते है कि—"किसी भी प्रकारसे जीव दो, पर कोरी मौतसे छुटकारा नहीं होता। कोरी मौत एक जीवनका परदा है। एक अदृश्य शक्तिके द्वारा दूसरा शरीर मिल जाना है। वर्तमान समयके सुख दुख विस्मरण हो जाते है और इनके प्रतिफल नये दुःखोंका सामना करना पडता है।" वे ही शास्त्रकार आगे चलके कहते हैं—"कि कोरी मौत करनेवालेको अर्थात् शरीरघातकको उसकी कृतिके लिये बहुत दुःख भोगने पड़ते हैं। वह बहुत काल तक उस प्रदेशमें रहता है, जहा उसका दुःख क्षण २ नया होता रहता है। वहा शान्ति और विश्रामका स्वप्नमें भी नाम नहीं होता। गंधकके पहाड़ रात दिन जला करते है, और उसके गलावमें पडे हुए जीवको कुछ समय भी विचारके लिए नहीं मिलता। परन्तु जो जीव जन्महत्या करता है—ऐसी हत्या करता है कि, फिर जन्मधारण नहीं करने पड़ते हैं, उसे अनंत सुखकी प्राप्ति होती है। उसे एक ऐसी चीज मिलती है कि, जिसके मिलनेके बाद उसे और कुछ पानेकी इच्छा नहीं होती। उससे पैदा होने वाले अनंत आनन्दसे और आनन्दकी इच्छा उसे नहीं होती। उसे जाननेके बाद फिर कुछ जानना संसारमें शेष नहीं रहता।"

जन्महत्या करनेके बाद क्या होता है, इसके विषयमें एक ऋषिने कहा है कि,–" आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होनेपर इतनी शान्ति हो जाती है कि, पहिलेकी चपल सृष्टि कहां गई, इसका कुछ भी पता नहीं रहता है। वह अदृश्य हो जाती है; अशान्ति भाग जाती है। बस केवल आनन्द, शान्ति, सुख है।"

अब यह बात विचारणीय है कि, शास्त्रविशारद जिस घातको भयानक निंद्य कहते है, उसमें और जिसे श्रेष्ठ बताते है, उसमें क्या फरक है। जो हत्या निंद्य कही गई है, वह जन्महत्या नहीं है वरन् शरीरहत्या वा देहघात है और उसके करनेवाले पापी और मूर्ख है। और जिस हत्याको शास्त्रकारोंने श्रेष्ठ कहा है, वह वास्तविक हत्या और कुछ नहीं, आनन्दप्रद मोक्ष है।

जो लोग इस जन्महत्याके–मोक्षके इच्छुक हैं, उनके भाव बड़े ही विशद और पवित्र होते है। वे चाहते है कि, संसारमें जितने प्राणी है, वे सब सुखी रहें–उन्हें कभी दुःख न हो। वे जानते है कि, सब जीव मेरे ही समान हैं'। वस्तुतः मुझमें और उनमें कोई अंतर नहीं है।

पूर्वकालिक बौद्ध लोग अपने ऐसे ही भावोंसे विश्वमें मित्रता स्थापित करते थे। हम उनके 'अतिधर्मपिटक' नामक ग्रन्थके एक अंशको यहा उद्धृत करते है—

" समस्त जीव बैररहित होके, बाधा रहित होके, दुःखरहित होके, सुखी होके, अपनेको अच्छे मार्गमें चलाओ। समस्त जीव, समस्त व्यक्ति, और समस्त जन्म ग्रहण करनेवाले बैर रहित होके, बाधा रहित होके, दुःखरहित होके, सुखी होके अपनेको अच्छे मार्गपर चलाओ। समस्त स्त्री, समस्त पुरुष, समस्त आर्य, समस्त अनार्य, समस्त देव, समस्त मनुष्य, और समस्त नरकादिमें स्थित जीव बैररहित होके,

बाघा रहित होके, दुःख रहित होके, सुखी होके अपनेको सुमार्गपर चलाओ। पूर्व पश्चिम और उत्तर दक्षिण दिशाओंमें जो जीव हैं, वे सब वैररहित होके बाधारहित होके दुःख रहित होके, सुखी होके अपनेको आगे चलाओ।"

जैनी लोग भी सामायिकके समय इसी प्रकारकी भावना किया करते हैं।

विषखाने, और पेटमें छुरी मार लेनेसे जन्महत्या पूरी नहीं होती। इससे हत्यारेकी आत्मा खेद और पापसे खिन्न होती रहती है। उसके कर्मोंकी गठड़ी इतनी बोझल हो जाती है कि, वह जीवन-पथमें आरामसे नहीं चल सकता। वह आत्मा इतना खेदित होता है कि, उसका खेद ही उसके लिए ज्वलन्त ज्वालाका काम देता है बंगलाके प्रसिद्ध लेखक श्रीमणिलाल गगोपाध्याय, बी. ए. ने एक मेस्मेरेजिमके विषयमें पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने एक दि नके वर्णनमें ऐसी ही आत्माका हृदयद्रावक दुःख लिखा है—जिसे पढ़ कलेजा कापने लगता है। उन्होंने लिखा है कि, एक दिन जब मैंने अपनी सम्मोहनविद्या (मेस्मेरेजिम) के अनुसार एक म्याडम को अचेत किया, तब मालूम हुआ कि उसके शरीरमें एक दूसरी ही आत्मा आगई है। हमने उससे कुछ पूछनेका प्रयत्न किया आत्माने कुछ शब्द कहे—पर वह भाषा ऐसी थी, जिसे हम बिलकुल न समझ सकते थे फिर हमने अंग्रेजी भाषामें प्रश्न किया कि, "आप कौन हैं?" उसी भाषामें उत्तर मिला कि,—"एक दग्ध आत्मा।" हमने उत्सुक होके पूछा कि—"आप अपनी आत्माको दग्ध क्यों कहते हैं?" उसने कहा, "मैं हर समय अशान्तिकी आगमें जला करता हूं—सदा शून्य आकाशमें चक्कर लगाया करता

हूं—मैं प्यासा हूं, भूखा हूं—मुझे अनन्त दुःख और अनन्त अशान्ति है। हमने कहा—“ क्या आप अपना परिचय देना योग्य समझेंगे ?” उसने कहा—“ हां, मै भारतमें आया हुआ एक यूरोपियन हूं। मैं रेलका गार्ड था। कई कारणोंसे दुखी होकर मैने आत्महत्या कर डाली थी, और उसीके कारण अब अनन्त अशान्ति भोगता हूं। मुझे अनन्त दुःख और अनन्त अशान्ति है। ” उस समय उसकी चेष्टासे जान पड़ता था कि, वह बहुत दुःख पा रहा है। हमने पूछा “ क्या आप इसका कारण भी बतावेंगे ? ” पर वह अब न था, चला गया था। इससे स्पष्ट विदित है कि, शरीरघातीको कितनी अशान्ति है। इसके कई एक जीवित उदाहरण है।

जन्मघातकी पहिली सीढ़ी आत्मजय है। इस पहिली सीढ़ीपर चढ़ते ही मनुष्यकी दृष्टि कुछ दूर पर पड़ने लगती है। संसारके स्वाभाविक दुःख उससे हटने लगते है। क्रोध, मान, माया उसका पल्ला छोड़ देते है।

एक अत्युन्नत जन्मघाती विश्वको शिक्षा दे रहा है “ स्वर्गमें जाके मत भूलो, वह तुम्हारे पदसे बहुत तुच्छ है। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रहगणोंसे भी तुम्हारा पद ऊंचा है। अपने अनन्त सुखके बदलेमें तुच्छ विषयोंको मत खरीदो, इसमें तुम इतने ठगे जाते हो, जितना एक बच्चा हीराको देकर और उसके बदलेमें खिलौना पाकर ठगाया जाता है। ”

अन्यका कथन है—“ पुण्य और पापका मुझे डर नहीं है, मेरा आदि और अन्त नहीं है, जन्म, मरण, कल्पना, और इच्छासे मेरा सम्बन्ध नहीं है। पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाशसे मै भिन्न हूं। पर मैं सबसे उन्नत हूं। ”

मुक्तिसे अन्य मूल्यवान् कोइ वस्तु संसारमें नहीं है। उसके प्राप्त करनेके वाद आत्मा अखिल विश्वका मालिक होजाता है। मुक्ति प्राप्त कर चुकने पर और कुछ करना शेप नहीं रह जाता है।

मनुष्यका मुख्य कर्तव्य है कि, वह आत्महित करे, और आत्म-हितकी सबसे ऊची चोटी जन्महत्या है। किन्तु जो भोले भाई शरीरहत्या करनेका विचार करते हैं. वे ठहरें और एक वार इसका पूर्ण रीतिसे विचार कर लें कि, क्या करनेमें सुख है। क्यों कि संसारके ज्ञानी और अज्ञानी सभी मनुष्य सुखके लिए सब काम करते हैं।*

शिवनारायण द्विवेदी, जयपुर।

भाषा–मीमांसा।

ससारमें प्रान्त देश द्वीपादिके भेदसे हजारों प्रकारकी भाषाएँ वोली और लिखी पढी जाती है। यद्यपि ये सब भाषाएँ एक दूसरीसे भिन्न हैं–एक भाषा दूसरीसे नहीं मिलती है, तो भी जितनी भाषाएँ है, उन सबका उद्देश्य एक ही है, उसमें भिन्नता नहीं है। प्रत्येक भाषाका चाहे वह सस्कृत हो, या प्राकृत हिन्दी, अग्रेजी, ग्रीक. लैटिन आदि और कोई हो, यही उपयोग है कि, मनुष्य उसके द्वारा अपने हृदयके भाव दूसरों पर प्रगट कर सकता है और दूस-रोंके आप जान सकता है।

इस तरह उद्देश्य और उपयोगके विचारसे सब भाषाओंका दर्जा एक ही हैं। तो भी किसी भाषाका महत्त्व विशेष होता है और किसीका कम होता है। यह महत्त्व और लघुत्व भाषामें जो भाव

* इन लेखके लिखनेमें हमें एक पुराने गुजराती समाचार पत्रसे वहुत सहायता मिली है। अत उसके सम्पादकके हम कृतज्ञ हैं। लेखक

प्रगट करनेकी शक्ति होती है, उसकी अधिकता हीनतापर और साहित्यकी कमी ज्यादती पर निर्भर है। जिस भाषाके द्वारा सूक्ष्मसे सूक्ष्म और गूढसे गूढ़ विचार प्रगट किये जा सकते है और जिसका साहित्य बढ़ा चढ़ा होता है अर्थात् जिसमें विविध विषयोंके हजारों लाखों ग्रंथ मिलते हैं, वह उत्कृष्ट भाषा कहलाती है और जिसमें ये बातें नहीं है, वह निकृष्ट भाषा कहलाती है।

हमारे देशमें संस्कृत भाषा बहुत पूज्य गिनी जाती है। भाषासंसारमें इसका बहुत बड़ा महत्त्व है। इसका कारण यही है कि, संस्कृतमें हृदयके सूक्ष्मसे सूक्ष्म विचारोंको याथातथ्य प्रगट करनेकी शक्ति है, उसका साहित्य बहुत बड़ा है, और उसके द्वारा हमको तीन चार हजार वर्ष पूर्व तकके विद्वानोंके विचार मालूम हो सकते है। इसके सिवाय संस्कृतकी पूज्यताका सबसे बड़ा कारण यह है कि, उसमें धार्मिक ग्रन्थोंकी अन्य सब भाषाओंसे अधिकता है और धर्म इस भारतवर्षकी सबसे पूज्य वस्तु है। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि, संस्कृतके सिवाय अन्य किसी भाषाको यह पूज्यत्व और महत्त्व प्राप्त ही नहीं हो सकता है। संस्कृतने किसी परमेश्वरके यहासे कोई ऐसा पट्टा नहीं लिखवा लिया है कि, उसे छोडकर और कोई भाषा उन्नति कर ही नहीं सकेगी। जो खूबिया संस्कृतमें हैं, यदि उन्हें और कोई भाषा प्राप्त कर सके, तो लोग उसके सम्मुख अवश्य मस्तक नबावेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

जैनियोंने मागधी वा प्राकृत भाषाको और बौद्धोंने पाली भाषाको अपनी प्रधान भाषा बनाके सिद्ध कर दिया है कि, प्रत्येक भाषाको महत्त्व प्राप्त हो सकता है, यदि उसका साहित्य बढा-

था जाय और उसमें सूक्ष्म विवेचनशक्ति हो जाय तो। वैदिकमतोंमें जितना आदर तथा महत्त्व संस्कृतका है, उतना ही बल्कि उससे भी अधिक आदर महत्त्व बौद्धोंमें पाली भाषाका और जैनियोंमें मागधीका है। जिस तरह हिन्दू लोग संस्कृतको देववाणी वा देव-भाषा कहते हैं, उसी प्रकार बौद्ध लोग इसी प्रकारके किसी पूज्यता-द्योतक नामसे पालीका उल्लेख करते हैं और जैनियोंमें तो केवली भगवानकी दिव्यध्वनि ही मागधी भाषारूप परिणत होती है। अर्थात् वह एक प्रकारसे तीर्थंकर भगवानकी ही वाणी समझी जाती है। पाली और मागधीको इस प्रकारका पूज्यत्व प्राप्त होनेका भी कारण वही है, जो संस्कृतके विषयमें कहा गया है। इन भाषा-ओंमें भी ऊंचेसे ऊंचे भावोंको प्रगट करनेवाले लाखों ग्रन्थ मौजूद हैं।

अन्यत्र जो 'कर्नाटकजैनकवि' नामक लेख प्रकाशित किया गया है, उससे मालूम होगा कि, कनडी भाषाका साहित्य भी बहुत बड़ा है। जैनियोंके उक्त भाषामें हजारों ग्रंथ हैं और इसके कारण कनडी भाषा भी जैनियोंकी एक पूज्य भाषा समझी जाती है। पाठकोंको मालूम होगा कि, गोम्मटसारकी संस्कृत टीकाकी रचना एक कनडी टीकाका अनुवाद करके तथा आदिपुराणकी रचना कविपरमेष्ठीके किसी गद्यमय कनडी ग्रन्थके आधारसे हुई है। इसके सिवाय और भी बहुतसे संस्कृत ग्रन्थ कनडी ग्रन्थोंके आधारसे बनाये गये हैं। यदि कनडीका साहित्य उत्कृष्ट और विपुल न होता, तो उसके आश्रयसे संस्कृत साहित्यकी वृद्धि कभी न की जाती। कनडीके समान मागधी और पाली भाषाके भी सैकडों ग्रन्थोंका अनुवाद संस्कृतमें किया गया है।

इस समय संसारमें जितनी भाषाएं प्रचलित वा जीवित हैं, उनमें सबसे अधिक महत्त्व अंग्रेजी-भाषाको प्राप्त है। इस भाषाका सा-

हित्य यद्यपि प्राचीन नहीं है, परन्तु इतना बड़ा है कि, सुनकर आश्चर्य होता है। प्रत्येक विषयके हजारों ग्रन्थ इस भाषामें मिलते है। आज जिसे सर्वोत्कृष्ट पांडित्य प्राप्त करनेकी इच्छा होती है, उसे अंग्रेजी भाषा अवश्य पढ़नी पड़ती है। ऐसा कोई भी विषय नहीं है, जिसका साहित्य इस भाषामें नहीं है। हम इस भाषाको पूज्य भले ही न कहें, क्यों कि इसमें हमारे धर्मके ग्रन्थोंकी विपुलता नहीं है, और हम धर्मप्रिय हैं तथा ऐहिक विषयोंको हम जितना चाहिये उतना महत्व नहीं देते हैं, परन्तु महती भाषा तो अवश्य ही कहेंगे। सत्कारके विषयमें तो कुछ पूछिये नहीं, सर्वत्र इसीकी ही तूती बोलती है। इस भाषाके विना इस समय प्रतिष्ठाकी सम्पत्तिकी और समयोपयोगी विद्याकी प्राप्ति एक प्रकारसे असभवसी समझी जाने लगी है। एक दिन वह था, जब कहा जाता था कि, **'न पठेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि'** परन्तु आज यह दिन है कि, इस 'याविनी' वा 'म्लेच्छभाषा' के पढ़े विना किसीका निस्तार ही नहीं है। तात्पर्य यह है कि, कोई भी भाषा हो, यदि उसका साहित्य बढ़ाया जाय, तो वह महती और पूजनीया अवश्य हो सकती है।

भाषाएं दो तरहकी होती है। एक वे **प्राचीन भाषाएं** जो इस समय किसी देश या जातिके मनुष्योंकी बोलचालकी भाषाए नहीं है—केवल प्राचीन ग्रन्थोंके अध्ययनसे ही वे समझी जा सकती है—हा, यह अवश्य है कि, वे किसी प्राचीन समयमें बोलचालकी भाषाएं रह चुकी है। और दूसरी वे **अर्वाचीन भाषाएं** जो इस समय किसी प्रदेश देश या जातिमें बोली जाती है और उन्हें विना पढे लिखे मनुष्य भी समझ सकते है। सस्कृत, मागधी, पैशाची, पाली, लैटिन, अरबी आदि पहिले प्रकारकी भाषाएं है और हिन्दी,

बगला, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच आदि दूसरे प्रकारकी भाषाए है। यद्यपि प्राचीन सभ्यता साहित्य और इतिहासादिकी दृष्टिसे प्राचीन भाषाओंका महत्त्व कम नहीं है और विद्वानोंको उनका अध्ययन करना भी कम आवश्यक नहीं है, तो भी सुखबोध्यता, सर्वजनोपयोगिता, और प्रचारबहुलताके ख्यालसे वर्तमानमें जो भाषाए प्रचलित है, उनका महत्त्व कुछ निराले ही प्रकारका है। प्रचलित भाषाओंमें सबसे अधिक महत्त्वकी बात यह है कि, उनके द्वारा उन बालक युवा वृद्ध पुरुषों और स्त्रियोंमें जिनकी कि वे मातृभाषाए हैं, मनमाना ज्ञानका विस्तार किया जा सकता है। यह लाभ प्राचीन भाषाओंसे नहीं हो सकता है। संस्कृत प्राकृत आदि भाषाए कैसी ही उत्कृष्ट और पूज्य क्यों न हों, परन्तु उनके द्वारा बहुत थोड़े लोगोंका उपकार हो सकता है और सो भी जल्दी नहीं हो सकता है—उसके लिये बहुत समय चाहिये। परन्तु मातृभाषाओंके द्वारा करोडों मनुष्योंमें मनुष्यता लाई जा सकती है। इग्लेंड, जर्मनी, फ्रास, अमेरिका, जापान आदि देशोंने जो अपनी आश्चर्यकारिणी उन्नति की है और अपने यहासे अज्ञानाधकारको जो एक प्रकारसे विदा ही कर दिया है, इसका कारण मातृभाषाए ही हैं। यदि उपर्युक्त देश अपनी वर्तमान प्रचलित भाषाओंका अर्थात् अंग्रेजी जर्मन फ्रेंच जापानी आदि भाषाओंका आदर नहीं करते, केवल अपनी प्राचीन भाषाओंके वा विदेशी भाषाओंके ही भक्त बने रहते, तो इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि, आज वे भी हमारे समान परतत्रताका निर्धनताका और घोर अज्ञानताका दुःख भोगते दिखलाई देते। मातृभाषाओंके इसी महत्त्वको लक्ष्य करके भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रने कहा है:—

निजभाषा उन्नति अहै, सब उन्नातिको मूल।
विन निजभाषाज्ञानके, मिटत न हियको शूल॥

लगभग आधी शताब्दीसे हमारे देशमें शिक्षाविस्तारके लिये बहुत कुछ यत्न हो रहे है। परन्तु उनमें जितनी सफलता होनी चाहिये, उतनी नहीं हुई है। बहुत ही कम—अष्टमाश दशांश भी नहीं हुई है। इसका कारण और कुछ नहीं—मातृभाषाओंके उक्त महत्त्वको न समझना ही है। हमारे देशमें जो लोग शिक्षाविस्तार करनेवाले है, उनमें सबसे बड़ा दल उन लोगोंका है, जो अंग्रेजी शिक्षाके प्रचारको ही सारी उन्नतियोंका मूल समझता है। इस दलमें हमारी गवर्नमेंट भी शामिल है। इस दलकी सारी शक्ति उक्त सात समुद्र पारकी विदेशी भाषाके प्रचारमें ही खर्च हो रही है।

इस दलको हम बुरा नहीं समझते है। कुछ समयके लिये हमको इसकी आवश्यकता थी, इसमें सन्देह नहीं है। क्यों कि इस समय जो संसारकी सर्वोत्कृष्टसाहित्यसम्पन्न भाषा है, उसके ज्ञानके विना देशी भाषाओंका साहित्य हमारी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेवाला नहीं बनाया जा सकता था। परन्तु इस दलकी कृपासे अब देशमें अग्रेजी जाननेवालोंकी संख्या यथेष्ट हो गई है। उनके द्वारा अंग्रेजीके सब प्रकारके उपयोगी ग्रन्थ हमारी भाषाओंमें अवतीर्ण किये जा सकते हैं। और धीरे २ वे सब गुण भी हमारी भाषाओंमें लाये जा सकते है, जो अंग्रेजी संस्कृत आदि भाषाओंमें हैं। इसलिये अब उक्त दलको अपने प्रयत्नकी गति बदल देना चाहिये। उसे हिन्दी बंगला मराठी गुजराती आदि मुख्य २ भाषाओंमें उन सब ग्रन्थोंकी शिक्षा देनेके लिये उद्योग करना चाहिये, जो अंग्रेजीके उच्चसे उच्च श्रेणीके कालेजोंमें पढ़ाये जाते

है। इस प्रयत्नसे दश ही वर्षमें शिक्षाका इतना विस्तार हो जायगा, जितना अंग्रेजीके द्वारा सौ वर्षोंमें भी सभव नहीं है। क्योंकि देश-भाषाओंमें जितने थोड़े व्ययसे, जितने कम परिश्रमसे, और जितने कम समयके व्ययसे शिक्षा दी जा सकती है, उससे कई गुना व्यय बल और समय अग्रेजीके लिये खर्च करना पड़ता है। इसके सिवाय देशभाषाओंमें उच्च श्रेणीके ग्रन्थ हो जानेसे उनके द्वारा साधारण पढ़े लिखे पुरुषोंमें भी जो कि स्कूलों और कालेजोंमें नहीं पढेंगे, उच्च प्रकारके ज्ञानका जितना अधिक विस्तार होगा, उसका तो अनुमान भी नहीं हो सकता है।

शिक्षाविस्तार करनेवालोंमें एक दल पुराने ढंगके लोगोंका हैं। उक्त दलका सिद्धात यह है कि, प्राचीन सस्कृतभाषाके ज्ञानके विस्तारसे ही देशका उद्धार होगा। उसका कथन है कि, जिस दिन न्याय, व्याकरण, काव्य आदि विषयोंके जाननेवाले घर घर हो जावेंगें, उस दिन भारत उन्नतिके शिखर पर जा पहुँचेगा। इस दलके लोग अपनी सारी शक्ति सस्कृत पाठशालाओंके स्थापित करनेमें व्यय करते है। यद्यपि अंग्रेजी दलके समान इस दलमें कर्तृत्व-शक्ति नहीं है और इसलिये इसके द्वारा सस्कृतका ऐसा एक भी विद्यालय प्रतिष्ठित नहीं हो सका है, जो अग्रेजीके एक साधारण कालेजकी भी बराबरी कर सके, तो भी छोटी छोटी सैकड़ों पाठ-शालाए इसके द्वारा चल रही हैं और नित्य नई नई खुलती तथा बन्द होती रहती है। हम सस्कृत शिक्षाके विरोधी नहीं, परन्तु इस दलकी पाठशालाओंको देखकर हमको दया आती है और दुःख भी होता है। ये लोग पहाड खोदकर चूहा निकालनेमें ही आनन्द मानते है। कोरी व्याकरण, न्याय और काव्यकी शिक्षा देकर ये

लोग ऐसे 'पंडित' तयार करते है, जो सिवाय 'पंडिताई' करनेके और कुछ भी नहीं कर सकते हैं। इनके महत्परिश्रमके ये महाप्रसादस्वरूप पंडित व्यवहारज्ञानसे एक प्रकारसे शून्य ही होते है। अंग्रेजीको तो ये म्लेच्छ भाषा कहते ही हैं, किन्तु बेचारी देश भाषाओंके लिये भी इनके मुंहसे कम सुन्दर शब्द नहीं निकलते है। कोई इनसे हिन्दीमें बातचीत करना प्रारभ करे, तो ये डांट करके कहते है–भाषा रण्डायाः किं प्रयोजनम्। मानो माताके गर्भसे बाहिर होते ही ये संस्कृत बोलने लगे थे। और मातृभाषाने इनपर कुछ उपकार ही नहीं किया है। यदि इस दलके लोग देशभाषाका महत्त्व समझें और कमसे कम इतनी ही कृपा करें कि, संस्कृतके साथ साथ देशभाषाओंमें भी शिक्षा देने लगें तथा व्यवहारोपयोगी विषयोंका ज्ञान भी अपने विद्यार्थियोंको कराने लगें, तो बहुत बड़ा लाभ हो। इस पद्धतिसे संस्कृत जो कि आजकल एक प्रकारसे भिक्षुकोंकी वा पोपलोगोंकी भाषा कहलाने लगी है, नहीं कहलावे और इसके जाननेवाले भी देशका कल्याण साधन करने लगें।

इस दलके लोग हमारे जैनसमाजमें भी बहुत है। यद्यपि जैनधर्मका साहित्य संस्कृतमें कम नहीं है, तो भी यह समझना बड़ी भारी भूल है कि, जैनियोंकी प्रधानभाषा संस्कृत ही है। जिस समय देशमें जैनियोंका प्रभाव कम हो गया था, वैदिकमतोंका फिरसे उत्थान हुआ था, और प्राकृतभाषा बोलचालकी भाषा नहीं रही थी–इसके स्थानमें परिवर्तन होते होते नई भाषाएं बन गई थीं, उस समय जैन विद्वानोंने संस्कृतकी अन्यधर्मियोंमें विशेष प्रतिष्ठा देखकर तथा उसे स्थायी और देशव्यापी समझकर उसमें ग्रन्थ रचना करना प्रारभ किया था। इसके पहिले जैनियोंके ग्रन्थ प्रायः प्राकृत

वा मागधी भाषामें ही थे। फिर यह समझमें नहीं आता है कि, जैनी अपनी सारी शक्ति संस्कृतके ही प्रचारमें क्यों व्यय कर रहे हैं? यदि उन्हें अपनी प्राचीन भाषासे ही मोह है, तो प्राकृत वा मागधीमें शिक्षा देनेका उद्योग क्यों नहीं करते हैं और यदि मोह नहीं है, तो देशभाषाओंने क्या बिगाड़ा है? हमारी समझमें तो जैनियोंमें भाषासम्बन्धी आग्रह होना ही नहीं चाहिये। क्यों कि हमारे पूर्वाचार्योंकी सदासे यह पद्धति रही है कि, वे अपने उपदेशोंको उन्हीं भाषाओंमें लिखते तथा प्रचार करते थे कि, जिन्हें सर्व साधारण लोग समझ सकते थे। उनका ध्यान भाषाओंपर कभी नहीं रहा है—विशेष लाभपर रहा है। जिस समय देशमें प्राकृत बोलचालकी भाषा थी, उस समय उन्होंने प्राकृतमें ग्रन्थ रचना की थी, जिस समय सब जगह संस्कृतकी तूती बोलती थी, उस समय संस्कृतमें रचना की थी और अब जब वर्तमान भाषाओंका प्रचार हुआ, तब जयपुर आगरा आदिके विद्वानोंने भाषावचनिकामें सैकड़ों ग्रन्थ बना डाले। इसी लाभकी और उपयोगकी बुद्धिसे प्रेरित होकर पूर्वाचार्योंने कनडी तामिल आदि भाषाओंमें भी हजारों ग्रन्थ बनाये थे। यदि उन्हें किसी भाषाका ही आग्रह होता, उपदेशके प्रचारका ख्याल नहीं होता, तो इन नाना भाषाओंमें वे क्यों ग्रन्थ रचना करते? वे यह नहीं चाहते थे कि, हमारे विचारोंको केवल विद्वान् लोग ही समझ सकें—उनका हृदय इतना संकीर्ण नहीं था। उनके विशाल हृदयमें निरन्तर यही वासना रहती थी कि जिस तरह हो मनुष्यमात्रमें हमारे उदार धर्मज्ञानका विस्तार हो। श्रीहरिभद्र सूरिने सिद्धान्त शास्त्रोंको प्राकृतमें बनानेका प्रयोजन देखिये क्या बतलाया है—

बालस्त्रीवृद्धमूर्खाणां नृणां चारित्रकांक्षिणाम्।
अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः सिद्धान्तः प्राकृतः स्मृतः ॥

अर्थात्—चारित्र धारण करनेकी इच्छा करनेवाले बाल स्त्री वृद्ध और मूर्ख पुरुषोंके उपकारके लिये तत्त्वज्ञानियोंने सिद्धान्तशास्त्रोंकी रचना प्राकृतमें की। इसीके अनुसार हमें भी चाहिये कि, अपने हृदयमें इस आग्रहको स्थान न दें कि, अमुक भाषा ही अच्छी है, इसलिये उसीके प्रचारका यत्न करना हमारा कर्तव्य है। हमें सदा उपकारकी दृष्टि रखनी चाहिये। जिस भाषासे बहुजनसमाजका अल्पपरिश्रमसे उपकार हो, इस समय हमें उसीकी शरण लेनी चाहिये। उसीमें अपने धर्मग्रन्थोंका अनुवाद करना चाहिये, उसीमें अन्य पुरानी और नई भाषाओंके साहित्यका अवतरण करना चाहिये, उसीको प्रौढ़ पुष्ट और साहित्यसम्पन्न बनानेका यत्न करना चाहिये और उसीके द्वारा अपनी सन्तानको विद्वान् बनाना चाहिये।

मधुकरी।

प्राचीन समयमें विद्याध्ययन तथा ज्ञानलाभ करनेकी जो परिपाटी थी, वह बहुत ही सुलभ और स्वाधीन थी। उस समय छात्रालयोंका, छात्रवृत्तियोंका और स्कालर्शिप देनेवाली संस्थाओंका अभाव था। तो भी लाखों विद्यार्थी ज्ञानसपादन करके अपने धर्मकी और राष्ट्रकी उन्नति करते थे। वह परिपाटी विद्यार्थियोंकी भिक्षावृत्ति वा मधुकरीवृत्ति थी। जिस प्रकार मधुकर अर्थात् भ्रमर नाना फूलोंसे एक एक बिंदु मधु संग्रह करके मधुचक्रको पूर्ण करता है, उसी प्रकारसे मधुकरीवृत्तिके धारण करनेवाले विद्यार्थी अनेक

गृहस्थोंके घरसे थोड़ी २ भिक्षा लेकर अपना जीवन निर्वाह करते थे। एक विन्दु मधुके दानसे जिस प्रकार फूलोंको किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता है, उसी प्रकारसे गृहस्थोंको अपने भोजनालयमेंसे थोडीसी भिक्षा दे देनेमें भी किसी प्रकारका कष्ट अनुभव नहीं करना पड़ता था, वल्कि जब वे देखते थे कि, हमारी थोड़ीसी भिक्षासे अनेक विद्यार्थी अपार ज्ञानसमुद्रमें अवगाहन कर रहे हैं, तब उन्हें बड़ा भारी आनन्द होता था।

सागारधर्मामृत तथा आदिपुरान आदि ग्रन्थोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य वर्णके विद्यार्थियोंको ब्रह्मचर्य पूर्वक रहकर विद्याध्ययन करनेका तथा भिक्षासे जीविका निर्वाह करनेका विधान मिलता है। राजपुत्रोंको छोडकर अन्य सम्पूर्ण द्विजजातिके बालकोंको भिक्षा मागकर उदरपोषण करनेकी उस समयकी सामान्य परिपाटी थी। और खूबी यह कि, इस प्रकारकी भिक्षावृत्ति कोई नीचकर्म नहीं समझा जाता था। भिक्षा मांगनेवाले विद्यार्थियोंको न तो कोई दूसरा अनादरकी दृष्टिसे देखता था और न विद्यार्थी स्वय ही इसमें अपने गौरवकी हानि समझते थे। उस समय मुनियों तथा आचार्योंके संघके साथमें सैकडों विद्यार्थी रहते थे और जिस नगरके समीप मुनियोंका सघ ठहरता था, उसमें जाकर भिक्षासे अपना उदरपोषण करते थे। इस तरह सहज ही हजारों लाखों विद्यार्थी स्कालर्शिप आदिकी चिन्तासे मुक्त रहकर ज्ञानार्जन करते थे।

वैदिकमतोंमें भी विद्यार्थियोंके लिये इसी प्रकारकी भिक्षा परिपाटी प्रचलित थी। वैदिक ऋषि वा गुरु वनोंमें रहते थे। विद्यार्थी उनसे विद्याध्ययन करते थे और भिक्षा मांगकर उससे केवल अपना ही नहीं किन्तु गुरुका भी उदरपोषण करते थे।

यह प्रथा उस समय भी अच्छी तरह प्रचलित थी, जब भारतमें सब ओर बौद्धधर्मकी विजयपताका फहराती थी। नालन्दा, तक्ष-शिला, आदि स्थानोंके प्राचीन विश्वविद्यालय जिनमें कई २ हजार विद्यार्थी पढ़ते थे, इसी मधुकरीवृत्तिके सहारे चलते थे।

यह परमोत्तम परिपाटी यद्यपि इस समय लुप्तप्राय हो गई है, तो भी यह बड़ी प्रसन्नताका विषय है कि, अभीतक इसका नाम-शेष नहीं हुआ है। दक्षिणके बहुतसे ब्राह्मण विद्यार्थी अब भी इस वृत्तिसे अपना उदर निर्वाह करके विद्याध्ययन करते है और अपने पूर्वजोंकी एक अनुकरणीय पद्धतिकी रक्षा कर रहे है। पूना शहरमें इस समय सौसे अधिक विद्यार्थी ऐसे है, जो इस मधुकरीवृत्तिकी सहायतासे विद्यार्जन कर रहे है। ये विद्यार्थी प्रात.स्नान और सन्ध्यान्हिक समाप्त करके हाथमें भिक्षाकी झोली लेकर मधुकरीके लिये निकलते है। एक चौखूंटे कपड़ेके चारों खूंट एकत्र बांध लेनेसे झोली बन जाती है। इस झोलीके बीचमें एक गहरी थाली रक्खी जाती है, जिसमें भिक्षा सग्रह की जाती है। विद्यार्थी झोली लेकर गृहस्थोंके घर जाता है और गृहिणीको सम्बोधन करके कहता है, **ओं भवति भिक्षां देहि**। गृहिणी यह शब्द सुनते ही घरमें जो कुछ रंधा हुआ भोजन होता है, उसमेंसे थोड़ासा लेकर बाहर आती है और विद्यार्थीकी थालीमें रख देती है। गेहूं या ज्वारकी रोटीका आधा चौथाई टुकड़ा, भात, दाल, तरकारी आदि जो कुछ थोड़ा बहुत वह देना चाहे, दे सकती है। यह आवश्यक नहीं है कि, बहुतसा होवे, तब ही देवे। कभी कभी एक ग्रास भात और एक चमची दाल ही एक घरकी यथेष्ट भिक्षा होती है। विद्यार्थी उसके लेनेमें भी किसी प्रकारके खेदका अनुभव नहीं करता है।

एक बात और भी विशेष ध्यान देने योग्य है कि, ये विद्यार्थी उच्च ब्राह्मणकुलके हैं, तो भी अब्राह्मणकुलकी स्त्रीके हाथके पकाये हुए भोजनको ग्रहण करनेमें आनाकानी नहीं करते हैं। वे समझते हैं कि, छात्रानां अध्ययनं तपः अर्थात् छात्रोंके लिये विद्याध्ययन ही बडाभारी तप है। इस तपस्याके समक्ष जाति भेदको वे अकिंचित्कर समझते हैं।

इस मधुकरीवृत्तिसे विद्यार्थियोंको जो ज्ञानार्जनका सुभीता होता है, वह तो होता ही है, इसके सिवाय एक बड़ा भारी लाभ यह होता है कि, उनके हृदयसे तुच्छ अभिमानका तथा मिथ्या मर्यादागर्वका कुसंस्कार नष्ट हो जाता है और वे विनयशील, सरल, नम्र तथा स्वावलम्बी बन जाते हैं। उन्हें उस स्वाधीन-वृत्तिका अभ्यास भी पहिलेसे हो जाता है, जो आगे क्षुल्लक ऐलक, अवस्थामें तथा अनगारावस्थामें धारण करनी पड़ती है और जिसके धारण करनेकी इच्छा प्रत्येक मुमुक्षुको होना चाहिये।

इस समय हमारी जितनी पाठशालाए, विद्यालय और बोर्डिंग आदि संस्थाए हैं, उन सबके प्रबन्धकर्ताओंसे प्राय यही शिकायत सुननेमें आती है कि, क्या करें विद्यार्थियोंकी अर्जियां तो बहुत आती हैं, परन्तु स्कालर्शिपोंकी गुंजाइश नहीं होनेसे वे भरती नहीं किये जा सकते हैं। यदि ये सब प्रवन्धकर्ता अपने छात्रोंको मधुकरी-वृत्तिका महत्व समझा देवें और स्थानीय गृहस्थोंको इस सहज आहारदानका स्वरूप बतला देवें, तो हमारी समझमें सैकडों विद्यार्थियोंका निर्वाह होने लगे और विद्याप्रचारका एक उत्तम मार्ग फिरसे प्रचलित हो जाय।

यद्यपि हमारे यहां उत्कृष्ट श्रावकों अर्थात् क्षुल्लकोंके लिये अनेक घरोंसे बनाया हुआ भोजन लेकर एक स्थानमें बैठकर

खानेका विधान है, तथा मुनियोंको भी गृहस्थजन अपने घरकी कच्ची रसोई बनमें ले जाकर तथा चौकेसे बाहर लाकर आहार कराते थे। इसलिये वास्तवमें देखा जाय, तो चौका चूल्हेका प्रपंच जो कि आजकल भारतवर्षकी प्रायः प्रत्येक जातिके पीछे संक्रामक रोगकी तरह लग गया है, कोई धर्मका तत्त्व नहीं है। तो भी इस विचारसे कि, अभी हमारे समाजमें अशिक्षितोंकी संख्या बहुत है और अपनी रूढियोंको वे धर्मसूत्रोंसे कम महत्व नहीं देते हैं, हमें वर्तमानमें कुछ समयके लिये अनेक घरोंसे सिद्ध भिक्षा मागनेकी परिपाटीको तो बन्द रखना चाहिये परन्तु विद्यार्थी किसी श्रावकके घर जाकर भोजन कर आया करे, इस परिपाटीको अवश्य चला देना चाहिये और प्रयत्न करनेसे इसमें सफलता भी अच्छी हो सकती है। एक कुटुम्बमें एक विद्यार्थीका भोजन विना किसी कष्टबोधके सहज ही हो सकता है। शहरोंमें सैकडों जैनियोंके कुटुम्ब ऐसे होते है, जिनमें एक दो विद्यार्थीयोंका निर्वाह यों ही हो सकता है।

बंगालप्रान्तके शहरोंमें जितने वकील बैरिष्टर जज जमींदार आदि प्रतिष्ठित पुरुष है, उन सबके घरोंमें एक एक दो दो विद्यार्थी रहते है, और उनकी भोजनशालामें भोजनकरके हाईस्कुलों तथा कालेजोंमें पढ़ते है। विद्यार्थियोंको भोजनकी सहायता देना वहा पर एक प्रतिष्ठाका कार्य समझा जाता है। जिस धनी कुटुम्बसे एकाध विद्यार्थीको सहायता नहीं मिलती है, साधारण लोग उसकी निन्दा करते हैं। गरज यह कि, वहांके प्रतिष्ठित पुरुषोंका यह कर्तव्य हो गया है कि, वे एक दो विद्यार्थियोंको अधिक नहीं तो कमसे कम भोजन अवश्य करावें। यही कारण है कि, आज बंगालमें शिक्षाका विस्तार अन्य सब प्रान्तोंकी अपेक्षा बहुत अधिक हो

गया है। बंगाली धनिकोंकी यह प्रथा भी हमारे समाजके धनि-कोंके अनुकरण करनेके योग्य है।

इस समय हमारे देशके सैकड़ों विद्यार्थी दूसरे देशोंमें जाकर विद्याध्ययन कर रहे हैं। उनमेंसे अमेरिकामें बीसों विद्यार्थी ऐसे है, जो इस भिक्षावृत्तिसे हजारों गुणे कष्टके और अपमानके कार्य करके नाना प्रकारके ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं। ये विद्यार्थी सड़कोंपर गिट्टी फोड़ते हैं, होटलोंमें बुहारी लगाते हैं, झूठे वर्तन मांजते हैं, हल जोतते हैं, बच्चोंको खिलाते हैं, मिशीनें चलाते हैं; गरज यह कि छोटेसे छोटे कार्य करनेमें भी वे किसी प्रकारका सकोच नहीं करते हैं, और इन कामोंसे जो रुपया कमाते हैं, उनसे अपना उदर निर्वाह करके कालेजोंमें उच्च श्रेणीकी विद्याएँ पढ़ते हैं। वे समझते हैं कि, न्यायसंगत कर्म करनेमें लज्जाकी आवश्यकता नहीं है और विद्या ऐसा बहुमूल्य पदार्थ है कि, उसके प्राप्त करनेके लिये मरणतुल्य कष्ट भी सहन करना पड़े, तो सहन करना चाहिये। जिस समय हमारे देशके विद्यार्थियोंमें ऐसी बुद्धि उत्पन्न होगी, उस समय वे मधुकरीवृत्तिको धारण करनेमें कभी सकोच नहीं करेंगे और तब देशका उद्धार होनेमें कोई सन्देह नहीं रहेगा। जो छात्र छात्रावस्थामें जातिके झूठे अभिमानसे अभिभूत रहते हैं और यह कार्य छोटा है, हम कैसे करें, इस बातका ख्याल रखते हैं, वे हमारी समझमें विद्याध्ययन करनेके पात्र ही नही है, उनसे देशका और जातिका कल्याण होनेकी आशा नहीं रखना चाहिये।

बम्बईमें एक ऐसी विद्यार्थी—संस्था है, जो असमर्थ विद्यार्थियोंको सहायता देनेके लिये अन्न संग्रह करती है। उसके मेम्बर (विद्यार्थी प्रत्येक रविवारको झोलिया लेकर निकलते हैं और गृहस्थोंके

रसोई घरोंके द्वारोंपर एक २ झोली टांग आते है और गहस्वामि-नीसे प्रार्थना कर आते है—माता, जिस समय रसोईमें चावल ले जाने लगो, उस समय एक मुठी इस झोलीमें भी डाल दिया करो। इसके पश्चात् दूसरे रविवारको जाते है और पहिली झोलियां लेकर दूसरी खाली झोलियां टाग आया करते है। इस तरह सहज ही उक्त विद्यार्थी प्रति सप्ताह कई मन चावल इकट्ठा कर लेते है और उससे लगभग ५० असमर्थ विद्यार्थियोंके उदरपोषणका प्रबन्ध कर लेते है। यह भी एक प्रकारकी मधुकरीवृत्ति है। इससे भी हमारे समाज़के सैकड़ों असमर्थ विद्यार्थी विद्यालाभ कर सकते है।

इस समय जब कि हमारे समाजके धनिक विद्यासंस्थाओंमें सहायता देनेसे प्रायः उदासीन है, इस स्वाधीन उपायको काममें लानेकी बड़ी भारी आवश्यकता है। जिन्हें जाति धर्मकी उन्नति करनेकी सच्ची रुचि हुई हो, उन्हें चाहिये कि, इस मधुकरी वृत्तिका अवलम्बन करनेके लिये छात्रोंको उत्साहित करें—गृहस्थोंको उपदेश देवें और इसमें सफल प्राप्त करके धनोमत्त पुरुषोंको बतला देवें कि, तुम्हारे कृपाकटाक्षके विना भी करनेवाले सब कुछ कर सकते है।

जयमती।

आसामके इतिहासका अध्ययन करनेसे स्त्रीचारित्रका एक उच्च-आदर्श प्राप्त होता है। शिवसागर जिलाकी प्रातःस्मरणीया रानी जयमती सत्रहवीं शताब्दीमें सहिष्णुताका और पातिव्रत्य धर्मका जो उज्ज्वल दृष्टान्त दिखला गई है, वह जगतके इतिहासमें अतुलनीय है। जयमतीरानीकी अपूर्व कहानी भूतकालकी सीता दमयन्ती राजीमती आदि सतीस्त्रियोंके पतिप्रेमकी कथाओंको स्मृति-पटपर जागरूक कर देती है।

इस्वी सन् १६७९ में 'चामगुरीया' राजवंशका चुलिकफा नामक राजा आहोमके राजसिंहासनका अधिकारी हुआ। यह राजा अल्पवयस्क और क्षीण शरीर था, इसलिये लोग इसे लराराजा कहते थे। आसामकी भाषामें लरा शब्दका अर्थ बालक वा शिशु होता है। उमरमें कम होने पर भी लराराजा बुद्धिमान् था। उस समय राज्यकी जैसी दशा थी और मंत्रियोंकी शक्ति जैसी बढ़ी चढ़ी थी, उसका विचार करके इसने राजा होनेके योग्य जो राजकुमार थे, उनको गुप्त घातकोंके द्वारा अगहीन वा प्राणहीन कर डालनेका निश्चय किया। इसे भय था कि, यदि मंत्रियोंकी मुझसे न बनेगी तो ये मुझे सिंहासनसे च्युत करके किसी दूसरे राजकुमारको राजा बना देंगे। लराराजाका नृशंस कार्य चलने लगा। अनेक वंशोंके अनेक राजकुमारोंको उसने विकलांग वा विकल प्राण कर डाले। दुर्बल राजा स्वभावसे ही भीरु कापुरुष और अत्याचारी होते हैं। लराराजा स्वयं दुर्बल था, इस लिये उसने इस प्रकार कापुरुषता और निर्दयताका आश्रय लेकर अपनी राजभोगकी तृष्णाको पूर्ण करनी चाही।

तुंगखुंगीयवंशके गोवर राजाके गदापाणि नामक पुत्रने जो कि देवतुल्य तेजस्वी, असाधारण बलशाली, और असीम साहसी था, लराराजाके हृदयमें भय उत्पन्न किया। गदापाणि ऐसा बली था कि, उसने एक दिन तीन मत्त हाथियोंके दांत पकड़कर उन्हें हिलने चलने नहीं दिया था। दो चार गुप्त घातकोंके द्वारा ऐसे पुरुषसिंहको अंगहीन करना असंभव समझकर लराराजाने उसके वध करनेके लिये विपुल आयोजन किये। किसी तरह यह संवाद गदापाणिको भी मालूम हो गया परन्तु इससे उसका साहसी हृदय

जरा भी विचलित नहीं हुआ। गदापाणिकी स्त्री रानी जयमती बड़ी ही सच्चरित्रा और पतिव्रता थी। वह अपने स्त्री-सुलभ स्वभावसे पतिकी रक्षाके लिये व्याकुल हो कर उससे कहीं भाग जानेके लिये विनय अनुनय करने लगी। गदापाणि पत्नीके प्रस्तावसे किसी प्रकार सहमत नहीं हुए। उन्होंने कहा, "मैं मृत्युसे डरनेवाला मनुष्य नहीं हूं। तुम्हें और अपने दुधमुँहे बच्चोंको छोड़कर मै यहासे कभी नहीं भागूंगा।" जयमती कातर होकर बोली "नाथ! आपका वीर ह्रहय मृत्युभयसे कंपित नहीं हो सकता-आप मृत्युके भयको तुच्छ समझते है, यह मै अच्छी तरहसे जानती हूं, किन्तु यह तो सोचिये कि, राजसेवक आपको पकड़करके ले जावेंगे और वधकर डालेंगे, तो हम लोगोंकी क्या दशा होगी? आपके जीवनप्रदीपके निर्वाण होनेपर आपकी यह दासी तो एक घड़ीभर भी जीती नहीं रह सकती है, तब अपने इन सोनेसरीखे बालकोंकी क्या व्यवस्था होगी? इसलिये मेरी प्रार्थना यह है कि, आप इस पापराज्यको छोड़कर कुछ कालके लिये गुप्त हो जावें। यदि कभी जगदीश्वरके अनुग्रहसे शुभदिन आवेगा और भाग्यचक्रका परिवर्तन होगा, तो आप लौटके आ सकेंगे। आपका जीवन अमूल्य है। उसकी रक्षाके लिये अवश्य ही कोई उपाय करना चाहिये।" निदान गदापाणि पत्नीके कातर अनुरोधके आगे पराजित हो गये। गुप्तवेश धारण करके वे नागापर्वतकी ओर पलायन कर गये।

इधर गदापाणिके पकड़नेके लिये लराराजाने बहुतसी सेना भेजी। सेनाने लौटकर राजासे उसके भागजानेका समाचार सुनाया। दुर्बल और कापुरुष राजा गदापाणिके भागजानेसे शंकित होकर उसका पता लगानेके लिये व्याकुल हो उठा। उसकी पत्नी जय-

मतीके पास दूत भेजकर उसने गदापाणिका पता पुछवाया, परन्तु जयमतीने अपने पतिके सम्बन्धमें कोई भी बात नहीं बतलाई। उसने कहला भेजा कि, स्वामीका पता उसकी स्त्रीके द्वारा कदापि नहीं मिल सकेगा है। दूतके मुंहसे यह बात सुनकर लराराजा क्रोधसे पागल हो गया। उसने आज्ञा दे दी कि, जयमतीको इसी समय कैद करके ले आओ। आज्ञा पाते ही राजसेवक दौड़े गये और जयमतीको कैद करके राजाके समीप ले आये। लराराजाने पूछा "तेरा पति कहां छुप रहा है, शीघ्र बतला दे नहीं तो बेतोंकी मारसे तुझे यमलोकका रास्ता बतला दिया जागया।" जयमतीने दृढताके साथ उत्तर दिया,—

"यह मैं पहिले ही दूतके द्वारा आपसे कहला चुकी हूं कि, अपने स्वामीका पता मै कभी नहीं बतलाऊंगी, फिर आप मुझसे बार बार क्यों पूछते है? मेरी प्रतिज्ञा अटल तथा अचल है। आप मेरे शरीरपर यथेच्छ अत्याचार कर सकते हैं, परन्तु मेरे मनके ऊपर मेरा ही सम्पूर्ण अधिकार है—अन्य किसीका नहीं है। यह नश्वर शरीर चिरस्थायी नहीं है, यह मै अच्छी तरहसे जानती हूं, इसलिये आप मेरेद्वारा पतिके पता पानेकी आशाको छोड़ दीजिये।" लराराजाने क्रोधसे हिताहित विवेक शून्य होकर आज्ञा दी कि, "जयमतीको ले जाओ, और इसे राजमहलके सम्मुख बांध-करके विना विराम लिये बेतोंकी मार मारो। इतना याद रखना कि, यह मरने न पावे, केवल मारसे इसके शरीरको यन्त्रणा पहुंचती रहे। जब तक यह अपने पतिका पता नहीं बतलावे, तब तक बराबर इसे इसी प्रकारकी शास्ति देते रहो। जैसे बने तैसे इससे गदापाणिका पता पूछ लेना है।"

मूढ़ राजाने अपने क्षुद्र, दुर्बल और पशुहृदयको आदेश मानकर संसारके समस्त मानवहृदयोंका अनुमान किया था। उसने सोचा था कि, जयमती वेतोंकी मारके कष्टसे अपने पतिका पता बतला देगी। किन्तु दिनपर दिन जाने लगे, जयमतीने असह्य अत्याचारोंको सहन करके भी गदापाणिके सम्बन्धमें एक शब्द भी ओठोंसे बाहिर नहीं निकाला। देशकी सारी प्रजा राजाके पैशाचिक अत्याचारको देखती हुई जयमतीके लिये चुपचाप आँसू बहाने लगी। उस समय देशमें शक्तिशाली पुरुषोंका अभाव था, मंत्रीगण भी अपनी आपसी कलहके कारण दुर्बल हो रहे थे, अतएव राजाके अत्याचारका निवारण नहीं हो सका।

जयमतीके ऊपर जो अत्याचार हो रहा था, उसका समाचार क्रमसे नागापर्वतपर गदापाणिके कानों तक भी पहुंच गया। उसे सुनते ही वे लराराजाकी पापपुरीकी ओर रवाना हो गये और वेष छुपाकर जयमतीके पास आकर बोले,—"राजकुमारी तू व्यर्थ ही क्यों इतना कष्ट सहन कर रही है? स्वामीका पता बतलाकर इस यातनासे अपना पिंड क्यों नहीं छुड़ा लेती है?" जयमती उस समय नेत्र बन्द किये हुए ईश्वर ध्यान और स्वामीके चरणोंका ध्यान करती हुई चुपचाप बेत खा रही थी। इसलिये गदापाणिकी बात उसके कर्णगोचर नहीं हुई। गदापाणि इसके पश्चात् एकवार फिर जयमतीके पास आकर बोले;—"हे देवी, स्वामीका पता बतलाकर अपनी छुट्टी क्यों नहीं करा लेती? व्यर्थ कष्ट पानेसे क्या लाभ है?" अबकी वार जयमतीने गदापाणिको देख लिया और पहिचान भी लिया। वह शकित-चित्त होकर सोचने लगी जिसके लिये इतना कष्ट और इतना अपमान सहन कर रही हूं, और जिसकी

रक्षाके लिये मैंने अपना जीवन भी उत्सर्ग कर दिया है, वह यदि यहा स्वयं ही आकर अपनेको पकड़ा देगा, तो सब ही व्यर्थ गया समझना चाहिये। जयमतीको रुलाई आ गई। असहनीय अत्याचार और पीड़नसे जिसकी शान्ति नष्ट नहीं हुई थी, घोर-तर वेत्राघातसे जर्जरित होकर भी जो प्रशान्त मूर्ति धारण करके स्वामीके पवित्र चरणोंका ध्यान करती हुई दिन काटती थी, उसका अबकी बार धैर्यच्युत हो गया। मेरा सारा ही उद्देश्य विफल हो गया, यह देखकर वह अस्थिर हो उठी और बोली,—"जब मै कई बार कह चुकी हूं कि, मै अपने स्वामीका पता कभी नहीं बतला-ऊगी तब फिर यह पुरुष मुझे बार २ पूछकर क्यों तग करता है? वह यहासे चला क्यों नहीं जाता? सती स्त्री अपने स्वामीके लिये सब कुछ सहन कर सकती है। स्वामीके कल्याणके लिये अपना प्राण दान कर देना भी सती नारीका कर्तव्य है।" इन वाक्योंके उच्चारण करते समय जयमती गदापाणिकी ओर अतिशय कातर दृष्टिसे देखकर उन्हें उस स्थानसे शीघ्र चले जानेके लिये सकरुण प्रार्थना करती थी। गदापाणि इस समय भी सतीके सकरुण अनु-रोधकी उपेक्षा नहीं कर सके, वहासे उसी समय चले गये। जय-मतीपर वेतोंकी मार बराबर पड़ती रही।

गदापाणिके चले जानेपर लराराजाके निर्दय अनुचर और भी १४–१५ दिन जयमतीपर अत्याचार करते रहे। इस तरह सब मिलाकर २१–२२ दिन दुस्सह अत्याचार सहन करके और उस यन्त्रणापर भ्रूक्षेप मात्र भी नहीं करके उस परम साध्वीका प्राण-पखेरू अपने लोहूलुहान हुए शरीरको छोडकर उड़ गया और संसारके इतिहासमें अतुलनीय सहिष्णुता और पातिव्रत्यका एक जाज्वल्यमान उदाहरण अंकित कर गया।

अपनी साध्वी पत्नीका स्वर्गारोहण संवाद पाकर गदापाणिसे फिर स्वस्थ नहीं रहा गया। वह शीघ्रही लराराजाके दुष्कर्मोंका प्रतिफल देनेके लिये कटिबद्ध हो गया और एक बलशालिनी सेनाको एकत्र करके लराराजापर चढ़ गया और उसे राज्यच्युत करके आप सिंहासनका अधिकारी हो गया। इसके पश्चात् उसने लराराजाको मारके उसके पापोंका उपयुक्त प्रायश्चित्त दिया।

गदापाणिने गदाधरसिंह नाम धारण करके इस्वी सन् १६८१ से १६९९ तक राज्य किया। पिताकी मृत्युके अनन्तर उसके पुत्र रुद्रसिंहने राज्यसिंहासनको सुशोभित किया। रुद्रसिंह आसामका एक सुप्रसिद्ध राजा हुआ। उसने अपनी माताकी कीर्तिको चिर-स्मरणीय करनेके लिये जिस स्थानपर जयमतीपर अत्याचार किया गया था, वहीं 'जयसागर' नामका विस्तृत तालाब खुदवाकर और उसीके समीप 'जयदोल' नामका एक देवमन्दिर निर्माण करवाकर निजमातृभक्तिका परिचय दिया। शिवसागर जिलेको जयसागर तालाबका निर्मल जल आज भी वायुके झकोरोंसे नृत्य करता हुआ जयमतीकी किर्तिकहानी, रुद्रसिंहकी मातृभक्ति और आसामके गतगौरवका प्रचार करता दिखलाई देता है। *

विविध विषय।

शाही दरबार—अबकी बारका दिल्लीदरबार अभूतपूर्व हुआ जबसे अंग्रेजी राज्य भारतमें स्थापित हुआ, तबसे यहाकी प्रजाने अपने राजराजेश्वरके दर्शन नहीं किये थे। प्रजाकी यह कामना अबके दर-बारमें पूर्ण हो गई। कहते है, महाराज युधिष्ठरके पश्चात् कई हजार

* बंगला प्रवासीमें प्रकाशित हुए श्रीरजनीकान्तरायके एक लेखका संक्षिप्त अनुवाद।

वर्षोंमें प्राचीन इन्द्रप्रस्थ वा वर्तमान दिल्ली राजधानीको यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है। बीचमें यद्यपि अनेक सम्राट् और बादशाह देहलीके सिंहासनपर आरूढ होते रहे हैं, परन्तु उनमेंसे किसीको भी चक्रवर्ती नहीं कह सकते है। वास्तवमें पूछा जाय, तो धर्मराजके पश्चात् महाराज पचमजार्ज ही इस महान् पदके अधिकारी हुए है। आज हमारे महाराज पचमजार्जका राज्यविस्तार इतना वडा है कि, उसमें सूर्यका उदय कहीं न कहीं वना ही रहता है। उनके राज्यकी शीतल छायामें इस समय लगभग ४० करोड प्रजा रहती है। १२ दिसम्बरके चिरस्मरणीय दिन महाराजका राज्याभिपेक समारम हुआ। उस समय महाराजने भारतीय प्रजाके लिये जो सहानुभूति सूचक शब्द सुनाये वे वड़े ही महत्त्वके थे। उनसे भारतको वहुत वडा आश्वासन मिला है। उसे आशा हो चुकी है कि, अब मै जैसा हू वैसा ही न रहूगा। महाराजके सुशासनमें मैं उन्नतिकी परमसीमापर पहुच जाऊगा। भारतीय प्रजा इस राज्याभिषेकके उपलक्षमें जो वहुतसी वातें चाहती थी, उनमेंसे कई वातें उसे मिली हैं। एक तो महाराजने भारतकी आमदनीपर सार्वजनिक शिक्षा विस्तारका अधिक सत्व स्वीकार किया है, और शिक्षाके लिये ५० लाख रुपया अधिक देना मजूर किया है। आगामी वर्षोंमें इससे भी अधिक दिया जायगा। दूसरे वंगभग रद्द कर दिया गया है, जिसके कारण एक वगालकी ही प्रजाको नहीं सारी भारतीय प्रजाको मर्मभेदी कष्ट हुआ था। इसके सिवाय और भी कई छोटी २ दया दिखलाई गई हैं। एक भारी परिवर्तन यह हुआ है कि, भारत साम्राज्यकी राजधानी कलकत्तासे उठाकर दिल्लीमें स्थापित की जायगी। वगालमें एक गवर्नर रहेगा। विहार उड़ीसा और छोटा नागपुरको मिलाकर एक चीफ कमिश्नरी वना दी जायगी। दरवार

बड़े ठाटवाटसे हुआ। भारतके प्रायः सभी राजा महाराजा इस समय दरबारमें उपस्थित हुए थे। कुछ दिनोंके लिये देहली स्वर्ग-पुरी बन गई थी। सारे देश भरमें इस महोत्सवका आनन्द स्रोत वह रहा है। प्रत्येक भारतवासीके मुंहसे यही शब्द निकलते है कि, राजराजेश्वर पचम जार्ज और महाराणी मेरीकी जय हो।

जैनसिद्धान्तपाठशाला, मोरेना—इस पाठशालाका विशेष परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है। क्यों कि प्राय सबही धर्मात्मा इससे परिचित है। इस समय इसका कार्य बडी खूबीके साथ चल रहा है। १४–१९ विद्यार्थी गोमट्टसारसिद्धान्त, पचाध्यायी, प्रमेय-कमलमार्तंड, परीक्षामुख, आदि महान् महान् ग्रन्थोंका अध्ययन कर रहे है। जैनसिद्धान्तकी सूक्ष्मसे सूक्ष्म बातें यहांके विद्यार्थि-योंको बतलाई जाती है। विद्यार्थियोंके लिये स्थान भोजनादिका भी उत्तम प्रबन्ध है। धार्मिकतत्त्वोंके सिवाय लोकोपयोगी ज्ञान प्राप्त करानेकी भी यहां कोशिश की जा रही है। गणित, अंग्रेजी, मुनीमी आदिकी शिक्षाका भी प्रबन्ध किया जा रहा है। प्रति अष्टमी चतुर्दशीको सभा की जाती है और उसमें विद्यार्थियोंको व्याख्यान देनेका अभ्यास कराया जाता है। ब्रह्मचारी मोतीलाल-जीने इस पाठशालाकी उन्नतिके लिये अपना जीवन दान कर दिया है। वे इस समय बड़े उत्साहके साथ पाठशालाकी उन्नति करनेका यत्न कर रहे हैं। गतवर्ष पाठशालाने जो कार्य किया है, उसकी रिपोर्ट छपकर प्रकाशित हो चुकी है। जिन भाइयोंको देखनेकी इच्छा हो वे पाठशालाके मन्त्रीसे मंगा लेवें। पाठशालाकी उत्तम पढाईकी कीर्ति सुनकर जैनसिद्धान्त पढ़नेकी इच्छा रखनेवाले कई विद्यार्थियोंके प्रार्थनापत्र आये है, परन्तु धनाभावके कारण लाचार हो कर उन्हें आनेकी स्वीकारता नहीं दी जा सकती है। जैनधर्मकी

उन्नति चाहनेवालोंको इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये। जिन स्थानोंमें जैनधर्मके जाननेवाले विद्वानोंका अभाव है, उन्हें चाहिये कि, अपने यहाके एक २ दो २ सुबोध विद्यार्थियोंको स्कालर्शिप देकर यहा भेज देवें और अपनी इच्छा पूर्ण करे। ऐसा अच्छा अवसर फिर नहीं मिलेगा। स्याद्वादवारिधि पं० गोपालदासजी सरीखे विद्वान् सब जगह नहीं मिल सकते है। गत अगहन सुदी १४ को पाठशालाका वार्षिकोत्सव किया गया। जिसमें पाठशालाकी रिपोर्ट सुनाई गई और अनेक विद्यार्थियोंके व्याख्यान हुए। नाथूराम प्रेमी, सम्पादक जैनहितैषीने 'विद्यार्थियोंका कर्तव्य क्या है' इस विषयमें व्याख्यान देकर विद्यार्थियोंको स्वावलम्बन, स्वार्थत्यागादिकी आवश्यकता बतलाई। मधुकरीवृत्तिका प्रचार करनेके लिये भी उन्होंने जोर दिया।

एक स्वार्थत्यागीकी जरूरत।

जैनसिद्धान्त पाठशाला मोरेनाके लिये एक ऐसे सज्जनकी जरूरत है, जो कमसे कम एण्ट्रेंसतक अंग्रेजी पढे हों और जैनसिद्धान्तके अध्ययन करनेकी इच्छा रखते हों। उन्हें स्वय जैनसिद्धान्तका अध्ययन करना पड़ेगा और पाठशालाके विद्यार्थियोंको अंग्रेजी तथा गणितकी शिक्षा देनी पडेगी। पाठशाला उनको पूरा वेतन तो नहीं दे सकती है, केवल उनके निर्वाहके योग्य १०) मासिककी एक वृत्ति देगी। आशा है कि, इस स्वपरोपकार कार्यके लिये कोई न कोई महाशय अवश्य तयार होंगे। इस पाठशालाकी इसी प्रकार निःस्वार्थवृत्तिसे कई सज्जन सेवा कर रहे हैं।

मंत्री जैनसिद्धान्तपाठशाला,
मोरेना, (ग्वालियर)

नम सिद्धेभ्य

जैनहितैषी.

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

आठवाँ भाग] माघ श्रीवीर नि० सं० २४३८ [[illegible] अंक

अपराजिता ।

(१)

कुछ दिनोंसे काशीराजके अन्त पुरके उद्यानमें एक नवीन माली आया है । वह अपना नाम वसन्त बतलाता है । सचमुच ही वह रूप और गुणोंमें ऋतुराज वसन्तसे किसी प्रकार कम नहीं है ।

एक दिन वसन्तऋतुके प्रभातमें जब एक बेजान पहिचानका तरुण पुरुष राजाकी सभामें नौकरीकी इच्छासे आकर खड़ा हुआ, तब उसे देखकर सभासदोंका ईर्षाकुटिल मन प्रीतिरससे अभिषिक्त हो गया । वृद्ध मंत्रीका संदिग्ध पर गंभीर चित्त स्नेह—स्पर्शसे चंचल हो उठा । राजाके नेत्र प्रशंसापुलकसे विस्फारित हो गये और राजसभाकी एक ओर चमकीली चिकोंकी आड़में बैठी हुई युवतियोंके चंचल चक्षु स्थिर हो रहे ।

राजाने उसे आदरपूर्वक सभामें बिठा कर पूछा—हे युवक, तुम कौन हो ? तुमने किस देशके किस परिवारको अपने जन्मसे सुखी

किया है? तुम्हारा शरीर कुसुमके समान सुकुमार और सुन्दर है, तुम क्या काम करोगे? तुम्हें कोई भी काम न करना होगा, तुम हमारी राजसभाको ही निरन्तर आनन्दित किया करो।

वसन्तने मूर्तिमान् विनयके समान मस्तक नवाकर धीरता और दृढ़तासे कहा—महाराज, जिस पुरुषको कोई काम नहीं है, उसके क्लेशका ठिकाना नहीं है। कृपा करके उस क्लेशसे आप मेरी रक्षा करें। मेरी सामान्य शक्तिको आप अपनी ही किसी सेवामें लगावें।

राजाने प्रसन्न होकर कहा—अच्छा युवक; कहो तुम्हें कौनसा काम अच्छा लगता है? मन्त्री, सेनापति, सभाकवि, आदि जो कोई तुम सरीखा सहकारी पायगा, सुखी होगा। बतलाओ, तुम्हें कौन काम पसन्द है?

वसन्तने हाथ जोड़कर कहा—महाराज, मै असमर्थ हू। किसी बडे कार्यके भारको मैं नहीं उठा सकूंगा। मेरी इच्छा है कि, मैं महाराजके खास बगीचेका माली होऊ, नित्य नई नई फूलोंकी मालासे महाराजकी पूजा करू, और शाम सवेरे वीणाके स्वरसे स्वर मिलाकर महाराजकी विरद गाऊ। और मैं कुछ नहीं चाहता हूं।

सबोंने समझा कि, इसका रूप तो सुन्दर है, परन्तु यह पागल मालूम होता है। राजाने दया करके पागलकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। वह उसी दिनसे राजाके खास बगीचेका माली हो गया।

(२)

बगीचेके एक कोनेमें वसन्तकी झोपडी है। वह लताओंसे घिरी हुई है, और पत्तोंसे ढकी हुई है। उसके भीतर फूलोंका फर्श बिछा रहता है। वहाकी मूक वृक्षश्रेणी फूलोंके मनोहारी दर्शनसे वाचाल होकर मानो कोकिल कंठसे बातें करती है। वसन्त साझ सवेरे

वीणाके सुरसे सुर मिलाकर जो गाना गाता है, उसके सुरसे वायु उन्मत्त हो जाता है और वह राजमहलके प्रत्येक कमरमें जाकर आनन्दका स्रोत बहा देता है। सवेरे और संध्याको वसन्त नाना प्रकारके फूल चुनकर जो सुन्दर सुन्दर हार वनाता है, वे हृदयको पुलकित करते है, दम्पतियोंके मिलनको मधुर तथा दृढ़ करते है। और जो युवक युवती अविवाहित हैं, उनके प्राणोंको अपने अपरिचित प्यारोंकी प्रणय-वेदनासे पीड़ित और विरह-व्यथासे व्याकुल करते है।

साझ सवेरे नवीन मालीका भक्तिपूर्ण उपहार पानेके लिये जब राजकुमारिया गुलाबकी क्यारियोंके किनारे, बकुलवीथियोंके नीचे और मणिशिलाओंके ऊपर अपने अरुण—वरण चरण रखती हुई मालीकी झोपडीके पास एकत्र खडी होती थीं, तब सारा उद्यान प्रसन्न हो उठता था, वृक्षोंके पुष्पमुखोंमें हास्य प्रस्फुटित होता था और कोकिलों तथा पपीहाओंके कंठ खुल जाते थे। उस समय वसन्त हरे पत्तोंके दोनोंमें ओससे भीगे हुए ताजे फूलोंकी मालाओंकी भेंट लाकर अपनी सेवावृत्तिको सार्थक करता था।

वसन्त जो मालाएं गूथता था, वे अनेक प्रकारके फूलोंकी होती थीं। वह कुमारी इन्दिराके लिये उज्ज्वल इन्दीवरों (कमलों) की, कुमारी शुक्लाके लिये विकसित गुलाबोंकी, और कुमारी आनन्दिताके लिये अनिन्दित बेलाकी माला अर्पण करता था।

इन सबके पीछे एक और युवती आती थी। वह काली और कुरूपा थी और तदनुसार उसका नाम भी राजकन्या यमुना था। सब ही जानते है कि, यमुनाका जल काला है।

चन्द्रमाके शरीरमें जैसे कलंक होता है, उसी प्रकार उन सुन्दरियोंमें यमुनाकी रूपहीनता थी। कलंक होकर भी चन्द्रमाका कलंक

भला जान पडता है, तदनुसार यमुनाका कुरूप भी उन रूपवती ललनाओंमें बुरा नहीं जँचता था। यमुना जानती थी कि, मैं कुरूप हू, इसलिये मलमलकी गुलाबी साड़ीके अंचलको निविड करके वह आपको छुपाना चाहती थी और सबकी दृष्टिसे बचनेके लिये सबसे पीछे रहती थी। उसके नेत्रोंके पलक सदा ही लज्जित और चरण कुठित रहते थे। कठ उसका मृदु और हृदय भीरु था। वह रूपहीना थी, इसलिये लज्जा उसका पदपदपर गला दबाती थी। विधाताने उसके अगअंगमें दुर्निवार पराभव अकित कर दिया था। उसको छुपानेका उसमें सामर्थ्य नहीं था। अन्य सब राजकुमारिया अपने रूपगर्वसे उन्मत्त होकर हँसती, गाती और नाचती थीं। उनकी गति अकुंठित थी, और व्यवहार स्वाधीन था। वे वसन्तके सम्मुख हँसती थीं, बोलती थीं, माला पहिनती थीं, फूल उछालती थीं, और एक दूसरीसे उलझती थीं। वसन्त प्रसन्न चित्तसे उनके चरणोंमें फूलोंकी अजलि क्षेपण करता था, वीणाका मधुर नाद करता था और सुललित छन्दोंमें उनके रूपका स्तवन करता था। और यमुना क्या करती थी? यमुना उस समय लज्जा और भयके मारे एक ओर चुपचाप खडी रहकर अपनेको छुपाना चाहती थी परन्तु कोई उसकी ओर भूलकर भी नहीं झाकता था।

उसे इतनी अधिक लज्जा थी और उसकी इतनी अवहेलना होती थी, तो भी वह आती थी। वसन्तने अपने पुष्पहारोंमें, गीतोंमें, वीणामें, बातोंमें, हास्यमें, रूपमें और यौवनमें मिलाकर जो विचित्र रागिनी उसके चारों ओर व्याप्त कर दी थी, उसके अदृश्य स्पर्शने उस रूपहीनाके अन्त.करणमें एक ऐसा भुलानेवाला सुर भर दिया था कि, उसकी मादकता भारी लज्जा और दारुण अवहेलनासे भी

दमन नहीं हो सकती थी। अन्य सब युवतिया तो हंसने गाने और खेलनेको आती थीं, परन्तु यमुना केवल अपनी प्यास बुझानेके लिये आती थी। सब आती थीं, वसन्तकी सेवा, स्तुति और माला-एँ प्राप्त करनेके लिये, पर यमुना आती थी अपने यमुनाके समान श्याम, सजल और उज्ज्वल नेत्रोंकी तरल दृष्टिमें भक्तिभाव भरकर वसन्तके रूपकी पूजा करनेके लिये।

यद्यपि उस रूपहीना, संकुचिता और शब्दशक्तिविरहितापर दृष्टि डालनेको वसन्तको अवकाश नहीं था, तो भी वह उसकी दृष्टिमें इसलिये पड़ गई थी कि, वह अन्य सब युवतियोंके साथ अपने जीवनके तारको बजा नहीं सकती थी। अर्थात् उसकी यह विषमता ही वसन्तके दृष्टिनिक्षेपका कारण थी। अन्यथा वसन्त अपने रूपके प्यासे नेत्रोंको उसपर क्यों डालता? उस समय उसके यौवनका तप्त रक्त रूपके नशेमें चूर हो रहा था।

रूपहीनाको उस रूपकी हाटसे निकाल देनेका उपाय नहीं था, इसलिये वसन्त केवल सभ्यताके नियमका पालन करनेके ख्यालसे अन्य राजकुमारियोंके लिये माला गूंथकर उनसे बचे हुए जैसे तैसे गंधहीन फूलोंकी एक माला बना रखता था और उसे यमुनाको इस तरह अवहेलनाके साथ देता था जैसे राजाओंके द्वारपर भिखा-रीको भिक्षा दी जाती है। परन्तु यमुना उस मालाको देवताके प्रसादके समान बड़ी श्रद्धाके साथ अपने गलेमें पहिन लेती थी। जिस दिन कुमारी इन्दिरा एक विशेष प्रकारकी ग्रीवाभंगी करके लीलायुक्त कटाक्षसे मुसकुरा जाती थी, कुमारी शुक्ला जाते जाते एक आध बार दयापूर्वक लौटकर देख लेती थी। कुमारी आनन्दिता प्राणोंको उन्मत्त कर देनेवाला मधुर परिहास कर जाती थी, उसी दिन

वसन्त यमुनाके लिये भी गधहीन और काले रगके अपराजिता नामक फूलोंकी एक माला बना देता था। वसन्तका यह अपूर्व प्रसाद पाकर यमुनाका मन आनन्द और कृतज्ञतासे इतना भर जाता था कि, उसमें उसे अपनी लज्जाको रखनेका स्थान नहीं रहता था।

वसन्तका बगीचा घरके फूलोंसे और वनके फूलोंसे शोभित रहता था, चन्द्रमाकी चादनी और रूपकी चादनीसे प्लावित रहता था, पक्षियोंके कलकूजनसे और युवतियोंके कलहास्यकौतुकसे ध्वनित रहता था, फव्वारोंकी अजस्र धाराओंसे और हृदयकी अजस्र प्रीतिसे सींचा जाता था, मणिदीपोंके प्रकाशसे और बडी बडी आखोंकी चितवनसे उज्वल रहता था। दिनके बाद दिन, रातके बाद रात, सबेरेके बाद सध्या, और सध्याके बाद सबेरा इस प्रकार धीरे धीरे एक सुखके सोतेके समान समय बहा चला जाता था। उसमें वह युवतियोंका झुड वसन्तको घेरे हुए आनन्दमग्न और प्रणयासक्त रहता था। वसन्त कुसुमके फूलोंके गाढ़े रगसे उनकी ओढनी रग देता था, रुखमडलीके फूलोंको मसलकर चरण रग देता था—में, हदीके पत्तोंके रससे हाथ रग देता था और मधुर हास्य, प्रियवचन, तथा चाह भरी चितवनसे उनके हृदयको रगनेकी चेष्टा करता था। उन सुन्दरियोंका हृदय उससे रगता था कि नहीं, कौन जाने। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, उन युवतियोंके अफीमके फूलके समान लाल मादक दोनों ओंठ दाड़मके फूल सदृश गाल कुसुमरंगके वस्त्र, और मेंहदीरजित चरण अपनी सारी लालिमा एकत्र करके वसन्तके कोमल हृदयको रुधिरके रगसे रग देते थे। तरुणिया वसन्तसे जितनी अन्तरगता बढाती थीं, वसन्त अपने अन्तरके-मध्यमें उतनी ही शून्यता अनुभव करता था। और धीरे धीरे उस सारी शून्य-

त्ताको पूर्ण करके वह किसी एकको अपने जीवनमन्दिरमें आव्हान करनेके लिये अधीर हो जाता था।

(३)

एक दिन जब संध्याके समय प्रत्येक वृक्षपर फूलोंके चंदोवे तन रहे थे, दक्षिण वायु विरहमूर्छितोंकी निश्वासके समान रह रह कर फूलोंके वनमें शिहरन उत्पन्न करती थी, फूलोंकी गंधसे मत्त, होकर कोकिल और पपीहा प्रलाप करते थे, हजारों दीपोंकी शिखाओंके बीच फव्वारोंका जल हीरेकी मालाओंके समान पड़ता था, तब वसन्तके प्रेमसंगीतको बन्द करके राजकुमारी इन्दिरा साक्षात् लक्ष्मीके समान उसकी झोपड़ीके द्वारपर आकर खड़ी हुई। वसन्त तत्काल उठ खड़ा हुआ और फूलोंसे भरे हुए एक दौनेको उसके चरणोंके आगे लौटाकर बोला—इन्दिरा, तुम बाहिरके फूलोंको ही नित्य ले जाती हो, मेरे अन्तरका अतुलनीय फूल क्या तुम्हारे चरणोंमें स्थान नहीं पायगा? यह फूलोंका वन विवाहोत्सवमें क्या और विशेषरूपसे प्रफुल्लित नहीं होगा?

कुमारी इन्दिरा भौंहें चढ़ाकर और फूलोंको घृणापूर्वक पैरोंसे ठुकराकर बिजलीके समान कड़ककर बोली—एक नीच मालीका इतना बडा साहस! क्यों रे, अनुग्रहको तू प्रणय समझता है? तुझे एक राजकन्याको झोपडीमें रखनेका शौक चर्राया है। क्या तू नहीं जानता है कि, कर्णाटकाधिपति स्वय मेरे पाणिग्रहणके लिये याचक हुए है? तेरा यह सब साहस कल उस समय नष्ट होगा, जब राजाकी आज्ञासे तू शूलीपर चढाया जायगा।

वसन्तके हृदयमें इससे जो अपमानजन्य वेदना हुई, वह शूलके आघातसे किसी प्रकार कम नहीं थी। जिस इन्दिराके श्रीचरणोंमें

वह अपने हृदयभाडारके श्रेष्ठसे श्रेष्ठ वहुमूल्य अर्घ एकके बाद एक अर्पण करके खाली हो गया था, आज उसीने उसे तुच्छसे तुच्छ समझकर पैरोंसे ठुकरा दिया। संसारमें क्या प्रेम और भक्तिका बदला इसी प्रकार दिया जाता है?

वसन्तने इन्दिराके पैरोंमें पड़कर कहा—शूलीपर चढ़ाना हो, तो चढ़वा देना, मै रोकता नहीं हू। परन्तु राजकुमारी, विचारके देखो, वाहिर दीन होकर मैं अन्तरमें दीन नहीं हूं। जो ऐश्वर्य मैंने तुम्हारे चरणोंपर निछावर कर दिया है, उसे तुम किसी महाराजाके भाडारमें भी खोजनेसे नहीं पाओगी। कंगालको सब प्रकारसे कंगाल करके मत मारो।

इन्दिरा हॅस पडी। उसका वह उपहास करोंतके समान करकर करता हुआ वसन्तके हृदयको इस पारसे उस पार तक चीर कर चला गया।

वसन्तने विनतीके स्वरसे कहा—मेरी इतने दिनोंकी व्यर्थ पूजाके उपहारस्वरूप मेरा एक अन्तिम अनुरोध मान लो, तो अच्छा हो। कल सवेरेसे पहिले यह वात तुम किसीके आगे प्रकाशित नहीं करना। मै एकवार कुमारी शुक्ला और आनन्दिताके साथ और भी अपने भाग्यकी परीक्षा करना चाहता हूं।

इन्दिराने गर्वसे कहा—अच्छा, तुम्हारी प्रार्थना मंजूर है। मै स्वयं ही उन्हें बुलाये देती हूं। पर मैं यह भी कह देती हू कि, तुम्हारी यह केवल दुराशा है। विश्वास रक्खो, कोई भी राजकुमारी मालीके गलेमें प्रणयकी माला नहीं डालेगी और तो क्या कालीयमुना भी नहीं डालेगी, माली चाहे जितना सुन्दर और मनोहर क्यों न हो।

इन्दिराने आकर शुक्लाको भेज दिया। शुक्ला भी उसी प्रकारसे वसन्तके प्रणयनिवेदनका तिरस्कार करके लौट आई। उसके पीछे आनान्दिता गई और वह भी व्यथित मालीको ज्वालामय शब्दोंसे और भी दुखी करके चली आई। आनान्दिताने यमुनासे हँसकर कहा—अरी यमुना, जा तुझे वसन्त बुलाता है।

वसन्त बुलाता है। मुझे? आनन्दसे उल्लाससे, लज्जासे, संकोचसे, आशासे और आशंकासे यमुनाका हृदय धकधक करने लगा। वह अपनी बहिनोंकी ओर नहीं देख सकी। उसने उनके क्रूर परिहासपर ध्यान नहीं दिया। वह तीर्थयात्री भक्तके समान परम आनन्दसे, प्रथममिलनभीता नवोढ़ाके समान कम्पित हृदयसे, लज्जासे, संकोचसे धीरे २ जाकर वसन्तके सम्मुख चुपचाप मस्तक झुकाये जा खड़ी हुई। वसन्त उस समय जमीनपर पड़ा हुआ रो रहा था। उसने यमुनाकी ओर देखा भी नहीं।

वसन्तको रोते देखकर यमुनाका हृदय फटने लगा। वह नहीं समझ सकी कि, मेरी निर्मोही बहिनें वसन्तको कौनसी दारुण व्यथा दे गई है। यमुना अपने उस व्यथित बन्धुकी ओर सजल और दयापूर्ण दृष्टिसे देखते देखते कांपते हुए कंठसे सान्त्वना करनेके लिये बोली—वसन्त!

वसन्त उच्छ्वासित गर्जनसे बोला—दूर हो, जा जल्लादको बुला ला। वह मुझे अभी शूलीपर चढ़ा दे।

लज्जिता, व्यथिता और मितभाषिणी यमुना सजल नेत्रोंसे अपनी व्यर्थ सान्त्वनाको लेकर वहासे धीरे धीरे चली गई। उसे वसन्तकी वेदना वसन्तसे भी द्विगुणित व्यथित करने लगी। यदि वह अपनी सारी शक्तिके, सारी शान्तिके, सारे भाग्यके और सारे सुखके बदले-

ससारको छानकर वसन्तको सान्त्वना दे सकती, तो देनेको तयार थी। परन्तु उसका कहीं सम्मान नहीं था। वह कुरूपा थी। अपनी असमर्थतासे वह आप ही पीड़ित होने लगी।

सुन्दरी कुमारियोंने हँसकर पूछा—क्यों री यमुना, माली ने तुझसे क्या कहा?

इस बातका उत्तर वह रूपहीना क्या दे सकती थी? उसने नीचेको सिर किये हुए केवल यह कहा कि—कुछ नहीं।

सुन्दरिया अपने अट्टहाससे वृक्षोंपरके पक्षियोंको भयभीत करती हुई बोलीं—वाह रे शौकीन माली, तुझे काली कुरूपा पसन्द न आई? यमुना, तू हमारी बहिन है, इस बातका विचार करनेसे भी हमको लज्जा आती है। सामान्य माली भी तुझसे घृणा करता है। हमारे पीछे पीछे छायाके समान लगे रहनेसे तुझे लज्जा नहीं आती है?

इस अपमानने यमुनाको स्पर्श भी नहीं किया। क्योंकि यह तो उसको प्रतिदिन मिलनेवाला पदार्थ था—उसका आभरण था, किन्तु उसकी बहिनें जो वसन्तके दुःखमें हँसती थीं, और उसको पीड़ा देनेका परामर्श करती थीं, उससे यमुनाके हृदयमें हजारों काटोंके छिदनेके समान पीडा होने लगी। वह उनके अमानुषिक आनन्दको देखकर जीते रहनेकी अपेक्षा मर जाना बहुत अच्छा समझती थी। यमुना यदि अपने शोणिताश्रुओंसे भीगे हुए हृदयसे ढँककर वसन्तको इस महती निष्ठुरतासे बचा सकती, तो बचा लेती। परन्तु क्या करे, बेचारी असमर्थ थी।

उस पुष्पवनकी मन्दमन्द पवनसे भी यमुनाके हृदयसरोवरमें आज जो ऊची २ लहरें उठती थीं, वे बडी ही दुःखमय थीं। आज इस बगीचेके जीवनस्वरूप मालीकी वेदना देखकर फूलोंका विक-

सित होना, पक्षियोंका कलरव करना, भ्रमरोंका गुंजन करना, चाँद-नीका खिलना और पवनका पत्तेपत्तेके साथ अठखेलियां करना बड़ा बुरा मालूम होता था। यमुना बगीचेके इस निष्ठुर और निर्लज्ज व्यवहारको यदि अंधकारका काला पर्दा डाल कर ढॅक सकती, तो अवश्य ढॅक देती। उसे ऐसा भास होता था कि, यह सारा बगीचा मेरी बहिनोंके षड्यत्रमें शामिल होकर वसन्तकी वेदनासे आनन्दित हो रहा है। आज यमुनाकी लज्जा उसीके वेदनाहत हृदयमें तीक्ष्ण छुरीके समान लगती थी।

(४)

दूसरे दिन सबेरे राजकुमारियोंने राजाके निकट जाकर वसन्तकी अवज्ञाका वर्णन किया और निवेदन किया कि, इस असभ्य माली-को शूलीपर चढ़ाना चाहिये। राजकुमारियोंने बहुत दिनोंसे नरहत्याका दृश्य नहीं देखा था।

राजाकी आज्ञासे वसन्त राजसभामें कैद करके लाया गया। उसने विना किसी प्रकारकी आनाकानी किये अपना अपराध स्वीकार कर लिया। यदि वह झूठ बोलकर भी अपराध अस्वीकार करता, तो राजसभा सुखी होती। परन्तु नहीं, वसन्त अपने उस निराशाके जीवनसे मरना अच्छा समझता था—इसलिये उसने किसी भी तरहसे अपने अपराधको अस्वीकार नहीं किया। वसन्त-को देखकर कठोर कवचको धारण करनेवाले पहरेदारके भी नेत्रोंमें आसू आ गये। वाह! कैसा सुकुमार रूप है। इस कोमल और मधुरस्वभावी वसन्तको क्या शूलीपर चढ़कर प्राण देने होंगे?

राजाने राजकन्याओंसे अनुनयके स्वरसे कहा—बेटियो, यह तो पागल है। इसको न हो, तो राजधानीसे निकाल दो। बस, इतने-हीसे सब बखेड़ा मिट जायगा।

परन्तु राजकुमारिया अपनी प्रतिज्ञासे नहीं हटीं। सेवकके रक्तसे वे अपने नेत्रोंमें आनन्दका अजन अवश्य लगावेंगीं। उसके हृदयको दलित करके वे अपने पैरोंको रगे विना न मानेंगीं।

अन्तमें राजाने बडे कष्टसे आज्ञा दी कि—वसन्त जीवन भर कैद-में रक्खा जाय।

कुमारियोंने कहा—अच्छा, यदि कैद ही की आज्ञा है, तो यह अन्त'पुरके कारागारमें रक्खा जाय। वहा रखनेसे इसके कारण हमारा कुछ समय आनन्दसे कटेगा।

राजाने कहा—तथास्तु।

अन्त पुरकी दयामयी देवियोंका जिनपर कोप होता था, उन अभागियोंके लिये यह अन्ध कारागार बनाया गया था। यह कारागृह अपने लोह कपाटरूपी दन्त मिलाकर जिसे ग्रास बनाता था, उसे जीर्ण वा सत्त्वहीन किये विना बाहर नहीं निकालता था। इन कपाटोंमें कहीं थोडीसी भी सधि नहीं थी, जिसमेंसे बाहरका थोडा बहुत प्रकाश भीतर आ जाय। केवल थोडी हवा आनेके लिये दीवाल और छतकी जोडमें दो चार छोटे छोटे छिद्र थे। और भोजन देनेके लिये एक पात्र जाने योग्य छोटासा ताख था। मरण जल्दी नहीं हो जाय, इसके लिये यह थोड़ासा सुभीता था, रोगी-को आराम देनेके लिये नहीं। दयामयी देवियोंकी आज्ञा थी कि, प्रकाश, हवा, भोजन जितना जा सके, इन सब द्वारोंसे बेखटके चला जाय। परन्तु आज्ञा होनेपर भी उक्त द्वारोंसे प्रकाश और हवा असं-कोच भावसे नहीं जा सकती थी। क्योंकि जिस स्थानमें छिद्र थे, उसके आगे एक और पत्थरकी ऊची दीवाल खडी थी और जो भोजन देनेका द्वार था, उसमें एक साधारण कटोरेसे बड़ी कोई चीज जा नहीं

सकती थी। इसके भीतर जो अभागी पहुंच जाता था, उसे धैर्यके साथ मरनेकी प्रतीक्षा करते रहनेके सिवाय और कोई शान्तिका उपाय नहीं था। खानेको देनेका द्वार इतनी ऊंचाईपर था कि, उसमेंसे बाहिरका मनुष्य भीतर और भीतरका मनुष्य बाहिर नहीं देख सकता था। केवल हाथ डालकर भोजन देना और लेना बन सकता था। भोजनका पात्र खाली करके ताखके ऊपर रख देनेकी व्यवस्था थी। जिस दिन पात्र खाली नहीं होता था, उस दिन समझ लिया जाता था कि, कैदी पीड़ित है। और सात दिन बराबर इसी तरह पात्र खाली नहीं होनेसे विश्वास कर लिया जाता था कि, कैदी भवयन्त्रणासे मुक्त हो चुका है।

वसन्त इसी भीषण कारागारमें रक्खा गया। उसकी सारी आशा आकांक्षाओंकी जननी पृथ्वी, उसके प्रेमके स्थान सारे सुन्दर मुख और उसके चन्द्र, सूर्य, प्रकाश, आकाश, पुष्प, पवन आदि संपूर्ण प्यारे पदार्थ सदाके लिये लोहकपाटोंकी आड़में लुप्त हो गये। बाहिरका हर्षकोलाहल अवश्य ही उसके कानोंतक पहुॅचता था, परन्तु उसकी ओर उसका उपयोग नहीं रहता था। वह अपने निष्फल प्रणयके शोकमें इस प्रकार मग्न रहता था कि, उसका उक्त कोलाहलकी ओर लक्ष्य ही नहीं जाता था।

सुन्दरी राजकुमारिया कारागारके समीप आकर ताखके पाससे हॅस हॅसकर कहती थीं,—क्यों जी वर महाराज, ससुरालमें आज कैसा आनन्द आ रहा है? रसिक मालाकर, हम तुम्हारे लिये वरमाला लेकर आई है, लो इसे ग्रहण करो। इसके पश्चात् वे कांटोंकी मालाको वसन्तके आगे फेंककर खूब खिल खिलाकर हॅसती थीं। उनकी वह काटोंसे भी अधिक तीखी और निष्ठुर हॅसी उनके पीछे रहनेवाली यमुनाके हृदयमें शूलसी चुभती थी।

परन्तु राजकुमारियोंका यह दुर्व्यवहार वसन्तको अधिक पीडा नहीं दे सकता था। क्योंकि उनका प्रथम व्यवहार ही ऐसा मर्म-भेदी हुआ था कि, उसके पीछेकी इस नूतन वेदनाका उसे अनुभव ही नहीं होता था।

वसन्त बहुत कुछ विनय अनुनय करके कारागारमें अपनी वीणा को भी ले आया था। अधकारमें बैठकर जब वह अपनी उस एक मात्र प्रणयिनीको हृदयसे लगाकर उसके प्रत्येक तारसे अपनी हार्दिक वेदना व्यक्त करता था, तब सारी राजपुरी विषादससागरमें मग्न हो जाती थी। उस राजमहलमें एक राजकुमारिया ही ऐसी थीं, जो उस समय हस हस करके वसन्तसे कहती थीं कि—देखो, वर महाराज आज ससुरालमें गाना गा रहे है।

राजकुमारियोंका आनन्द और उत्साह दो हीं दिनमें थक गया। वसन्तके साथ एक ही प्रकारके आमोद प्रमोदसे अब उनका जी ऊब उठा। उन्होंने नूतन आमोदका अनुसधान करनेके लिये कर्नाट कलिंगादि देशोंके राजाओंकी ओर अपने चित्तकी वृत्तिको बदली।

(५)

राजकुमारियोंके नहीं आनेसे वसन्त अपने जीवनके चारों ओर कुछ प्रसन्नताका अनुभव करने लगा। उसने देखा कि, राजकुमा-रिया तो अब नहीं आती है, परन्तु उसके भोजनका पात्र दोनों वक्त नियमित रूपसे ताखमें आ कर उपस्थित हो जाता है। जो उसके लिये आहार लाती है, उसके हाथ सुकुमार तथा कोमल है। वह कोई करुणामयी रमणी है। यह अब एक कटोरा भर सत्तू लाती है और गुलाब जल तथा दूधमें साने हुए उस सत्तूके नीचे नाना प्रकारके व्यजन छुपे रहते है। कटोरा एक सुगन्धित फूलोंकी माला-

से लिपटा हुआ रहता है। इससे वसन्तने समझा कि, इस पाषाण-हृदय राजमहलके भीतर भी एक आध कोमल हृदय व्यक्ति है।' उसके हृदयमें प्रश्न उठने लगा कि यह करुणामयी कौन होगी?

क्रम क्रमसे वसन्तका हृदय इस करुणामयी सेविकाकी ओर आकर्षित होने लगा। वसन्त भोजन आनेके द्वारकी ओर टक लगाये रहता था कि, कब उस करुणामयीके कोमल हाथ भोजन पात्रको रखनेके लिये आते है। देखते देखते वसन्तको उन हाथोंके दर्शन करनेका समय एक प्रकारसे निश्चित हो गया। जिस समय ताखके मुंहपर दीवालकी छाया कुछ फीकी पड़ती थी, घरका अन्धकार कुछ कम होता था और हवा आनेके छिद्रोंसे जब सूर्यकी थोड़ीसी किरणें भीतर आती थीं, उसी समय उस करुणामूर्तिका आविर्भाव होता था। उस समय बाहिरकी हवाकी सरसराहट, पत्तोंकी खरखराहट, और आने जानेवालोंके पैरोंकी आहट वसन्तको क्षणक्षणमें आतुर करती थीं। उस समय वह अपने सारे मनोयोगका केन्द्र कानों और नेत्रोंको बना कर बैठा रहता था। इसके पश्चात् जब वह रमणी अन्नपूर्णाके समान भोजनके कटोरेको ताखमें रखकर मृदु मधुर कंठसे पुकारती थी—"वसन्त!" उस समय वसन्त प्रफुल्लित होकर एक ही छलांगमें निकट पहुंचकर दोनों हाथोंसे उस कटोरेको पकड़ लेता था, किन्तु अपने उस अपरिचित और अदर्शित प्रेमीके हाथोंसे कटोरा लेनेमें उसे बहुत समय लगता था।

वे हाथ वसन्तके जीवन सर्वस्व थे। उन्हें वह अपनी सारी आशाओं और आकांक्षाओंका अवलम्बन समझता था और नेत्रभरकर उन्हें ही देखता था। उन हाथोंके विशेष आकारको, अंगुलियोंकी विशेष भंगीको, नखोंकी विशेष गठनको, हथेलियोंकी रेखाओंकी

रचनाको और दाहिने हाथकी पहुचीपरके एक छोटेसे काले तिलको निरन्तर देखते देखते वसन्त इस तरह परिचित हो गया था। हजारोंमें भी वह उन हाथोंको ढूढ़के निकाल सकना था। उन हाथोंकी अगुलियोंके स्पर्शमात्रसे वसन्तके शरीरमें जो रसरोमा-चका ज्वार आ जाता था, वह स्पष्ट कह देता था कि, जिसकी ये अगुलिया हैं, वह तरुण लज्जालु और दयालु है। वसन्त सोचता था कि, ये हाथ जिस शरीरको अलकृत करते है, यह मन जिस शरीरका सचालक है, और यह दयार्द्र कठस्वर जिस शरीरका श्रृंगार है, वह शरीर न जाने कितना सुन्दर, कितना दिव्य और कितना प्रशसनीय होगा।

एक दिन वसन्तसे न रहा गया। उसने उक्त दोनों हाथोंको दवा कर कहा—देवी, मेरे ऊपर यह ऋणका वोझा किसकी ओरसे वढाया जा रहा है? तुम कौन हो, जो इस बॅधुएको और भी गाढे वन्धनोंसे कस रही हो? क्या मै ऋणी ही होता जाऊगा? यहा चुकानेका तो कोई उपाय नहीं दिखलाई देता है।

युवतीने स्नेहपूर्ण स्वरसे कहा—मालाकार, तुम डरो मत। जो तुम्हारे वडे भारी ऋणसे दव रही है, वही इस समय अपनी कृतज्ञता-का एक अश मात्र प्रकाश करनेकी चेष्ठा कर रही है।

वसन्तने विस्मित होकर पूछा—मेरे ऋणसे दव रही हो? तुम कौन हो।

तरुणीने कहा—मेरा नाम सुभद्रा है।

वसन्त नम्र स्वरसे वोला—भद्रे, तुम कौन हो, यह तो मैं नहीं जानता हू। परन्तु तुम्हारी दयाको देखकर मुझे अव फिर नरलोकमें आनेकी इच्छा होती है। (अपूर्ण।)

निष्काम कर्म ।

[स्व० स्वामी विवेकानन्दजीके एक व्याख्यानका साराश ।]

आज तक मैने जितनी सर्वोत्तम शिक्षाएँ प्राप्त की हैं, उनमें एक यह भी है कि, कार्यकी ओर जितना लक्ष्य देना चाहिये । उतना ही कारणकी ओर भी देना चाहिये । यह शिक्षा मैंने एक महात्मासे पाई थी । उक्त महात्माका जीवनक्रम मानो उसकी इस शिक्षाका उदाहरण वा स्पष्टीकरण था । सारी अच्छी बातें मै इसी शिक्षासे सीखता आया हू । और मेरा विश्वास हो गया है कि, यश.प्राप्तिका यही मूलमंत्र है कि, फलकी ओर जितना लक्ष्य देना अवश्य है, उतना ही उसके साधनोंकी ओर वा उपायोंकी ओर देना चाहिये ।

हम सदा अपनी कल्पनाओंमें वा अपने मनोराज्यमें मस्त रहा करते है, यह हमारी बडी भूल है । हमें अपना ध्येय इतना मोहक मालूम होता है—अपने अन्तिम साध्यकी ओर हमारा चित्त इतना गढ़ जाता है कि, हम उसके साधनोंकी ओर लक्ष्य देकर कार्यकी पूरी पूरी तयारी करना एक प्रकारसे भूल ही जाते है ।

अब जब हमारा कोई कार्य बिगड़ता है अथवा किसी कार्यमें हमें सफलता प्राप्त नहीं होती है, तब तब 'सफलता क्यों प्राप्त नहीं हुई' इसका बारीकीसे विचार करनेसे उन्नीस विस्वे यही प्रतीत होता है कि, उस कार्यकी तयारी ही हमने ठीक नहीं की थी। सब ओरसे पूरी पूरी तयारी करना—सारे जोड़ तोड़ मिलाना यही बड़े भारी महत्त्वकी बात है । यदि पहिलेकी तयारी ठीक होगी, तो कभी संभव नहीं कि, कार्य बिगड़ जायगा । उसमें सफलता होनी ही चाहिये । कारणसे ही कार्य होता है, यह बात हम भूल

जाते है। अकारण ही कोई वात हो जायगी, यह संभव नहीं। जैसा साध्य हो, वैसा ही साधन होना चाहिये। साध्य यदि वड़ा हो, तो उसके साधन भी वडे होने चाहिये। जाना तो हो पूर्वको और चलने लगे पश्चिमको, तो सफलता कैसे मिल सकती है? साध्यके लिये साधन उचित प्रकारके होने चाहिये, अन्यथा उन साधनोंका कुछ फल नहीं होगा। एकवार साध्य निश्चय कर लिया और विचार करके उसके साधन वा उपाय भी निश्चय कर लिये, फिर यदि हम साध्यकी ओर लक्ष्य भी न रक्खें, तो भी चल जायगा। क्योंकि योजित किये हुए उपाय जैसे जैसे पूर्णताको प्राप्त होंगे, तैसे तैसे कार्य भी सिद्ध होता जायगा, इस विषयमें कोई शका नहीं हो सकती। साधन यथायोग्य जहाके तहा मिलाये जावेंगे, तो साध्यसिद्ध होनेमें कोई वाघा उपस्थित नहीं हो सकती। हमारा काम केवल प्रयत्न करना, उद्योग करके साधनोंका जोड तोड़ मिला देना, इतना ही है। फलका वा इष्टसिद्धिका विचार हम करें ही क्यों? इष्टसिद्धि यह कार्य है और पूर्वकी तयारी कारण। इसीलिये पूर्वतयारी जैसी चाहिये वैसी करना, योग्य उपायोंकी योजना करना, साधनोंकी ओर ही विशेष लक्ष्य रखना यही यश प्राप्तिका मूलमंत्र है। भगवद्गीतामें भी यही तत्त्व सिखलाया गया है। "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।" हमें अपना कार्य शक्तिके अनुसार निरन्तर करते रहना चाहिये, वह कार्य चाहे जो हो, हमें अपना सर्वस्व उसीके लिये अर्पण कर देना चाहिये और इतना करके भी उससे अलिप्त रहना चाहिये। फलकी आशा रखना अच्छा नहीं है। अपने कर्तव्यसे कभी पराङ्मुख नहीं होना चाहिये। इसके सिवाय, यदि कभी काम छोड़नेका मोका

आ पड़े तो एक क्षणभरमें उसे छोड़ देनेके लिये तयार हो जाना चाहिये।

आप यदि थोड़ी देरके लिये स्वस्थ होकर विचार करेंगे, तो दु:खका यथार्थ कारण आपके ध्यानमें तत्काल ही आ जावेगा। आप जिस कामको अपने हाथमें लेते है, और उसके लिये जी तोड़ परिश्रम करते है, यदि दुर्भाग्यसे उसमें सफलता प्राप्त नहीं हुई, तो उसे छोड़ देनेके लिये आपकी इच्छा नहीं होती है। यह आप जानते है कि, इस मार्गसे जानेमें हानि है और इससे अधिक मोह करेंगे, तो परिणाममें उलटा दु:ख होगा, तो भी आप उससे परावृत्त नहीं हो सकते है। मधुमक्खी आई तो थी मधुका स्वाद लेनेके लिये, परन्तु बेचारीके पैरमें फूल उलझ गये और उसे वहांसे अपना पिंड छुटाना कठिन हो गया। पद पदपर हमारी मधुमक्खी सरीखी ही दशा होती है। वास्तवमें देखा जाय, तो हम यहां मधुका आस्वाद लेनेके लिये आये थे, परन्तु उलटे हमारे हाथ पैर उलझ गये। हम पकड़नेके लिये आये थे, परन्तु उलटे स्वयं ही पकड़े गये। सुख भोगनेके लिये अथवा सुख भोक्ताके नातेसे यहां आये थे, परन्तु उलटे स्वयं भोग्य वस्तु बन गये। स्वामी बनकर आये थे, परन्तु अपने पैर अपने ही गलेमें आ पड़े। घोड़ेपर सवारी करनेके लिये चले थे, परन्तु यहा घोड़ाही लौटकर सवार बन बैठा। यह हमारा आपका सदाका अनुभव है। व्यवहारमें पद पदपर इस बातका विश्वास होता है। अपनी पगड़ी दूसरोंपर ज़मानेका निरन्तर प्रयत्न किया करते है, तो भी अपने पर ही दूसरोंकी पगड़ी आ जमती है। संसारमें सुख भोगनेकी हमारी इच्छा रहती है, परन्तु वही लौटकर हमारा नाश करती है। सृष्टिपर अपना अधिकार चलाकर हम उसे अपनी सेविका बनाना

चाहते है, परन्तु हम ही उसके पजेमें फँस जाते हैं, नहीं हमारा सर्वस्व हरण करके हमारी धज्जिया उड़ा देती है। यदि संसारमें ऐसी घटनाएँ न होती, तो यह दूसरा स्वर्ग ही बन जाता। परन्तु इससे हमें हताश नहीं होना चाहिये। यद्यपि यश अपयश सुख-दुःख आदिके द्वन्द्व जाल सारे जगमें बिछ रहे है, तोभी हम उनसे बच सकते हैं और यदि हम ऐसा कर सकें अर्थात् इन जालोंमें नहीं फँसें, तो फिर हमें और कुछ नहीं चाहिये। हम स्वर्गके नन्दनवनमें ही आ पहुचे हैं, ऐसा समझेंगे।

हम जो विषयोंमें आसक्त हो जाते हैं—विषयाधीन हो जाते है, यही दुःखका मूल है। और इसी लिये भगवद्गीतामें कहा है कि, अपने कर्म बराबर करते रहो, न फलकी आशा रक्खो और न विषयासक्त होओ। कोई भी विषय हो, उससे अलिप्त रहनेकी शक्ति प्रत्येक मनुष्यको रखना चाहिये। प्रत्येक वस्तुको, चाहे वह कितनी ही प्यारी क्यों न हो, उसके विषयमें हृदयकी उत्कठा चाहे जितनी प्रवल क्यों न हो, और उससे सम्बन्ध छूटनेपर चाहे जितना दु.ख होनेकी सभावना क्यों न हो—चाहे जब पैरोंसे ठुकरा देनेके लिये हमें तयार रहना चाहिये। इस जगतमें अथवा अन्यत्र कहीं भी आसक्तोंके रहनेके लिये स्थान नहीं है। यदि कोई मनुष्य अशक्त है, तो समझो कि उसके भाग्यमें दासत्व लिखा ही है। शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकारके दुःखोंका कारण अशक्तपना है। वल्कि यदि ऐसा कहा जाय कि अशक्तता ही मृत्यु है, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। हमारे चारों ओर हवामें अगणित रोगोत्पादक जीव भरे हुए हैं, परन्तु जब तक हम अशक्त नहीं होते हैं हमारा शरीर शक्तिहीन होकर जबतक उन्हें अपने भीतर प्रवेश

नहीं करने देता है, तब तक उनकी मजाल नहीं कि, वे हमें कुछ हानि पहुँचावें। इस संसारमें चाहे जितने दुःख क्यों न हों, जब तक हमारा हृदय दुर्बल नहीं होता है, तबतक वे हम पर अपना शासन नहीं चला सकते है। शरीरमें सामर्थ्यका होना ही जीवितताका लक्षण है और उसका चलाजाना—दुर्बलताका होना ही मरण है। जिसमें शक्ति है, उसे सर्वत्र आनन्द है—उसे कहीं भी मरण नहीं है, परन्तु अशक्त पुरुषको सब जगह दुःख ही दुःख है उसे एक प्रकारसे मरा हुआ ही समझना चाहिये।

मनमें आसक्ति अथवा प्रेम होना, यही सर्व सांसारिक सुखोंका साधन है। हमें मित्रोंसे, सम्बन्धियोंसे, धार्मिक कर्मोंसे, बाह्य सृष्टिके विषयोंसे अथवा इसी प्रकारके और भी कार्योंसे जो सुख होता है, वह इसी लिये होता है किं, हमारा उनपर प्रेम रहता है, आसक्ति रहती है। इसी प्रकार दुःखोंका कारण भी यही प्रेम वा आसक्ति है। जिन्हें वास्तविक आनन्द चाहिये, उन्हें प्रत्येक विषयसे अलिप्त रहना चाहिये अथवा अलिप्त रहनेकी शक्ति रखनी चाहिये। यदि हममें चाहे जिस विषयसे अलिप्त रहनेकी शक्ति है, तो निश्चय समझिये कि, हमें इस संसारमें कहीं भी दुःख नहीं है। जिस पुरुषमें यह सामर्थ्य है कि, विषयोंपर अपरिमित आसक्ति होनेपर भी, जब जी चाहे तब उनसे विरक्त होकर अलिप्त हो सकता है, उसे एक अलौकिक पुरुष समझना चाहिये। परन्तु इसमें शर्त यह है कि, आसक्ति और विरक्ति दोनों ही अतिशय तीव्र परन्तु समान होनी चाहिये। ससारमें ऐसे भी कुछ लोग है, जिनकी किसी भी विषयपर किसी भी पदार्थपर आसक्ति नहीं होती है। प्रेम क्या पदार्थ है, यह वे जानते ही नहीं है। वे निष्ठुर और

निरुत्साह होते हैं। उन्हें जगतमें दुःखकी बहुधा कल्पना ही नहीं होती है। परन्तु इसी प्रकारसे हमारे मकानकी एक भींतको भी दुःख क्या पदार्थ है, इसका अनुभव नहीं है। वह भी न, कभी किसीसे प्रेम करती है और न किसीके लिये शोक करती है। परन्तु भींत तो भींत ही है जड़ ही है। संसारमार्गमें विषयासक्त होना एक प्रकारसे अच्छा है, परन्तु भींत सरीखे निर्जीव जड हो जाना कदापि अच्छा नहीं है। चूल्हेके पास छुपकर बैठे रहनेकी अपेक्षा अधावस्थामें भी झाँडेपर चढ़ना हजार गुणा अच्छा है। ऐसे मनुष्यको जिस प्रकारं दुःखका ज्ञान नहीं होता है, उसी प्रकार सुख भी कभी प्राप्त नहीं होता है। इस स्थितिकी हमें आवश्यकता नहीं है। इसे ही अशक्तपना कहते है। मृत्यु भी यही है। जिसे दौर्बल्यकी दुःख-की कल्पना ही नहीं होती है, उसे जीवित कैसे कह सकते हैं? यह एक प्रकारकी जड़ावस्था है। इसे हम दूरहीसे नमस्कार करते हैं।

यह बलवती आसक्ति, कि जिसके योगसे मन एक ही विषयमें तल्लीन होकर निजत्वको भूल जाता है और यह विषयोंपरका प्रेम जो देवादिकोंका गुण है, हममें होना ही चाहिये। परन्तु केवल इतनेहीसे सतुष्ट होकर बैठे रहनेसे काम नहीं चलेगा। हमें देवोंसे भी श्रेष्ठ बनना है—हमें देवोंपर भी ताना मारना है। जो जीवन्मुक्त हैं, वे विषयोंपर अपरिमित प्रेम करके भी उनसे अलिप्त रहते हैं और इसीमें उनकी विशेषता है। यह बात देवोंमें नहीं है।

सुख क्या चीज है, इसका भिखारीको कभी स्वप्नमें भी अनुभव नहीं होता है। उसे जब मुट्ठीभर भिक्षा, मिलती है, तब देनेवालेके मनमें उसके विषयमें घृणा और तिरस्काररूप विकार उत्पन्न होते है। और नहीं तो, इतना विचार तो उसके जीमें अवश्य आता है

कि, भिखारी एक क्षुद्र प्राणी है। इससे भिखारीको जो मिलता है, वह उसके अग कभी नहीं लगता है। हम सब ऐसे ही भिखारी है। हमने कुछ भी किया कि, उसका बदला चाहते है। हम सब व्यापारी है। प्रतिदिनके काम काजोंके विषयमें कहिये, सद्गुणोंके विषयमें कहिये अथवा धर्मके विषयमें कहिये, हम सदा ही लेन देनका तत्त्व अपने साम्हने रखते है। और तो क्या प्रेमके विषयमें भी हम इस तत्त्वको नहीं भूलते है। अर्थात् प्रेम भी हम मतलबके लिये करते है। यह व्यापारका–खरीद विक्रीका–लेन देनका तत्त्व हमने एकवार स्वीकार किया कि, फिर हमें बराबर इसी तत्त्वके अनुसार चलना पड़ता है। कभी समय अच्छा होता है, कभी बुरा होता है। कभी भाव तेज होता है और कभी मंदा हो जाता है। व्यापारमें घाटा लगनेका डर भी हमेशा रखना पड़ता है। यह दर्पणमें मुह देखनेके समान है। आपने मुह मरोड़ा कि, दर्पणमें उसका प्रतिबिम्ब तयार है। आप हँसे कि, दर्पण भी हँसता है। यह सब लेनदेनका परिणाम है। जैसा दिया, वैसा लिया।

हम जो उलझते है, सो काहेसे? हम जो देते है, उससे नहीं उलझते है किन्तु जो फलकी आशा करते है, उससे उलझते है। हम प्रेम करते है, तो भी उसका परिणाम दुःखकारक होता है। यह क्यों? हम प्रीति करते है, इसलिये दुखी नहीं होते है, किन्तु अपनी प्रीतिके बदलेमें प्रीतिकी आशा करते है। इसलिये दुखी होते हैं। यदि हम दूसरोंसे प्रेमकी आशा नहीं रक्खें, तो फिर दुःख क्यों होगा? आशाकी प्रतीक्षा करते रहना ही दुःखका मूल है। आशायाः परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्। आशा की, कि दुःख आया ही समझिये।

वास्तविक यश—वास्तविक सुख प्राप्त करनेका मूलमंत्र भी यही है। जो मनुष्य अपने कृत्योंका वदला नहीं चाहता है, और जिसके हृदयमें स्वार्थकी वासना नहीं है, वही मनुष्य संसारमें यशस्वी हो सकता है। ऊपरा ऊपरी देखनेसे यद्यपि यह बात ठीक नहीं मालूम होती है। क्योंकि हम देखते है कि, जो मनुष्य अपनी चिन्ता नहीं करता है स्वार्थदृष्टि नहीं रखता है, उसे लोग फँसा लेते हैं और उसको बहुत हानि पहुचाते है। यीशू ख्रिष्टने स्वार्थत्याग किया, इसी लिये वह शूलीपर चढाया गया। परन्तु विचारपूर्वक देखा जाय, तो स्वार्थत्याग ही यश प्राप्तिका कारण है। ख्रीष्ट शूलीपर चढ़ाया गया, यह सच है, परन्तु यह भी तो सुप्रसिद्ध है कि, स्वार्थत्यागके कारण ही आज पृथ्वीमें उसका यशोगान होता है। अपना नि स्वार्थ चरित्र ही वह लाखों मनुष्योंको वास्तविक यश प्राप्तिका मार्ग बतला गया है।

न किसी वस्तुकी याचना करो और न फलकी अपेक्षा रक्खो। शक्तिके अनुसार जो धर्म करना हो, करो। उसका फल तुम्हें मिलेगा ही। परन्तु तुम्हें उसके मिलने न मिलनेकी झंझटमें पडनेकी आवश्यकता नहीं है। दिये हुए का फल तुम्हें हजार गुणा मिलेगा परन्तु तुम्हें उसपर लक्ष्य नहीं रखना चाहिये। तुम तो देते जाओ। जब तक जीओ, तब तक तुम्हें देते रहना चाहिये। यह स्मरण रक्खो कि, यदि तुम स्वयं नहीं दोगे, तो तुमसे जबर्दस्ती वसूल किया जायगा। इससे तो अच्छा यही है कि, सुखसमाधानसे स्वय देते जाओ। आज दो या कल दो, पर तुम्हें सर्वस्व दे डालना चाहिये। तुम ससारमें आये हो सचय करनेकी बुद्धिसे, इसलिये तुम्हें सदा अपनी मुट्ठी गरम करनेकी ही पड़ी रहती है, परन्तु

काल कलाई पकड़कर तुम्हारी मुट्ठी खोल देगा। तुम्हारे मनमें हो चाहे न हो, परन्तु तुम्हें त्याग करना ही पड़ेगा। तुमने 'न' कहा कि, प्रहार हुआ। कोई भी हो, उसे इस संसारमें एकके बाद एक सर्व वस्तुओंका त्याग करना ही पड़ता है। लोग यत्न करनेके लिये जितने तड़फड़ाते है, उतने ही दुखी होते है। सृष्टिनियमके प्रतिकूल चलनेका प्रयत्न ही दुःखदायक है। जंगल जलकर खाक हो जाता है, पर हमें उससे उष्णता मिलती है। सूर्य समुद्रका पानी सोख लेता है, परन्तु हमें उससे पानी मिलता है। इसी प्रकार तुम भी एक लेनदेनके यंत्र हो। दे सको, इसी लिये तुम लेते हो इस लिये कुछ वापिस मत मांगो। जितना जितना तुम देते जाओगे, उतना उतना तुम्हें ही अधिक वापिस मिलता जायगा। कोठरीकी हवा तुम जितनी जल्दी निकालोगे, उतनी ही जल्दी बाहिरकी स्वच्छ-हवा भीतर आवेगी। यदि तुम उसके झरोखे और खिडकिया बन्द कर दोगे, तो फिर बाहिरकी हवा भीतर नहीं आवेगी और भीतरकी हवा इकट्ठी होकर दूषित हो जायगी। नदीका पानी समुद्रकी ओर बराबर बहता जाता है, तो भी नदी भरी ही रहती है। बधान बांध कर उसके पानीको रोकना नहीं चाहिये। यदि उसके प्रवाहको रोकोगे तो समझ लो कि, अनिष्ट हुए बिना नहीं रहेगा।

इसी लिये कहता हूं कि, भिखारीकी वृत्तिकोड़ छो दो और फलासक्ति मत रक्खो। यह बात बहुत ही कठिन है। इस मार्गपर जो कठिनाइयां है, उनका अनुमान सहजही नहीं हो सकता है और प्रत्यक्ष अनुभव किये बिना उन कठिनाइयोंका वास्तविक महत्त्व भी नहीं समझा जा सकता है। यद्यपि इस मार्गमें कठिना-

इयां बहुत है, तोभी हताश नहीं होना चाहिये। चाहे जितनी बार असफलता हो, और चाहे जितना शारीरिक कष्ट उठाना पड़े, पर उत्साहको नहीं गिरने देना चाहिये। हमें सकटोंमें पड़नेपर अपने शरीरका दिव्य तेज प्रगट करना चाहिये। पुरुषार्थी सकटोंको बहुत ही तुच्छ समझते है।

विषयोंपरकी आसक्ति छोडकर उनसे अलिप्त रहनेके लिये हम प्रतिदिन नये नये नियम करते है। जिन पदार्थोंपर हम पहिले प्रेम करते थे और जिनपर हमारी भक्ति थी, उनकी ओर देखा कि, प्रत्येकसे हमें कितना दु.ख हुआ है, इसका स्मरण आता है। यह भी याद आता है कि, उस प्रेमसे हम कितनी बार निराशाके समुद्रमें गोते खाते थे, कितने पराधीन होकर नीचे नीचे गिरते जाते थे। फिर एक वार नवीन निश्चय करते ये कि, आजसे किसीके भी आधीन न होकर आत्मसयमन करते रहेंगे, परन्तु ज्यों ही मौका आता था फिर वही पहिला पहाड़ा पढ़ना शूरू कर देते थे। और फिर उससे बाहर निकलना कठिन हो जाता था। जालमें फँसकर तड़फडानेवाले पक्षीसरीखी दशा हो जाती थी।

यह मै जानता हू कि, कठिनाइया बहुत है और ऐसे मौकोंपर सैमेंसे नव्वै लोग निराश हो जाते है और फिर दु.खैकवादी होकर वे यह समझने लगते हैं कि, सत्य प्रेम आदि उच्च गुण ससारमें हैं ही नहीं। इसी लिये वे जो अपनी पूर्व वयमें क्षमाशील दयालु सरल और साधे थे, आगे ऐसे हो जाते हैं कि, उन्हें मनुष्य कहनेमें भी सकोच होता है। वे क्रोधित नहीं होते है, किसीको गाली गलौंज नहीं देते है, परन्तु इसकी अपेक्षा यदि वे क्रोधित होकर गाली गलौंज करते होते, तो अच्छा था। निर्जीव होनेकी

अपेक्षा गालियां देना अच्छा। परन्तु उनका अन्तःकरण मृत हो जाता है, ऐसा कि मानों ठंडसे जमकर पत्थर हो गया है। उन बेचारोंमें गालियां देने योग्य भी चेतना नहीं रहती है।

किन्तु हमें इन सब बातोंको टालना चाहिये। और इसी लिये मैं कहता हूं कि, हममें ईश्वरसे भी अधिक शक्ति होना चाहिये। केवल अमानुषिक शक्तिसे काम नहीं चलेगा, अतिदैविक शक्तिकी आवश्यकता है। इन सब दु:खोंसे छूटनेका यही एक मार्ग है। इस अलौकिक सामर्थ्यके योगसे ही हम इस दुःखसागरसे पार हो सकेंगे। हम पर चाहे जितने शारीरिक संकट आवें, परन्तु हमें अपने मन अपने अन्तःकरणको बराबर उदार और उदात्त बनाते जाना चाहिये।

यह बात कठिन अवश्य है, परन्तु यदि बराबर प्रयत्न करते रहेंगे, तो इसमें सफलता मिल सकती है। बिना हमारे तयार हुए हमारे लिये कुछ नहीं होगा। रोगोंको प्रवेश करने देनेके लिये जब तक हमारे शरीरकी तयारी नहीं होगी, तब तक रोग हमारे पास फटक भी नहीं सकते। रोगोंका होना न होना केवल रोगोत्पादक जन्तुओंपर ही अवलम्बित नहीं है, शरीरपर भी है। अपनी योग्यताके अनुसार ही फल मिलता है। इसलिये अहपनाको छोड़कर स्मरण रक्खो कि, अपात्रके पास दु.ख कभी नहीं आते है। मनुष्यको देखकर संकट आते है। अपने कर्मोंसे ही मनुष्य अपनेपर संकटोंको लाता है। अचानक बिना जाने हुए कभी सकट नहीं आता है। यह हमें अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिये कि, उसकी पूर्व तयारी अपने द्वारा ही होती है। आप स्वयं विचार करके देखेंगे, तो आपको निश्चय हो जायगा कि, हमारी तयारी हुए बिना

सकट कभी आते ही नहीं है। जब दुःखका प्रारंभ होता है, तब आधी तयारी हमारी होती है और आधी बाहिरकी होती है। उसी समय दु खका अचूक निशाना लगता है। इस प्रकारके विचारोंसे बुद्धि ठिकानेपर आ जायगी और कुछ कुछ आशाके चिन्ह दिखाई देने लगेंगे। वे इस प्रकार कि—"यद्यपि परस्थिति मेरे हाथकी नहीं है, परस्थितिपर मेरा कुछ जोर नहीं चलता है। परन्तु अपने आपपर मेरा पूर्ण अधिकार है। कोई भी कार्य हो, उसके लिये अपनी स्थिति और बाह्य परास्थिति दोनोंकी आवश्यकता रहती है। और जब ऐसा है, तब मै अपने अधिकारकी बातको तो जाने नहीं दूगा। फिर देखूंगा कि, सकट कैसे आते है? यदि मेरा अपने आपपर पूर्ण अधिकार है, तो फिर सकट कभी नहीं आ सकते।"

प्रत्येक बातका दोष दूसरोंपर टालनेकी छोटेपनसे ही हमारी आदत पड जाती है और हम निरन्तर अपने सुधारनेके बदले लोगोंको सुधारनेका प्रयत्न किया करते है। अपनेपर यदि कोई दुःख आता है, तो हम कहते है—"हाय! जगत् कितना बुरा है।" और दूसरोंको ही गालिया देकर उन्हें मूर्ख तथा बुद्धिभ्रष्ट कहने लगते है। परन्तु यह नहीं सोचते हैं कि, यदि हम अच्छे है तो इस जगतमें आये ही क्यों? यह जगत यदि भ्रष्ट लोगोंका है, तो समझना चाहिये कि तुम भी भ्रष्ट होगे, नहीं तो यहा आते ही नहीं। तुम कहते हो—"हाय! हाय! जगत्में लोग कितने स्वार्थसाधु है।" ठीक है। परंतु यदि तुम अच्छे थे, तो इस जगत्में कैसे राह भूल पडे? इन बातोंका प्रत्येक पुरुषको विचार करना चाहिये। हर किसीको उसकी योग्यताके अनुसार ही पुरस्कार

मिलता है। हम जो यह कहा करते है कि, "जगत बुरा है, केवल हम ही अच्छे है" सो हमारी भूल है। ऐसा कभी नहीं है। यह विचार बहुत हानिकारक है। हमें सीखना चाहिये कि लोगोंको कभी भ्रम न रक्खें। उन्हें दोष न देकर वीरोंके समान स्वय आगे आना चाहिये और दोषोंका खप्पर अपने ही सिरपर फोड़ लेना चाहिये। क्योंकि सदा अपनी ही गलती होती है। हमें स्वतः चाहिये कि, सर्वदा सावधान रहें—खबरदार रहें।

हम अकसर घमंडकी बातें किया करते है कि, हम सरीखे शूर हम ही है, प्रत्यक्ष देव और सर्वज्ञ भी हम ही है, हम चाहे जो कर सकते है, हम निष्कलंक चन्द्र है, संसारमें यदि किसीने स्वार्थ-पर लात मारी है, तो केवल हमने। हम इस तरह अकड़बेगों जैसी बातें करते अवश्य है, परन्तु यह कितनी लज्जाकी बात है कि, एक जरासा पत्थर ही हमारी खोपड़ीपर आकर पड़ता है, तो हम चिल्ला उठते हैं, एक क्षुद्र आदमी हमपर क्रोधित होता है, तो हमारी मान-हानि हो जाती है, और एक रास्ता चलता हुआ साधारण आदमी भी हमारा नाकों दम कर डालता है। यदि हम वास्तवमें अपनेको जैसा कहते है, वैसे होते, तो उक्त जरा जरासे कारणोंसे कभी अधीर नहीं होते। इन लक्षणोंसे साफ मालूम होता है कि, हमपर बाह्यवस्तुओंका बड़ाभारी परिणाम होता है। और जब बाह्यसृष्टिका हमपर इतना असर होता है, तब स्पष्ट ही है कि, हम अपनेको जैसा बतलाते है, वास्तवमें वैसे नहीं है। एक तो यों ही हमारे दुःख बहुत है, और फिर ऊपरसे बाह्यसृष्टि भी हमें त्रास देती है। फिर दुःखोंका क्या ठिकाना है? यह रोना रोकर कि, 'जगत कितना बुरा है, अमुक हमें दुख देता है, और अमुक त्रास

देता है' हम अपने पहिले दुःखोंमें नये दुःख और भी शामिल कर लेते हैं।

प्रत्येक पुरुषको अपनी ही चिन्ता करनी चाहिये। दूसरोंकी चिन्ता करनेकी अभी जल्दी नहीं है। हमने यदि अपने साधनकी ही पूरी पूरी तयारी कर ली, तो बस है। कार्य आप ही आप सिद्ध हो जायगा। हमें उसकी चिन्तासे मतलब नहीं। यदि हमारा वर्ताव अच्छा और शुद्ध होगा तो हमें जगत भी अच्छा और शुद्ध दिखेगा। जगतका अच्छा होना कार्य है और स्वयका अच्छा होना कारण वा साधन है। इसलिये आओ, हम सब अपनी शुद्धिकी ओर ध्यान दें और अपनेको पूर्णत्व प्राप्त करनेका प्रयत्न करें।

नोट—यह लेख मराठी मासिक मनोरजनमें प्रकाशित हुए एक लेख का अनुवाद है। इसके सब सिद्धान्त जैनधर्मके अनुकूल नहीं है, तो भी उपयोगी और शिक्षाप्रद समझकर यह प्रकाशित कर दिया जाता है। सम्पादक।

पुस्तकावलोकन और पुस्तकालय।

(स्वदेशवान्धवसे उद्धृत)

ससारमें आकर ज्ञान बढ़ाना मनुष्य मात्रका धर्म्म है। क्योंकि ज्ञानसे ही मनुष्य अपना कल्याण और दूसरोंका भला करनेमें सामर्थ्यवान् होता है। ज्ञान बढ़ानेके दो ही मुख्य उपाय है—प्रथम सत्सगति दूसरा पुस्तक अध्ययन। सत्सगति प्रतिस्थान और प्रति समय मिलनी कठिन है, परन्तु पुस्तकाध्ययनका अवसर सतसंगतिकी अपेक्षा सुगमतासे प्राप्त हो सकता है। अच्छे पुस्तकोंका अध्ययन करना भी एक तरह सत्सगति करनेके समान ही है। कवि मिल्टन कहता है कि,

" पुस्तकोंमें एक विशेष शक्ति है जो कि ठीक उसी शक्तिके समान होती है, जैसी कि ग्रन्थकर्त्तामें होती है।" किसी विद्वान्‌ने सच कहा है कि, पुस्तकोंकी सगति ही मनुष्योंमें मनुष्यत्व लाया करती है।

हमारा स्कूलमें पढ़ना केवल इसी लिये नहीं है कि, हम वहां जाकर किसी भाषामें या व्याकरणमें पारंगत हो जांय और फिर कुछ न करें। हमारा पढ़नेका उद्देश्य यही होना चाहिये कि, हममें लिखने पढ़नेका शोक पैदा हो जाय। और जन्मभर हम ससारके और २ कामोंमें लगे हुए भी अपने ज्ञान भाण्डारको बढ़ाते रहें। चाहे कोई धनाढ्य हो वा दरिद्र, एक मनुष्य बहुतसे विषयोंके ग्रन्थोंका संग्रह नहीं कर सकता। क्योंकि किसी भी व्यक्तिके पास न इतना समय है और न इतना द्रव्य। इसी लिये सर्व साधारणके लाभके लिये विद्वानोंने पुस्तकालयकी स्थापना करनेकी प्रणाली चलाई है। सब सभ्य देशोंमें इस प्रणालीसे बड़ा लाभ उठाया जा रहा है। यूरोपके एक २ देशमें कितने ही बड़े २ पुस्तकालय है। यदि भारतवासी चाहें, तो भारतमें बड़े २ पुस्तकालय बनाकर बहुत कुछ लाभ उठा सकते है। हम सूदके लाभके लिये लोगोंको रुपया ऋण देते है, लेन देनका व्यवहार करते है, परन्तु याद रखिये जो रुपया हम पाठशाला, पुस्तकालय, प्रदर्शनी इत्यादिमें लगाते है, उससे मामूली सूद ही नहीं मिलता, सूद दरसूद ही नहीं मिलता, किन्तु मूल धनसे अगणित अधिक लाभ होता है। किसी विद्वान्‌ने कहा है कि " जो पुरुष एक स्कूलका द्वार खोलता है, वह जेलखानेका फाटक बन्द करता है।" किन्तु हम कहते है, जैसे क्षत्रिय-कुल-भूषण राजा भगीरथ अपनी सन्तान और प्रजाके कल्याणार्थ गंगाजीके प्रवाहको लाये थे, उसी प्रकार जो मनुष्य एक पुस्तकालय खोलता है।

वह अपनी सन्तानको, अपने देशवासियोंको सरस्वती स्नान कराकर विद्वान् और भाग्यशाली बना देता है। दृष्टान्तके लिये पश्चिमकी ओर देखिये। विद्वान्प्रवर **सर जोन लवन**, मेम्बर पार्लीमेंट अपनी एक पुस्तकमें लिखते हैं—"हम सभ्य जातिओंके विषयमें सुनते हैं और निस्सन्देह कुछ जातिया और जातिओंको देखते सभ्य हैं भी, किन्तु अभी तक कोई देश इस दशाको नहीं पहुंचा है कि, उसको ठीक २ सभ्य कहा जाय। हमको सच्ची सभ्यता प्राप्त करनेके लिये यत्न करना चाहिये और निस्सन्देह पुस्त-कालयोंकी स्थापनाकी उन्नति इसकी ओर वढनेका एक उपाय है।" अकवर एक वड़ा प्रतापी वादशाह हुआ हैं। हिन्दू मुसल-मान सवही उसको वड़ा वताते है। उसके वडे होनेमें भी पुस्तक-श्रवण और पुस्तकालय ही कारण है। आईने अकवरीमें लिखा है कि, अकवरके यहा एक वडा पुस्तकालय था और वह दूसरोंसे पढवा २ कर कितावोंको वड़े ध्यानसे सुना करता था। पुस्तक-प्रेमी होनेके कारण ही उसने महाभारत, वाल्मीक रामायण, अथर्व-वेदका फारसीमें उल्था कराया था। अकवर इतिहासका वडा प्रेमी था। इतिहासकी पुस्तकोंको वडे ध्यानसे सुना करता था, उसने 'तारीख अलफी' नामका एक इतिहास भी वनवाया था।

विशप रिचर्ड डी वरी पुस्तकोंकी प्रशसा करते हुए कहते है। ग्रन्थ उस गुरुके समान हैं, जो विनाकड़े शब्द कहे और क्रोध दिखाये विना मारे पीटे विना कुछ लिये दिये हमें शिक्षा देते हैं। यदि तुम उनके समीप जाओगे तो तुम उन्हें सोता हुआ नहीं पाओगे। यदि तुम उनसे कुछ पूछोगे, वे तुमसे कुछ भी नहीं छिपावेंगे। यदि तुम उनका कुछ अपराध भी करोगे तो वे कुछ

न कहेंगे। यदि तुम अज्ञानी हो तो वे तुम्हें देखकर नहीं हसेंगे। सद्ग्रन्थोंका पुस्तकालय ही दुनियांकी धन सम्पत्तिसे अधिक मूल्यवान् है। और हमारे संसारके अभिलषित पदार्थोंमें पुस्तकालय ही सर्वश्रेष्ठ है। इसी कारण जो कोई अपनेको सत्यानुगामी, सुखी, विद्वान्, बुद्धिमान् और धार्म्मिक बनाना चाहे वह अवश्य ही अपनेको पुस्तकका प्रेमी बनावे।

पुस्तकालय हमारे पुरुषाओंके छोड़े हुए खजानेके समान है। उनको काममें लाना हमारा धर्म्म है। यदि हम उससे लाभ नहीं उठाते, तो हम अयोग्य सन्तान हैं। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो हमारा पुस्तकाध्ययन और संग्रह करनेमें जितना खर्च होता है, उससे कहीं अधिक मादक द्रव्योंके सेवनमें खर्च होता है। यदि हमारे देशवासी अपने नशेपानीकी चीजें और चिलम तमाखूके खर्चका आधा हिस्सा भी पुस्तकोंके लिये खर्च करें, तो उनको बड़ा लाभ हो। आज कल यूरोप अमेरिकामें पुस्तकालयके लाभोंको लोगोंने समझा है। वहांपर बड़े २ पुस्तकालय है और पुस्तकालय सम्बन्धी कितने ही सामायिकपत्र निकलते है।

ऐसी कोई गली या मुहल्ला नहीं है, जहा कोई रीडिंग रूम (वाचनालय) न हो। कैसे आश्चर्य की बात है कि, जब इग्लेंडमें कारखानोंमें काम करनेवाले कुली मजदूर तक और साधारण गाड़ी हांकनेवाले तक अवकाश मिलनेपर समाचारपत्र पढ़ते है, तब भारतके अच्छे २ अमीर अपने समयको व्यर्थ नष्ट करते है। निस्सन्देह भारतमें पुस्तकालयोंकी बडी आवश्यकता है। बड़े २ शहर-तक उनसे खाली है। पुस्तकालयोंमें जाकर पुस्तकोंके पढ़नेसे लोगोंमें विद्या और बुद्धि बढ़ती है, और धनाढ्य व गरीब सबका आप-

समें मेल जोल बढ़ता है। एक अंग्रेज विद्वान्का कथन है कि, यदि मनुष्यको कोई शौक लगाना हो, तो वह शौक लिखने पढ़नेका होना चाहिये। उससे अधिक आनन्ददायक और कोई शौक नहीं है। इस शौकके कारण पुरुष भाग्यवान् और सुखी हो जाता है और उसे ऐसा आनन्द प्राप्त होता है कि, संसार मेरे लिये ही है। भारतवासी भी पुस्तकालयके लाभोंको समझें और पुस्तकाध्ययनसे लाभ उठावें, यही हमारी मनोकामना है।

पुस्तक प्रेमियोंका दास—
पूर्णचन्द्र बजाज, सागर

हृदयोद्गार *।

(१)

आनन्द आज मनका, मनमें न माता।
स्वच्छन्द रोमपथसे, सब ओर जाता॥
देखो, यहा विचरता, सुवही वही है।
स्वर्गीय भूमि उससे, यह हो रही है॥

(२)

इच्छा अपूर्व उत्साह अपूर्व ही है।
उद्योग और शुभ भाव अपूर्व ही है॥
प्रत्येक सभ्यजनके, मनमें समाये।
ये भाव ही दिख रहे, न छुपे छुपाये॥

---

* सम्पादकने यह कविता मोरेनाके सरस्वती भवनकी स्थापनाके समय रचकर पढ़ी थी।

(३)

जो जीर्ण शीर्ण अतिदीन मलीन होके।
सुख्याति और बहुमान–निधान खोके ॥
माता सरस्वति पड़ी, चिरकालसे थी।
अत्यन्त ही व्यथित जो निज हालसे थी ॥

(४)

हस्तावलम्ब उसको, सब दे रहे हैं।
हो नम्र आज उसके पद से रहे हैं॥
सद्भक्ति पूर्ण शुचि अर्घ चढ़ा रहे हैं।
उत्साह और नव चाह बढ़ा रहे हैं ॥

(५)

आलोच्य दोष पहिले, पछता रहे है।
खोये 'सुपुत्र' पदको, अकुला रहे है ॥
सेवा सदा करहिंगे, प्रण ले रहे है।
सर्वस्व और निज जीवन दे रहे है ॥

(६)

सन्मान मंगलमयी यह शारदाका।
आदर्श उत्तम उदार उदारताका ॥
गंभीर नींव यह, उन्नति–हर्म्यकी है।
चेष्टा सुचारुफलदा, शुभकर्मकी है ॥

(७)

श्रीजी सुबुद्धि सबके, मनमें जगावें।
सेवा सुमातु निजकी, सब सीख जावें ॥
इससे समुन्नत स्वदेश जरूर होगा।
अज्ञानभाव हमसे, हट दूर होगा ॥

(८)

ये पुस्तकालय, दिनों दिन वृद्धि पावे।
निस्स्वार्थ पंडित बनाय, सुकीर्ति छावे॥
कल्पान्तलों थिर रहै, यह ज्ञान दाता।
आशीष मगलमयी, कवि है सुनाता॥

मेघान्योक्ति अष्टक

[१]

को नहीं जानत मेघ! एक अवलम्ब तिहारे।
धार रहे है जीवन ये चातक बेचारे॥
इतने पर भी चाह दीन वचनोंकी भाई।
करता है तू इनसे, है इसमें कौन बड़ाई॥

[२]

ले लेकर जल अंश, हुआ जिससे तू भारी।
औ होकर मदमत्त, चपल चपला उर धारी॥
उसी जलधि पर, जा जाकर गर्जत तर्जत है।
रे रे काले मेघ, तुझे क्या यही उचित है?

[३]

गिरि ऊसर भूगर्त[1], गुहादिकपर मन मानी।
हे जलधर, कर वृष्टि, किया है पानी पानी
पर खेतोंपर एक, बूंद भी नहीं बरसाया।
यह तूने कुछ न्याय, अनोखा ही दरशाया

---

1 गढ्ढे।

[४]

[1]जलद, तुम्हारी अनुकम्पासे, सब [2]तरु-राजी।
रंग विरंगे नव पल्लव,-दलसे है साजी ॥
पर बेचारे [3]आक, इसीको तरस रहे है।
बने रहें पहिलेके ही, जो पत्र रहे है ॥

[५]

हे जलधर नहिं स्वयं इसे तू भोग सकेगा।
कहीं व्यर्थ ही विना विचारे, बरसा देगा ॥
तब इसको फिर वहां, नहीं तू क्यों बरसाता।
[4]मुक्त किया जल [5]जहां, रूप [6]मुक्ताका पाता।

[६]

जग है अति बेचैन, ग्रीष्म आतपसे जो यह।
जल बरसा हे मेघ, उसे कर शांत सुयश लह ॥
नहिं तो हो जा दूर, व्यर्थ क्यों तपा रहा है।
होने दे शशि दरश उसे क्यों छुपा रहा है ॥

[७]

दावानलसे दग्ध, तृषित चातक चिर दिनके।
देकर जल हे जलद, करहु शीतल हिय उनके ॥
नहीं तो यदि चल पड़ा पवनका प्रबल झकोरा।
तो कहँ तुम, कहँ नीर कहाँ यह दीन निहोरा ॥

[८]

सुन करके हे पथिक भयंकर इस गर्जनको।
मत विव्हल हो नेक, देहु धीरज निज मनको ॥

---

१ बादल। २ वृक्षोंकी राजी अर्थात् पंक्ति। ३ आकके वृक्ष। ४ मुक्त किया हुआ अर्थात् छोडा हुआ। ५ जहां अर्थात् जिस सीपमें। ६ मोतीका।

नहीं सुना है सुयश विमल, क्या सखे जलदका ।
जो निज जीवन देय, हरत संताप जगतका ॥

शिवसहाय चौबे—
देवरी (सागर)

मोरेनामें सरस्वती भवनकी स्थापना ।

गत पौषसुदी १०को जैनसिद्धान्तपाठशालाके कार्य्यकर्ताओंने यहांके स्थानीय लोगोंके और विद्यार्थियोंके लाभके लिये एक सार्वजनिक सरस्वती भवनकी स्थापना की है । इस सरस्वती भवनमें ऐहिक और पारलौकिक उन्नति ज्ञान करानेवाले सब प्रकारके हिन्दी संस्कृत आदि भाषाओंके ग्रन्थ और मासिकपत्र तथा अन्य समाचारपत्र संग्रह किये जायगे और उन्हें जैन और जैनेतर सब लोग सुभीतेके साथ पढ़ सकें, ऐसी व्यवस्था की जायगी । प्रारभमें श्रीयुक्त बलदेवजी उपाध्यायने विधिपूर्वक सरस्वतीदेवीकी पूजा की, और फिर स्थानीय म्यूनीसिपालिटीके चेअरमैन श्रीयुक्त लालाराम जीवनजीने अपने करकमलोंसे प्रसन्नताके साथ सरस्वतीभवनको खोला । इसके पश्चात् एक सभा की गई, जिसके सभापतिका आसन उक्त लाला साहबको दिया गया । प्रारभमें मगलाचरण और उत्साहवर्धक भजन गाये गये, पश्चात् श्रीदेवकीनन्दन विद्यार्थीका लगभग १॥ घण्टे तक व्याख्यान हुआ, जिसमें भारतकी वर्तमान दशाका खाका खींचा गया और देशके कल्याणके लिये शिक्षाप्रचारकी आवश्यकता बतलाई गई । इसके बाद श्रीयुक्त नाथूरामजी प्रेमी सम्पादक जैनहितैषीने एक सारगर्भित व्याख्यान देकर पुस्तकालयकी आवश्यकता दिखलाई और एक स्वरचित कविता पढ़कर

इस सरस्वतीभवनकी स्थापनासे जो उन्हें हार्दिक आनन्द हुआ था, उसे प्रगट किया तदनन्तर पूज्यवर पं० **गोपालदासजी** स्याद्वादवारिधिने थोड़ेसे शब्दोंमें पूर्व व्याख्यानोंका सारांश कहकर उनका अनुमोदन किया। यद्यपि इस समय सरस्वतीभवनके लिये कुछ अपील नहीं की थी, तौभी व्याख्यानोंका इतना अच्छा असर हुआ कि, उपस्थित सज्जनोंने उसी समय अनुमान ७९) के चन्दा लिख दिया और पीछे यह रकम लगभग १२०) के हो गई। * इस विषयमें द्रव्यदाताओंको जितना धन्यवाद दिया जाय उतना थोड़ा है। बहुतसे सज्जनोंने सरस्वतीभवनके लिये पुस्तकें देनेकी भी कृपा दिखाई। जैनसिद्धान्त पाठशालामें जो पहिले लगभग २०० पुस्तकोंका संग्रह था, वह भी इस सरस्वतीभवनमें शामिल कर दिया गया है।

अन्तमें सम्पूर्ण विद्योत्साही धर्मात्मा भाइयोंसे प्रार्थना है कि, वे नगद द्रव्य भेज कर तथा पुस्तकादि भेंट करके इस सरस्वतीभवनको सहायता पहुंचावें और ज्ञानवृद्धिके इस परमोपयोगी साधनको विशाल बनानेकी कृपा दिखावें।

मोतीलाल ब्रह्मचारी—
मोरेना (ग्वालियर)

एक और सरस्वती मन्दिर।

पाठक! आराके देवकुमार सरस्वती भवनके स्थापित होनेका समाचार बहुत पहिले पढ़ चुके हैं। आज हम जैनसमाजद्वारा स्थापित किये हुए एक और सरस्वती मन्दिरकी स्थापनाका समाचार सुनाते

---

* स्थानाभावके कारण चन्देकी सूची प्रकाशित नहीं हो सकी। सम्पादक.

है। इसे जानकर पाठक यह अवश्य समझेंगे कि, जिन बातोंके लिये अविराम आन्दोलन किया जाता है, उनकी आवश्यकता लोगोंपर अवश्य विदित हो जाती है और समय पर उन आवश्यकताओंकी पूर्ति करना भी लोग प्रारभ कर देते है। जो लोग पहिले केवल मन्दिरोंके बनवाने और प्रतिष्ठाओंके करवानेमें ही अपने कर्तव्यकी इति श्री समझते थे, उन्हे अब विद्या मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा करनेकी ओर प्रवृत्त देखकर वचनातीत आनन्द होता है।

इस सागर शहरमें एक बालबोध जैनपाठशाला तो पहिलेसे ही थी। दूसरी संस्कृतकी पाठशाला तथा भोजनशाला लगभग तीन वर्षसे चल रही है। जिसका कि, ढाइसौ रुपया मासिकका खर्च है और जिसमें लगभग पच्चीस विद्यार्थी सस्कृतका अध्ययन करते है। अब यहाके समैया भाइयोंने जिनमें श्रीयुक्त जवाहरलालजी बजाज, नन्हूलालजी सराफ, कालूरामजी दलाल, आदि मुख्य है, विद्वद्वर्य पंडित गणेशप्रसादजी तथा गजाधरजी तामियाके उत्साह दिलानेसे और श्रीयुक्त नाथूरामजी प्रेमी सम्पादक 'जैनहितैषी' के उपस्थित होकर प्रेरणा करनेसे अगहन शुक्ल सप्तमीको एक सरस्वती-मन्दिरकी स्थापना करनेका दृढनिश्चय किया है। आगामी अक्षय तृतीयाको उसका शुभ मुहूर्त किया जायगा। लगभग पाच हजार रुपया दान किया गया है, जिसमें तीन या चार हजार रुपयोंके लगभगका मन्दिर बनाया जायगा और १२७३॥) की छपी तथा हस्तलिखित पुस्तकें मगाई जावेंगी, इसके सिवाय श्रीचैत्यालयोंकी औरसे प्रतिवर्ष दोसौ रुपयोंके ग्रन्थ और भी मगाये जाया करेंगे। इसके अतिरिक्त जो दानी महाशय इस फडमें दान करेंगे उन रुपयोंके भी ग्रन्थ मगाये जावेंगे। जिन सज्जनोंने इस कार्यके लिये

उद्योग करके यह सफलता प्राप्त की है, उनके उत्साहको देखकर यह भी आशा होती है कि आगे यह कार्य बहुत विशाल हो जायगा, और ऐसे कई पाच हजार रुपये इसमें दान किये जावेंगे। श्रीजिनेन्द्रदेव इन महाशयोंकी इच्छा शीघ्र पूर्ण करें। यहांके समैया भाई बड़े उत्साही और धर्मात्मा है। उनके चैत्यालयमें लगभग हजार रुपया सालकी आमदनी है। और खर्च बहुत ही मामूली है। ये लोग जिनवाणीके उपासक है। इस लिये ऐसा मालूम होता है कि, प्रयत्न होता रहेगा, तो उक्त सारी रकम सरस्वतीमन्दिरमें ही व्यय होने लगेगी और उस समय यहां एक भारी सरस्वती भडार हो जावेगा।

अन्य स्थानोंके समैया तथा चरनागे आदि भाईयोंको भी इसमें सहायता देकर अपनी सरस्वती भक्तिको प्रगट करना चाहिये। जैनधर्मकी उन्नतिके लिये सरस्वती भंडार बड़े भारी साधन है। इस भंडारमें जो धर्मात्मा भाई नगदसे अथवा पुस्तकादिसे सहायता करेंगे वह सहर्ष स्वीकार की जावेगी।

यदि कहीं कोई प्राचीन ग्रन्थ विक्रीके लिये हों अथवा प्रयत्न करनेसे मिल सक्ते हों तो उनकी सूचना सरस्वती मन्दिरके प्रबन्धक श्रीयुक्त नन्नूलालजी सराफ सराफा बजार सागरको करना चाहिये।

पूर्णचन्द बजाज—सागर।

---

* इस लेखमें जो चन्देकी सूची थी, वह स्थानाभावसे प्रकाशित नहीं की जा सकी। सम्पादक।

कर्नाटक-जैन-कवि।

(२)

पपकविका आदिपुराण गद्यपद्यमय (चम्पू) है। कनड़ीमें काव्य रचनाका यह लक्ष्य ग्रन्थ है। इसमें १६ परिच्छेद है। कर्नाटककविचरित्रके कर्त्ताका कथन है कि, "इसका गद्य ललित, हृदयगम, गभीराशय और भावपूर्ण है और पद्य तो मोतीकी लड़ियोंके समान है। भाषाशैली सर्वोत्कृष्ट है इस कविको कन्नड कवियोंका राजा कहनेमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी।" इस ग्रन्थके आदिमें समन्तभद्र ,कविपरमेष्ठी, पूज्यपाद, गृद्धपिच्छाचार्य, जटाचार्य, श्रुतकीर्ति, मलधारिसिद्धान्तमुनीश्वर, देवेन्द्रमुनि, जयनंदिमुनि और अकलङ्कदेवकी स्तुति की गई है।

पपका भारत अथवा विक्रमार्जुनविजय भी कनडी साहित्यमें अपनी शानी नहीं रखता। यह भी चम्पू ग्रन्थ है। इसमें १४ आश्वास है। इसमें पाडवोंके जन्मसे लेकर कौरवोंके वध तककी कथा है। अन्तमें राज्याभिषेक हो चुकनेपर ग्रन्थ समाप्त किया गया है। इस ग्रन्थकी रचनासे प्रसन्न होकर अरिकेशरीने कविको 'बन्वेसासिर' प्रान्तका एक धर्मपुर नामका ग्राम पुरस्कारमें दिया था।

पपके गुरुका नाम देवेन्द्रमुनि था। वे बड़े भारी विद्वान् थे। श्रवणबेलगुलके ४२ वें शिलालेखमें उनका 'भारतीय भालपट्ट' कहकर उल्लेख किया है। कविताग़ुणार्णव, पुराणकवि, सुकविजनमनोमानसोत्तसहस, सरस्वतीमणिहार, संसारसारोदय आदि पपकविके उपनाम थे, जिनसे उसके एक अद्वितीय कवि होनेका अनुमान किया जा सकता है।

१९ पोन्न—यह भी कनड़ी भाषाका एक अतिशय प्रसिद्ध कवि है। पोन्निग, पोन्नमय्य, सवण, आदि इसके नामान्तर है और कविचक्रवर्ती, उभयकविचक्रवर्ती, सर्वदेवकवीन्द्र, सौजन्यकन्दांकुर आदि इसकी पदवियां है। इसके गुरुका नाम इन्द्रनन्दि था। यह राष्ट्रकूटवंशीय राजा कृष्णराजके समयमें (ईस्वी सन ९५०) हुआ है। कृष्णराजने इसे 'उभयकविचक्रवर्ती' का सम्मान सूचक पद दिया था, ऐसा जन्नकविके यशोधर चरित्रसे जो कि ईस्वी सन् १२०९ में बना है मालूम होता है। दुर्गसिंह (सन ११४५) के एक पद्यसे भी इस बातकी साक्षी मिलती है। इसके बनाये हुए शान्तिपुराण और जिनाक्षरमाला नामक दो ग्रन्थ उपलब्ध है। शान्तिपुराण चम्पू रूप काव्य है। इसके १२ आश्वास है। इस ग्रन्थको कविपुराणचुड़ामणि भी कहते है। इसकी कविता बहुत ही सुन्दर है। वेंगी देशके कम्मेनाडिकापुंगनूर नामक ग्रामके रहनेवाले कौडिन्यगोत्रोद्भव नागमय्य नामक जैन ब्राह्मणके मल्लप और पुन्निमय्यने जो कि पीछे तैलिपदेवके सेनापति हो गये थे। अपने गुरु जिनचन्द्रदेवको परोक्षविनय प्रगट करनेके लिये कवि पोन्नसे शान्तिनाथपुराणके रचनेका अनुरोध किया था, ऐसा ग्रन्थकी प्रशस्तिसे विदित होता है। जिनाक्षरमाला छोटीसी स्तवनात्मक कविता है, जो वर्णानुक्रमसे बनाई गई है।

शान्तिनाथपुराणके अन्तके एक पद्यसे मालूम होता है कि, इस कविके बनाये हुए दो ग्रन्थ और है—एक रामकथा वा भुवनैकरामाभ्युदय और दूसरा गतप्रत्यागतवाद। दूसरा ग्रन्थ सस्कृतमें है। कोई २ विद्वान् इनका बनाया हुआ एक अलकारका ग्रन्थ और भी बतलाते है। परन्तु इस समय ये तीनों ही ग्रन्थ प्राप्त नहीं है।

अजितपुराणके एक पद्यसे मालूम होता है कि, पंप, पौन्न और रन्न ये तीन कवि कनड़ी साहित्यके रत्नत्रय है।

पौन्नकी पार्श्वपंडित (ईस्वी सन् १२०६), नयसेन (१११२) नागवर्म (११४५), रुद्रभट्ट (११८०) केशिराज (१२६०) मधुर (१३८०) आदि जैन और जैनेतर कवियोंने बहुत प्रशंसा की है। और केशिराज आदि लक्षणग्रन्थकर्त्ताओंने इसके ग्रन्थोंसे उदाहरण उद्धृत किये हैं।

१६ रन्न—यह कवि वैश्य वर्णका था। इसके पिताका नाम जिनवल्लभेन्द्र और माताका अब्बलब्बे था। इसका जन्म ईस्वी सन् ९४९ में मुदुवोल नामक ग्राममें हुआ था। कविरत्न, कविचक्रवर्ती, कविकुंजराकुश, उभयभाषाकवि आदि इसकी पदवियां थीं। यह राजमान्य कवि था। राजाकी ओरसे सुवर्णदंड, चँवर, छत्र, हाथी आदि इसके साथ चलते थे। इसके गुरुका नाम अजितसेनाचार्य था। सुप्रसिद्ध जैन मंत्री चामुंडराय इसके पोषक थे। इस समय इसके दो ग्रन्थ उपलब्ध है, एक अजितपुराण और दूसरा साहसभीमविजय वा गदायुद्ध। पहिले ग्रन्थमें दूसरे तीर्थंकर अजितनाथका चरित्र १२ आश्वासोंमें वर्णन किया है। यह चम्पू ग्रन्थ है। इसे काव्यरत्न और पुराणतिलक भी कहते है यह शक संवत् ९१९ (ई० सन् ९९८) में रचा गया था। इस ग्रन्थके विषयमें कवि कहता है कि, जिस तरह इस ग्रन्थसे रन्न (अर्थात् मैं) 'वैश्य वंशध्वज' कहलाया गया।

[अपूर्ण]

पुस्तक समालोचन ।

कमलाकान्तका इजहार—लेखक बाबू ब्रजनन्दनसहाय वकील, आरा और प्रकाशक हिन्दी ट्रैन्सलर्टिंग कम्पनी बडाबाजार कलकत्ता। मूल्य दो आना। बंगलाके सुप्रसिद्ध लखक बाबू बंकिमचन्द्रने 'कमलाकान्तेर दफ्तर, नामका एक अपूर्व निवन्ध लिखा है, जिसमें हास्यरसको प्रधान करके सामाजिक धार्मिक और तात्त्विक विषयोंकी मर्मस्पर्शी आलोचना की है। यह पुस्तक उसी निवन्धके एक अशका अनुवाद है। इसमें अदालतमें जो हलफ दिलाया जाता है उसकी, और वकीलों तथा जजोंका मीठा उपहास किया गया है। अनुवाद अच्छा हुआ है। कहीं २ गोरू, साध, आदि बंगलाके शब्द ज्योंके त्यों रह गये हैं। अंग्रेजी वाक्योंका अनुवाद भी हिन्दीमें कर दिया जाता तो अच्छा होता। पुस्तक पढने योग्य है।

इन्द्रियपराजयशतक—अनुवादक और प्रकाशक श्रीयुक्त बुद्धूलाल श्रावक, देवरी (सागर) मूल्य दो आना। मूल ग्रन्थ प्राकृत भाषामें है और अनुवाद हिन्दी पद्यमें किया गया है। यद्यपि इसके मूलकर्त्ता कोई श्वेताम्बराचार्य है परन्तु प्रतिपाद्य विषय ऐसा है कि, उसे प्रत्येक मतका अनुयायी प्रेमसे पढ सकता है और अपनी आत्माका कल्याण-कर सकता है। इन्द्रियोंपर आत्मा कैसे विजय प्राप्त कर सकता है, यही इस वैराग्यपूर्ण ग्रन्थमें बतलाया गया है। कविता सरल और अच्छी है। यदि प्राकृतकी छाया और हिन्दी भावार्थ और भी इसमें लिख दिया जाता और अनुवाद एक ही छन्दमें किया जाता तो पुस्तक और भी लाभदायक हो जाती। छपाई और कागज दोनों उत्तम हैं। पुस्तक **जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय** तथा **मेघजी हीरजी** कम्पनी बम्बई से मिल सकती है।

शिवप्रबोध प्रथम भाग—लेखक श्रीयुत शिवजी देवशी और प्रकाशक मेसर्स मेघजी हीरजी कंपनी, बम्बई। मूल्य आठ आना। इस गुजराती भाषाकी पुस्तकमें सत्पुरुषार्थ, मिताहार, मितभाषण, आदि ६ निवन्धोंका और विद्या वृद्धिकी आवश्यकता, सुखका वास्तविक स्वरूप आदि १५ व्याख्यानोंका संग्रह है। निवन्ध और व्याख्यान प्राय सब ही शिक्षाप्रद हैं। प्रत्येक गुजराती जाननेवालेको चाहिये कि, इस पुस्तकको पढे। पुस्तकके आकार और परिमाणसे मूल्य बहुत ही कम है। छपाई भी अच्छी है।

वैश्य–यह मासिक पत्र अभी हाल ही इलाहाबादसे निकला है। इसका पहिला अंक हमारे साम्हने है। जैनहितैषीके आकारमें ३० पृष्टोंपर निकलता है। वार्षिक मूल्य सवा रुपया है। संपादक हैं इसके लाला सगमलालजी अग्रवाल। वैश्य जातिकी उन्नति करनेके लिये यह पत्र निकला है। लेख लाभदायक और उपयोगी हैं। भाषा भी अच्छी है। पत्र होनहार मालूम होता है। पृष्टसंख्या कुछ और बढानी चाहिये। वैश्य भाइयोंको चाहिये कि, इसपत्रको आश्रय देवें।

पंचम वार्षिक रिपोर्ट–दिगम्बर जैन बोर्डिंग हाउस जबलपुरकी यह पांचवें वर्षकी रिपोर्ट है। इसके पढनेसे मालूम होता है कि, सन् १९१०–११ में इस बोर्डिंगसे १८ विद्यार्थियोंने लाभ उठाया जिनमें दो कालेजके, ७ हाईस्कूलके और शेष मिडिलस्कूलके थे। परीक्षामें १५ विद्यार्थी उत्तीर्ण हुए। धार्मिक शिक्षा बहुत ही मामूली न होनेके बराबर दी जाती है। यह बडी कमी है। लगभग १६००रुपये इस सालमें खर्च हुए हैं, पर आमदनी बहुत ही कम हुई है। यह बडे खेदकी बात है कि, जबलपुर जैसे धनी जैनियोंके शहरमें होनेपर भी इस संस्थाकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है। लोगोंका ध्यान भी इसकी ओर बहुत कम दिखता है। वर्षोंका चन्दा बकाया पडा है। लज्जाकी बात है।

पंचम वार्षिक विवरण–जैनशिक्षाप्रचारक समिति जयपुरकी यह सन् १९१० की रिपोर्ट है। समितिका परिचय प्रायः सब ही भाइयोंको है। कार्य पूर्ववत् उत्तमतासे चल रहा है। १९१० में लगभग ६५००) की आमदनी हुई और इतना ही खर्च हुआ। समितिके श्रीवर्धमान विद्यालयमें विद्यार्थियोंकी संख्या १९०९ की अपेक्षा ४४ अधिक होकर १९७ हो गई। जिनकी औसत हाजिरी ९१ रही। छात्रालयमें विद्यार्थियोंकी संख्या ३० हो गई। जयपुरमें समितिके अधीन जो तीन कन्याशालाए हैं। उनमें १२८ बालिकाओंने शिक्षा पाई। परीक्षाफल विद्यालय और कन्याशालाओंका संतोषजनक रहा।

वन्देजिनवरम्–इस मराठी मासिकपत्रका सम्पादन अब श्रीयुक्त आर. आर बोबडे करने लगे हैं। नये वर्षसे इसमें चित्र निकालनेका भी प्रबन्ध किया गया है। पहिले अंकमें तीर्थराज सम्मेदशिखरका चित्र और उसका वर्णन है। लेख और कविताएँ अच्छी रहती हैं। मराठी जाननेवाले भाइयोंको चाहिये कि इसके ग्राहक बनें। श्रीयुक्त कृष्णाजी रामचन्द्र लाटकर, पो० निपाणी, जिला बेलगाव इसके प्रकाशक हैं।

सामायिकपाठ–श्रीयुक्त ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीके बनाये हुए सामायिकपाठका यह गुजराती अनुवाद है। अन्तमें पं० महाचंद्रजी कृत सामायिक पाठ और आलोचनापाठ भी छपा है। इसके प्रकाशक शा० मूलचन्द कशनदासजी कापडिया सूरत हैं। मूल्य डेढ आना।

विविध विषय।

आठ लाखका दान—महाराज पंचम जार्जके भारतागमनके स्मरणार्थ बम्बईके प्रसिद्ध धनी सर सासुन डेविडने आठ लाख एक हजार रुपयोंका महान् विद्यादान किया है। इस रकमके ब्याजसे देहातोंमें खेतीकी शिक्षा देनेवाली पाठशालाएं खोली जावेंगी। खेतीमें सुधार करनेके प्रयोग किये जावेंगे और खेतीके नये नये उपयोगी औजारोंका प्रचार किया जायगा और विद्यार्थियोंके रहनेके लिये बोर्डिंग हाउस बनाये जावेंगे। इसमें जातिधर्मका भेद नहीं रक्खा जायगा। प्रत्येक भारतवासी इससे लाभ उठा सकेगा। ऐसे दानोंमें परोपकार पुण्य और राष्ट्रहित तीनोंका समावेश होता है। भारतमें ऐसे दानोंकी प्रवृत्तियें होती देखकर बडी प्रसन्नता होती है।

झगडेका अन्त—दस्सों और वीसोंके मामले परसे समाजमें जो अशान्ति हो रही थी वह शान्त हो गई। रानीवालोंकी ओरसे इस विषयमें जो एक लेख प्रकाशित हुआ है, यद्यपि उसमें भी दूसरे पक्षवालोंको थोडा बहुत प्रसाद देनेकी कृपा दिखलाई गई है–जिसकी कि जरूरत नहीं थी, तो भी मालूम होता है कि, अब यह झगडा तय हो गया। और यह एक तरहसे अच्छा ही हुआ। इस झगडेका प्रारंभसे अन्ततकका इतिहास यदि कोई लिखे तो वह नवयुवकोंके लिये जिन्हें कि आगे ऐसे बहुतसे प्रवाह पारकरके उन्नतिके मैदानमें पहुंचना है, बहुत ही लाभदायक होगा।

क्रोधका शरीरपर प्रभाव—डाक्टर मारिस डीफ्लूरीनें डाक्टरी तहकीकात और तजरुबेसे दरयाफत किया है कि, क्रोध करनेसे दिमागकी ऐसी हालत हो जाती है, जैसी आँधी आनेपर समुद्रकी। क्रोध जितना तीव्र होता है और जितने अधिक समय तक रहता है, उतनी ही शरीरशक्ति कम हो जाती है। यदि कोई व्यक्ति क्रोधको प्रगट न होने दे–मन ही मनमें घुटता रहे, तो और भी अधिक हानि होती है। शरीरशक्ति कम होती जाती है और क्रमक्रमसे मृत्यु हो जाती है। क्रोधके परमाणु प्रति समय आयुको क्षीण करते हैं। क्रोध

करना वैसा ही बुरा है, जैसा कि आत्मघात। अन्तर केवल इतना ही है कि, आत्मघातके कारणोंसे तो मृत्यु जल्दी हो जाती है, परन्तु क्रोधमे देरमें होती है। क्रोध उस विपके समान है, जिसका असर अदृश्य और धीरे धीरे होता है। किन्तु उसके विषके समान आत्मघाती होनेमें सन्देह नहीं है। *

वंगीय सार्वधर्म परिषद्—बनारसमें जैनसमाजके सुपरिचित श्रीयुक्त पडित पन्नालालजीके उद्योगसे इस नामकी एक सस्था स्थापित हुई है। इसके सभापति लखनौके बाबू अजितप्रसादजी, एम् ए, मत्री बाबू देवेन्द्रप्रसादजी, आरा और सहायक मत्री उक्त पडितजी हैं। इस सस्थाका उद्देश्य बगालमें और बगाली विद्वानोंमें लेखों पुस्तकों और ट्रेक्टोंद्वारा जैनधर्मके तत्त्वोंका परिचय कराना है। हर्षका विषय है कि, सस्थाके द्वारा 'जैनधर्म' नामका एक बगला ट्रेक्ट भी जो कि लोकमान्य प० बाल गगाधर तिलकके एक व्याख्यानका अनुवाद है, प्रकाशित हो गया है। भट्टाकलक चरित्र साहित्य मासिकपत्रकी वर्तमान-सख्यामें छप चुका है। जैनधर्मेर किंचित् परिचय, जैनतत्त्वज्ञान चारित्र, और अठारहनातेकी कथा, नामक लेख बगलाके उद्बोधन, प्रवासी, भारती आदि प्रसिद्ध पत्रोंमें भेजे जा चुके हैं, जो शीघ्र ही छपकर प्रकाशित हो जावेंगे। जैनसिद्धान्त प्रवेशिकाका बगानुवाद हो चुका है और तत्त्वार्थसूत्रके अनुवादका प्रयत्न हो रहा है। गत पौष सुदी प्रतिपदाको परिषद्का एक अधिवेशन भी हुआ था, जिसमें उक्त सब बातोंपर विचार किया गया। परिषद् बनारसमें एक पुस्तकालय भी खोलना चाहता है, जिसमें जैनधर्मके ग्रन्थ और सर्वसाधारण बगला आदि भाषाओंकी पुस्तकें और समाचारपत्र रक्खे जावेंगे। इसमें जो बगाली सज्जन आवेंगे उन्हें व्याख्यानादिके द्वारा जैनधर्मका परिचय कराया जायगा। इन सब कामोंके लिये धनकी बहुत आवश्यकता है, इस लिये सस्थाके सचालक अपील करते हैं कि, प्रत्येक जैनीको इस धर्मप्रचारके काममें अपनी २ शक्ति अनुसार सहायता देना चाहिये। हमको आशा है कि, जो भाई अपने प्यारे धर्मको प्रत्येक जीवका कल्याण करनेवाला उदार, पवित्र और सर्वोपरि समझते हैं, वे इस पुण्यकार्यमें अवश्य ही सहायता देंगे। बगालियोंमें निष्पक्ष विद्वानोंका बाहुल्य है। यदि जैनी उद्योग करेंगे, तो एक बार बगालप्रान्तमें जैनधर्मका डका बज जावेगा।

---

* यह नोट श्रीयुक्त बाबू अजितप्रसादजी एम् ए. एल एल बी लखनौने भेजनेकी कृपाकी है। सम्पादक

जैनहितैषी.

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

आठवां भाग] फाल्गुन श्रीवीर नि० सं० २४३८ [पांचवां अंक

अपराजिता।

(गताङ्कसे आगे)

तरुणीने कातर होकर कहा—मैं अपने प्राण देकर भी यदि तुम्हें मुक्त कर सकती, तो करनेमें आनाकानी नहीं करती। तरुणीका यह वाक्य आँसुओंसे भीगा हुआ था। वसन्तने अपने हृदयमें उसका आर्द्र कम्पमान स्पर्श किया। उसने मुग्ध होकर कहा—राजकुमारियां क्या इस अभागीका कभी एक बार भी स्मरण नहीं करती है?

"नहीं वसन्त, उन्हें ऐसी तुच्छ बातोंके विचार करनेके लिये कहां अवकाश है? इन्दिरा, शुक्ला और आनन्दिता तीनों कर्नाटक कलिंग और मद्रदेशके सिंहासनको भाग्यशाली बनानेकी चिन्तामें व्यग्र हो रही है।"

"और राजकुमारी यमुना?"

"वह बेचारी साहसहीन शक्तिहीन और रूपहीन है। उसके बहिरंगको तो विधाताने ढँक रक्खा है और अन्तरंगको उसने स्वयं ढँक

रक्खा है। फिर उसका कहा ऐसा भाग्य है, जो तुम्हारी कुछ चिन्ता कर सके। और जिस अन्तःपुरमें एक निरपराधी पुरुष पल-पलमें मृत्युके मुखकी ओर जा रहा है, उसको छोड़कर वो वह जा ही नहीं सकती है। उसकी बहिनोंने जो पाप किया है, उसका प्रायश्चित्त उसे भोगना पड़ेगा।"

वसन्तने विस्मित होकर कहा—तो यमुना मेरा स्मरण करती है?

"वसन्त, वह स्मरण ही क्या करती है, रातदिन तुम्हारे ही नामकी माला जपा करती है। तुमने उसे जो इतने दिन पुष्पमालाएँ भेंट करके, गायन सुनाकरके और प्रेमका पाठ पढ़ाकरके संतुष्ट किया है, सो आज क्या वह तुम्हें विपत्तिके मुंहमें डालकर भूल जायगी? इतना बड़ा साहस करनेकी तो उसमें योग्यता नहीं है।"

वसन्त लज्जित होकर बोला—मैंने तो उसे किसी दिन संतुष्ट नहीं किया है। मै तो उसे बचे खुचे गंधहीन फूलोंकी एकाध बेडौल माला बनाकर अनादरपूर्वक दे दिया करता था।

सुभद्राने विनयपूर्ण कंठसे कहा—वह तो उसीको बड़े भारी आदरसे अपने मस्तक पर चढाती थी। उसने अपने जीवनमें और अधिक कभी पाया ही नहीं था, इसलिये तुम्हारे द्वारा वह जो कुछ अल्प स्वल्प पाती थी, उसीको बडी प्रसन्नतासे ग्रहण करती थी।

"यदि ऐसा है, तो उसने मेरा प्रणयदान क्यों स्वीकार नहीं किया?"

"इसलिये कि, वह हतभागिनी है। जिस समय वह आपके पास गई थी, उस समय आपने उससे कुछ भी नहीं कहा था। केवल अपनी व्यथासे व्यथित करके उसे आपने बिदा कर दी थी।"

वसन्तका मन सुख और दुःखमें डूबने उतराने लगा। उसने उत्ते-जित स्वरसे कहा—तो वह इस समय मुझे देखनेके लिये क्यों नहीं आई? -

सुभद्राने कुछ ऊंचे उठकर अपनी स्वच्छ और सुन्दर दृष्टिको ताखमेंसे डालते हुए कहा—वह आपके देखनेके लिये, बराबर आती है। परन्तु बेचारी बड़ी ही लज्जालु और साहसहीन है। इसलिये अपनेको आपके साम्हने प्रकाशित नहीं कर सकती है। मै उसीकी इच्छासे आपकी सेवा करती हूं।

वसन्तने प्रफुल्लित होकर सुभद्राके हाथोंको और भी गाढ-तासे पकड़कर कहा—भद्रे, तुम्हारी बातें सुनकर मुझे अब फिर जीनेकी लालसा होती है। क्योंकि संसारकी सारी स्त्रियां इन्दिरा, शुक्ला, आनन्दिता ही नहीं है, उनमें यमुना और सुभद्रा जैसी भी हैं। भद्रे, मैने यमुनाको देखी तो थी, परन्तु यह नहीं समझा था कि, वह ऐसे उत्तम स्वभावकी होगी। तुम्हें देखा नहीं है, तो भी—समझ लिया है कि, तुम्हारा अन्तरंग कितना सुन्दर है। यमुनाको कुरूप देखकर मैने जो उसका अनादर किया था, मुझे उसकी लज्जा आज उसकी दयाके कारण असह्य हो गई है। तुम उससे इस रूपलोलुपकी अविनय क्षमा करनेके लिये प्रार्थना करना। और भद्रे, तुम यदि मुझे ग्रहण करनेकी कृपा करो, तो मै बच सकता हूं। इस अन्ध कारागृहसे मै सहज ही बाहिर हो सकता हूं।

सुभद्रा बोली—मै भी तो यमुनाहीके समान कुरूपा और श्री-विहीना हूं।

वसन्तने उत्तेजित स्वरसे कहा—हो, तुम्हारा रूप काला और शोभाहीन हो, तो भी वह मेरे लिये नयनाभिराम होगा। जिसके

ऐसे दु.खापहारी हाथ है, ऐसा सदय हृदय है, और ऐसा विनयनम्र मधुर कठ है, उसके सौन्दर्यकी सीमा नहीं है—उसकी तुलना सारे जगतमें नहीं मिल सकती।

सुभद्राने कहा—तुमने मेरा कुछ परिचय तो पूछा ही नहीं।

वसन्त बोला—मै कुछ भी परिचय नहीं चाहता हू। एक वार इस बाहिरी परिचयके प्रपचमें पडकर मै यमुनाका अपराधी बन चुका हू। तुम्हारा अन्तरग परिचय ही मेरे लिये यथेष्ट है। इतना ही जानना बस है कि, तुम सुभद्रा हो, तुम मुझपर प्यार करती हो और मैं तुमपर प्यार करता हू। यह अन्तिम परिचय ही तुम मुझे दो। कहो, भद्रे, यदि मैं यहासे छूटकर बाहिर हो सकू, तो क्या तुम राजकुमारियोंका सग और राजमहलका ऐश्वर्य त्यागकर मेरी झोपड़ीमें रहनेके लिये चल सकोगी—एक साधारण मालीका हाथ तुम पकड़ सकोगी?

सुभद्राको बडी लज्जा लगी। वह अपने मुहसे कैसे कह दे कि, मै तुम्हें प्राणपणसे चाहती हू? उसका हृदय बाहिर आकर कहना चाहता था कि, हा, मैं तुमपर प्यार करती हूं—तुम्हें चाहती हू सब कुछ छोड़कर मैं तुम्हारी झोपड़ीमें सुखसे रहूगी। तुम्हें सुखी करना ही मेरा श्रेष्ठ ऐश्वर्य और अन्तिम आकाक्षा है। परन्तु लज्जा उसको बोलने नहीं देती थी। वह अभीतक जो इतनी बातचीत कर रही थी, सो इस कारण कि एक तो वसन्तके और उसके बीचमें आड थी और दूसरे वसन्त उससे परिचित नहीं था। परन्तु अपरिचिता और ओटमें होनेपर भी वह अपने मुहसे किसी तरह प्रणय—निवेदन नहीं कर सकती थी।

उत्तर न पाकर वसन्तने फिर कहा—कहो सुभद्रा, कहो। इस हतभागीका सुखदुःख जीवन मरण तुम्हारे ही उत्तरपर निर्भर है। क्या तुम इस सामान्य मालीको ग्रहण कर सकती हो?

सुभद्रा लज्जासे सकुचकर बड़ी कठिनाईसे मृदु स्वरसे बोली—वसन्त, यदि तुम सामान्य हो, तो मै भी तो असामान्या नहीं हूं। तुम यदि मुझे काली कुरूपा जानकर भी ग्रहण करोगे, तो तुम्हारी झोपड़ी मेरे लिये अट्टालिकासे भी बढ़ कर होगी।

इन थोड़ेसे वाक्योंको कहकर सुभद्रा अपने आप मानो लाजके मारे मर गई।

वसन्तने उसके हाथ दबा कर कहा—सुभद्रा, मै जीऊंगा—तुम्हारे लिये ही जीऊंगा। मेरे लिये कुछ लिखनेका सामान ला दो, मैं अपने मुक्त होनेकी तजवीज कर दूं।

"रात होनेपर ला दूंगी," ऐसा कह कर सुभद्रा अपने प्रेमीकी व्यग्र मुट्ठीको शिथिल कर उसमेंसे अपने हाथ छुड़ाकर चली गई।

कैदीकी आनन्दरागिनीसे आज सारा राजमहल एकाएक चकित स्तंभित हो गया। उस मोहिनीध्वनिसे प्रत्येक श्रोताके हृदयमें आनन्दकी लहरें ऊठने लगी। परन्तु यमुना एकान्तमें जाकर रोदन करने लगी।

वसन्तका हृदय आज प्रेमके प्रतिदानसे आनन्दित हो रहा है। प्यारीके कोमल करस्पर्शने उसके सारे शरीरको पुलकित कर दिया है। वह व्याकुलतासे रातकी प्रतीक्षा कर रहा है। उसे ऐसा भास होने लगा कि, इस अंधकारागृहके लोहेके कठिन किवाड़ बिलकुल खुल गये है और मैं चादनीके प्रकाशमें पुष्पशय्यापर बैठा हुआ सुभद्राको फूलोंसे सजा रहा हूं।

अंधकारागारके अंधकारको सघन करती हुई रात आ गई। इसके पश्चात् सघन अधकारको एकाएक प्रसन्न करके प्रकाशमान दीपोंकी सुवर्ण किरणोंने काले रेशमकी जरी बुनना शुरू कर दी। बाहिरसे सुभद्राने धीरेसे कहा—वसन्त !

वसन्तने रोमाञ्चित होकर कहा—सुभद्रा !

सुभद्राने कागज कलम दावातको ताखमेंसे आगे करके कहा—यह लो।

आनन्दित वसन्तने ताखके मार्गसे आनेवाले नाम मात्र प्रकाशके सहारे आंखें फाड़ फाड कर बड़ी कठिनाईसे एक पत्र लिखा और फिर कहा—भद्रे, प्रतिज्ञा करो कि, यह चिट्ठी तुम नहीं पढ़ोगी और यमुनाको भी नहीं दिखलाओगी। यदि दया करके इसे तुम अवन्ती राज्यके मत्रीके पास भेज दोगी, तो मै इस कारागृहसे सहज ही मुक्त हो जाऊगा।

सुभद्राने कहा—मै शपथ करती हूं, तुम्हारी आज्ञाकी अक्षरश पालना करूगी।

उसी रातको एक दूत चिट्ठी लेकर अवन्तीको रवाना हो गया।

(६)

दूतके अवन्ती जाकर वापिस आनेमें जितने दिन लगना चाहिये, वसन्तने उनका मन ही मनमें अनुमान कर लिया। और फिर वह अपने अधकारागारमें जहा कि अधकारके कारण रात और दिनका भेद ही नहीं मालूम होता था, छतके सूराखोंमेंसे जो सूर्यकी इनी गिनी किरणें आती थीं, उनकी घड़ी देख देखकर तथा सुभद्रासे पूछ पूछ कर दिन गिनने लगा।

एक दिन सुभद्राने आकर कहा—वसन्त, आज अवन्ती राज्यका मंत्री सेनासहित आकर उपस्थित हो गया है। परन्तु वह तो तुम्हारे उद्धार करनेकी कोई भी चेष्टा नहीं करता है।

वसन्तने हँसकर पूछा—तो वह किस अभिप्रायसे आया है?

"वह तो विवाहसम्बन्ध जोड़नेके लिये आया है।"

"किसका?"

"राजकुमारी यमुनाके साथ अवन्तीके महाराजके भाईका और महाराजके साथ .. .. .."

सुभद्रासे इससे आगे और कुछ नहीं कहा गया। लज्जासे उसके मुंहकी बात ओठोंमें अटक रही।

सुभद्राको लज्जाके कारण चुप देखकर वसन्तने हँसकर पूछा—और अवन्तीके महाराजके साथ किसका विवाहसम्बन्ध?

सुभद्राके मुंहपर लज्जाकी ललाई झलक आई। उसने नीचा सिरकरके धीरेसे कहा, इस अभागिनी सुभद्राका।

वसन्तने उत्साह दिखलाकर कहा—अच्छा। तब तो बड़ी खुशीकी बात है।

सुभद्रा वसन्तके उत्साहप्रकाशसे खिन्न होकर बोली—वसन्त, यह खुशीकी बात नहीं है।

वसन्त विस्मित होकर बोला—सो क्यों? अवन्तीके राजा तो सार्वभौम राजा है, फिर खुशीकी बात क्यों नहीं है?

सुभद्राने दृढ़तापूर्वक कहा—अवन्तीनरेश सार्वभौम राजा हैं, परन्तु सार्वमानस तो नहीं है?

"तब क्या सम्राटकी प्रार्थना व्यर्थ होगी?"

"व्यर्थ तो वैसे ही होती। यदि सम्राटके भाई यमुनाको स्वय देखते, तो उनका आग्रह उसके लिये कदापि स्थिर नहीं रहता और सुभद्रा तो इस राजमहलमें ऐसी अपदार्थ है कि, उसे। कोई पहिचानता भी नहीं है। सम्राटके चतुरसे चतुर जासूस भी उसको ढूंढ़कर नहीं निकाल सकते हैं। और इस अन्त:पुरमें राज्यलोलुप राजकुमारियोंका भी तो अभाव नहीं है। वे राजाकी प्रार्थनाको क्यों व्यर्थ होने देंगी?"

वसन्तने मुसकुराते हुए कहा—सुभद्रा, अब मेरा छुटकारा बहुत शीघ्र होनेवाला है। आज इस अधकारमें हमारा तुम्हारा यह अन्तिम मीलन है। कल हजारों स्त्रियोंमेंसे तुम्हारे जिन हाथोंको देखकर मैं तुम्हें पहिचान सकूंगा, आज उन हाथोंसे तुम मुझे बाहिर आनेके लिये निमंत्रण कर जाओ।

सुभद्राने अपने कांपते हुए हाथोंको ताखमेंसे आगे बढ़ा दिये। वसन्तने उन्हें अपने आतुर हाथोंसे कसकर जकड़ लिये, परन्तु उसके आकुल ओष्ठ उतनी दूर नहीं जा सके।

(७)

दूसरे दिन सवेरे ही वसन्तकी निश्चिन्त निद्रामें व्याघात डालकर कारागारके किवाड़ आर्त्तनाद करते हुए खुल गये। स्वयं काशीराजने अवन्तीके मंत्रीके सहित कारागारमें प्रवेश किया।

काशीराजने वसन्तके चरणोंमें पड़कर हाथ जोड़ प्रार्थना की कि, महाराज, मेरे अज्ञात अपराधोंको क्षमा कीजिये।

मन्त्रीने अभिवादन करके कहा—चक्रवर्ती महाराजकी जय हो।

वसन्त राजाको अभयप्रदान करके कारागारसे बाहिर हुआ और स्नानादि करके उसने निर्मल वेष धारण किया।

काशीराजने अपनी भयभीत और लज्जित कन्याओंको वसन्तके सम्मुख बुलवाई। वे सब एक एक आईं और दूरसे प्रणाम करके एक ओर सिर नीचा किये हुए खड़ी हो गईं। सबके पीछे यमुना आई। उसने लज्जासे सकुचते हुए समीप जाकर प्रणाम किया। उसकी सद्यःस्नाता केशराशिने बिखर कर वसन्तके दोनों पैरोंको ढँक लिया। केशोंकी कोमलता और आर्द्रताने वसन्तके हृदयको पानी कर दिया। उस समय उसने यमुनाका मस्तक स्पर्श करके मानों यह चाहा कि, मै हृदयकी गहरी प्रीतिके जलसे अपने पिछले अन्याय्य आचरणोंको धो डालूं।

काशीराजने कहा—महाराज, इन अबोध बालिकाओंका अपराध आपको क्षमा करना पड़ेगा।

वसन्तने कहा—मैने इन्हें आपकी इस उपेक्षिता तिरस्कृता कन्याके गुणोंसे प्रसन्न हो कर क्षमा कर दिया है। और मुझे स्वयं इससे क्षमा मांगना है।

यह कहकर वसन्तने अन्य राजकुमारियोंकी ओर न देखकर केवल यमुनाको लक्ष्य करके कहा— यमुना तुम मेरे पिछले अपराधोंको क्षमा कर दो।

यमुना नीचा सिर किये हुए नखोंसे जमीनपर कुछ लिखने लगी। अपनी गर्विता बहिनोंके और स्नेहहीन पिताके समक्ष उसे यह लाछना और लज्जा असह्य हो गई।

वसन्त यद्यपि उस समय सबसे वार्तालाप कर रहा था, परन्तु उसके नेत्र व्याकुल होकर अन्तःपुरके चारों ओर प्रत्येक किवाड़की ओटमें किसीको खोजते फिरते थे। उसकी सुभद्रा कहां है? उसकी सेविका कहां है? उसकी प्यारी कहां है? वह तो उसके

मुंहको पहिचानता नहीं है। पहिचानता है, उसके हाथोंको, उसके कंठस्वरको और उसके सदय हृदयको।

अपनी याचनाका उत्तर न पाकर वसन्तके नेत्र यमुनाकी ओर फिर आये। यमुनाके हाथ देखकर उसके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। ये वे ही हाथ थे, जो उस कारागारके अंधकारमें प्रकाश करके उसे धीरज बँधाते थे। वे ही अंगुलियां, वे ही हथेलीकी रेखाएँ और वही पहुँचीपरका तिल, सब कुछ वही था।

वसन्तका मुख आनन्दसे खिल उठा। प्रणयकृतज्ञताके मोहन स्पर्शसे यमुनाकी मूर्ति वसन्तकी दृष्टिमें अतुलनीय रूपवती झलकने लगी। एक अतिशय सुन्दर, चिरकिशोर और अशरीरी देवताके वरसे वसन्तकी दृष्टिमें जो प्रेमका अंजन अँज गया था, उसके कारण वसन्तको दिखने लगा कि, यमुना अनुपम यौवनसे, आनन्दसे, माधुर्यसे सौन्दर्यसे और कल्याणसे जगमगा रही है। वसन्तने उस समय काशीराजकी ओर फिर कर कहा—आपसे मैं एक भिक्षा चाहता हूं।

"भिक्षा? महाराज, आप यह क्या कह रहे हैं? ऐसे शब्द कहकर अपराधीके अपराधको और मत बढ़ाइये। मुझे तो आदेश कीजिये—आज्ञा दीजिये।"

"अच्छा, आपने जो मेरा अपराध किया है, उसके दंडस्वरूप मैं आपके भांडारका एक बहुमूल्य रत्न लेना चाहता हूं।"

"यह तो आपकी कृपा है, और मेरा सौभाग्य है। कोषाध्यक्ष आपकी आज्ञाकी बाट देख रहा है।"

वसन्तने हँसकरके कहा—मैं जिस रत्नकी बात कहता हूं, उस रत्नको आपका कोषाध्यक्ष नहीं पहिचान सकेगा। मैने उसका

बड़ी कठिनाईसे पता लगाया है। वह दूर भी नहीं है। देखिये, यह है—

ऐसा कहकर वसन्तने कुछ आगे झुककर यमुनाके दोनों हाथ थाम लिये। और लोगोंके विस्मयकी परवा न करके उससे हँसकर कहा—क्यों सुभद्रा, क्यों यमुना, चक्रवर्ती नरेशके साथ ऐसी ठगाई! ठहरो तुम्हें इसका दंड देता हूं। काशीसे अवन्तीके राजमहलमें तुम्हारा निर्वासन (देश निकाला) किया जाता है? क्यों, यह दड स्वीकार है? मालूम होता है, आज अवन्तीकी प्रार्थना व्यर्थ नहीं जाने पावेगी। यदि अवन्तीके राजप्रासादमें तुम्हें अच्छा नहीं लगेगा, तो वहां फूलोंके वनोंकी भी कमी नहीं है, और अवन्तीके महाराजको उसी वसन्त मालीकी जगह दे दी जायगी। फिर तो प्रसन्न रहोगी? उसकी वीणा तुम्हारी विरद गाया करेगी और वह तुम्हारे गलेमें डहडहे फूलोंकी माला पहिनाया करेगा। तुम्हारे दिये विना वह बाहर जानेके लिये छुट्टी नहीं पा सकेगा।

इस समय यमुनाकी दशा बड़ी ही विलक्षण थी। उसके हृदयमें आनन्दका और लज्जाका द्वन्द्वयुद्ध मच रहा था। लज्जाका बल ज्यादा होनेके कारण आनन्द अपने साथ शरीरको भी लेकर गिरना चाहता था।

काशीराजने इस विश्वासके अयोग्य घटनासे विस्मित होकर कहा—महाराज, मेरी ये समस्त सुन्दरी कन्याएं इस समय अविवाहित है।

वसन्त अपने हास्यसे उन समस्त सुन्दरियोंको अतिशय लज्जित करता हुआ बोला—नहीं, राजन्, मैने तो सुना है कि, ये कर्नाटक कलिंगादि देशोंके सिंहासनोंको उज्ज्वल करेंगी।

"किन्तु महाराज, इन्हें आपके श्रीचरणोंके समीप स्थान दिया जाय, तो ये प्रसन्नतासे कर्नाटक कलिंगादिके सिंहासनोंके त्याग करनेके लिये प्रस्तुत है।"

वसन्तने मुसकुराके कहा—काशीराज, मेरा रूपका नशा अब उतर गया है। राजाओंके महलोंमें हृदय खरीदकर पाया जा सकता है, जय करके नहीं। यह जान करके ही मै दीनवेषको धारण करके हृदय जय करनेके लिये निकला था। सो अब मैंने एक हृदयको पा लिया है, जो हृदयका प्रेमी है, राज्यका नहीं। इस तरह जय करनेके लिये आकर मै बडे आनन्दसे हार गया। मेरी यह काली बधू ही मेरे राज्यको उज्ज्वल करेगी। यह कौन नहीं जानता कि, यमुना (नदी) काली है, इसीलिये उसका हृदय गमीर और शीतल है। यामिनी काली है, इसीलिये उसके शरीरमें अगणित तारागणोंकी मालाएँ चमकती है और इसी तरह काले कोयलेके भीतर प्रकाशमान हीरा छुपा रहता है। यमुना, मै अनादर करके तुम्हें अपराजिताके फूलोंकी माला दिया करता था। दुःखसे अब फिर सुखमें आकर मैंने समझा है कि, तुम वास्तवमें अपराजिता हो, तुम्हारी तुलना किसीसे नहीं हो सकती।

कर्नाटक जैन कवि।

(२)

उसी तरहसे आदि पुराणके कारण पप 'ब्राह्मणवंशध्वज' कहा गया था। तैलिपदेव (९७३–९९७) के मल्लप और पुण्णमय्य नामके दो सेनापति थे। इनमेंसे पुण्यमय्य तो अपने शत्रु गोविन्दके साथ लडकर कावेरीनदीके तटपर मारा गया। मल्लय तैलिपदेवके मरनेके

बाद आहवमल्लके राजा होनेपर (ई० स० ९९७ से १००८) मुख्याधिकारी हुआ। इसकी एक अत्तिमब्बे नामकी सुन्दर कन्या थी। उसका ब्याह चालुक्यचक्रवर्तीके महामंत्री दल्लिपके पुत्र नागदेवके साथ हुआ। नागदेव बालकपनसे ही बडा साहसी और पराक्रमी हुआ। इसलिये चालुक्यनरेश आहवमल्लने प्रसन्न होकर इसे अपना प्रधान सेनापति बनाया। यह अनेक युद्धोंमें प्रबलपराक्रम दिखलाकर विजयी हुआ और अन्तको मारा गया। इसकी छोटी स्त्री गुंडमब्वे तो इसके साथ सती हो गई परन्तु अत्तिमब्बे अपने पुत्र अन्नगदेवकी रक्षा करती हुई व्रतनिष्ट होकर रहने लगी। जैनधर्मपर इसको अगाध श्रद्धा थी। इसने सुवर्णमय और रत्नजड़ित एक हजार जिनप्रतिमाएं बनवाकर स्थापित की और लाखों रुपयोंका दान किया। दानमें यह इतनी प्रसिद्ध हुई कि, लोग इसे 'दान-चिन्तामणि' कहते है। इसी दानशीला स्त्रीरत्नके संतोषके लिये रन्नने अजितपुराणकी रचना की थी, ऐसा ग्रन्थकी प्रशस्तिसे पता लगता है। दूसरा ग्रन्थ साहसभीमविजय अथवा गदायुद्ध, १० आश्वासका है। यह भी गद्यपद्यमय है। इसमें महाभारत कथाका सिंहावलोकन करके चालुक्यनरेश आहवमल्लका चरित्र लिखा है। अपने पोषक आहवमल्लदेवका भीमसेनसे मिलान किया है। बड़ा ही विलक्षण ग्रन्थ है।

कर्नाटक कविचरित्रके लेखक इस कविके विषयमें लिखते हैं कि "रन्नकविके ग्रन्थ सरस और प्रौढ़ रचनायुक्त है। उसकी पदसामग्री, रचनाशक्ति और बन्धगौरव आश्चर्यजनक है। पद्य प्रवाहरूप और हृदयंगम है। साहसभीमविजयको पढ़ना शुरू करके फिर छोड़नेको जी नहीं चाहता है।"

इस कविकी अभिनवपप, नयसेन, पार्श्व, मधुर, मंगरस, आदि कवियोंने बहुत प्रशंसा की है।

एक "रत्नकन्द" नामका छोटासा कविता ग्रन्थ भी इस कविका बनाया हुआ है।

१७. चामुडराय—ये गंगकुलचूडामणि जगदेकवीर नोलंबकुलान्तक आदि अनेक पदोंको धारण करनेवाले महाराजा राचमल्लके मत्री और सेनापति थे। ब्रह्मक्षत्रिय कुलमें शक संवत् ९०० (ईस्वीसन् ९७८) में इनका जन्म हुआ था। श्रवणबेलगुलकी सुप्रसिद्ध बाहुबलि वा गोमट्टस्वामीकी प्रतिमा इनहीने अपरिमित द्रव्य व्यय करके प्रतिष्ठित कराई थी। ये बड़े उदार थे। इनकी उदारतासे प्रसन्न होकर राचमल्लने इन्हें 'राय'की पदवी प्रदान की थी। इनका एक नाम अण्ण भी है। ये बड़े शूर और पराक्रमी थे। गोविन्दराज, वेंकोंडुराज आदि अनेक राजाओंको इन्होंने पराजित किया था, इसलिये इन्हें समरधुरन्धर, वीरमार्तण्ड, रणरंगसिंह, वैरिकुलकालदण्ड, सगरपरशुराम, प्रतिपक्षराक्षस आदि अनेक उपनाम प्राप्त हुए थे। जैनधर्मके ये अन्यतम श्रद्धालु थे, इसलिये जैनविद्वानोंने इन्हें सम्यक्त्व रत्नाकर, शौचाभरण, सत्ययुधिष्ठिर आदि अनेक प्रशंसावाचक पद दिये थे। महाराजा राचमल्ल और ये दोनोंही अजितसेनाचार्यके शिष्य थे। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने सुप्रसिद्ध गोम्मटसार ग्रन्थकी रचना इन्हींकी प्रेरणासे की थी।

इनका बनाया हुआ प्रसिद्ध ग्रन्थ त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराण वा चामुण्डरायपुराण है। इसमें चौवीसों तीर्थंकरोंका चरित्र है। इसके प्रारंभमें लिखा है कि, इस चरित्रको पहिले कूचिभट्टारक,

तदनन्तर नन्दिमुनीश्वर, तत्पश्चात् कविपरमेश्वर और तत्पश्चात् जिनसेन गुणभद्र स्वामी, इस प्रकार परम्परासे कहते आये हैं, और उन्हींके अनुसार मै भी कहता हूं। मंगलाचरणमें गृद्धपिच्छाचार्यसे लेकर अजितसेन पर्यन्त आचार्योंकी स्तुति की है और अन्तमें श्रुतकेवली, दशपूर्वधर, एकादशांगधर, आचारांगधर, पूर्वांगदेशधरके नाम कहकर अर्हद्वलि, माघनन्दि, भूतबलि, पुष्पदन्त, श्यामकुण्डाचार्य, तुम्बुलूराचार्य, समन्तभद्र, शुभनन्दि, रविनन्दि, एलाचार्य, वीरसेन, जिनसेनादिका उल्लेख किया है और फिर अपने गुरुकी स्तुति की है। यह पुराण प्रायः गद्यमय है। पद्य वहुत ही कम है। कनड़ीके उपलब्ध गद्यग्रन्थोंमें चामुण्डरायपुराण ही सबसे पुराना गिना जाता है।

गोमट्टसारकी प्रसिद्ध कनड़ी टीका (कर्नाटकवृत्ति) भी चासुंडारायहीकी बनाई हुई है, जिसपरसे केशववर्णीने सस्कृत टीका बनाई है। इससे मालूम होता है कि, चासुंडराय केवल शूरवीर राजनीतिज्ञ और कवि ही नहीं थे, किन्तु जैनसिद्धान्तके भी बड़े भारी पण्डित थे।

१८. **नागवर्म**—इस नामके दो कवि हो गये है—एक तो छन्दोम्बुधि और कादम्बरीका रचयिता और दूसरा काव्यावलोकन, वस्तुकोश, कर्नाटकभाषाभूषणादि ग्रन्थोंका कर्त्ता। पहिला नागवर्म वेंगी देशके वेंगीपुर नगरके रहनेवाले वेन्नमय्य ब्राह्मण (कौडिन्यगोत्र) का पुत्र था। इसकी माताका नाम पोलकब्बे था। नार्की और सय्यडीयात ये दो इसके नामान्तर थे। यह अपने गुरुका नाम अजितसेनाचार्य बतलाता है। रक्कसगंगराज जिसने कि ईस्वी सन् ९८४ से ९९९ तक राज्य किया है

और जो गंगवशीय महाराज राचमल्लका भाई था, इसका पोषक राजा था। चामुंडरायकी भी इसपर कृपा रहती थी। कवि होकर भी यह बडा वीर और युद्ध विद्यामें चतुर था। कनडीमें इस समय छन्दशास्त्रके जितने ग्रन्थ प्राप्य हैं, उनमें इसका छन्दोम्बुधि सबसे प्राचीन गिना जाता है। यह इसने अपनी स्त्रीको उद्देश्य करके लिखा है। इसका दूसरा ग्रन्थ बाणभट्टके सुप्रसिद्ध गद्यग्रन्थ कादम्बरीका सुन्दर गद्यपद्यमय अनुवाद है। यह कवि अपने गुरु तो अजितसेनाचार्यको बतलाता है, परन्तु ग्रन्थोंके मगला-चरणमें न जाने क्यों शिव आदिकी स्तुति करता है।

१९. दूसरा नागवर्म–चालुक्यवशी, जगदेकमल्ल (११३९–११४९) के समयमें हुआ है। इसके पिताका नाम दामोदर था। यह जन्न कविका गुरु था। कनड़ी साहित्यमें इसकी 'कविता-गुणोदय' के नामसे ख्याति है। इसके ग्रन्थोंके मंगलाचरणमें जिने-देवोंका ही स्तवन है।

जलके जीवधारी।

किसके विचारमें आएगा कि, किसी ताल या झीलके स्वच्छ जलका एक विन्दु स्वय वनस्पति और सूक्ष्म जीवोंका एक पूर्ण कुंड है? किन्तु यह सत्य बात है और विज्ञानवेत्ता सूक्ष्म वस्तुओंको देखनेके बलिष्ट यंत्र (खुर्दवीन)से इसको प्रत्यक्ष देखते हैं। जलकी विन्दु जो सामान्य नेत्रोंसे देखनेसे मोतीसी निर्मल दिखाई देती है, परीक्षा करनेसे वनस्पति और त्रसकायिक जीवोंसे भरी हुई सिद्ध होती है।

समस्त सूक्ष्म वनस्पतियोंमें जो स्वच्छ जलमें पाई जाती हैं, **डेसामिड और डायटम्स** जातिकी वनस्पतिका हाल विशेष रुचिकर है। डेसमिड जातिकी वनस्पतिमें सबसे अधिक रोचक **यूसट्रम** नामका पौधा होता है। इसमें चमकीले हरेरंगके दो कटे हुए टुकड़े होते है और उनपर गहरे हरेरंगके धब्बे होते हैं। यह हरी वस्तु एक प्रकारके मोमी पदार्थसे जिसको **'क्लोरोफाइल'** कहते हैं, बनी हुई होती है और यह वही वस्तु है, जो पत्तोंमें हरियाली पैदा करती है। दूसरी प्रकारकी डेसमिड वनस्पति जो जलमें पाई जाती है अर्धचन्द्राकार होती है और **'क्लोसटेरियम'** कहलाती है। कभी २ लम्बी पक्तिमें कई मिले हुए पौधे होते है।

एक अन्य प्रकारकी डेसमिडमें जिसको **सैनी डेसमिस** कहते हैं, जब इन सूक्ष्म पौधोके कई २ बिले मिल जाते है तब अंतके दो टुकडोंमें सींग निकल आते है। इतर समय पौधोंके बिले एक गोलरूप धारण करते है। इस दशामें प्रत्येक पौधेके बिलेमें दो छज्जे निकलते है, जो देखनेमें अति सुन्दर होते है।

डायटम्स जातिके पौधे डेसमिड जातिके पौधोंकी अपेक्षा जिनके विषयमें ऊपर लिख चुके है अधिक होते हैं। डायटम्स जातिके कुछ पौधे बिलकुल गोल दिखाई देते हैं, कुछ त्रिकोण होते है, कुछ चौकोर होते है किन्तु प्राय करके अडे या नावके आकारके अधिक प्रसिद्ध है। इस जातिके पौधोंपर जो रेखाएँ होती है, वे भिन्न २ प्रकारकी होती है। कुछ ऐसी बारीक होती हैं कि इस बातकी परीक्षा करनेके लिए कि सूक्ष्म वस्तुओंका यंत्र कितनी बारीकको देख सकता है वे काममें लाई जाती है। जीवित अवस्थामें डायटम जातिके पौधोंमें हलन चलनकी शक्ति

होती है। वे प्राय करके भूरे या भूरे पीले रंगके होते हैं। इस रगके कारण वे डेसमिड पौधोंसे जिनका रग हरा होता है, पृथक् पहिचाने जा सकते हैं।

दुसरी प्रकारका अति अद्भुत और सूक्ष्म पौधा जो पानीमें पाया जाता है 'वोलवक्स ग्लोवेटर' होता है। इस पौधेकी शक्ति ऐसी अद्भुत और आश्चर्यजनक होती है कि, एक समय इसके विषयमें ऐसा विचार हुआ था कि, यह एक सूक्ष्म जन्तु है। यह वहुतसे त्रिलोंसे वना हुआ होता है जो एक दूसरेसे तागोंकी कोमल जालीसे जुड़े हुए होते हैं। प्रत्येक त्रिलेमें दो छोटी २ इन्द्रिया होती है। जिनसे यह चलनेके योग्य होता है।

यदि स्वच्छ जलमें रहनेवाली वनस्पतिका विवरण सुहावना है, तो जलमें रहनेवाले जन्तुओंका हाल भी कुछ कम मन भावना नहीं है। ये जीव उन पौधोंको जिनका हम ऊपर वर्णन कर आए हैं खाते है और वे पौधे जड़ वस्तुको खाकर फलते फूलते है।

इन जन्तुओंमें कुछ ऐसे साधे होते है कि, उनके न तो मुह मालूम होता है और न पेट। जव वे वनस्पतिके किसी सूक्ष्म भागकी ओर या कभी २ डायटमकी ओर जाते है, तो ऐसा ज्ञात होता है कि, उनमें मिल जाते हैं। त्रिले उनके अन्दर वनते रहते हैं जो प्राथमिक त्रिलोंसे निकलते है और वे उसी प्रकारका जीवन व्यतीत करते है। इन असाधारण जीवोंको ऐमेवस कहते हैं। यदि हम अनुमान करें कि, इस जातिका एक जीव मडलका आकार धारण करे, और चारों ओरसे वारीक २ लम्बे वालसे निकाले तो ऐसा हो जावे जैसा सूर्य्यका आकार किरणों सहित होता है।

इस अद्भुत जीवमें यह शक्ति होती है कि, अकस्मात् उक्त बालोंको सिकोड़ लेता है और जलकी बूंदमें इधर उधर फिरने लगता है। यह इन बालोंको अन्य निकट रहनेवाले कीड़ोंपर खेंच लेता है और उनको दबाकर अपने बीचके मांसमें ले आता है। एक दूसरा प्रसिद्ध कीड़ा जो स्वच्छ जलमें पाया गया है, और जिसकी सत्ता एक पानीके गिलासमें घासके कुछ तिनके डालनेसे आसानीसे जानी जा सकती है, घटेके आकारका होता है और वह 'वरटीसैलो' कहलाता है। ये कीडे भिन्न भिन्न कदके होते है। कुछ अति सूक्ष्म होते है। उनका रूप ऐसा होता है, जैसा कि एक लंबी डठलपर एक छोटे प्यालेकी शक्ल। उस डंठलमें यह शक्ति होती है कि, जब कीड़की गतिमें किसी प्रकारका विघ्न होता है, तो वह दोहरी पेंचदार हो जाती है।

कुछमें यह डंठल ऐसी शाखाओंवाली होती है कि सैकड़ों कीड़े एक ही डंठलपर पाए जाते है। इन मिले हुए कीड़ोंकी डंठलें आपसमें ऐसी मिल जाती है कि, यंत्रको देखते २ उनका बड़ा झुड शीघ्र अदृष्टि होता ज्ञात होता है। 'वरटीसैलाके' छोटे प्याले-का मुंह इन्द्रियोंसे घिरा हुआ होता है जो सदा चलती रहती है और जब दीर्घ दृष्टिसे उनकी परीक्षा की जाती है, तो दो सूराख पाए जाते है एकसे पानीकी लहरें शरीरमें प्रवेश करती है और दूसरेसे बाहर निकलती है।

बहुधा प्याला डंठल परसे टूट जाता है, तब यह अपने मुंहको सिकोड़ लेता है और पानीमें स्वतंत्रतासे फिरता है। इस बातको प्रगट करनेके लिये कि बड़ी २ झीलों और बंदोंमें जो पानी पाया जाता है वह वनस्पति और कीड़ोंसे भरा हुआ है बहुत कुछ कहा जा चुका है।

इसमें सदेह नहीं कि पानी स्थानीय जलप्रबंध कमेटियों द्वारा प्रशंसनीय रीतिसे छाना जाता है परन्तु इस बातका स्मरण रखते हुए कि इन सूक्ष्म पौधों और कीड़ोंसे कितनी हानि होती है। बुद्धिमान गृहस्थोंको चाहिये कि वे स्थानीय जलप्रबन्ध कमेटियोंपर ही अध विश्वास नहीं करें किन्तु अपने और अपने कुटुम्बियोंके लिए जल छाननेका कुछ न कुछ अन्य उपाय काममें लावें। *

दयाचन्द्र जैन बी. ए.

ललितपुर।

नोट—अंग्रेजीमें यह पीयरसन्स नामके साप्ताहिक पत्रमें प्रकाशित हुआ था। जयपुरके बाबू चन्दूलालजीने इसे पढकर हमको सूचना दी कि, यह लेख जैनहितैषीमें प्रकाशित करने योग्य है। तदनुसार हमने अपने मित्र बाबू दयाचन्द्रजी, बी ए. को लिखा और उन्होंने इसे हिन्दीमें अनुवाद करके भेज दिया। इस लेखके पढनेसे पाठकोंको मालूम होगा कि, जलके एक बिन्दुमें अनन्त जीवोंकी राशिका अस्तित्व जिस प्रकार जैनशास्त्र बतलाते हैं। उसी प्रकारसे पाश्चात्य प्राणीशास्त्रज्ञ तथा वनस्पतिशास्त्रवित् भी सूक्ष्मदर्शकादि यंत्रोंकी सहायतासे बतलाते हैं। ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे हमें विश्वास होता जाता है कि, हमारे पूर्वाचार्य अपने ज्ञाननेत्रोंसे प्रत्यक्ष करके जिन सूक्ष्म बातोंको लिख गये हैं, वे वास्तवमें वैसी ही हैं। वर्तमानयुगका वृद्धिगत होता हुआ पदार्थविज्ञान उन्हें अवश्य सिद्ध करेगा। यह बात दूसरी है कि, उन्हें सिद्ध हुआ देखनेके लिये थोडा समय नहीं लगेगा। जैनियोंको

---

* पीयरसन्स वीकली, (१ जुलाई सन् १९०९) के अंग्रेजी लेखका अनुवाद।

चाहिये कि, वे वर्तमानके पदार्थविज्ञान तथा जन्तु वनस्पतिविज्ञानादि विषयोंको पढें और उसमें इतनी योग्यता प्राप्त करें जिससे वे अपनी परीक्षाओंके द्वारा संसारको वतला सकें कि, जैनशास्त्रोंमें वतलाया हुआ 'सूक्ष्म प्राणीविज्ञान' कितना उच्च कोटिका और यथार्थ है। सम्पादक।

नवयुवक--कर्तव्य।

समस्त युवको! स्वमातृ--भुविके, विषाद--आपद--कलंक हर्त्ता।
सहिष्णु नायक सुपूज्य-महिके, समस्त गौरव-सुकीर्ति भर्त्ता ॥ १ ॥
तुम्हीं हो रक्षक तुम्हीं सहायक, तुम्हीं सुधारक स्वदेश भरके।
करूं निवेदन, वनो विधायक, समृद्धिकारक स्वदेश भरके ॥ २ ॥
बडा किया है तुम्हें पिलाकर, सुदुग्ध माँने विपत्ति सहकर।
वना दिया है सुनय सिखाकर, सुधी * पिता ने समीप रहकर॥३॥
हुए अगर हो प्रवीण पढ़कर, इसे कृपा गुरु अशेष समझो।
ऋणी हो इनके, चुकाव वढ़कर, सुकर्म इसको विशेष समझो ॥४॥
इसी तरहसे शरीर जिसके, सुतत्त्व मिलकर गठन हुआ है।
रहो हृदयसे कृतज्ञ उसके, जहां तुम्हारा पठन हुआ है ॥ ५ ॥
हवा जहाकी जिला रही है, सुमंद--शीतल--सुगन्ध दायक।
धरा जहाकी खिला रही है, सुशस्य आदिक सुपुष्टि कारक॥ ६ ॥
जहां भरे हैं नदी--सरोवर, विशुद्ध पानी पिला रहे है।
जहां खड़े हैं अचल मनोहर, तुम्हें सदा सुधि दिला रहे हैं ॥ ७ ॥
जहां जन्म है हुआ तुम्हारा, जहां पले हो, जहां वढे हो।
जहां मिला है तुम्हें सहारा, अकार आदिक, जहां पढ़े हो ॥ ८ ॥

---

* समझदार।

सुपूज्य माँ–भू पुकार कहती,–" तरुण सुपूतो उठो सम्हलकर ।
करो समुज्वल–विशाल–महती, सुकीर्ति मेरी, कलंक दलकर ॥ ९ ॥
बता चुके है सुचाल चलकर, तुम्हें सुपथ जो सभी महज्जन ।
चलो उसीपर सदैव बल भर, मिले तुम्हें भी उपाधि 'सज्जन'॥१०॥
विचार करके कुलीन वशज, वरो सुशीला गुणग्र नारी।
विधान सयुत सुयोग्य देहज,* प्रसव कराके बनो सुखारी ॥ ११ ॥
पढा–लिखा कर उन्हें सिखाओ, विशिष्ट गुणमय स्वतंत्र–उद्यम ।
सदाचरण भी उन्हें बताओ, बनो निदर्शन विशेष सक्षम ॥ १२ ॥
बढाव खेती–कला–कुशलता, करो वणिज भी सुदूर जाकर ।
सुधान्य–धनकी करो बहुलता, भरो सदनको सुवर्ण लाकर ॥ १३ ॥
करो प्रतिष्ठित उदार बन कर, अनेक गुणकी अनेक शाला ।
सहाय पाकर पढें जहापर, अनाथ बालक अनाथ बाला ॥ १४ ॥
दिला सिखापन करो सुशिक्षित, भविष्य माताएँ, अद्य कन्या ।
प्रसव करें जो सुयोग्य–इच्छित,–बलिष्ट सतति विशेष धन्या ॥१५॥
स्वजाति सेवा स्वधर्म सेवा, स्वदेश सेवा स्वभूप सेवा ।
सुराज सेवा सुकर्म सेवा, करो तनयके स्वरूप सेवा ॥ १६ ॥
स्वदेश भाई मिले जहातक, मिलो हृदयसे गले लगाकर ।
मिले विदेशी तुम्हें जहातक, सुमित्र रक्खो उन्हें बनाकर ॥ १७ ॥
अगर सुपथमें चलो कहींपर, सफल हुएतक उसे न छोड़ो ।
रहो परायण स्वदारहीपर, सुनीति निष्ठा कभी न तोड़ो ॥१८॥
विदेश जाकर मनोभिलाषित, अनेक विद्या पढ़ो–पढ़ाओ ।
विनम्र होकर रहो प्रसादित, गुरुत्व मेरा सदा बढ़ाओ ॥ १९ ॥

*पुत्र ।

अगर भिखारी बढ़ें, यत्न भर, उन्हें कृत्य कुछ भले सिखाओ।
अशांतिकारक उठें कहीं पर, विरोध उनको त्वरित मिटाओ ॥२०॥
कहूं कहां तक सुपुत्र! गाथा, तुम्हीं समय पर विचार लेना।
बना रहे चिर सुउच्च माथा, विनष्ट कृतकी सुधार लेना ॥ २१ ॥
सुवीर युवको! उचित सिखापन, स्वमातृ महिके न भूल जाना।
अमीर हो या गरीब पालन, करो, बहाना नहीं बनाना ॥ २२ ॥

'शांतिसेवी।'

नैतिक धैर्य।

धैर्यवान् किसको कहना चाहिये और डरपोक किसको कहना चाहिये व्यावहारिक विचारसे इसका निर्णय करना कुछ कठिन नहीं है। संकट पड़नेपर जो घबड़ाता नहीं है, उसे हम धैर्यवान् कहते है। ऐसा नहीं है कि, धैर्य सब जगह एक ही परिमाणमें होता है—नहीं उसमें बहुत अन्तर होता है और एक ही प्रकारके संकटोंको टक्कर देनेवाले दो पुरुषोंमें भी जमीन आसमानका फर्क होता है; तो भी दोनोंको धैर्यवान् ही विशेषण लगाया जाता है। साधारणतः दोनोंको धैर्यशाली ही कहते है। यह व्यवहार है।

धैर्यकी गिनती सर्वदा सद्गुणोंमें ही नहीं होती है। उसे कभी २ अविचार वा दुर्गुणका रूप भी प्राप्त हो जाता है। एक योद्धा है वह शत्रुके साथ दो हाथ करनेके लिये कभी आगा पीछा नहीं सोचता है। इस विषयमें घबडाना क्या है वह जानता ही नहीं है। उसके इस गुणके कारण जिससे पूछो, वही कहेगा कि वह धैर्यशील योद्धा है। परन्तु यही वह परिस्थितिका विचार किये विना

ही दीपकपर पड़नेवाले पतगके समान अपने प्रतिपक्षीपर टूट पड़ेगा तो हम उसे धैर्यवान् न कहकर 'अविचारी' वा 'बेसमझ' कहेंगे। शिवाजी शूर था। संकटके समयोंमें उसने अतुलनीय धैर्य प्रकट किया था। परन्तु परिस्थितिका विचार करके एक वार वह चुपचाप औरंगजेबकी शरणमें चला गया था। यह बात इतिहास-प्रसिद्ध है। इससे यह स्पष्ट होता है कि, धैर्यकी मर्यादा युक्तिपूर्ण हेतुओंसे निश्चित होना चाहिये।

यहा तक धैर्यके सम्बन्धमें जो विचार किया गया उसमें कुछ विशेष कठिनता उपस्थित नहीं हुई। परन्तु धैर्यका जो नैतिकधैर्य नामका एक भेद है। उसका विचार प्रारम्भ करते ही बहुतसे कठिन प्रश्न उत्पन्न होने लगते हैं। "यातो शत्रुको जीतेंगे या समरभूमिमें प्राण अर्पण कर देंगे" इस प्रतिज्ञामें प्रदर्शित किया हुआ धैर्य यद्यपि आश्चर्यकारक है, तो भी ससारमें वह दुर्मिल नहीं है। धर्मोन्मत्त मुसलमानोंमें उनके अत्याचारोंसे चिढे हुए राजपूतोंमें और नवीन धर्मके जोशसे उत्तेजित हुए सिक्खोंमें ऐसे हजारों वीर हो गये हैं। जिन्होंने उक्त मनोवृत्तिके वशवर्ती होकर अपने प्राणोंको कुछ भी नहीं समझा है और विलक्षण धैर्य प्रगट किया है। परन्तु नैतिक-धैर्यके उदाहरण ससारके इतिहासमें बहुत ही थोड़े मिलते हैं। यह क्यों? नैतिकधैर्यमें ऐसी क्या कठिनाई है? इस प्रश्नका उत्तर देनेके पहिले हम नैतिक धैर्य क्या है, इसका थोडासा विचार करेंगे।

बहुतसे लोग नैतिक धैर्यके समकक्षी धैर्यके लिये—'शारीरिक धैर्य' शब्दका प्रयोग करते है। परन्तु हमारी समझमें यह शब्द कुछ विशेष सयुक्तिक नहीं है। जिसे 'शारीरिक धैर्य' नाम दिया जाता है, वह वास्तवमें 'मानसिक' ही है क्यों कि 'धैर्य' यह

गुण मानसिक ही है। वास्तवमें धैर्यके दो ही भेद करना चाहिये। एक वह जिसमें शारीरिक शक्तियोंसे साम्हना करना पड़ता है और एक वह जिसमें मनोवृत्तियोंसे युद्ध करना पड़ता है। इस दूसरे प्रकारके धैर्यको ही नैतिक धैर्य कहते है। पहिले प्रकारके धैर्यको यदि हम **सिपाहीका धैर्य** कहें और दूसरेको **सुधारकका धैर्य** कहें, तो इनका स्वरूप समझनेमें बहुत सुभिता होगा।

नैतिक धैर्यके दो अन्तर्भेद हो सक्ते है। हमारी मनोवृत्ति जब किसी पवित्र कर्तव्यके करनेमें बाधक होती है—उसको नहीं करने देती है, तब उसका दमन करनेके लिये एक प्रकारके नैतिक धैर्यकी आवश्यकता होती है। इसे साधारणत· **मनोनिग्रह** अथवा **मनोबल** कह सकते है। परन्तु सुधारकोंके लिये जो मनोवृत्तिया बाधक होती है, उनमें स्वतःकी उपेक्षा दूसरोंकी ही बहुत प्रबल होती है। उनका दमन करना बहुत कठिन होता है। इस विषयको दूसरी तरहसे यों कह सकते है कि, दूसरोंकी मनोवृत्ति विषयक प्रेमभाव आदरभाव अथवा भीतिभाव जो हममें होता है, उसका निराकरण करना यह इस दूसरे प्रकारके नैतिक धैर्यका कार्य है। इसमें भी देखो, तो अप्रत्यक्ष रूपसे अपनी ही मनोवृत्तियोंको जीतना पड़ता है। क्योंकि जिस समाजमें हम रहते है, उस समाजका मत यह एक प्रकारका अहंकार (अपनपा) ही है, इस तरह विचार करनेसे ये दोनों ही भेद एक ही नैतिक धैर्यमें गर्भित किये जा सकते है।

अब यह अच्छी तरहसे समझमें आ जायगा कि, बाह्य शत्रुको जीतनेकी अपेक्षा मनोवृत्तियोंका जीतना अधिक कठिन क्यों है? इसके लिये अर्थात् मनोवृत्तियोंको जीतनेके लिये जो गुण आव-

श्यक है, उसीको नैतिक धैर्य कहते हैं और इसी लिये अन्य धैर्योंकी अपेक्षा इस धैर्यके उदाहरण बहुत कम मिलते है। इसका एक कारण यह है कि, बहुधा मनुष्योंकी बुद्धि हीमें यह बात नहीं आती है कि, ये मनोवृत्तिया हमारी शत्रु है। लोग जानते है कि, इस नवीन मार्गके अनुसार चलना हितकारी है, परन्तु उसके अनुसार चलते नहीं है। उन्हें इस नये मार्गपर चलनेकी अपेक्षा पुरानेपर रेंगते रहनेमें ही आराम मालूम होता है। "हम क्यों खड़े बैठे आफत मोल ले लेवें? जाने भी दो। जो दश भाई करेंगे, उसीमें हम भी शामिल हैं।" ऐसा कहकर अपनी सुधारणेच्छाको दबा देनेकी आदत एक दोको छोडकर प्राय सब ही की होती है। पर क्या इस प्रकारके प्रमादका कारण केवल 'दश भाई' ही हैं? हम इस कारणका निषेध नहीं करते है, परन्तु यह अवश्य कहेंगे कि, इसके साथ एक दूसरी भावना और भी है। दश भाई हमसे क्या कहेंगे, यह विचार जो सुधारमें विघ्न उपस्थित करता है सो इसका कारण केवल यह 'दश भाईयों' का भय ही नहीं है। यह भय किसी जमानेमें सुधारकोंको तग करता था, यह ठीक है। बहिष्कृत कर देना, जीता हुआ जला देना, कारागृहमें डाल देना, इत्यादि दड सुधारकोंके लिये प्राय: प्रत्येक देशमें दिये जाते थे। परन्तु वर्तमान राजकीय स्थितिमें यह बात नहीं रही है। अब तो 'समाजकी वाहवाही' का जो प्रेम है, और जिसका प्रत्येक मनुष्य दास बना हुआ है, वह सुधारकार्यमें अडचन उपस्थित कर रहा है। इस प्रश्नकी तो अब कुछ कीमत ही नहीं रही है कि, समाज हमको क्या दड देगा? समाजके हाथमें अब ऐसी भयकर शक्तिया भी नहीं रही हैं। अब तो सुधारकोंके

हृदयमें इस प्रकारके विचारोंका तूफान जोर शोरसे उठता हैं कि, यदि हम यह वास्तवमें पवित्र परन्तु लोकदृष्टिसे अपवित्र कार्य करेंगे, तो दश भाई हमसे क्या कहेंगे? जातिमें जो हमारा बढ़प्पन है, वह कितना कम हो जायगा? समाज हमारी ओर तथा हमारे बन्धुओंकी ओर किस दृष्टिसे देखेगा? इत्यादि। इस तूफानको शान्त करना बड़े भारी मनोधैर्यका कार्य है। हमारे इस बर्तावसे कुटुम्बकी इज्जतमें बट्टा लग जावेगा, हमारे इष्ट मित्र ठट्ठा करेंगे, हमारा बढ़प्पन नहीं रहेगा, इत्यादि विचारोंसे सुधारकोंके पैर क्षणक्षणमें फिसला करते है। हमारी समझमें यह विचार समाजकी भीतिसे नहीं, किन्तु बढ़प्पनके वा झूठे लौकिकके मोहसे उत्पन्न होता है।

गार्गी, मैत्रेयी आदि ब्रह्मज्ञानी स्त्रियोंका चरित्र किस हिन्दूने नहीं सुना है? श्री ऋषभदेव तीर्थंकरने अपनी ब्राह्मी और सुन्दरी नामक कन्याओंको काव्य व्याकरणादि ग्रन्थोंकी शिक्षा दी थी, यह कौन जैनी अस्वीकार करेगा। यह सब जानते है, तो भी बतलाइये अपनी लड़कियों तथा स्त्रियोंको शिक्षा देनेके लिये तयार होनेवाले कितने लोग है? ऐसा भी नहीं है कि, स्त्रीशिक्षा देनेवाले पर कोई आपत्ति आती हो, उसे कोई दंड दिया जाता हो, तो भी लोग अपने लौकिकके लिये डरते है। यह लौकिककी प्रीति यह झूठी भलमनसाहतका मोह जिस गुणसे विजय किया जाता है, वह नैतिक धैर्य सचमुच ही बड़ा दुर्लभ है।

यह हम जानते है कि, बालकपनमें लड़के लड़कियोंके विवाह कर देनेसे अकाल वैधव्यादि नानाप्रकारके दु:ख उत्पन्न होते हैं। परन्तु लड़की बड़ी हो जायगी, तो लोक नाम रक्खेंगे, इस दुर्वि-

चारसे हम अपनी प्राणोंसे भी प्यारी सन्तानको दु खके गढेमें ढकेल ढेते हैं। जिन जातियोंकी गृहसंख्या थोड़ी है, उनमें विवाहके लिये लड़कियां नहीं मिलती है—लड़के भी नहीं मिलते हैं। इससे उक्त जातियोंका दिनपर दिन क्षय हो रहा है, यह सब जानते हैं और यह भी उनसे छुपा नहीं है कि, अन्तर्जातियोंमें विवाह-सम्बन्ध शुरू कर देनेसे यह विपत्ति टल सकती है और इस प्रकारके विवाह शास्त्रसे भी निपिद्ध नहीं हैं—शास्त्र तो एक वर्णकी सैकड़ों जातियोंमें भी विवाहसम्बन्ध करनेका निषेध नहीं करता है, तो भी लोग अन्तर्जातियोंमें विवाह करनेके लिये उद्यत नहीं होते है, उद्यत होना दूर रहा, इस विषयकी चर्चा करनेमें भी डरते हैं। संपूर्ण जैनियोंमें भोजन व्यवहार जारी करनेका विषय भी ऐसा ही है। इसकी भी कम जरूरत नहीं है, परन्तु किया क्या जाय? झूठी भलमनसाहतका मोह हमारा पीछा छोड़े तब न?

मृत्युके पीछे जो नुक्ता वा दिन होता है, उसके खर्चके मारे हम बरबाद हुए जाते है। ब्याह शादियोंके खर्चोंने भी हमको खोकला कर डाला है, इत्यादि और भी बहुतसी कुरीतिया हैं, जिन्हें हम सर्वथा सत्यनाशिनी समझ रहे हैं। परन्तु हमारा धैर्य नहीं होता है कि हम इनसे अपना पिंड छुड़ा लेवें। ज्यों ही उक्त प्रसंग हम पर आते है, अपने बड़प्पनको बनाये रखनेकी चिन्तामें अपना धैर्य खो बैठते हैं। इस तरह सुधारणाके सैकड़ों कार्य नैतिक धैर्यके अभावसे अड़ रहे है। और यह अभाव हमारी भयंकर हानि कर रहा है।

यह हम मानते हैं कि, लौकिकके मोहके कारण बहुतसे अच्छे काम भी होते हैं। परन्तु इससे अच्छे कामोंमें जितनी सहायता

पहुंचती है, उतनी ही बल्कि उससे अधिक हानि भी पहुंचती है। अच्छे कार्मोमें इससे बड़ी २ अड़चनें उपस्थित होती हैं। पुराणोंमें रामचंद्रको अतिशय कर्त्तव्यदक्ष राजा बतलाया है। महा कवि भवभूतिने रामचन्द्रकी प्रजावत्सलताकी प्रशंसा करते हुए उनसे कहलाया है कि—

स्नेहं दयां तथा शोकं यदि वा जानकीमपि।
लोकस्य पारितोषाय मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

अर्थात् स्नेह, दया, शोक और तो क्या पतिव्रता जानकीको भी लोगोंको संतुष्ट करनेके लिये छोड़ देनेमें मुझे कष्ट नहीं होगा।

श्रीरामचन्द्रजी अच्छी तरहसे जानते थे कि, सीताके विषयमें लोगोंको जो सन्देह हुआ है, वह निराधार है—झूठा है। सीताका रामचद्रपर अपरिमित प्रेम था। गर्भके भारसे वह अतिशय थक गई थी। विश्वाससे पतिकी गोदमें मस्तक रखके वह सो रही थी। तो भी इस चाण्डाल लौकिकके लिये उन पुण्यश्लोक रामचन्द्रने उसे वनमें भेज दी। भवभूति भले ही इस कार्यको रामचन्द्रजीकी प्रशंसाका कारण समझे, परन्तु हम तो इसे उनकी नैतिक दुर्बलता ही समझते है। धिक्कार है उस नैतिक दुर्बलताको और वारंवार धिक्कार है नीच लौकिकको जिसके लिये ऐसे २ कृत्य किये जाते है। नैतिक धैर्य एक तरहसे और भी कसोटीपर कसा जा सकता है। जो लोक नैतिक दृष्टिसे डरपोंक हैं, वे वास्तवमें पवित्र परन्तु लोकविरुद्ध कार्य करनेमें किस तरह फिसल जाते है; यह तो बतलाया जा चुका। परन्तु जो लोग अशुद्धकृत्य कर चुकते है, उन्हें भी पश्चात्तापके अनन्तर बड़े भारी नैतिक धैर्यके प्रकाशित करनेका मौका मिलता है। कोई अपवित्र अयोग्य कार्य

करनेके पश्चात् उसका पश्चात्ताप हुआ, अथवा कोई विना जाने की हुई भूल पीछेसे समझमें आई, ऐसी अवस्थामें उस भूलको स्वीकार कर लेना, या पानीका घूट लेकर रह जाना (चुप हो रहना), अथवा पहिलेके ही माफिक भूलका समर्थन करते जाना ? मनुष्यसे भूल होना एक साधारण बात है। दोषपूर्ण मनुष्यसे अपराध बनते ही रहते है। परन्तु अपराध करके और उसको बुरा समझके भी बहुत लोग उसे छुपानेका प्रयत्न करते है। इससे जो उनके पश्चात्तापमें कमी आती है, सो तो आती ही है। इसके सिवाय अनुतापजन्य सुधारणा भी उनके पास नहीं फटकने पाती है। यह बहुत बडी हानि है। जिसे भूल स्वीकार करनेमें लज्जा आती है, वह निश्चय समझो कि, उस भूलको कभी न कभी फिर करेगा। केवल उसका छुपाना उसे आ जाना चाहिये। अपनी भूलको साफ़ तौरसे स्वीकार कर लेना ही सच्चा नैतिक धैर्य है। अपराध करके उसे छुपानेका अथवा उसके समर्थन करनेका प्रयत्न वास्तवमें विचारा जाय, तो बडे भारी डरपोंकपनका कार्य है। जो मनुष्य अपनी भूल स्वीकार नहीं करता है अथवा उसका समर्थन करता है, वह लौकिकके कल्पित पिशाचसे डरता है।

इसके विरुद्ध जो भूलको स्वीकार कर लेता है, वह मानो प्रगट करता है कि, मेरा मनोधैर्य इस झूठे बढप्पनके साम्हने डिगनेवाला नहीं है। ऐसे धैर्यवान् लोग बहुत कम दिखलाई देते है।

इस नैतिक धैर्यकी कमीके कारण समाजकी कितनी हानि हो रही है, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। जिस समाजमें नैतिक धैर्यशील पुरुष नहीं हों, उसे सडे हुए पानीसे भरे हुए गढेके समान समझना चाहिये। हमारे पूर्व पुरुष बहुतसे रीतिरिवाज प्रच-

लित कर गये है। उन रीतिरिवाजोंको इसमें सन्देह नहीं कि, उन्होंने बहुत विचारपूर्वक चलाये होंगे और उस समय जब कि वे चलाये गये थे, उनसे लाभ भी होता होगा, परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि, वे रीतिरिवाज 'यावच्चन्द्रादिवाकर' वैसेके वैसे बने रहेंगे। और समाजमें सौमेंसे ९९ लोग अज्ञानी और अंधपरम्पराके दास होते है। सो उनके सपाटेमें पड़कर रीतिरिवाजोंका मूल उद्देश वा वास्तविक अर्थ बना रहना भी अशक्य है। शब्दोंके जैसे अपभ्रंश हुआ करते है, उसी प्रकारसे अज्ञानी लोगोंके द्वारा रीतिरिवाजोंके भी विपर्यास होते रहते है। इसके सिवाय जो समाजव्यवस्थाएं एक कालके अनुरूप बनाई जाती है, वे चाहे जितनी चतुराईसे क्यों न बनाई गई हों, सदाके लिये सुभीतेकी नहीं हो सकती है। ज्यों २ काल बदलता है, त्यों २ [illegible]ष्योंकी आवश्यकताएं, उनके कर्तव्य, और उनके ध्येय आदि सब बदलते जाते है। इस लिये भी पूर्वके रीतिरिवाजोंके बदलनेकी आवश्यकता होती है। परन्तु समाजमें बहुधा लोग गतानुगतिक ही होते हैं। समयके परिवर्तनके अनुरूप जिन सुधारणाओंकी आवश्यकता होती है, उनके मस्तकमें वे प्रवेश नहीं कर सकती है। बल्कि प्रत्येक सुधारणाका प्रयत्न उन्हें 'उतावलेपनका' 'अविचारका' तथा 'लड़कपनका' मालूम होता है। बस, यहीं सुधारकोंका और इन रूढ़िके दासोंका युद्ध शुरू हो जाता है। ये रूढ़ि-दास पुराने रीतिरिवाजोंके इतने भक्त होते है कि, उस भक्तिके कारण इनके हृदयमें विचारशक्तिके लिये अवकाश ही नहीं रहता है। अन्याय और जुल्मोंके अतिशय परिचयके कारण इनकी विवेकशक्ति जड़वत् हो जाती है। इन्हें इस विषयका विचार तो

स्वप्नमें भी नहीं होता है कि, हम जिस कुरीतिके विषयमें आग्रह कर रहे है, उससे कितने निरपराधी प्राणियोंको दु:ख भोगना पडता है। परन्तु स्वय अधपरम्पराकी गुलामगीरीमें फँसे हुए ये महात्मा सुधारकोंको बड़ी घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। यदि सुधारक अपनी सुधारणाओंको कार्यमें परिणत करते है, तो उनके लिये इन की ओरसे 'धर्मभ्रष्ट' का तगमा तयार रहता है और यदि वे 'लोगोंकी समझ' का ख्याल करके फिसल जाते हैं, तो उन्हें 'डरपोंक' पद देनेमें भी ये नहीं चूकते हैं। इसी लिये स्कॉट कविने जनसमूहको 'हजार मुखके राक्षस' की उपमा दी है। शेक्सपियरके कथनानुसार इस राक्षसकी वासना रोगीकी भूख सरीखी होती है। जिस पदार्थसे रोग बढता है, उसीकी इसे भूख लगती है। इसी प्रकारसे यह राक्षस जिसे एक क्षणमें स्तुतिकी नसैनीपर चढाकर आकाशमें पहुचा देता है उसीको दूसरे क्षणमें तिर-स्कारके धक्केसे नीचे गिरा देता है। जिस समाजमें इस जनसमूहरूपी पिशाचकी प्रबलता होती है, उसमें पुरानी अन्यायपूर्ण तथा दुष्परि-णामी रूढ़ियोंका खूब दौर दौरा रहता है। वहा समाजके पैर निरन्तर पीछे ही को फिसलते रहते है।

ऐसा न होने देनेके लिये केवल एक ही मार्ग है—एक ही उपाय है। जिन्हें यह विश्वास हो गया है कि, यह नई पद्धति हितकारी है—धर्मसे इसका कोई विरोध नहीं है, उन्हें न तो लौकिकके पोच-डरसे डरना चाहिये और न झूठे बड़प्पनके सौन्दर्यमें भूलना चाहिये। न्यायबुद्धि ही समाजकी वास्तविक वा सुदृढ़ नींव है, ऐसा निश्चय करके सुधारकोंको चाहिये कि लोगोंकी धमकियोंकी तथा आक्रम-णोंकी जरा भी परवाह न करके नवीन पद्धतियोंका जोर शोरसे

प्रतिपादन करें और उन्हें स्वयं धैर्यपूर्वक अमलमें लाने लगें। ऐसा करनेसे सामाजिक अत्याचार, वैषम्य, सुधारमें बाधा डालनेवाली अड़चनें और इन सबके योगसे जो दुख होते हैं, वे नष्ट हो जावेंगे, रूढ़ियोंके गढ़ेका घिनौना पानी निकलकर उसके स्थानमें सुधारणाका स्वच्छ जल बहने लगेगा, मनुष्योंकी नाना शक्तियोंका लोप करने-वाले कारण नष्ट हो जावेंगे, और उर्वरा भूमिमें लगाये हुए पौधोंके समान उक्त शक्तियां फिर वृद्धिंगत होने लगेंगी।

सत्पुरुषोंको चाहिये कि, वे इस नैतिक धैर्यके कंटकाकीर्ण मार्गमें साहसपूर्वक आगे बढ़ें। यद्यपि यह मार्ग कंटकोंसे विषम है, परन्तु इसके दूसरे पार जो वैभवका ऊंचा शिखर और वास्तविक सुखका निधान है, उसको देखते हुए इसपर चलनेका कष्ट किसी गिनती-का नहीं है।

जो लोग चंचल लोकमतके झूलेके साथ आपको भी झुलाते हैं—लोकमतका पूरा पूरा अनुसरण करते है। निश्चय समझो कि, वे कभी न कभी अवश्य धोखा खावेंगे। क्यों कि लोकमतका झूला और वारागनाका अभिनय मिलता जुलता हुआ ही है। परन्तु जो लोग अन्यायोंको दूर करना चाहते हैं, समता वा साम्यभावकी पताका उडाना चाहते हैं, तथा प्राणीमात्रके दुःख दूर करना चाहते है, उनकी विजय अवश्य होगी। उनकी कोई निन्दा करो, बुराई करो, हँसी करो, वे अपने मार्गसे कभी च्युत नहीं होंगे।

यह हम मानते है कि, इस मार्गमें संकट बहुत हैं, परन्तु जब न्यायप्रियताका हथियार हाथमें लिया जायगा, तब वे आप ही आप हतवीर्य हो जावेंगे—वे हमारे लिये कोई रुकावट न कर सकेंगे। इस साहसपूर्ण विचारसे सबको सुधारके मार्गमें लग जाना चाहिये।

'प्रगति आणि जिनविजय' में प्रकाशित मराठी लेखका आशयानुवाद।

जैनमहाकोष।

वर्तमान समयमें जब प्रत्येक देश और समाजके सभ्य शिक्षित-गण पक्षपात रहित होकर सत्य धर्मकी खोज करनेके लिये भिन्न २ मतमतान्तरोंके सिद्धान्तोंका अवलोकन कर रहे है और तदनुसार अपने विचारोंको स्थिर कर रहे है, यह अति सम्भव है कि जैन मतके सिद्धान्त भी इन निष्पक्ष विद्वानोंकी दृष्टिगोचर हों। अतएव जैनमतकी उन्नति चाहनेवालोंका यह मुख्य कर्तव्य है कि, जैनधर्मके ग्रन्थ अति उत्तम रीतिसे शीघ्र प्रकाशित कराके तैयार रक्खें। परन्तु अकेले शास्त्रोंको प्रकाशित कर देनेसे ही पूर्ण साफल्यकी आशा नहीं हो सकती है। कारण कि जैन ग्रन्थ ऐसे सरल नहीं हैं, जो शीघ्र समझमें आ जावें। प्राय करके समस्त जैन ग्रन्थ पारि-भाषिक शब्दोंसे भरे हुए हैं, जिनके अर्थ वर्तमानमें किसी भी हिन्दी या सस्कृत कोषमें यथार्थ नहीं मिलते और जबतक अर्थ सम-झमें नहीं आता, तबतक उनका कुछ भी प्रभाव पाठकोंपर नहीं पड़ सकता है। यथार्थ अर्थ जाननेके लिए एक ऐसे महाकोषकी आवश्यकता है जिसमें समस्त पारिभाषिक शब्द क्रमसे दिए हुए हों और प्रत्येक शब्दके पूरे २ अर्थ लिखे हों। ऐसे कोषकी आवश्य-कता देखकर भारत जैनमहामण्डलकी प्रबधकारिणी सभाने गत दिसम्बरमें अपने लखनऊके अधिवेशनमें ऐसे कोषके तयार कर-नेका प्रस्ताव पास किया है और इस कार्यका भार मुझे सौंपा है। अतएव मैं जैन जातिके समस्त स्वाध्याय करनेवाले महाशयोंसे नम्र-तापूर्वक प्रार्थना करता हू कि, वे जिस ग्रन्थकी स्वाध्याय करते हों उसमें जितने पारिभाषिक शब्द आए हों उन सबकी एक २ सूची

बनाकर मेरे पास भेजें और सूची बनानेसे पूर्व मुझे लिख भेजें कि, वे किस ग्रंथकी स्वाध्याय करते हैं।

कमसेकम ९० शास्त्रोंके पारिभाषिक शब्दोंकी सूची आजाने पर अकारादि अक्षरोंकी क्रमसे एक सूची बनाई जावेगी और तत्पश्चात विद्वान् पंडितोंद्वारा उनके अर्थ लिखनेका कार्य प्रारम्भ किया जायगा।

मै पूर्ण रूपसे आशा दिलाता हूं कि, यदि शब्दोंकी सूची शीघ्र आ गई, तो कोष शीघ्र तयार हो जायगा।

मैं सहर्ष प्रगट करता हूं कि, निम्नलिखित महानुभावोंने निम्न लिखित शास्त्रोंके शब्दोंकी सूची बनानेका वचन दिया है, जिनके लिए हार्दिक धन्यवाद भेट है—

१. लाला अजितप्रसादजी, एम्. ए., एल. एल. बी., लखनऊ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय।

२. लाला जुगमंदिरलालजी, एम्. ए., बैरिष्टर-एट-ला, सहानरपुर—आत्मानुशासन।

३. लाला चैतन्यदासजी, बी. ए., एस. सी. ललितपुर—ज्ञानार्णव।

४. ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी बंबई, सर्वार्थसिद्धि, समयसार।

५. लाला देवेंद्रप्रसादजी, काशी, आदिपुराण।

६. पं. अर्जुनलालाजी सेठी, बी. ए., जयपुर—वृहद्द्रव्यसंग्रह।

७. पं. पन्नालालाजी बाकलीवाल, काशी— मोक्षमार्ग प्रकाश।

८. पं. घनश्यामदासजी, ललितपुर—पार्श्वपुराण।

आशा है कि, अन्य विद्वान् महाशय भी इस परमपवित्र कार्यमें अवश्य सहायता देंगें और उक्त सज्जनोंका अनुकरण करेंगे जिससे जिनवाणी माताका उद्धार हो और जैनसिद्धातका समस्त भूमंडलमें प्रकाश हो ।

दयाचंद्र गोयलीय, जैन, बी. ए.

ललितपुर ।

एक बोधप्रद आख्यायिका ।

एक परोपकाररत साधु दुखियोंके दु ख दूर करता हुआ और धर्मोपदेश देता हुआ पृथ्वीपर यथेच्छ विचरण किया करता था। एक स्थानमें उसने देखा कि, एक सिपाही घायल हो कर अब तबकी हालतमें पडा है। मरते समय यदि यह धर्मका स्वरूप समझ लेगा, तो इसे उत्तम गति प्राप्त हो जायगी, इस विचारसे उस महात्माने सिपाहीसे पूछा,–" तुझे धर्मशास्त्रका एकाध अध्याय पढके सुनाऊ क्या ?"

सिपाहीने क्लेशित हो कर कहा,–" मुझे तुम्हारा धर्मशास्त्र नहीं चाहिये, मुझे पानी चाहिये । "

सिपाहीके उक्त शब्द यद्यपि कड़े थे, परन्तु महात्माने उनकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और तत्काल ही उसे पानी लाकर पिला दिया। पानी पी चुकनेपर सिपाहीने कहा, " मेरे सिरको क्या आप कुछ ऊचा कर सकते हैं ?" साधुने अपने शरीरपरसे उत्तरीय वस्त्र निकाल कर उसकी घडी बनाई और उसके सिराने रख दी। सिपाही बोला, अब मुझे कुछ स्वस्थता मालूम होती है। परन्तु ठंडके मारे मेरे हाथ पैर अकड़े जाते हैं । यह सुनकर उस

पुण्यपुरुषने चारों ओर देखा, परन्तु उसे ऐसा कोइ पदार्थ नहीं दिखा जिससे सिपाहीका शीत निवारण होता। तब उसने अपने शरीरपरकी कफनी निकाली और उसे उढ़ा दी। उसी समय मरणोन्मुख सिपाहीके नेत्रोंमें आसुओंकी बूदे झलकने लगी। उसने गद्गदस्वरसे कहा साधु महाराज मैंने अब तक किसी भी धर्मग्रन्थको नहीं पढ़ा है, परन्तु जिस तरह आज आप मेरे काम आये उसी प्रकार प्राणीमात्रकी रक्षा वा सेवा करनेकी बुद्धि यदि उसके पढ़ने सुननेसे उत्पन्न हो सकती है, तो आप मुझे अपने धर्मग्रन्थका एक अध्याय अवश्य ही पढ़के सुनानेकी कृपा कीजिये।

तात्पर्य यह है कि, केवल धर्माभिमानके बातौनी जमाखर्चसे धर्मसाधन नहीं होता है। उसके लिये समाजसेवा और स्वार्थत्यागकी बड़ी भारी आवश्यकता है। जिस मनुष्यके जीवनक्रममें दो बातें कार्यरूपमें परिणत दिखलाई देती है, वही धर्माधिकारी हो सकता है और वही अपने पड़ौसियोंके मनको सच्चे धर्मकी ओर आकर्षित कर सकता है। उपदेश देनेवालोंको इस बातका चिन्तवन निरन्तर करते रहना चाहिये कि, जो उपदेश मैं दूसरोंको देना चाहता हूं उसके ज्ञानसे मेरे चरित्रपर भी कुछ असर हुआ है या नहीं?

पर-उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहिंते नरन घनेरे।

पुस्तक-समालोचन।

गद्यमाला—प्रकाशक, हिन्दी ट्रैन्सलेटिंग कम्पनी, लोअर चितपुर रोड, कलकत्ता। इस छोटे साइजके १९२ पृष्ठोंकी पुस्तकमें हिन्दी जाननेवालोंके सुपरिचित पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदीके ३२

छोटे बड़े फुटकर लेखोंका संग्रह है। कोई २ लेख विशेष करके वे जो मारवाड़ियोंको लक्ष्य करके लिखे गये हैं, अच्छे है। भाषा मार्जित और सुन्दर है। हमारी समझमें 'अनस्थिरता' आदिके झगडेवाले लेख इस सग्रहमें प्रकाशित न किये जाते, तो अच्छा होता। मूल्य दश आना कुछ अधिक जान पडता है।

दिगम्बरजैनके उपहार ग्रन्थ—सूरतसे निकलनेवाले गुजराती मासिकपत्रके उपहारमें इस वर्ष पाच ग्रन्थ दिये गये हैं, १ मोक्ष-मार्गप्रकाश पं. टोडरमल्लजीकृत, २ जैनधर्मनी माहिती, ३ ईश्वर कर्त्ताखडन, ४ शीलसुन्दरी रास, और पंचेंद्रिय संवाद। इनमेंसे पहिला ग्रन्थ तो वही है, जो इस वर्ष जैनहितैषीके उपहारमें दिया गया है, और शेष चार गुजराती भाषामें हैं। दुसरा ग्रन्थ शेठ हीराचन्द नेमीचन्दजीके मराठी लेखका अनुवाद है, जो हिन्दीमें 'जैन धर्मका परिचय' नामसे प्रकाशित हो चुका है। तीसरे ग्रन्थका विषय नामसे ही स्पष्ट है। चौथा ग्रन्थ एक प्राचीन गुजराती कवि-की कविता है, जिसमें एक सुन्दर कथा निवद्ध की गई है। पाचवां ग्रन्थ भैया भगवतीदासजीके पचेन्द्रिय संवादका गुजराती गद्यानु-वाद है। इन सवका मूल्य लगभग ढाई रुपयाके है इससे स्पष्ट मालूम होता है कि, दिगम्बर जैनके सम्पादक अपने पत्रके ग्राहक वढानेके लिये तथा जैनसाहित्यका प्रचार करनेके लिये असीम परि-श्रम कर रहे हैं। पत्रका मूल्य केवल सवा रुपया है। उपहारका पोस्टेज केवल आठ आना अधिक लेकर उक्त सव ग्रन्थ दिये जाते है। यह वात ध्यान देनेके योग्य है कि, उपहारके जितने ग्रन्थ हैं, प्राय वे सव गुजरातके धर्मात्मा धनिकोंकी ओरसे उनके इष्ट जनोंके स्मरणार्थ वितरण किये गये हैं। गुजरातकी यह पद्धति अनुकरण

करनेके योग्य है। इसमें दानका दान हो जाता है और एक पत्रके ग्राहकोंकी वृद्धि हो जाती है।

उन्नतिशिक्षक—रचयिता, लाला छोटेलालजी अजमेरा, साबिक डिपुटी इन्स्पेक्टर मदारिस, जयपुर और प्रकाशक, छोटेलाल एण्ड फ्रेण्ड्स, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर। मूल्य आठ आना। इस पुस्तकमें, विद्या, कलाचातुरी, स्त्रीशिक्षा, बालविवाह, लाड़, धन, फूट, समय, स्वास्थ्यरक्षा, धर्म, जिव्हाका स्वाद, मुकद्माबाजी आदि १७–१८ विषयोंपर निबन्ध लिखे गये है और वे प्राय. सब अच्छे है। प्रत्येक स्त्रीपुरुषके विचार करने योग्य है। एक जैनी सज्जनके द्वारा ऐसी अच्छी पुस्तक लिखि गई देखकर हमको प्रसन्नता हुई है। भाषा अच्छी है, कहीं संशोधनकी जरूरत है। विराम द्विविराम आदि चिन्होंपर सर्वत्र एकसा ध्यान नहीं दिया गया है।

गृहस्थ शिक्षासार—इस पुस्तकके रचयिता और प्रकाशक वे ही है, जो उन्नति शिक्षकके है। मूल्य इसका तीन आना है। इसमें एक कथाके द्वारा गृहस्थोपयोगी सारी शिक्षाएँ दे डाली है। बच्चोंको प्रारंभिक शिक्षासे लेकर उच्च शिक्षा तकका ज्ञान करना, उनका पालन पोषण करना, उनकी कुटेंबे छुड़ाना, उन्हें उत्साहित करना आदि बातें इसमें बतलाई गई है। पुस्तककी छपाई अच्छी नहीं है। कागज तो बहुत ही हलका लगाया है। प्रूफ सावधानीसे नहीं देखा गया, इस लिये अशुद्धियोंकी भरमार है। तो भी पुस्तक पढ़ने योग्य है।

सत्यासत्य निर्णय—लेखक और प्रकाशक, लाला मुसद्दीलालजी जमींदार, मु० निरपुड़ा, जिला मेरठ। मूल्य छह आना। इस पुस्तकमें १ शूद्र संस्कारकेद्वारा उच्च वर्णके नहीं हो सकते है।

२ मुक्त हुए जीव फिर ससारमें नहीं आते है। ३ वृक्षोंमें जीव है, और ४ स्त्रीको ग्यारह पती करनेकी वा नियोग करनेकी आज्ञा अधर्म मूलक है, इन चार बातोंको आर्यसमाजी विद्वानोंकी बनाई हुई ऋग्वेदादिकी टीकाओंके प्रमाण देकर सिद्ध की है। जिन भाई-योंको इन बातोंके पढनेका शोक हो, वे इस पुस्तकको मगाकर देखें। लेखक जैनी मालूम होते है, परतु उन्होंने प्रत्यक्ष रूपसे अपने मतको पुस्तक भरमें प्रकाशित नहीं किया है।

दीक्षाकुमारीप्रवास–प्रकाशक श्रीजैनधर्म विद्याप्रसारक वर्ग, पालीताणा। श्वेताबर सप्रदायमें उक्त मडली ग्रन्थप्रकाशनका कार्य बहुत प्रयत्नसे कर रही है। सैकडो पुस्तकें इस मडलीकी ओरसे प्रकाशित हो चुकी है। बहुत थोडा लगभग लागतके बराबर ही मूल्य रखकर यह ग्रथोंका प्रचार करती है। उक्त ग्रन्थके दो बडे २ भाग पक्की जिल्द सहित हमारे पास समालोचनार्थ आये है। प्रथम भागका मूल्य एक रुपया और दुसरेका डेढ रुपया है। श्वेताबर सम्प्रदायके यतियों तथा साधुओंका चरित्र इस समय कुछ आक्षेप योग्य हो रहा है। उसीको लक्ष करके यह पुस्तक लिखी गई है। 'दीक्षाकुमारी' नामकी एक स्त्री कल्पित करके ग्रन्थकर्त्ताने उसका प्रवास कराया है। वह जगह २ भ्रमण करती है और देखती है कि, जैन शास्त्रोक्त साधु कहा है। आचाराग सूत्र और दश वैकालिक सूत्रमें जो यत्याचार वर्णन किया है, प्रायः वह सबका सब दीक्षाकुमारीकी आलोचना और उपदेशोंमें आ गया है। सामाजिक सुधार करनेके लिये पुस्तक लिखनेका यह ढग अच्छा है। पुस्तककी भाषा गुजराती है। जो भाई गुजराती जानते है, उन्हें यह ग्रन्थ मगाकर अवश्य पढना चाहिये।

हिन्दी व्याकरणसार—प्रणेता, साहित्याचार्य प० रामावतार शर्मा, एम.,ए. और प्रकाशक, हिन्दी ट्रेन्सलेटिंग कम्पनी, लोअर चितपुररोड़ कलकत्ता। यह छोटीसी व्याकरणकी पुस्तक है। पडितजी हिन्दीका एक विस्तृत व्याकरण लिखना चाहते है। वह कैसा लिखा जायगा, इसका अनुमान इस पुस्तकसे हो सकता है। हमारी समझमें पुस्तक अच्छी बनी है। थोड़ेसेमें हिन्दी व्याकरणकी बहुतसी सार बातें कह दी गई है। मूल्य आठ आना बहुत ज्यादा मालूम होता है।

उपदेशरत्नावली—लेखक और प्रकाशक, पन्नालाल जैन मास्टर, बी. सी. हाईस्कुल लश्कर। मूल्य दो आना। इस छोटीसी पुस्तकमें फुटकर कविताओंका सग्रह है। कई कविताओंमें ईश्वर प्रार्थना है, और कईमें विविध उपदेश है, लश्करकी हिन्दी साहित्य सभाने पुस्तकका सशोधन किया है। पर हमारी समझमें संशोधन ठीक नहीं हुआ। दो तीन कविताओंके ऊपर लिखा है छन्द। पर यह नहीं लिखा है कि कौन छन्द। छन्दकी मात्राएँ भी न्यूनाधिक है। "असत भाषणमें कोई भलाई नहीं। है झूठोंकी कहीं भी सुनाई नहीं।" इस तर्जके एक पदको 'लावनी' लिखा है। 'तोता मैना विलाप' आदि दो एक कविताएँ अच्छी है। लेखकका पहिला प्रयत्न मालूम होता है। पुस्तक मंगाकर उत्साह बढ़ाना चाहिये।

Perpetual Calendar—अंग्रेजीका यह स्थायी क्यालेण्डर बाबू निहालकरनजी सेठी सेकिंड इयर क्लास, ग० कालेज अजमेरने आविष्कार करके छपाया है। इसके जरियेसे यह मालूम हो सकता है कि, अमुक सन्‌की अमुक तारीखको कौनसा दिन (वार) था। चाहे जिस सन्‌की तारीखके वारका आप पता लगा

सकते हैं। वह सन् चाहे हजार दो हजार वर्ष पीछे क्यों न हो। इस एक ही क्यालेण्डरसे हमेशा काम निकल सकता है। मूल्य चार आना बहुत ज्यादा मालूम होता है।

भारतका प्राचीन विद्यागौरव।

कुछ दिन पहिले पूनामें एक मराठी ग्रन्थसंग्रहालयकी स्थापना हुई थी। स्थापनाके समय जो जलसा किया गया था, उसके सभापति श्रीयुक्त नारायणराव बी. पावगी नामक प्रसिद्ध ग्रन्थकार और ऐतिहासिक विद्वान् हुए थे। उन्होंने अपने व्याख्यानमें इस देशकी प्राचीन विद्यासंस्थाओंका तथा पुस्तकालयोंका जो वर्णन किया था, वह प्रत्येक देशाभिमानीके जानने योग्य है। हम यहां पर उसका सारांश प्रगट करते हैं—

इस्वी सन्के लगभग ६२२ वर्ष पहिले तक्षशिलामें एक बड़ा भारी विद्यामन्दिर था। जिसमें जुदे २ अठारह विषयोंकी शिक्षा दी जाती थी। सुप्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि इसी विद्यालयके छात्र थे। चन्द्रगुप्तको साम्राज्य प्राप्त करा देनेवाला कूट राजनीतिज्ञ चाणक्य, वैद्यशिरोमणि आत्रेयी व जीवक, और अनेक शास्त्रोंका रचयिता कुमारलब्ध जो कि प्रति दिन ३२ हजार शब्दोंका पाठ करता था और इतने ही शब्द लिखता था, ये सब विद्वान् तक्षशिलाहीके विद्यालयमें पढे थे। उदन्तपुरीके विद्यालयमें ६ हजार विद्यार्थी अध्ययन करते थे। यह विद्यालय ईस्वीसन् १२०२ में नष्ट हो गया। विक्रमशीलके विश्वविद्यालयमें जो कि ईस्वीसन् ७०९ के लगभग स्थापित हुआ था, ६ पाठालय, ६ अन्न-

सत्र, १०८ अध्यापक और वहुतसे मन्दिर थे। नालन्दाके विश्व-विद्यालयमें जिसका कि ईसाकी सातवीं सदीमें अस्तित्व था, १० हजार विद्यार्थी, १५ सौ अध्यापक और एक नौ मंजिलका 'रत्नो-दधि' नामक पुस्तकालय था। इस पुस्तकालयसे चीनका प्रसिद्ध यात्री हुएनसंग ग्रन्थोंके ६५७ गट्ठे २० घोड़ोंपर लादके ले गया था। इससे पाठक कल्पना कर सकते है कि, उक्त पुस्तका-लयमें कितने ग्रन्थ होंगे, जिसमेंसे ६५७ गट्ठे तो एक यात्रीकी प्रार्थनापर उसे दे दिये गये थे। दक्षिण महाराष्ट्रके धन्यकटक स्थानमें भी एक वड़ा भारी पुस्तकालय था, जिसके अस्तित्वका ईस्वीसन् ४०० तक पता लगता है। तातारमें भी एक विशाल ग्रन्थालय था, जिसमेंसे ४ हजार ग्रन्थ एक मुसलमान वादशाह देहलीमें ले आया था। काश्मीर, नेपाल, जयपुर, जोधपुर, अलवर, अहमदावाद, वढवाण, सिद्धपुर, महसूर, तंजावर, आदि स्थानोंके पुस्तकालय अव रक्षित है। इनमें अपूर्व २ ग्रन्थरत्न संग्रहित है।

विविध विषय।

महासभाका अधिवेशन—महासभाका अधिवेशन सम्मेद-शिखरपर दो वर्ष हुए हुआ था। उसके वाद पारसाल एक अधि-वेशन मुजफ्फरनगरमें हुआ, जिसमें कोई भी कार्यवाही ठीक नहीं हुई। लोगोंने अपने एक देशीय झगड़ोंका फैसला अपनी इच्छा-नुसार करानेके लिये महासभाको भी कीचड़में घसीटना चाहा। किन्तु जव मेलेके छींटे वहुत पड़ने लगे, तव सभापति साहव हट गये और उन्होंने सभाको वचा लिया। उक्त अधिवेशनपर यह

ज्ञान हुआ था कि, सभासदोंका कोरम (जघन्य सख्या) भी पूरा नहीं हुआ था और यदि ज्यों त्यों करके नियमकी पूर्ति न की जाती, तो अधिवेशन ही न हो पाता। प्रस्ताव कोई महत्त्वके न हुए और न कोई प्रभावशाली व्याख्यान हुए। यदि उस समय जैन महामडलका अधिवेशन न होता, तो यह भी न मालूम होता कि, जैनियोंमें भी कोई पढ़े लिखे लोग है। वस अव यह आवश्यक है कि, महासभाका अधिवेशन किसी अच्छे स्थानपर किया जावे और उसका प्रत्येक कार्य नियमवद्ध किया जाय।

मुसलमानों द्वारा गोवध निषेध—विहार प्रान्तमें जहा कि, किसी समय जैनमुनि और वौद्धभिक्षु विहार किया करते थे, गोवध रोकनेके लिये स्थान २ पर सभाए की जा रही हैं। पर ये सभाए जैन या बौद्धों द्वारा नहीं, मुसलमान सज्जनोंद्वारा हो रही हैं। मुसलमानभाई कहते हैं, गोवध कुरानसे विरुद्ध है।

निकलके वरक—एडीसन साहबने जो कि फोनोग्राफके आविष्कारक है, निकल धातुके वरक इतने पतले वनाये हैं कि, २०,००० बीस हजार वरक सिर्फ एक इच मोटे होते है। पतलेसे पतले कागजके ३ वरक इसके ४ वरकके वरावर होते हैं। ये वरक कागजके तौरपर काममें लाये जावेंगे। कागजसे सस्ते भी पड़ेंगे।

दो छात्रवृत्तियां—राजकोटके रईस अमृतलाल भीमजी कोठारीने अपने स्वर्गीय पिताकी यादगारमें २५०००) पच्चीस हजार रुपयेका दान किया है। इस द्रव्यसे डाक्टरी और इजीनियरी पढनेवाले दो विद्यार्थियोंको ३५०) और ४५०) वार्षिक छात्र

वृत्तियां दी जाया करेंगी। काठियावाड़के छात्रोंका इन वृत्तियोंपर विशेष अधिकार होगा।

राजधानीका नकशा—पाठकोंको मालूम होगा कि, भारतकी राजधानी अब कलकत्तेसे उठकर देहली लाई जायगी। इस नई राजधानीके बनानेके लिये विलायतसे नकशा बनानेवाले बुलवाये जावेंगे। विलायतमें हरएक कामको एक विशेष विज्ञानका रूप दे दिया गया है और वहांके लोग प्रत्येक विषयमें अपनी सारी शक्तियोंको लगा कर असाधारण योग्यता प्राप्त करते है। *

पारसीका विद्यादान—बड़ौदाके डाक्टर माणिकशाजी मरते समय एक लाख दश हजार रुपये दान कर गये है। इन रुपयोंके व्याजसे उन पारसी विद्यार्थियोंको छात्रवृत्तिया दी जावेंगी, जो विलायत जाकर विज्ञान और साहित्यका अध्ययन करेंगे अथवा टाटा इनष्टीटयूटमें शिल्पकार्य सीखेंगे। इन वृत्तियोंकी सहायतासे जो छात्र अपनी विद्याध्ययन समाप्त करके अर्थोपार्जन करने लगेंगे, वे ली हुई वृत्तिको मय चार रुपये सैकड़े सूदके धीरे धीरे उक्त फंडमें जमा करा देंगे। इससे विद्यार्थियोंको समयपर सहायता भी मिलेगी और उक्त विद्याप्रचारक फंडकी वृद्धि भी होती जायगी। दानकी कैसी अच्छी विचारपूर्ण पद्धति है। ऐसे दानोंकी जैनसमाजमें बहुत बडी जरूरत है। परन्तु इस समाजके धनिकोंको ऐसी बातें कहांसे सूझें। उनकी तिजोरियोंमें व्याह शादियों, ज्योनारों, नुक्तों, और रथप्रतिष्ठाओंके खर्चोंसे जब रुपये बचें, तब न ऐसे कामोंमें लगानेके लिये वे तयार होवें।

---

* पिछले ५ नोट श्रीयुत बाबू अजितप्रसादजी, एम. ए. वकील, लखनऊने भेजनेकी कृपा की है।

करहलका मेला—माघसुदी ३ से ८ तक करहल (मैनपुरी)में बिम्बप्रतिष्ठाका उत्सव था। इस मेलेमें स्याद्वादवारिधि प० गोपालदासजी, न्यायाचार्य प० माणिकचन्द्रजी, कुँवर दिग्विजयसिंहजी, प० धर्मसहायजी, बाबू चन्द्रसेनजी, बाबा ठाकुरदासजी, ब्र० मोतीलालजी, प० उदयलालजी काशलीवाल, और नाथूराम प्रेमी आदि अनेक व्याख्याताओं तथा प्रचारकोंका समागम हुआ था। चार पांच दिन दोपहर और सध्याको अच्छे २ प्रभावशाली व्याख्यान हुए जिनसे जैनधर्मका महत्त्व प्रगट हुआ और उपस्थित भाइयोंके हृदयमें जैनधर्मकी तथा जैनजातिकी उन्नति करनेका जोश भर गया। पिछले दिन जैनसिद्धान्तपाठशाला मोरेनाके लिये अपील की गई और उपस्थित भाइयोंने २०८॥) की नगद सहायता दी। द्रव्य दाताओंको धन्यवाद है।

शास्त्रीय चर्चा,–हरीका त्याग—बाबू भूरामलजी निगोतिया, मास्टर दरबार हाईस्कुल बीकानेरने इस विषयमें एक लेख भेजा है, जिसका साराश यह है कि—"दो वर्ष पहिले जैनहितैषीमें इस विषयपर कई लेख लिखे गये थे परन्तु अभी तक किसी पडित महाशयने यह निर्णय नहीं किया कि, 'सुक्कं पक्कं तत्तं' इत्यादि गाथानुसार प्रासुक की हुई हरी चीजको हरीका त्यागि खा सकता है या नहीं। क्या जैनियोंमें कोई इस विषयके निर्णय करनेवाले पडित नहीं रहे? मेरी समझमें पडित तो बहुत बड़े २ हैं, परन्तु उन्होंने इस विषयमें अभी तक कुछ ध्यान नहीं दिया है। मेरी प्रार्थना है कि, पडितमंडली इस विषयमें जो कुछ शास्त्रोक्त समझे, उसका निर्णय करके प्रकाशित करनेकी कृपा करें। मेरी बुद्धिके अनुसार हरीका त्याग सचित्त त्याग प्रतिमा और भोगोपभोग परिमाण इन

दो प्रतिमाओंमें होता है। सचित्तत्यागमें सचित्त वस्तुका त्याग किया जाता है, इसलिये इस व्रतका पालन करनेवाला अचित्त की हुई वस्तु खा सकता है। जिस तरह मुनिराज अचित्त किया हुआ जल वा भोजन ग्रहण करते हैं। परन्तु भोगोपभोग परिमाण व्रतमें हरियों-की गिनती कर ली जाती है और उस गिनतीसे ज्यादा कोई हरी नहीं खाई जाती है, चाहे वह अचित्त वा प्रासुक ही क्यों न हो। जैसे कोई पुरुष दिनमें पांच वार भोजन करता हो और परिमाण कर ले कि अष्टमी वा चतुर्दशीको एकवार भोजन करूंगा, तो फिर वह उक्त दिनोंमें एक वारसे अधिक भोजन नहीं कर सकता, चाहे भोजन कैसा ही शुद्ध क्यों न हो। इसी तरह जिसने प्रतिज्ञा कर ली कि, अष्टमी चतुर्दशीको हरी नहीं खाऊगा, तो वह उस दिन हरी कदापि नहीं खायगा—चाहे वह अचित्त ही हो। वल्कि जिस पात्रमें हरीका कुछ ससर्ग होगा, उस पात्रमें भी भोजन नहीं करे-गा। यदि यह पूछा जावे-कि, जो हरी सुखा ली जाती है, उसका साग क्यों खाया जाता है? तो उत्तर यह है कि, हरीके सागमें और सूखीके सागमें वड़ा ही अन्तर है। अचित्तकी अपेक्षा तो दोनों एक है, परन्तु भोगाभिलापसे निवृत्ति करनेकी अपेक्षा जुदी २ हैं। सूखीके खानेसे भोगाभिलाषकी निवृत्ति ज्यादा है—उतनी हरीके अचित्त करके खानेसे नहीं है। दूसरे सुखाकर साग वनाकर खाना दु साध्य है—देर लगती है। पर हरीको अचित्त वनाकर खाना सुख-साध्य है—उसी वक्त अचित्त हो सकती है। सिवाय इसके हम जितनी वस्तुएँ खाने पीनेके काममें लाते है, वे प्राय सूखी ही होती है। अव यदि हरीका त्यागी सूखी नहीं खावे, तो उसे इन सव सूखी वस्तुओंकी गिनती करनी पड़े। इसलिये इस व्रतवालेके सूखी

खानेका प्रचार हो गया है।" इस विषयमें हमारा वक्तव्य यह है कि, भोगोपभोग परिमाणमें यदि कोई इस तरह त्याग करे कि, मै भिंडी, तोरई, करेला आदि अमुक २ वस्तुएँ नहीं खाऊंगा, तो अवश्य ही वह उक्त वस्तुओंको हरी, सूखी वा पकी आदि किसी भी अवस्थामें नहीं खायगा। क्योंकि उसने उन वस्तुओंको उद्देश्य करके त्याग किया है। परन्तु यदि वह इस प्रकार त्याग करता है कि, मै अमुक २ हरीयें नहीं खाऊगा, तो उनको वह हरी अवस्थामें ही नहीं खायगा। क्योंकि उसने हरी अर्थात् सचित्तका त्याग किया है। पकी सूखी आदि अचित्त अवस्थाओंमें खानेसे उसके व्रतमें दोष नहीं लग सकता है। हरितके त्यागमें अचित्तके भी त्याग का विधान लेखक महाशय क्यों करते हैं। यह समझमें नहीं आता है। जैनसिद्धान्तके अनुसार तो हरी वा हरितका अर्थ सचित्त वनस्पति ही होता है। हरे रंगसे अथवा पकी सूखी आदि अवस्थाओंसे हरित शब्दका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी तरह हरीके सुखानेमें और पकानेमें भले ही अन्तर हो अर्थात् उसमें आरभादिका भले ही तारतम्य हो। परन्तु भोगोपभोग परिमाणव्रतसे उस तारतम्यका कोई सम्बन्ध नहीं है। पिछले लेखोंमें इन बातोंका अच्छी तरहसे विचार किया जा चुका है।

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।

जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

आठवां भाग] चैत्र श्रीवीर नि० सं० २४३८ [छठा अंक

कर्नाटक-जैन-कवि।

२० **गुणवर्म**—इस नामके दो जैनकवि हो गये है, एक हरिवंशपुराणका कर्त्ता और दूसरा पुष्पदन्तपुराणका कर्त्ता। पहिला गुणवर्म ईस्वी सन् १०९० के लगभग हुआ है। अभिनव विद्यानन्दिने अपने **काव्यसार** नामके ग्रन्थमें गुणवर्माके **शूद्रक** नामक ग्रन्थके कुछ पद्य उद्धृत किये है, जिससे मालूम होता है कि, उसने कोई शूद्रक नामक ग्रन्थ भी रचा था, जो अभी तक कहीं देखनेमें नहीं आया। इस ग्रन्थमें किसी **गंग** नामके राजाका जिसके कि **गंगार्जुन, गंगचक्रायुधांक, रूपकन्दर्प** आदि नामान्तर व विशेषण थे, चरित्र और स्तवन है। **नागवर्म** कविने गुणवर्मको 'लक्षण ग्रन्थकर्ता' बतलाया है। इससे इसका बनाया हुआ कोई व्याकरणग्रन्थ भी होना चाहिये। इसके पीछेके **नागवर्म, नयसेन, रुद्रभट्ट** आदि कवियोंने अपने ग्रन्थोंमें गुणवर्मके कविता चातुर्यकी बहुत प्रशंसा की है, जिससे मालूम होता है कि, यह एक सुप्रसिद्ध

कवि हो गया है। दूसरे गुणवर्मका समय ईस्वी सन् १२३९ के लगभग निश्चित हुवा है।

२१ गजांकुश—मल्लिकार्जुन, नयसेन आदि कवियोंके पद्योंसे विदित होता है कि, गज अथवा गजांकुश नामका एक जैनकवि ईस्वी सन् १११० के पहिले हो गया है। दुर्गसिंहने इसका 'विजितारिदड नायक' कह कर उल्लेख किया है, जिससे मालूम होता है कि, यह कवि होनेपर भी एक शूर सेनापति था। इसका एक नाम गजग भी था। रुद्रभट्ट, अंडय्य, काशिराज, कुमुदेन्दु वाणिवल्लभ आदि कवियोंने इसकी स्तुति की है, परन्तु इसका अभी तक कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है।

२२ कविमल्ल—राजेन्द्रचूडके राज्य कालमें (ईस्वी सन् १०९७) जो अठारहवा शिलाशासन लिखा गया है और जो हेग्गडदेवके कोटि नामक स्थानमें है, उससे ऐसा मालूम होता है कि, नुगुनाडके अधिपति चोलनरेशकी देकब्बे नामकी लड़की थी। यह नन्निलेनाडके स्वामी एचनको व्याही थी। इस एचनने अपने दायादोंको मार डाला था, इस अपराधमें उसका सार्वभौम नरेशकी आज्ञासे शिरच्छेद किया गया था। देकब्बे अपने पतिके इस विरहको सहन न कर सकी, इसलिये उसके साथ ही सती हो गई—चितामें जल गई। इस पतिव्रताके स्मरणार्थ जो शिलालेख लिखा गया है, उसका पद्य बहुत ही भावपूर्ण और सुन्दर है। कविमल्ल इसी लेखका रचयिता है। और इससे वह एक उत्तम कवि मालूम होता है। उसका कोई स्वतंत्र ग्रन्थ प्राप्य नहीं है।

२३ नागवर्माचार्य—यह उदयादित्य राजाका 'सेना नायक' और 'सान्धि वैग्रहिक मन्त्री' था। यह ईस्वी सन् १०७०

के लगभग हुआ है। यह बड़ा धर्मात्मा और परमार्थी था। बलिपुर नामके स्थानमें इसने बहुतसे मन्दिर बनवाये थे और भुत्तु-रेडे नामके स्थानमें सिद्धतीर्थ स्थापित किया था। अपने भास्क-रादि भाईयोंको उद्देश करके इसने एक **चन्द्रचूड़ामणि शतक** नामक ग्रन्थकी रचना की थी। इस ग्रन्थका दूसरा नाम **ज्ञानसार** भी है। इसमें वैराग्यको जागृत करनेवाले बहुत ही सुन्दर पद्य हैं।

२४ दामराज—सार्वभौम त्रिभुवनमल्ल - नरेश (राज्यकाल ई० सन् १०७६ से ११२६) का **गंगपेरमानडीदेव** नामक सा-मन्त राजा था। और उसका **नोक्कय हेग्गडे** नामका मंत्री था। पहिले यह कवि इसी मंत्रीका आश्रित था। परन्तु **शिवमोग्ग** तह-सीलमें जो दशवां शिलालेख है, उसमें इसने अपनेको 'सान्धिवैग्रहिक मंत्री' लिखा है। इससे मालूम होता है कि, पीछेसे इसने उक्त पद पा लिया होगा। गंगपेरमानडीदेवने बहुतसे जिनमन्दिरोंको ग्रामादि दान किये थे, और उनके शासन **दामराजसे** लिखवाये थे। उक्त शासन लेखोंके पद्योंसे यह बात निःसंकोच कही जा सकती है कि, वह एक उच्च श्रेणीका कवि था। मालूम नहीं, इस कविने किसी स्वतंत्र ग्रन्थकी भी रचना की है, या नहीं। इसका समय ईस्वी सन् १०८९ के लगभग मालूम होता है।

२५ शंखवर्म—इसकी 'अलंकार शास्त्रकार' के नामसे ख्याति है। परन्तु इसका कोई ग्रन्थ अब तक उपलब्ध नहीं हुआ। द्वितीय **नागवर्मने** अपने **काव्यावलोकन** ग्रन्थमें इसकी प्रशंसा की है। **रुद्रभट्टने** भी इसकी स्तुति की है।

२६ नागचन्द्र—इसका दूसरा नाम **अभिनवपंप** है। कन-ड़ीका यह वैसा ही कवि समझा जाता है, जैसे हिन्दीके **तुलसीदास**।

कर्नाटक प्रान्तमें नागचन्द्रकी **रामायण** वा **पंपरामायण**का प्रचार है। यह ग्रन्थ ऐसा सुन्दर और सरस है कि, इसे प्रत्येक धर्मका अनुयायी पढता है। कोई इस बातका ख्याल नहीं करता है कि, इसकी कथा जैनधर्मके अनुसार है। यह ग्रन्थ गद्य पद्यमयी है। इसमें छह आश्वास है। इस कविका दूसरा ग्रन्थ **मल्लिनाथ पुराण** है, जिसमें १९ वें तीर्थंकर **मल्लिनाथका** चरित्र १४ आश्वासोंमें वर्णित है। यह भी गद्य पद्यमय है। इसकी वर्णन शैली बडी ही हृदयग्राहिणी है। **जिनमुनितनय** और **जिनाक्षरमाला** ये दो ग्रन्थ भी इसी कविके बनाये हुए प्रसिद्ध हैं। परन्तु हमको इस विषयमें सदेह है। क्योंकि इन ग्रन्थोंकी रचना बहुत ही साधी और महत्त्वहीन है। यह कवि ईस्वी सन् ११०५ के लगभग हुआ है। भारतीकर्णपूर, कविता मनोहर, साहित्य विद्याधर, साहित्य सर्वज्ञ, सूक्ति मुक्तावतस, आदि इस कविके उपनाम थे। यह जैसा विद्वान् था, वैसा ही धनवान् भी था। मल्लिनाथ पुराणकी प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि, इसने बीजापुरमें विपुल धन लगाकर मल्लिनाथ भगवान्का एक विशाल मन्दिर बनवाया था और उसी समय मल्लिनाथ पुराणकी रचना की थी। इसका निवासस्थान बीजापुर ही जान पडता है। इसके गुरुका नाम **बालचन्द्र** मुनि था। बालचन्द्र नामके दो मुनि हो गये हैं, जिनमेंसे एक पुस्तकगच्छ भुक्त नयकीर्तिके शिष्य थे और प्राभृत ग्रन्थोंके टीकाकार (कनडी) होनेसे 'आध्यात्मिक बालचन्द्र' कहलाते है। ये सन् ११९२ तक जीवित थे। दूसरे बालचन्द्र वक्रगच्छके थे और वीरनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्तीके गुरु मेघचन्द्र (पूज्यपाद कृत समाधि शतकके टीकाकार) के सहाध्यायी थे। यही दूसरे बालचन्द्र **नागचन्द्रके** गुरु थे।

नागचन्द्र नामके एक और विद्वान् हो गये है, परन्तु वे गृहस्थ नहीं थे मुनि थे। तत्त्वानुशासन, लब्धिसार टीका और विषापहार टीका, आदि कई संस्कृत ग्रन्थ उनके बनाये हुए है।

२७. कन्ति—यह स्त्री कवि थी और इसकी कविता बहुत ही मनोहारिणी होती थी। कनड़ी साहित्यमें शायद इसके पहिले और कोई स्त्री कवि नहीं हुई। देवचंद्र कविके एक लेखसे मालूम होता है कि, यह छन्द, अलंकार, काव्य, कोष, व्याकरणादि नाना ग्रन्थोंमें कुशल थी। बाहूवलि नामक कविने अपने नागकुमारचरितके एक पद्यमें इसकी बहुत प्रशंसा की है और इसे 'अभिनववाग्देवी' विशेषण दिया है। द्वारसमुद्रके बल्लालराजा विष्णुवर्धनकी सभामें अभिनव पंप और कन्तिसे विवाद हुआ था। अभिनवपंपकी दी हुई समस्याकी उसने पूर्ति की थी। अभिनवपंप चाहता था कि, कन्ति मेरी प्रशसा करे—उसकी की हुई प्रशंसाको वह अपने गौरवका कारण समझता था। परन्तु कन्ति पंपकी प्रशंसा नहीं करती थी। कहते है कि, कन्तिने अन्तमें पंपकी कविताकी प्रशसा करके उसको सन्तुष्ट कर दिया था—परन्तु सहज ही नहीं। पंपको इसके लिये एक ढोंग बनाना पड़ा था। यह राजमंत्रीके धर्मचन्द्र नामक पुत्रकी लड़की थी। इसका समय पंपके समयके लगभग समझना चाहिये। इस समय इसका बनाया हुआ कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

२८. नयसेन—यह कवि ईस्वी सन् ११११२के लगभग मुळगुन्द नामक तीर्थस्थानमें हुआ है। यह त्रैविद्य चक्रवर्ती नरेन्द्रसेन सूरिका शिष्य था। नरेन्द्रसेन बहुत प्रभावशाली विद्वान् हुए है। चालुक्यवंशीय भुवनैकमल्ल (सन् १०६९ से १०७६) उनकी

सेवा करते थे। नयसेनके बनाये हुए दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, एक तो कर्नाटक भाषाका व्याकरण और दूसरा धर्मामृत। धर्मामृतको काव्यरत्न भी कहते हैं। इसमें १४ आश्वास हैं। इसकी कनड़ी भाषा बहुत ही मधुर, ललित तथा शुद्ध है। नीति ग्रन्थोंकी पद्धतिसे इसमें श्रावकाचारका विस्तृत स्वरूप कहा है। इस कविकी भी कनड़ीके नामी कवियोंमें गणना है। इसके पीछेके कवियोंने इसे 'सुकवि निकर पिक माकन्द,' 'सुकविजनमन पद्मानि राजहंस' आदि विशेषणोंसे भूषित किया है।

[असमाप्त]

श्रीसोनागिर सिद्धक्षेत्र

और

हमारे विचार।

बहुत कम जैनी भाई ऐसे होंगे, जो इस सिद्धक्षेत्रसे परिचित न हों। यह तीर्थ बुन्देलखडके दतिया राज्यके अन्तर्गत है। जी. आई. पी. रेलवेके सोनागिर स्टेशनसे लगभग दो ढाई मील दूरीपर सोनागिर पर्वत है। इसका प्राचीन नाम श्रमणगिरि वा श्रमणाचल है। 'श्रमण' शब्दका अर्थ जैन मुनि होता है। इस पर्वतपर पूर्वकालमें जैन मुनि निवास करते थे और अनेक जैन मुनियोंने यहासे मोक्ष-प्राप्त किया था, इसलिये इसका श्रमणगिरि नाम अन्वर्थक मालूम होता है। श्रमणगिरि, श्रवनगिर, सवनगिर, और सोनगिरि इस तरह क्रमसे अपभ्रंश होते होते सोनागिर शब्द बना है। इस पर्वतपर जो चन्द्रप्रभ

भगवानका मुख्य मन्दिर है, उसके शिलालेखसे[1] मालूम होता है कि, विक्रमसवत् ३३५ में **श्रमणसेन** और **कनकसेन** नामके मुनियोंने जो कि मूलसंघ और वलात्कारगणके थे, इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा करवाई थी और सोनागिरके मंदिरोंमें यही मन्दिर सबसे प्राचीन है। आश्चर्य नहीं कि, इन्हीं श्रमणसेन मुनिके नामसे इस पर्वतका नामकरण हुआ हो । ' श्रमण' का अपभ्रश जिस तरह ' सोन' होता है, उसी तरह ' कनक' (कनकसेनका संक्षिप्तनाम) के पर्यायवाची ' स्वर्ण' का अपभ्रंश भी ' सोन' ही होता है। बहुत लोगोंकी राय है कि, सोनागिर उस सुवर्णगिरि शब्दका अपभ्रंश है, जिसका कनकसेनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु यह सुवर्णगिरि क्यों कहलाया इसका वे कोई वलवान् प्रमाण नहीं दे सकते है। प्रत्यक्षमें वहा कोई ऐसे सुवर्ण पाये जाने आदिके चिन्ह नहीं हैं, जिनसे इस नामकी सार्थकता सिद्ध की जा सके। विरुद्ध इसके श्रमणाचल वा श्रमणगिरि नाम वहां जो कई मन्दिरोंमें शिलालेख है, उनमें लिखे हुए मिलते है और अर्थसे भी ये नाम ठीक मालूम होते है अस्तु ।

इस पवित्र तीर्थपर प्रतिवर्ष चैत्रमासके प्रारंभमें मेला लगता है और उसमें दूर दूरके कई हजार यात्री एकत्र होते हैं। यद्यपि इस वर्ष झासी आदि कई स्थानोंमें प्लेग हो रहा था, इस लिये उस ओरके वहुत कम लोग आये थे और कुछ आये भी थे, सो

---

1 वर्तमानमें जो चन्द्रप्रभका मन्दिर है, वह सम्वत् १८८३में मथुरा निवासी शेठ लक्ष्मीचन्दजीका जीर्णोद्धार कराया हुआ है। सवत् ३३५के पुराने लेखका साराश हिन्दीमें उक्त जीर्णोद्धार करनेवालोंने जुदे शिलालेखपर लिखकर लगा दिया है। वह मौजूद है, परन्तु मालूम होता है पुराने लेखका पता नहीं है।

राज्यके प्लेग प्रवन्धकर्त्ताओंद्वारा लौटा दिये गये थे, तो भी लगभग डेढ़ दो हजार भाइयोंका समूह हो गया था। अपने चिरकालके मनोरथको पूर्ण करनेके लिये द्वितीयाकी सध्याको हम भी इस समूहमें जाकर शामिल हो गये थे और पचमीकी संध्यातक रहे थे। इस बीचमें वन्दना करते समय, जलेव निकलते समय और दूसरे मौकोंपर हमारे हृदयमें जो विचार उत्पन्न हुए, उन्हें हम वर्त्तमान जैन समाजके उपयोगी समझकर इस लेखमें प्रकाशित करना चाहते है। आशा है, उनसे हमारे पाठक कुछ न कुछ लाभ अवश्य उठावेंगे॥

सोनागिरका पर्वत गिरनार आदि पर्वतोंके समान ऊंचा तथा विस्तृत नहीं है—बहुत ही मामूली है। विना किसी विशेप कष्टके दो ढाई घटेमें अच्छी तरहसे इसकी वन्दना हो सकती है और पर्वतका घेर तो इतना कम है कि, परिक्रमा करनेमें पूरा घंटा भर भी नहीं लगता है। इतना छोटा होनेपर भी इस पर्वतपर जैनियोंकी विलक्षण उदारताने ६७ मन्दिर वनवा दिये है और यदि यह मन्दिर वनवानेकी उदारताका संक्रामक रोग वरावर इसी तरह जोर पकड़े रहा, जैसा कि वर्त्तमानमें है तो वहुत ही थोड़े दिनोंमें साराकासारा पर्वत मन्दिरोंसे ढक जायगा और फिर यह जानना कठिन हो जायगा कि, वास्तवमें यह कोई पर्वत है। केवल मन्दिरोंका एक स्तूपसा दीखेगा।

वन्दना करते समय हमने जव इस वातपर गौर किया कि, ये मन्दिर कितने पुराने है, तो मालूम हुआ दो चार मन्दिरोंको छोड़कर पर्वतके प्राय सव ही मन्दिर ऐसे है, जो विक्रम सवत् १८०० के पीछेके है अर्थात् केवल १५० वर्पके भीतर इन सवकी रचना हुई है। प्राचीन मन्दिरोंमें या तो चन्द्रप्रभुका मन्दिर है, या एक

मन्दिरमें संवत् १२७२ की धर्मचन्द भट्टारकके उपदेशसे प्रतिष्ठा की हुई प्रतिमा है। इसके सिवाय और कोई प्रतिबिम्ब या मन्दिर प्राचीन नहीं मालूम हुए। और यदि हमारे दृष्टिदोषसे कोई रह भी गये हों, तो उनकी संख्या दो चारसे अधिक नहीं होगी। इन सब मन्दिरोंमें जो प्रतिमाएँ है, यदि सत्य और स्पष्ट कहनेमें कोई पाप न हो, तो हम कहेंगे कि उनमें कोई भी ऐसी नहीं है जो शिल्पशास्त्रके नियमानुसार बनाई गई हो और उनसे प्रतिमापूजनका जैनियोंका जो मुख्य उद्देश है, उसकी पूर्ति होती हो। शिल्पशास्त्र बा मूर्तिनिर्माण विद्याकी सूक्ष्म बातोंपर ध्यान रखना तो दूर किनार रहा, इन मूर्तियोंके बनानेमें इतने भी कौशल्य पर ख्याल नहीं रक्खा गया, जितना वर्त्तमानमें जयपुर आदिके मूर्ति बनानेवाले रखते है। एक या दो प्रतिमाएँ अवश्य ही संगमर्मरकी बनी हुई ऐसी हैं, जिन्हें बुरी नहीं कह सकते है तो भी वे ऐसी नहीं है कि हमारे हृदयपर वैराग्यका कुछ गहरा असर डाल सकें। इनको छोड़कर प्रायः जितनी प्रतिमा है, वे सब बेडौल, बेढंगी, अस्वभाविक और गिरी हुई शिल्पकलाकी दृष्टान्त स्वरूप है। दृष्टि. मुखमुद्रा आदि सूक्ष्म भाव जो चतुर कारीगरकी रचनामें दृष्टिगोचर होते है उनकी तो बात ही निराली है पर इनके बनानेवाले कारीगर और बनवाने वाले धनिक तो मालूम होता है, यह भी नहीं जानते थे कि ऊपरके धड़से पैर बड़े होना चाहिये या छोटे शिर और धड़के मापमें कितना तारतम्य होना चाहिये। पैरोंमें घुटनोंके स्थानपर अथवा नीचे ऊपर कुछ चढ़ाव उतारकी जरूरत है या नहीं ऐसी प्रतिमाएँ तो हमने ५०–६० से कम न देखी होंगी, जिनके पैरोंके पंजोंकी लम्बाई प्रतिमाके परिमाणसे जितनी होनी चाहिये,

उससे आधी या तिहाई भी नहीं थी। जब हमने इन बातोंका विचार किया कि, ऐसी प्रतिमाओंकी स्थापना क्यों की गई--इतने अधिक मन्दिर क्यों बन गये और ये सब लगभग डेड़ सौ वर्ष ही में क्यों बने, तो हमारी दृष्टिके सामने पिछली दो सौ वर्षोंकी अंध-श्रद्धा तथा अज्ञानताका और भट्टारकोंके विवेकशून्य शासनका चित्र खिंच गया। जब भट्टारक गण स्वयं विद्याहीन होने लगे समीचीन विद्या तथा चारित्रसे रहित होने लगे और साथ ही साथ उनमें स्वार्थकी मात्रा बढने लगी, तब उन्होंने जैनधर्मकी रक्षाका केवल यही उपाय तजवीज किया कि, खूब मन्दिर बनवाये जावें और प्रतिष्ठाएँ करवाई जावें। इन कामोंसे उनके स्वार्थकी साधना भी होती थी। सुतरा इस ओर उन्होंने अपनी शक्तिका भी उपयोग विशेष रूपसे किया। जैन समाजमें अज्ञानका साम्राज्य था ही फिर क्या था धड़ाधड मन्दिर बनने लगे। एकको सिंगईकी पगडी बँधवाई गई, तो दूसरा सवाई सिंगई बननेको तयार हो गया। और एकने पाच हजार लगाकर मन्दिर बनवाया, तो दूसरा दश हजार लगानेकी प्रतिज्ञा करने लगा। इस तरह देखादेखीसे बराबर मन्दिर बनते गये और उनकी सख्या सैकड़ोंपर पहुंच गई। जो लोग भट्टारकोंके शासनसे जुदे हो गये थे--जिनपर तेरहपंथकी मुद्रा लग चुकी थी। उन्होंने भी इस कार्यमें योग दिया, वे भी मन्दिर बनवानेमें बीसपथियोंसे पीछे न रहे। प्रभावनाका मन्दिर बनवानेके अतिरिक्त और भी कोई अच्छा मार्ग है--इसका ज्ञान उन्हें भी नहीं हुआ। हम यह नहीं कहते है कि, इन मन्दिरोंके बनवानेवालोंमें धर्मबुद्धि बिलकुल ही नहीं थी, अथवा इन्होंने कुछ पुण्योपार्जन नहीं किया होगा। नहीं, हमारा अभिप्राय केवल यह है कि, वे अधश्रद्धालु और

गतानुगतिक होंगे। उनमें धर्मके स्वरूपका ज्ञान बहुत ही कम होगा। जिसमें भट्टारकजीने धर्म कह दिया उसमें धर्म और जिसमें अधर्म कह दिया उसीमें अधर्म समझते होंगे। यदि वे कमसे कम इतना भी समझते कि, जैनियोंके यहा जो मूर्तिपूजा है। वह केवल वैराग्य भावोंकी वृद्धि-के लिये तथा अपने पूर्व महात्माओंके उत्कृष्ट चरित्रका स्मरण करनेके लिये है। एकपर एक मन्दिर बनाकर भगवानको राजी करनेके लिये नहीं है, तो उनके द्वारा ऐसी बेडौल प्रतिमाओंकी स्थापना न होती। यदि वे जानते कि, प्रतिमाओंकी सौम्यता तथा शान्तिताके अनुसार भावोंमें भी कुछ तारतम्य होता है, तो जिन मन्दिरोंमें बीस २ हजार रुपया लगाये है, उनमें प्रतिमाओंके लिये भी दो २ चार २ हजार रुपये खर्च करते। जिन दिनोंमें ये मन्दिर बने, उन दिनों यदि जैनसमाजमें अज्ञान अंधकार नहीं होता, तो अवश्य है कि, मंदि-रोंके साथ २ चार छह पाठशाला, पुस्तकालय और दानालय आदि सस्थाऍ भी स्थापित होतीं। प्रभावनाके लिये ये काम भी कुछ कम महत्त्वके नहीं है। पर इनका महत्त्व उस समयका समाज नहीं स-मझ सकता है, जब चारों ओर अज्ञान अधकार छाया हुआ था। आज चारों ओर ज्ञान सूर्यका प्रकाश फैल रहा है और जहां तहां विद्याको ही सबसे अधिक महत्त्व दिया जा रहा है। परन्तु ऐसे सम-यमें भी जैनसमाज जब मन्दिर बनवाने और प्रतिष्ठा करवानेमें ही सबसे अधिक दत्तचित्त है, तब उस समयमें जब कि विद्यादेवी केवल, धर्मगुरुओंकी अथवा इनेगिने दश पाच पंडितोंकी ही गृह-दासी हो रही थी, पुस्तकालय पाठालयादिकों को कौन पूछता था।

जिन बिढंगी प्रतिमाओंका हमने ऊपर जिक्र किया है, उनके विषयमें दूसरे लोगोंके मत कैसे है, यह जाननेके लिये जब हमने

दो चार सज्जनोंसे जिनमें एक दो शिक्षित भी थे, पूछा तो उन्होंने शिर:संचालन और ईषन्नेत्र मुकुलित करते हुए कहा—आहा! कैसी दिव्य मूर्तिया हैं। अमुक मन्दिरकी मनोज्ञ प्रतिमाके समक्ष कैसी शान्ति मिलती है। यह सुनकर मैंने अपने मनमें कहा,—"हे अन्धश्रद्धे, तुझे नमस्कार है। तेरे प्रचड शासनने लोगोंकी सत्यनिष्ठा और सदसद्विवेक बुद्धिको तो मानो देश निकाला ही दे दिया है। तू लोगोंको जबर्दस्ती धर्मात्मा बननेके लिये लाचार करती है। जो तेरी आज्ञासे जरा भी विरुद्ध हुआ कि, उसकी मिट्टी खराब होती है। आज 'देवागमनभोयानादि' कारिकाएँ कहकर भगवानकी परीक्षा करनेवाले भगवत्समन्तभद्र जैसे आचार्य भी होते, तो उनपर भी आपत्ति आये विना न रहती। उनका उपदेश सुनना भी बन्द कर दिया जाता। देखना है कि, हमारे समाजमें अब तेरी तूती और कितने दिन बोलती है।"

पर्वतके ऊपर पहुंच कर जब हमने एकबार सब ओर दृष्टि डाली तब हमारे मनमें एक अपूर्व भावका उदय हुआ। अहा! यह वही पवित्र भूमि है, जहां किसी समय सैकड़ों मुनि संसारकी विषयवासनाओंसे विरक्त हो कर आत्माका चिन्तवन करते थे। जगतके सूक्ष्मसे सूक्ष्म पदार्थोंका अपनी विशदबुद्धिसे विचार करते थे, और निरन्तर, प्राणीमात्रके हितके लिये प्रयत्नशील रहते थे। यह वही विद्याभूमि है, जहां वृक्षोंके नीचे बैठे हुए मुनियोंके पास हजारों ब्रह्मचारी विद्याध्ययन करते थे और अपने आगामी जीवनको परार्थतत्पर संयमी और धर्म प्रचारक बनानेकी सामग्री एकत्र करते थे। यह वही विजयभूमि है, जहां बड़े २ दिग्गज वादी जैनधर्मपर विजय प्राप्त करनेके लिये आते थे, परन्तु स्याद्वादकी सत्य युक्ति-

योंके सामने गलितमद हो कर चुपचाप चले जाते थे, या सब कुछ छोड छाड़कर आप भी इस सत्य धर्मकी छायामें बैठनेका सौभाग्य प्राप्त करते थे। आज यद्यपि यह भूमि पहलेकी अपेक्षा अधिक समृद्ध-शाली जान पड़ती है—सैकड़ों गगनचुम्बी मन्दिरोंसे शोभित हो रही है, और एक राजपुरीसी दिखती है, परन्तु राजपुरी क्या तपोवनकी बराबरी कर सकती है? विद्वान्की झोपड़ीकी समता क्या राजाका महल कर सकता है? अहा! यदि इन शताधिक मन्दिरोंके साथ २ सौ पचास मुनि नहीं ब्रह्मचारी ही रहकर विद्याभ्यास करते होते, दश पाच उपदेशक निरन्तर आने जाने-वाले यात्रियोंको उपदेश देकर उनका कल्याण करते होते, जिन मन्दिरोंमें देवोंकी स्थापना है, उनमें दो चार हजार शास्त्रोंकी भी स्थापना होती और उनसे दर्शक गण अपने हृदयका अधकार हटा-नेका प्रयत्न करते होते तो इनके दर्शनोंसे जो आनन्द होता है, वह कितनी वृद्धिको न प्राप्त होता? ऐसा होता तो मानो पंचभूता-त्मक शरीरमें जीव विराजमान हो जाता, चारित्रके बिल्लौरके साथ सम्यग्ज्ञानका मणि जड़ जाता, और तारागण मंडित आकाशमें पूर्ण चन्द्रका उदय हो जाता। क्या वह दिन कभी आयगा, जब उस स्मृतिपथके पार पहुंची हुई सच्ची शोभाका और इस वर्तमानकी बना-वटी तथा निर्जीव शोभाका सम्मेलन होगा? ऐसे दिवसका लाना वर्तमानके धर्मप्राण युवकोंपर और भविष्यकी प्रजाके हाथमें है।

पर्वतके नीचे भी मन्दिरोंकी कमी नहीं है। लगभग १६ मन्दिर हैं और कई धर्मशालाएँ है।

वहांके मन्दिरोंमें जो चढ़ावा चढ़ता है, उसको पंडे लोग लेते है। जैनियोंके मन्दिर जहां कहीं भी है उनकी चढ़ी हुई सामग्री

माली या व्यास लेते हैं और कोई नहीं ले सकता है परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि, उन व्यासों या मालियोंका उनपर अधिकार है—उन्हें कोई कानूनी स्वत्व प्राप्त है। यदि मन्दिरवाले चाहें तो उन्हें निकाल कर उनके स्थानमें दूसरोंको रख सकते हैं। पर सोनागिरके पडे जैनियोंकी दुर्बलता और संघशक्तिकी कमीसे ऐसे नहीं रहे है, वे वहाके अधिकारी बन बैठे हैं और भिक्षुकसे स्वामी बनकर जैनियोंके साथ मन माना व्यवहार करते हैं। चढ़ावाके मौरूसी अधिकारी तो वे वर्षोंसे बन ही रहे थे, पर अब इस वर्ष उन्होंने चन्द्रप्रभके मन्दिरमें एक भडार वही रख दी है और आश्चर्य की बात यह है कि, उन्हें भोले भाई रुपया भी देते है। पर्वतके प्राय प्रत्येक मन्दिर पर पंडोंकी औरतें बैठी रहती हैं और दर्शन करनेवालोंसे पैसा मागती हैं। इनके सिवाय पर्वतपर सैकड़ों भिखारी तथा वैष्णव साधु भी बैठे रहते है, जो 'चन्द्रप्रभ स्वामी तुम्हारा भला करेगा' कहकर पैसा अधेला मागते है। देहाती भाइयोंको ये लोग बहुत तंग करते हैं और उन्हें उनके हृदयमें 'कंजूस' आदि शब्दोंसे पीड़ा पहुंचा कर पैसा देनेके लिये लाचार करते हैं।

पूछनेसे मालूम हुआ कि, इस तीर्थपर जो भंडार एकत्र होता है, वह एक जगह नहीं होता है—कोई १४ या १५ जगह होता है, परन्तु कहा कितना होता है और उसका उपयोग क्या होता है, यह किसीको मालूम नहीं होता है। इतने बड़े तीर्थपर यदि अच्छा प्रबन्ध किया जावे और सब भंडार एकत्र जमा किया जावे तो सहज ही १५–२० हजार रुपया वार्षिक एकत्र हो सकता है। और उससे मन्दिरोंकी मरम्मत पूजाका प्रबन्धादि होकर भी एक दो धार्मिक संस्थाएँ अच्छी तरहसे चल सकती है। पर इतनी

ख्याल किसको है? जहां रुपया दे देनेमें ही पुण्य समझ लिया जाता है—उसका उपयोग क्या होता है इस ओर दृष्टि ही नहीं जाती है। वहां ऐसी बातोंको कौन सोचे? लगभग एक वर्षसे यहां तीर्थक्षेत्रकमेटीकी ओरसे एक मुनीम रक्खा गया है और सब जगह आन्दोलन किया गया है कि, इस प्रामाणिक संस्थाको सब लोग भंडार देवें। परन्तु हमारे लकीरके फकीर अज्ञानी भाई इस संस्थाके पास भी खड़े होनेको डरते हैं। इस संस्थासे जिन लोगोंके स्वार्थमें बाधा पड़नेकी संभावना है और जिन्हें अपने अधिकारोंके छिन जानेका डर है, वे लोग तो इसे न जमने देनेके लिये जी जानसे प्रयत्न करते ही है, परन्तु साथ ही दूसरे भाई भी इसके साथ सहानुभूति नहीं दिखलाते है। हमने तीर्थक्षेत्रकमेटीके इन्स्पेक्टर बाबू वंशीधरजी और मुनीम बद्रामीलालजीकी प्रेरणासे चतुर्थीको कमेटीके दफ्तरके सामने एक सभा करके सोनागिर तीर्थकमेटीके संगठन करनेका और तीर्थक्षेत्रकमेटीका परिचय करानेका विचार किया। यह सभा संध्याको की गई, और उसमें जैसे तैसे २९०—३०० भाई जमा भी हुए तथा हमने जैनजातिकी उन्नति कैसे हो। इस विषयपर एक व्याख्यान भी दिया, परन्तु बहुतसे सज्जनोंके द्वारा जिनमें इस ओरके बहुतसे अगुए भी शामिल थे। इस बातकी जी भरके कोशिश की गई कि, इस सभामें कोई भाई न जावें। इस घटनासे हमको बड़ा भारी दुःख हुआ। समाजमें जहां देखिये वहां इसी प्रकार अज्ञानता स्वार्थपरता और गतानुगतिकताका साम्राज्य हो रहा है। न जाने हमारे समाजके शिक्षित भाइयोंका ध्यान इस ओर कब जायगा। जिन तीर्थोंपर उचित साधन मिलानेसे समाजके अगणित उपकार किये जा सकते है—अनेक संस्थाओंको सहायता दी जा सकती है, उन्हींकी

ऐसी दशा देखकर न जाने उनके हृदयमें धार्मिक जोश कब आयगा। जिनके हृदयमें समाजके हित करनेकी सच्ची उत्कठा है, उन्हें चाहिये कि, और नहीं तो ऐसे स्थानोंमें कमसे कम एक २ उपदेशक रखनेका प्रबन्ध तो फिलहाल कर दें। मन्दिर बहुत बन चुके धर्मशालाएँ भी बहुत बन गईं, अब ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे इन मन्दिरों और धर्मशालाओंके बनवानेका उद्देश जो धर्मकी उन्नति करता है, वह थोडा बहुत सिद्ध होने लगे।

यहा प्रतिदिन द्वितीयासे पचमी तक एक २ जलेब निकलती है, और उसके साथ खूब गीतनृत्यादि होते है। पंचमीके दिन दो जलेबें निकलनेवाली थीं, इससे जलेब निकालने वालोंमें विवाद हो गया। सुनते है कि, उक्त विवाद यहातक बढ़ गया कि, राज्यके अधिकारियों तक पहुचा और वहासे यह फैसला हुआ कि, एक जलेब १२ बजेके पहिले २ निकल जावे और दूसरी उसके बाद, कहा है वे धर्मात्मा, जो कहते हैं कि, जैन समाजमें धार्मिक श्रद्धा बहुत है। क्या इसीको धार्मिक श्रद्धा और धार्मिक विचार कहते है ? क्या ऐसे विवादोंका यह अर्थ नहीं है कि, ये जलेबें श्रीजीकी नहीं, किन्तु हमारे श्रीमानों तथा पचायतके अगुओंकी निकलती हैं। जैनधर्मके उदार पवित्र और शान्त सिद्धान्तोंसे तो हमारी समझमें ये बातें कोसों दूर है। एक जलेबमें श्रीजीके सामने पद कहे जा रहे थे। एक नवयुवकने एक नये ढंगका पद जिसमें कि विद्याकी उन्नति करने का जोर भरा था, कहना प्रारंभ किया, बेचारेने एक दोही तुकें कही थीं कि, एक प्रबन्धक महाशयने डपट कर कहा यहा ऐसे पद मत गाओ यहा तो कोई ' हजूरी' पद गाना जाहिये। युवक अप्रतिम होकर चुप हो रहा। उसके बाद

ही आपने श्रीजीको उद्देश करते हुए अपने तानसेनी कंठसे एक पद कहना शुरू किया। उक्त पद मुझे स्मरण नहीं रहा, परन्तु उसका अभिप्राय यह था कि, प्रातकाल उठकर जिनमन्दिरको जाना चाहिये और पूजन वन्दन करना चाहिये इत्यादि, जब आप इसे गाते समय भगवानकी प्रतिमाके सामने हाथोंसे इशारा करते थे उस समय यही भास होता था कि, भक्त महाशय श्रीजीको उपदेश दे रहे हैं कि, आप यहा बैठे २ क्या कर रहे है—मन्दिरको जाया कीजिये। यह सुनकर हमने समझ लिया कि, 'हजूरी' पदोंका यह अर्थ है। जैनियोंके मेलोंमें तथा जुलूसोंमें ऐसे एक नहीं, सैकड़ों दृश्य दिखलाई देते है, कोई परीक्षक बुद्धिसे देखनेवाला होना चाहिये। इस समय जैनियोंमें जो अज्ञान अंधकार फैला हुआ है धार्मिक-तत्त्वोंकी जो अज्ञता बढ़ रही है, उसके कारण वे अपने धार्मिक-कृत्योंको जिस ढगसे करते है तथा अपने इष्ट देवोंके विषयमें उनके हृदयमें जो संस्कार बैठे हुए हैं उनको देखकर उनके विषयमें पूछताछकरके कोई भी अपरिचित विदेशी पुरुष यह नहीं जान सकता है कि, जैनी ईश्वरको सृष्टिका कर्त्ता नहीं मानते है, वे एकेश्वरवादी नहीं है और प्रतिमाओंको अपने भावोंकी शुद्धी-के लिये पूजते है। वह यही समझ सकता है कि, वैष्णव शैवादि-के समान जैनधर्म भी हिन्दूधर्मकी एक शाखा है। इन्होंने ईश्वरके नामादिमें कुछ भेद मान लिये है वास्तवमें कुछ अन्तर नहीं है। अपने पवित्र सर्वथा स्वतंत्र और अद्वितीय धर्मके विषयमें लोगोंके द्वारा ऐसे अनुमान बँधवाना, हमारे लिये बड़ी ही लज्जाका विषय है।

सोनागिरमें तीन भट्टारकोंकी गद्दी है, जिनमेंसे भट्टारक हरेन्द्र-भूषणजी वहीं रहते है। इनके एक दो शिष्य भी है इनके पास

सम्पत्ति तो बहुत सुनते है, पर विद्या भी थोड़ी बहुत है या नहीं इसमें सन्देह है। तो भी इस प्रान्तमें आपपर श्रद्धा करनेवाले भोलेभक्तोंकी कमी नहीं है। आजकल आपके वहांके पंडोंसे कई मुकद्दमे चल रहे हैं। तीर्थक्षेत्रकमेटीसे भी आप बहुत अप्रसन्न रहते हैं। हमने आपको एक सरकारी कागजपर दस्तखत करते हुए देखा तो मालूम हुआ कि आप स्वय ही अपनेको 'श्रीमत् स्वामी श्री १०८ श्रीजैनगुरु भट्टारक हरेन्द्रभूषणजी लिखते है। अच्छा है, और कोई नहीं लिखे, तो स्वयं लिखनेसे चूकनेमें कौनसी बुद्धिमानी है? हम आपके दर्शन करनेके लिये इसलिये गये थे कि, सोनागिरका शास्त्रभडार देखें। दो तीन बार जानेसे अपने ग्रन्थ तो नहीं, पर ग्रन्थोंकी सूची दिखलानेकी कृपा कर दी। उससे मालूम हुआ कि, ग्रन्थोंका सग्रह अच्छा है और बहुतसे अपूर्व २ ग्रन्थ भी हैं वैदिक धर्मियोंके भी कई सौ ग्रन्थ होंगे। इस सूचीमें एक बड़ी भारी कमी यह है कि, नम्बर नहीं है और नम्बरके विना एक ग्रन्थके ढूढनेमें दो दिन लग जाते है। महाराजको लड़ाई झगड़ोंके मारे इतना अवकाश कहा कि, ग्रन्थोंको सिलसिलेसे लगा दें और नम्बरवार सूची बना दें। यदि महाराजके कोई शिष्य ही इसका प्रयत्न करें तो अच्छा हो।

महासभाके विषयमें कुछ नोट।

चैत्रवदीके जैनमित्रसे महासभाकी अन्तर्व्यवस्था सम्बन्धी बहुतसी विलक्षण बातें मालूम हुई है। उसके दफ्तरमें ९०) मासिकका क्लार्क होनेपर भी अधिवेशन सरीखे जरूरी कामोंके पत्रोंकी तामिली डेढ़ २ महिनेमें की जाती है। और उसमें भी

जालसाजियां की जाती है। अबकी बार लखनौके पंचोंके निमंत्रणको जो कि पहिले आ चुका था, फीरोजाबादके निमंत्रणसे पीछे आया हुआ बतलाकर सभासदोंकी आखोंमें धूल डालकर उनकी सम्मतियां मांगी गई और इस तरह सभाके अधिवेशन होनेके मार्गमें एक प्रकारसे कांटे विछाये गये। महासभाका जब किसी वर्ष कहींसे निमंत्रण नहीं आता है, तब उपालम्भ दिया जाता है कि, समाजमें उत्साह नहीं है लोगोंको सभादि धर्म सम्बन्धी कार्योंसे प्रेम नहीं है। परन्तु जब कहींके भाई उत्साह करके निमंत्रण देते हैं तब महासभाका दफ्तर ऐसी मुस्तैदी और भलमंसाहत दिखलाता है। फिर लोग क्यों न सोचें कि, **वरं शून्या शाला न च खलु वरो दुष्ट वृषभः।**

जैनमित्रके लेखोंसे जो कि फीरोजाबाद और लखनौके अधिवेशनोंके सम्बन्धमें प्रकाशित हुए है, यह फलितार्थ निकलता है कि महासभाके सहायक महामंत्री श्रीमन्त सेठ मोहनलालजी लखनौकी अपेक्षा फीरोजाबादमें महासभाका होना अच्छा समझते है और इसी कारण उनके दफ्तरसे उक्त लज्जास्पद कार्यवाही हुई है। परन्तु श्रीमन्त सेठजी फीरोजाबादके अधिवेशनको क्यों पसन्द करते है, यह एक गूढ प्रश्न है। हमारी समझमें इसका सम्बन्ध दस्सों वीसोंके उस झगड़ेसे है, जो कि प्रकाश रूपसे शान्त हुआ बतलाया जाता है। इस झगड़ेसे समाजमें जो दो पक्ष पड़ गये है, एक धनिकों वा सेठोंका और दूसरा शिक्षितोंका। श्रीमन्त सेठजी भी उनमेंसे एक पक्षके पुरस्कर्ता है। फीरोजाबाद स्थान सेठ मेवारामजी तथा उनके पक्षके प्रभावसे अतिशय अभिभूत है। इस पक्षके सज्जन समझते होंगे कि, यदि फीरोजाबादमें अधिवेशन हो जा-

यगा, तो हम अपनी मनमानी कार्यवाही करके जीके फफोलोंको शान्त कर लेंगे और महासभाको एक विशिष्ट पथपर खींच लेजानेकी कोशिस करेंगे। इसलिये उन्होंने जी जानसे फीरोजाबादके अधिवेशनके लिये कोशिस की और श्रीमन्त सेठजीको इस बातके लिये लाचार किया कि, जैसे बने तैसे वे सभासदोंकी सम्मति लेकर यह कार्य सिद्ध करा देवें। इधर सेठोंकी मुख पत्रिका **रत्नमाला**ने भी एक लम्बा चौड़ा लेख लिखकर फीरोजाबादका अधिवेशन मजूर करानेकी कोशिश की। इन बड़े २ प्रयत्नोंसे इसमें सन्देह नहीं कि, फीरोजाबादका अधिवेशन निश्चित हो जाता, और वहा **मुजफ्फरनगर**के अधिवेशनसे भी बढकर आनन्द आये विना नहीं रहता, परन्तु दुर्भाग्यसे **बाबू अजितप्रसादजी वकील** इस बीचमें आ कुदे और उन्होंने रगमें भग कर दिया। लोग समझेंगे कि, उन्होंने यह कार्यवाही अपने निवासस्थान लखनौके मेलेमें महासभाका अधिवेशन करानेके लिये की होगी, परन्तु नहीं, लखनौके अधिवेशनकी अपेक्षा उन्हें महासभामें धींगाधींगी न होने देनेका अधिक ख्याल है। वे चाहते हैं कि, अब महासभा एक सुव्यवस्थित और नियमबद्ध सस्था हो जाय। उसमें नियमविरुद्ध कार्रवाइया न हों। इसीलिये उन्होंने पिछले मथुराके मेलेमें जहा कि, सेठ पक्षकी धूमधाम थी, महासभाका अधिवेशन न होने पावे इस बातका भी प्रयत्न किया था। महासभाके सभापति दानवीर **सेठ माणिकचन्दजी**ने जो फीरोजाबादवालोंके तारों और पत्रोंके जबावमें फीरोजाबादमें अधिवेशन करनेके विषयमें टालटूल बतलाई है और जैनमित्रमें प्रकाशित करवाया है कि, श्रीमन्त सेठ मेरे पत्रोंपर बिलकुल ध्यान नहीं देते हैं, इसलिये मै सभापतित्वका

स्तीफा भेज देता हूं उससे साफ जाहिर होता है कि, वे फीरोजा-बादके अधिवेशनमें महासभाका अनिष्ट देखते है। वे स्पष्ट रूपसे भले ही न कहें, पर उन्हें सेठ पक्षकी मनमानी कार्रवाईयोंका और उसका समाजके हितकी ओर जो दुर्लक्ष्य है, उसका जरूर भय है और श्रीमन्त सेठ जो सभापति महाशयकी लिखा पढ़ी पर ध्यान नहीं देते है, उसका कारण उनका प्रवल पक्ष मोह है। इससे कोई यहं न समझ ले की, दानवीर सेठजी अथवा बाबू अजितप्रसादजी दूसरे पक्षके है, इसलिये वे सेठ पक्षके अभिमत अधिवेशनके विरोधी है। वे शिक्षित पक्षके अनुयायी अवश्य है परन्तु साथ ही वे यह भी चाहते है कि, महासभामें यह दस्सों बीसोंकी चर्चा ही न उठे और कुछ उपयोगी कार्य हों। और फीरोजावादमें ऐसा होना असंभव सा प्रतीत होता है।

महासभाके विषयमें यह जो खींचातानी और धींगाधींगी हो रही है, इससे जितना खेद होता है, उतना ही वल्कि उससे भी अधिक इस वातका हर्ष होता है कि. अव उसे लोग कुछ महत्त्वकी वस्तु समझने लगे है। जवसे महासभा स्थापित हुई है, तवहींसे जैनसमाजमें एक दल ऐसा रहा है जिसने हमेशा उससे प्रतिकूलता धारेंण की है। महासभाके मेम्वर होना अथवा उसके साथ सहानुभूति रखना तो वड़ी वात है. स्वप्नमें भी इस दलके जीमें यह वात नहीं आई होगी कि, महासभासे जैनियोंका कल्याण होगा। पर आज वह दिन आ पहुंचा है—जैनसमाजमें इतनी प्रगति हो चुकी है, सभा पाठशालादि कार्योंकी ओर लोगोंकी इतनी रुचि वढ़ गई है कि, वह दल भी जो महासभाका कट्टर विरोधी था, अव इस

बातकी कोशिश करता है कि, हमारा एक अगुआ महासभाके सभापतिका आसन सुशोभित करे। हमारे मन्तव्य महासभाके द्वारा स्वीकार किये जावें और हमारे प्रतिपक्षियोंका महासभाके द्वारा शासन हो। महासभाकी क्या यह साधारण सफलता और लोकप्रियता है? महासभाका प्रवन्ध अच्छा नहीं है, अथवा उसके द्वारा प्रत्यक्षमें कोई काम नहीं होता है, यह दूसरी बात है, पर इसमें सन्देह नहीं कि, लोगोंमें उसका महत्त्व बढ़ता जाता है। उसका सभापति वा अधिकारी होना एक सौभाग्यका विषय समझा जाने लगा है।

हिन्दीमें इस समय सैकड़ों पत्र निकलते हैं, परन्तु उनमें भी ग्रेज्युएट सम्पादकों द्वारा चलनेवाले शायद ही एक दो पत्र हों। गतवर्ष जैनगजटके सम्पादनका कार्य जब श्रीयुक्त बाबू बनारसीदासजी, बी. ए , एल. एल. बी ने स्वीकार किया तब हमको बड़ी ही प्रसन्नता हुई। हमने समझा कि, अब जैनसमाजके दिन कुछ अच्छे आये है—उसका मुखपत्र जैनगजट अब खूब चमकेगा। इस बातका भी हमको अभिमान हुआ कि, जैनियोंके गजटका सम्पादन अब एक ग्रेज्युएटके द्वारा होगा। परन्तु महासभाका कुछ भाग्य ही ऐसा है कि, उसके सम्बन्धसे सोना भी लोहा हो जाता हैं। ग्रेज्युएट सम्पादकको पाकर भी वह अपने मुख्य पत्रकी अवस्था उन्नत न कर सकी—उन्नत करना तो दूर रहा, जैसी थी वैसी ही भी न रख सकी। इस समय जैनगजट कभी दो सप्ताहमें, कभी तीनमें कभी चारमें और कभी इससे भी अधिकमें निकलता है। और जबसे वकील महाशयकी छत्रछायामें गया है, तबसे समयपर निकलनेकी

तो मानो उसने कसम ले ली है। सम्पादन भी ऐसी लापरवाहीसे होता है कि, कुछ पूछिये नहीं। हम नहीं कह सकते कि, बाबू बनारसीदासजीने क्या समझ कर इस कामका भार अपने ऊपर लिया था। यदि इस ओर लक्ष्य देनेको काफी समय उनके पास नहीं था, तो क्यों यह आपत्ति मोल ली। शिक्षितोंका यह कर्तव्य होना चाहिये कि, जो काम अपने ऊपर लेवें, उसे अपनी शक्ति भर अच्छा करके दिखलावें। किसी कामको आनरेरी समझ कर उसे जैसा तैसा कर देना—शिक्षितोंका काम नहीं। बल्कि आनरेरी कामोंको तो उन्हें और अधिक मुस्तैदी और खूबीके साथ करना चाहिये। जो लोग अपने ऊपर लिये हुए कामको आनरेरी समझ कर उसपर कम ध्यान देते है, पर आनरेरी होनेके कारण उससे यशकी आशा रखते हैं, वे भूलते है। समाजसे उन्हें कभी यश नहीं मिलता है—उल्टी निन्दा होती है। हमको विश्वास है कि, वकील साहब यदि पूरा २ ध्यान देवें और स्वयं कुछ परिश्रम करें, तो जैनगजटका ऐसा अच्छा सम्पादन हो कि, जैसा होनेका उसे कभी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। पर पूरा ध्यान देवें, तब न? जैनगजटकी दुर्दशाका सबसे बड़ा कारण उसका निजका प्रेस न होना और कहीं सम्पादन हो कर कहीं छपना है। इस कमीके कारण अच्छे २ सम्पादक भी निराश हो कर थक जाते है और उसको समय पर नहीं निकाल सकते हैं। यदि वे प्रेस खोलनेका इन्तजाम करते है, तो महासभाके मंत्री महाशय उसकी आज्ञा नहीं देते हैं। उन्हें भय रहता है कि, कहीं प्रेस खोला और उसमें कोई एकाध ग्रन्थ छप गया तो? उसके पापसे तो महासभा निगोदमें चली जायगी। हमारी समझमें अब या तो महासभाको निजका प्रेस खोल देना

चाहिये, या जैनगजटको विलकुल ही वन्द कर देना चाहिये। वल्कि अव उसे खुल्लमखुल्ला छापेका पक्ष ले लेना चाहिये। क्योंकि विना छापेकी सहायतासे उसके विद्याप्रचारादिके सभी कार्य शिथिल हो रहे है। और यदि यह न करना हो, तो सेठ लोगे महासभाको चाहते ही हैं, उन्हींके नामसे इसकी रजिष्ट्री करा देना चाहिये। वे कभी छापेका नाम भी नहीं लेंगे, और छपे ग्रन्थोंके प्रचारको रोक रोक कर जैनधर्मकी उन्नति करेंगे।

छापेके प्रश्नका विचार अव कर ही डालना चाहिये। इस समय जैन समाजमें जितनी काम करनेवाली सस्थाएं है, वे सव छापेके पक्षमें हैं। क्योंकि वर्तमान युगमें छापा उन्नतिके कामोंका प्रधान साधन वन रहा है। यदि नहीं है, तो एक श्रीमती जैनमहा सभा। इस विषयमें वह आजसे १९ वर्ष पहिले जहां थी, वहीं इस समय भी है। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि, उसके कार्यकर्त्ताओं और मेम्वरोंके विचार भी जहांके तहा है। नहीं, महासभाने जिन लोगोंके द्वारा थोड़ा वहुत समाजका कल्याण किया है और कर रही है, प्राय. सव ही छापेके सम्पूर्णतया अनुयायी है। इसके सिवाय समाजके विचारोंमें भी इस विषयसम्वन्धी आश्चर्यकारक क्राति हुई है। तीन चतुर्थांशसे भी अधिक लोग छापेके अनुयायी हो गये है और शिक्षितोंमें तो प्राय सव ही इसकी आश्चर्यकारिणी शक्तिके आगे सिर झुकाते है। केवल थोड़ेसे सकीर्ण हृदयके लोग इसके विरुद्धमें है, जो हस्ताक्षर कराने वा प्रतिज्ञा कराने रूप मिट्टीके वाँधसे इसके अनिवार्य प्रवाहको रोकनेका यत्र तत्र प्रयत्न करते है। ऐसी अवस्थामें जव कि वहुसमाज इसके अनुकूल है और शिक्षाप्रचारके साथ २ शेष लोगोंमें भी इसकी अनुकु-

लता बढनेका निश्चय है, तब महासभा इस उपयोगी साधनको काममें न लानेकी दिखावटी कसमको जो कि कुछ विघ्नसंतोषी लोगोंके शान्त रखनेके लिये की गई थी, क्यों नहीं तोड़ देती है? जब तक वह ऐसा न करेगी, तब तक उसके द्वारा समाजकी और धर्मकी जितनी सेवा होनी चाहिये, उतनी कभी नहीं होगी। इस कसमके तोड़नेसे प्रारंभमें थोड़े बहुत उपद्रव होंगे, परन्तु वे बहुत ही शीघ्र शान्त हो जावेंगे। प्रान्तिक सभा बम्बईने भी पहिले इस विषयकी चर्चा न करनेकी कसम ले रक्खी थी, परन्तु अब वह खुल्लमखुला इस पक्षमें आ गई है।

दाक्षिणमहाराष्ट्र जैनसभाका चौदहवां अधिवेशन।

गत ता० १ मार्चसे ६ मार्च तक इस सभाका अधिवेशन बेलगांवमें खूब उत्साह और समारोहके साथ पूर्ण हो गया। यह सभा बहुत ही नियमबद्ध और व्यवस्थित पद्धतिसे चल रही है। यद्यपि यह एक प्रान्तीय सभा है, तो भी इसका कार्य इसके सुशिक्षित और विचारशील संचालकोंके कारण बहुत ही सुन्दरतासे सम्पादित होता है। हमारी महासभाके समान धींगाधींगी और मनमानी कार्रवाईया इसमें नहीं होती है। और यही कारण है कि, इस सभाने और सभाओंकी अपेक्षा शिक्षासम्बन्धी कार्योंमें बहुत सफलता प्राप्त की है। कोल्हापूरका जैन बोर्डिंग स्कूल, बेळगांवका सूबेदार बोर्डिंगस्कूल, हुबलीका जैन बोर्डिंग स्कूल और सागलीका विद्यालय तथा बोर्डिंग इस तरह इस सभाके द्वारा चार तो विद्या संस्थाएँ स्थापित हो चुकी है और वे अच्छी तरहसे चल रही

हैं । प्रकृति आणि जिनविजय नामका मराठी साप्ताहिक पत्र बहुत उत्तमतासे सम्पादन हो कर निरन्तर समय पर प्रकाशित होता है, और एक जिनविजय नामका कनड़ी भाषाका मासिक पत्र भी निकलता है । इसके सिवाय तीर्थकमेटी, महिला परिषद आदि और भी कई काम इस सभाके द्वारा सम्पादन होते हैं ।

वेलगांवके सुप्रसिद्ध वकील मि० चौगुले, B A. L L. B. ने चन्द्रप्रभ भगवानका एक नवीन मन्दिर बनवाया है । इसी मन्दिरके बिम्ब प्रतिष्ठाके महोत्सवके साथ २ सभाका वार्षिक अधिवेशन किया गया था । अबके अधिवेशनके सभापति स्याद्वाद वारिधि पूज्यवर पंडित गोपालदासजी चुने गये थे । सभापति महोदय ता० २९ फरवरीके प्रात काल बेलगाव पहुचे । उनके साथ पं० धन्नालालजी काशलीवाल, न्यायाचार्य पं० माणिकचन्दजी, कुँवर दिग्विजयसिंहजी, बाबू अर्जुनलालजी सेठी, बी. ए. सेठ रामचन्दनाथाजी सेठ हीराचन्द नेमिचन्दजी, आदि बहुतसे सज्जन थे। गाडीके स्टेशनपर पहुचते ही उत्साही स्वयंसेवकोंने बन्दूकोंके ११ फैर करके अभिनन्दन किया और इसके पश्चात् खूब ठाट बाटसे स्वागत किया गया। पुष्पहार वा मालाएँ पहिनाई गई। उस समय लोगोंमें विलक्षण आनन्दोत्साह था । पंडितजीके विषयमें जो लोगोंके हृदयमें भक्ति थी वह उनके चेहरोंपर झलक रही थी। बेलगावके पहिले ही मिरज, गोकाक, पाचापुर, सुलढाल, सुलेभावी आदि स्टेशनोंपर भी पंडितजीका खूब स्वागत किया गया था। इससे मालूम होता है कि इस ओरके लोगोंके चित्तोंमें सभाके कार्योंसे सहानुभूति तथा स्नेह बहुत है। स्टेशनपर स्वागत हो चुकनेके बाद पंडितजी मोटरपर विराजमान किये गये और एक बडे भारी जुलूसके साथ डेरेकी ओर प्रस्थानित

किये गये। आगे २ मनोहर बेंडबाजा बजता जाता था। शाहापुरके एक सुन्दर मकानमें पंडितजीको डेरा दिया गया। सभाके लिये मेंचफैक्टरीकी दाहिनी ओर एक सुविशाल और दर्शनीय मंडप बनाया गया था और उसमें स्त्रियोंके बैठनेके लिये भी स्वतंत्र प्रबन्ध किया गया था। ता० १ मार्चके ढाई बजेसे सभाका कार्य शुरू किया गया। लगभग दो हजार मनुष्य सभामें उपस्थित थे। मंगलाचरणादिके पश्चात् स्वागत सभाके चेअरमेन मि० चौगुले, बी. ए., एल. एल. बी. का व्याख्यान हुआ और फिर मि० अंकले लेट. डिपुटी इनस्पेक्टरने पंडितजी महोदयका परिचय देकर उनसे सभापतिका आसन स्वीकार करनेकी प्रार्थना की। इसका समर्थन सेठ हीराचन्द नेमिचन्दजीने इस तरह किया कि दक्षिण जैनियोंकी सभाके सभापतिका आसन एक उत्तर प्रान्तके विद्वानको देनेके लिये प्रार्थना की आती है, इसका कारण यह है कि, हमारे समस्त तीर्थंकर और प्रधान २ तत्त्वज्ञानी उत्तर भारतमें ही हुए हैं, इस लिये उत्तर प्रान्त हम सबके लिये अतिशय पूज्य हो गया है। ऐसे पूज्य प्रान्तके एक विद्वान और सन्मान्य गृहस्थको सभापतिके पदके लिये की हुई योजना किसे आनन्दप्रद न होगी? इसे दक्षिणवासियोंके पूर्व पूण्यका फल ही समझना चाहिये। इस विषयमें एक सज्जनने और भी समर्थन किया और पंडितजीने सभापतिका आसन सुशोभित किया। सभामंडप तालियोंके शब्दसे गूंज उठा। इसके पश्चात पंडितजीका व्याख्यान प्रारंभ हुवा। * व्याख्यान बहुत विस्तृत था, इस लिये उस दिन पूर्ण नहीं हो सका। शेषांश दूसरे दिन ता० २

---

* सभापति महोदयका व्याख्यान विस्तृत होनेके कारण पूर्ण नहीं पढा गया और इस अकके साथ बाटा गया है।

है को पूर्ण किया गया। उस दिन व्याख्यानके सिवाय सभाकी पिछली रिपोर्ट पढ़कर सुनाई गई और पास की गई। इसके सिवाय पाच प्रस्ताव और भी सर्वानुमतसे पास किये गये, जिनमें दो विशेष महत्त्वके थे—एकमें सम्राट महोदयने जो शिक्षा प्रचारके लिये ५० लाख वार्षिक द्रव्य देना स्वीकार किया है, इसके विषयमें कृतज्ञता प्रकाश की गई और आनरेबिल मि० गोखलेने जो* वलात् शिक्षा विषयक बिल पेश किया है, वह सरकारकी उदारतासे पास हो जायगा, ऐसी आशा प्रकाश की गई। और दूसरेमें बालकोंके हृदयमें धर्मतत्त्वोंका बीजारोपण करनेके लिये संस्कृत, मागधी आदि प्राचीन भाषाओंका ज्ञानकी वृद्धि करना, उच्च श्रेणीकी धार्मिक विद्याकी शिक्षा देनेवाली संस्थाओंकी और उनमें पढनेवाले विद्यार्थियोंकी सहायता करना, जैनधर्मके संस्कार रक्षित रखके व्यवहारोपयोगी शिक्षा देनेकी तजवीज करना आदि उत्तम उपायोंको कार्यमें लानेकी प्रेरणा की गई। रातको कुँवर दिग्विजयसिंहजीको 'जैनधर्मका सौन्दर्य' पर और सभापति महोदयका 'राष्ट्रधर्म' पर व्याख्यान हुआ। दोनों ही व्याख्यान श्रोताओंको विशेष रुचिकर हुए।

ता० ३ मार्चकी सभामें तीन प्रस्ताव पास हुए जिनमेंसे एक स्त्रियोंमें शिक्षाका प्रचार करनेके सम्बन्धमें था, दुसरा सभाका चन्दा वसूल करनेके विषयमें था और तीसरा 'श्रीवसवेश्वर' नामक नाटक जो कि जैनजातिका और जैनधर्मका तिरस्कार करनेवाला था, सरकारने बन्द कर दिया, इसके उपलक्षमें सरकारका आभार मानने और उसीके समान 'शकर दिग्विजय' नाटकके बन्द करनेकी प्रेरणा करनेके विषयमें था। आज एक विशेष और महत्त्वका कार्य यह हुआ कि, श्रीयुत कल्लापा सावरडेकर नामक विद्यार्थीको चित्रकला

* हम लोगोंके दुर्भाग्यसे यह बिल सरकारने पास नहीं किया। संपादक.

सीखनेको इटली भेजनेके लिये चन्दा किया गया और स्वामी जिनसेनाचार्यने विलायत गमनके लिये उसे अनुमति दे दी।

ता० ४ मार्चको चार साधारण प्रस्ताव पास हुए। आज सदर्न मराठा डिवीजनके कमिश्नर मि० शेफर्डने अपनी स्त्रीसहित सभाको सुशोभित किया। आपने कहा—जैनधर्म संसारके अतिशय पवित्र और शुद्ध धर्मोंमेंसे एक है। इसके अनुयायी शांतताप्रिय और सुधारणाशील है। इस सभाके उद्देश्य प्रशसनीय है। इत्यादि।। ता० ५ मार्चको पंडितजीका शरीर कुछ अस्वस्थ हो गया था, इसलिये सभाका कार्य न हो सका। सेठ हीराचन्द नेमिचन्दजीके सभापतित्वमें कुँवर दिग्विजयसिंहजी और अर्जुनलालजी सेठीके दो व्याख्यान हुए।

ता० ६ को यथा नियम सभाका कार्य शुरू हुआ। जैनियोंकी संख्या क्यों घट रही है, इस पर विचार करने और कार्यकारिणी समिति गठित करने आदिके सम्बन्धमें ६—७ प्रस्ताव हुए। दो प्रस्ताव विशेष महत्त्वके हुए—एकमें जैनधर्मकी छोटी २ पुस्तकें छापकर बहुत थोड़े मूल्यमें वेचनेके लिये एक कमेटी बनाई गई। और दूसरेमें भट्टारकोंको इस बातकी सूचना की गई, कि वे अपने मठकी आमदनी और खर्चका हिसाब प्रतिवर्ष छपाकर प्रकाशित करें। क्योंकि मठोंका द्रव्य सार्वजनिक द्रव्य है और उसका उपयोग ठीक होता है या नहीं। इस विषयमें लोगोंको सन्देह है। अन्तमें सभापतिका आभार मानकर सभाका कार्य आनन्द पूर्वक समाप्त किया गया।

इस सभाके जलसेके साथ महिला परिषदका भी अधिवेशन उत्साहके साथ हुआ। पंडितजीके डेरेपर सभाके अतिरिक्त दूसरे

समयोंमें निरन्तर बहुतसे सज्जनोंका जमाव रहा करता था और शास्त्रीय चर्चा तथा शंका समाधानादि होते थे।

इस तरह द० म० जैनसभाकी यह बहुत ही संक्षिप्त रिपोर्ट समाप्त की जाती है।

यूरोपका धर्मविश्वास।

इस बातको यूरोप तथा अन्यान्य समस्त सभ्यदेशोंके विचारशील विद्वान स्वीकार करते हैं कि, धर्मविश्वासकी हानि होनेसे धर्मपर श्रद्धा न रहनेसे सामाजिक बन्धन शिथिल हो जाते है और समाज-बन्धन शिथिल होनेसे धीरे २ जातिकी सघ शक्ति क्षीण हो जाती है, जिसका फल यह होता है कि, वह जाति अल्पकालमें ही अपने स्वातत्रको खो बैठती है। इस समय यूरोपके बड़े २ पादरी और समाजपति इस चिन्तामें डूब रहे है कि, यूरोपके वर्तमान सभ्यसमाजमें धर्मविश्वासकी प्रबलता कैसे हो। बहुतोंका यह विश्वास है कि, आधुनिक विज्ञानचर्चाकी अधिकतासे ही विज्ञानशास्त्रके देशव्यापी प्रचारसे ही लोगोंके मनमें अविश्वासका भाव उत्पन्न हुआ है और विज्ञानशास्त्रकी ज्यों २ उन्नति होगी, त्यों २ धर्मश्रद्धाका निस्सन्देह ह्रास होगा। परन्तु अब यह बात शक्तिसे बाहर हो गई है और योग्य भी नहीं है कि विज्ञानचर्चा उठा दी जावे। जिस विज्ञानने यूरोपको ससारका शिरोमणि बनाया है, यूरोपवासी उस विज्ञानकी उन्नति करनेका प्रयत्न चाहे जितना कर सकते है, उसका गला घोंटना उन्हें कदापि पसन्द नहीं आ सकता। अतएव वहांके धर्माचार्य अब इस बातकी चेष्टा कर रहे है कि, विज्ञानशास्त्रका पठन पाठन भी प्रचलित रहे और लोग कट्टर ईसाई भी बने रहें।

इस समय इस चेष्टासे यूरोपमें विलक्षण २ ग्रंथ प्रकाशित हो रहे है। इन ग्रन्थोंके मुख्य दो भेद किये जा सकते है। प्रथम, रोमन कैथलिक धर्ममूलक ग्रन्थ और द्वितिय प्रोटेस्टेंट धर्म मूलक ग्रन्थ। इन दोनों धर्मोंकी युक्तियां और लेखन पद्धतियां जुदी २ हैं। रोमन कैथलिक ग्रन्थोंमें भी दो श्रेणियां है, एक जर्मनपद्धति और दूसरी आक्सफोर्ड पद्धति। इसी प्रकार प्रोटेस्टेंटोंकी भी दो पद्धातिया हैं एक पोपकी पद्धति और दूसरी फरासीसी पद्धति।

सबसे पहिले हम पोप विचार पद्धतिकी बात कहेंगे। पोप कहते है- "विज्ञान दृष्ट और लौकिक व्यापारोंकी आलोचना करता है और धर्म अदृष्ट तथा अलौकिक व्यापारोंका विचारकरके विधिनिषेधकी रचना करता है। इसीलिये आप्तवाक्योंपर धर्मकी प्रतिष्ठा है। अर्थात् जो आप्तने कहा है, वही धर्म है। आप्त वाक्य प्रमाण-सापेक्ष नहीं है-उनके सत्यसिद्ध करनेके लिये प्रमाण ढूंढ़नेकी आवश्यकता नहीं है। वे स्वयंसिद्ध और अज्ञेयके ज्ञाता है। इससे लौकिकी विज्ञान विद्याके द्वारा अलौकिक व्यापारोंका पता लगाना ठीक नहीं-साइन्सकी लकडीसे धर्मका माप करना उचित नहीं। साइन्सका जो प्रयोजन है वह साइन्सके द्वारा ही सिद्ध होगा और इसीमें उसकी सार्थकता है। इसी प्रकारसे धर्मका जो प्रयोजन है, वह धर्मपंथका अवलम्बन करनेसे ही सिद्ध होगा और अवश्य होगा। इसीमें उसकी सार्थकता है। जो साइन्सकी सहायता से धर्मको जानना चाहता है-धार्मिक तत्त्वोंकी खोज करना चाहता है वह नास्तिक है। ऐसे नास्तिकोंको समाजमें नहीं रखना चाहिये।" पोपके इस उपदेशका प्रचार होनेसे फ्रान्समें एक विषम समाज विक्षोभ और धर्म विप्लव उपस्थित

हुआ है और इसका फल यह हुआ है कि, वहाकी गवर्नमेंट अब फ्रान्समें रोमन कैथलिक धर्म प्रतिष्ठित रखनेके लिये राजकोपसे धन व्यय नहीं करती है। परन्तु पोपकी उक्त पद्धतिका अनुसरण करके एक श्रेणीके लेखक कुछ अपूर्व ही प्रकारके धर्मग्रन्थोंकी रचना करनेमें दत्तचित्त हो गये है। और ऊक्त ग्रन्थ ऐसे प्रभावशाली हुए हैं कि, उनके आलोचन तथा मननके प्रभावसे जर्मनीके शिक्षितोंकी विचार तरंगें एक नवीन ही पथपर अग्रसर हुई है।

आक्सफोर्डके पण्डितोंने इससे एक विपरीत ही पथका अवलम्बन किया है। वे कहते हैं कि,—"साइन्सने जिन २ बातोंका आविष्कार किया है, वे सर्वथा सत्य है—उनमें सन्देहके लिये स्थान नहीं है। इसलिये यदि धर्म सत्य और अभ्रान्त होगा, तो वह साइन्स प्रतिपादित सत्य बातोंकी सीमासे बाहिर नहीं जा सकेगा।" इतना तो सबको ही मान्य है। जो कुछ झगडा और वितण्डा है वह इससे आगे है। मेरी (ईसाकी माता) की चिरकाल तक कुमारी रहने और इसको जन्म देनेकी कथा, ईसाके मर जाने और फिर जी उठनेकी कथा, अनादिकाल व्यापी दडकी और स्वर्गके भोगोंकी कथा, इसी प्रकार और भी बाइबिलमें लिखी हुई अप्राकृत अस्वभाविक घटनाओंकी कथाएँ आधुनिक साइन्सकी सहायतासे सत्य प्रतीत नहीं होती हैं। बल्कि पुरातत्त्वकी आलोचनासे यह एक प्रकारसे स्थिर ही हो गया है कि, Old testament (पुराना क़रार) नामक पुस्तक नहीं है—एक समय लिखी हुई नहीं है, और उसमें ऐतिहासिक सत्य भी नहीं है। इन सब विपमताओंको—गडबड़ोंको दूर करनेके उद्देशसे जर्मनीके ईसाइयोंने बाइबिलकी आध्यात्मिक व्याख्या करनेका आरम किया है। वे बाइबिलकी आदि पुस्तक

परसे जो कि हिब्रू भाषामें है, नूतन अनुवाद करते है—अर्थात् एक अभिनव बाइबिलकी रचना करनेके लिये उद्यत हुए है। गरज यह कि, वे जो बाइबिल प्रकाशित करते है, वह पुरातन बाइबिलके अनुरूप नहीं है। इस उद्योगसे एक नई बातका पता लगा है। वह यह कि ईसाई धर्म जूम धर्मके साथ बौद्ध धर्मके समिश्रणका परिणाम है। जर्मनीकी पंडित मण्डलीमें यह बात अब ऐतिहासिक सत्यरूपसे मानी जाने लगी है। इसमें किसीको कुछ भी सन्देह नहीं रहा है। इसीसे जर्मनीके बहुतसे विद्वान बौद्धधर्म ग्रहण करने लगे है। वे कहते है कि, बौद्धधर्म आधुनिक विज्ञानके सिद्धान्तोंसे अविरुद्ध है। यदि हम यह कहें कि, उसमें अलौकिक बातोंका अति प्राकृत घटनाओंका समावेश ही नहीं है, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

इंग्लेंडका आक्सफोर्ड सम्प्रदाय कुछ बातें जर्मन पद्धतिकी और कुछ पोपके आदेशोंकी ग्रहण करके उनमें सामञ्जस्य (औचित्य) घटित करनेकी चेष्टा कर रहा है। वह कहता है—" बाइबिलमें जो सब उपदेश लिखे है, वे सर्वकालीन सर्व जातियोंके लिये उपयोगी है। वही बाइबिलका धर्म है। इस धर्ममतको ईसा और उसके अनुयायी जो आकार दे गये है—जिस रूपमें सगठित-कर गये है, वहीं ईसाई धर्म है। देश काल और पात्रके अनुसार धर्मका जो आकार जो स्वरूप इंग्लेंडमें जितना परिवर्तित हुआ है, वह इग्लेंडके लिये उपयोगी है। वही हमारे लिये प्रतिपाद्य और अनुसरणयोग्य है।" इसके साथ २ उसने (आक्सफोर्ड सम्प्रदायने) जर्मनीकी आध्यात्मिक व्याख्याका भी कुछ अंश ग्रहण किया है। इस आक्सफोर्ड पद्धतिका कुछेक अनुसरण करके 'मारी कोरेली'

ने The Christian नामक ग्रन्थकी रचना की है और आध्यात्मिक व्याख्याश ग्रहण करके उन्होंने Soul of Libith और Barabbas नामक दो उपन्यासोंकी भी रचना की है। ईसाई धर्म विज्ञानविदग्ध यूरोपमें किस प्रकारसे फिर प्रतिष्ठित करना होगा, इसीका मार्ग इन उपन्यासोंमें दिखलाया गया है।

इंग्लैंड और यूरोपके समस्त स्वाधीन देशोंमें विद्यार्थियोंको बालकपनसे ही धर्मकी शिक्षा दी जाती है। उन्हें प्रतिदिन उपासना भी सिखलाई जाती है। तो भी नास्तिकताका प्रसार खूब जोर शोरके साथ होता जाता है। यह नहीं कि, केवल नास्तिकता की ही वृद्धि होती हो। नहीं, साथ ही साथ बहुत लोग अन्धविश्वासी भी होते जाते हैं। जो लोग आस्तिक हैं, वे जिन सब बातोंमें अटल विश्वास रखते हैं, उन्हें सुनकर हँसी आती है। कोई कुछ निश्चय नहीं कर सकता है, तो रोमनकेथिलिक हो जाता है। कोई थियोसोफिष्ट स्पिरिचुआलिष्ट आदि नाना प्रकारके उपधर्मोंको स्वीकार करता है। और तो क्या भारतवर्षके तांत्रिक धर्मकी चर्चा भी यूरोप और मार्किनमें खूब जोरसे चल रही है। ऐसा मालूम होता है कि समाज धर्म किसको कहते हैं? धर्मकी आवश्यकता क्या है, धर्मका विनियोग कहा और कैसे होता है, इन सब बातोंको यूरोप भूल गया है। इस धर्मविप्लवके विषयमें इस समय केंटरबरीके आर्च बिपपसे लेकर सामान्य पादरीतक चिन्तित हैं। प्राय: सबहीका यह विश्वास होता जाता है कि, यूरोपमें एक विराट धर्मविप्लव होगा। यह विप्लव जिससे विषम आकार धारण न करने पावे और समाज शरीर को विध्वस्त न कर सके, इसके लिये प्राय: सब ही विचारशील पुरुष जी जानसे प्रयत्न कर रहे हैं। ईसाई पादरी यहा विदेशोंमें

तो ईसाई धर्मका प्रचार कर रहे है, परन्तु उनके स्वदेशमें तो ईसामशीहको ही देशनिकाला दिया जा रहा है, यह बात जानकरके भी बेचारे कुछ प्रतीकार नहीं कर सकते हैं।

वर्तमानमें विलायतके एक उच्च पदाधिकारी पादरीने इन सब बातोंको लेकर एक बड़े भारी ग्रन्थकी रचना की है। यह ग्रन्थ इतने महत्त्वका है कि, उसका थोड़े ही दिनोंमें जर्मन भाषामें अनुवाद हो गया है और उसके आधारसे इंग्लेंड और जर्मनीके धार्मिक पत्रोंमें बीसों लेख प्रकाशित हो चुके है। इस ग्रन्थके जोड़का एक और स्वतंत्र ग्रन्थ डाक्टर रेंचने लिखा है। आप कहते है कि—यूरोप चाहे जितनी चेष्टा क्यों न करे, जातिके हिसाबसे उसका अध पतन अवश्यंभावी है—वह नीचे गिरे विना नहीं रहेगा। इस पुस्तकका नाम है The Mistery of Life इसमें आपने अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि, चीन, प्राचीन मिसर, और हिन्दू आदि जातिया स्थितिके जिस मूलमंत्रसे चिरजीवी हुई हैं, वह यूरोपमें नहीं है। विलास और व्यक्तिगत स्वातंत्र्यके कारण यूरोप नष्ट होगा। केवल ईसाई धर्मका दृढ श्रद्धानी बना देनेसे यूरोप नहीं टिकेगा; टिकेगा तो प्राचीन कालके अनुसार एक स्वामीके शासनाधीन समाज पद्धति चलानेसे टिकेगा। इस सिद्धान्तका प्रतिवाद करनेके लिये अनेक विद्वान कटिबद्ध हुए है। शीघ्र ही कोई नया ग्रन्थ इसके प्रतिवाद स्वरूप प्रकाशित होगा। *

नोट—यूरोपका धार्मिक विश्वास विज्ञान वा साइन्सके सिंहनादसे किस प्रकार पलायोन्मुख हो रहा है और वह जहाका तहां स्थिर बना रहे—पलायन नहीं करे, इसके लिये वहाके पादरी कैसे २

* बंगला साहित्यकी फाल्गुणकी संख्यामें प्रकाशित हुए एक लेखका अनुवाद।

आयोजन कर रहे हैं, पाठकोंको इस बातका थोड़ा बहुत परिचय लेखसे हो जायगा। और यदि अच्छी तरहसे विचार किया जाय, तो इस बातका भी ज्ञान हो जायगा कि, इस समय जैनियोंका कर्त्तव्य क्या है। हमारी समझमें जिन लोगोंको इस बातका अभिमान है और पक्का विश्वास है कि, जैनधर्म और साइन्स परस्पर अनुयायी हैं—साइन्सके सिद्ध किये हुए पदार्थ जैनधर्मसे विरुद्ध नहीं जाते हैं और जैनधर्मके पदार्थ साइन्सके अनुकूल हैं, उन्हें इस समय चुप नहीं रहना चाहिये—कुछ पुरुषार्थ करके दिखलाना चाहिये। जिन लोगोंकी श्रद्धा ईसाई धर्मसे उठकर बौद्ध थियोसोफिष्ट आदि मतोंपर जा रही है—उन्हें जैनधर्मकी उदार और शीतल छायामें विश्राम करनेके लिये आह्वान करनेका प्रयत्न करना चाहिये। जैनधर्मकी पताका दूसरे देशोंमें उड़ानेके लिये इससे अच्छा अवसर और कब आवेगा? इसके लिये दश बीस ग्रेज्युएटोंको जो कि साइन्सकी उच्च श्रेणीकी शिक्षा पाये हों, जैनधर्मके विद्वान् बनाना चाहिये और दश बीस जैनधर्मके पंडितोंको अंग्रेजीकी और साइन्सकी उच्च शिक्षा देना चाहिये; फिर इस तरह जो विद्वान् हो जावें, उन्हें युरोपमें उपदेश देने और जैनधर्मके प्रचारका उद्योग करनेको भेजना चाहिये।

समाजके शिक्षितोंको विशेष करके भारतजैनमहामंडलको इस ओर ध्यान देना चाहिये और फिलहाल कमसेकम अंग्रेजीमें कुछ जैनग्रन्थोंके अनुवाद करनेका और अंग्रेजीके प्रतिष्ठित पत्रोंमें जैन फिलोसोफीके लेख प्रकाशित करानेका प्रयत्न करना चाहिये।

शान्तिके विज्ञापनमें अशान्ति ।

पाठकोंने रानीवालोंकी ओरसे प्रकाशित हुए 'सत्यकी जय' शीर्षक विज्ञापन पढ़ा होगा । यह विज्ञापन निकाला तो गया है शान्तिके लिये, परन्तु बहुत कम आशा है कि, इससे शान्ति फैले । क्योंकि इसमें अपने पक्षकी जीत सिद्ध करनेकी कोशिश की गई है और साथ ही दूसरे पक्षवालोंको दो चार उलटी सीधी सुना दी गई है । सुलह करनेकी पद्धति यह नहीं है । यह एक अन्याय है । यदि दूसरे पक्षवाले इस विज्ञापनके विषयमें कुछ कहेंगे तो रानीवाले कह देंगे कि, हम क्या करें, वे शान्ति नहीं चाहते और फिर उपद्रव मचाना शुरू कर देंगे । परन्तु अपनी करतूत नहीं देखते कि, हम क्या कर रहे है ।

उक्त विज्ञापनमें लिखा है कि, 'पंडितजी अपनी भूल इन लफ्ज़ोंमें स्वीकार करते है, इस प्रकार बाबू सूरजभानजीने हस्तिनापुरमें कहा था । परन्तु यह बात बिलकुल झूठ है । पडितजीसे न कोई भूल हुई है और न उन्होंने स्वीकार की है । वे तो लोगोंकी भूल बतलाते है, जिन्होंने उनके इजहारोंका कुछका कुछ अर्थ समझ लिया और इसका वे खेद प्रगट करते है । देहलीमें जो पडितजीकी ओरसे सूचना प्रकाशित हुई थीं, उसमें उन्होंने स्पष्ट लिखा है—कि मैने तीर्थंकरोंकी शानमें कोई अनुचित शब्द नहीं कहे, मै तीर्थंकरोंको विशुद्ध कुलोत्पन्न और परमपूज्य मानता हूं । जो शब्द तीर्थंकरोंको दूषित करनेवाले हों, उनका कहना मै अनुचित समझता हूं । मेरे इजहारका साराश वाक्य तीर्थंकरोंपर दूषण लगानेवाला नहीं है । कुछ महाशयोंने उसको तीर्थंकरोंपर दूषण लगानेवाला समझ लिया है, इसका मुझे हार्दिक दु ख है । पाठक सोचें कि, इसमें पडितजीने क्या भूल स्वीकार की है?

हस्तिनापुरमें झगड़ा तय हो जानेकेबाद उसे फिर उकसानेका दोष गोपालदासजीकी पार्टीके लेखोंपर मढा गया है। परन्तु यह विज्ञापनदाता महाशयकी सफेद झूठ है। हस्तिनापुरके बाद यह मामला फिर कभी नहीं उठता। यदि आगरेके मेलेमें रानीवालोंकी ओरसे फिरसे उकसानेका प्रयत्न न किया जाता। इस ओरका लेख उस समय आगरेमें बाटा गया है, जब पंडितजीको बहिष्कार करनेके लिये लोगोंसे हस्ताक्षर कराये जाने लगे थे।

अन्तमें 'अशान्तिकी जड किस ओर है' इस लेखको जैनगजटमें लिखनेके अपराधमें विश्वभरदासजी गार्गीयको उलटी सीधी सुनाई है और पंडित गोपालदासजीको उपदेश दिया है कि, वे ऐसे पुरुषोंसे बचें। जैनगजटके उक्त लेखको जाति मात्रको गालिया देनेवाला और सत्यका खून करनेवाला कहा है, पर हमने तो उसमें कोई वाक्य ऐसा नहीं देखा जिससे यह बात मालूम हो सके और इसका सुबूत यही है कि, यदि वह वास्तवमें ऐसा होता जैसा कि, आप कहते है, तो जैनगजटके सम्पादक महाशय जो कि आपके अनुयायी हैं, उसे कभी प्रकाशित नहीं करते। और जब आप इस झगडेको शान्त ही करना चाहते हैं, तब एक सज्जनके जीको इस प्रकारके अपमान जनक शब्द लिखकर दुखानेकी आपने क्या आवश्यकता समझी ?

उक्त विज्ञापनका शीर्षक जो 'सत्यकी जय' है, वही कह रहा है कि, मैं रानीवालोंकी जय प्रगट करनेके लिये निकला हूं, कोई झगड़ा शान्त करनेके लिये नहीं निकला। मालूम होता है—सत्य शब्दका अर्थ रानीवालोंका पक्ष है। उनके पक्षसे पृथक कोई सत्य नहीं है।

अन्तमें मै स्पष्ट शब्दोंमें प्रगट कर देना चाहता हू कि, मेरी इच्छा यह कदापि नहीं है कि, यह झगड़ा फिरसे उकसाया जाय। मैं हृदयसे चाहता हू कि, इसकी यहीं शान्ति हो जाय और लोग इस व्यर्थके प्रपचमें उलझे न रहकर अपनी शक्तियोंको अच्छे कामोंमें लगावें। परन्तु मुझे विश्वास नहीं होता है कि, ऐसे विज्ञापनोंसे यह उपद्रव शान्त हो जायगा। अभीतक इन सत्य पक्षवालोंके हृदय साफ़ नहीं हुए है। इसलिये मैं ने यह सूचना करना उचित समझा शान्ति संस्थापकोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये।

उचित वक्ता।

विविध विषय।

१ दैनिक भारतमित्र—जिस हिन्दीके बोलनेवाले आठ करोड़से ऊपर हैं और जो भारतकी राष्ट्रभाषा बननेका दावा करती हैं, उसमें दैनिक समाचारपत्रका अभाव बहुत ही खटकता था। हर्षका विषय है कि, कलकत्तेका 'भारतमित्र' अब इस अभावकी पूर्ति कर देनेके लिये कटिबद्ध हुआ है। अभी दरबारके समय डेढ़ महीनेके लिये जो उसने दैनिक रूप धारण किया था, उसकी प्राय: सभी पढे लिखोंने प्रशंसा की है। दैनिकके लिये कलकत्ता स्थान भी बहुत उपयुक्त है। चैत्र शुक्लासे उसका दैनिक संस्करण प्रकाशित होने लगा। दैनिकका वार्षिक मूल्य कलकत्तेमें छह रुपया और, बाहिर दश रुपया है। हिन्दी प्रेमियोंको चाहिये कि, अपनी भाषाके इस एक मात्र दैनिकके ग्राहक बनकर हिन्दीका गौरव बढ़ावें।

जैनियोंकी संख्यामें कमी—गतवर्षकी मनुष्यगणनाका जो संक्षिप्त विवरण हाल ही प्रकाशित हुआ है, उससे मालूम होता है कि, जैनियोंकी संख्या जो १९०१ की गणनाके अनुसार, १३,३४,१४८ थी, वह घटकर १२,४८,१८२ रह गई है। अर्थात् दश वर्षमें ८५,९६६ की घटी हुई है। जैनियोंके लिये यह वडी भारी चिन्ताका विषय है। जब सनातनधर्मियोंकी हजार पीछे ४९, आर्यसमाजियोंकी ९,६४४, ब्रह्मसमाजियोंकी ३५९, और सिक्खों-की ३७३ वृद्धि हुई है, तव जैनियोंकी ६४ हानि हुई है। पाठकोंको मालूम होगा कि, जैनियोंकी संख्या १९०१ की गणनामें भी पिछली १८९१ की गणनासे इसी प्रकार कम हुई थी। जब प्रति दश वर्षमें प्रति सहस्र ६४ की कमी हो जाती है, तव प्रत्येक बुद्धिमान समझ सकता है कि, जैनजातिका अस्तित्व कितनी जल्दी लुप्त हो जायगा। प्रत्येक जातिहितैषीको इस विषयपर विचार करना चाहिये। यह जीवन मरणका प्रश्न है। क्या कारण है जो अन्य सब जातियोंकी वृद्धि हो रही है, और जैनियोंकी हानि हो रही है? और हानि भी कितनी सौमें ६॥ मनुष्य! यदि इसी तरह वरावर कमी होती रही, तो, केवल डेढसौ वर्षमें जैनजातिका ससारमें नाम ही नहीं रहेगा। वहुतसे भाई इस कमीका कारण यह वतलाते है कि, मनुष्यगणनाके समय जैनी अपनेको हिन्दुओंमें लिखा देते हैं। परन्तु हमारी समझमें यह कारण ठीक नहीं है। क्योंकि यह भूल १९०१ की मनुष्य गणनामें भी तो हुई होगी। वल्कि इन दश वर्षोंमें जैनि-योंमें धार्मिक आन्दोलन वहुत अधिक हुआ है। जिससे पिछली मनुष्यगणनाकी अपेक्षा इस मनुष्यगणनामें जैनियोंने अपनेको जैनी विशेषताके साथ लिखवाया होगा। इसी प्रकारसे प्लेगादि

कारण भी इस घटीके नहीं हो सकते है। क्योंकि ऐसा कोई नियम नहीं है कि, प्लेग जैनीयोंको ही विशेषरूपसे आक्रमण करता हो। तब इसके कारण बहुत ही गूढ़ और विचारणीय होंगे। हम आशा करते हैं कि महासभा और जैनमहामडल अपने अधिवेशनोंमें इस विषयमें खास तौरपर विचार करेंगे। समाचारपत्रोंमें भी इसकी चर्चा होनी चाहिये। हर्षका विषय है कि, दक्षिण महाराष्ट्र जैन-सभाने अपने इस अधिवेशनमें इस विषयपर बहुत चर्चा की है।

रत्नमालाका दर्शन—दृष्टिदोषके भयसे स्याद्वादीके सरक्षक तो स्याद्वादीको घरमें ही छुपाये रहे—अभीतक उसे बाहिर नहीं निकलने दिया,पर इधर उसके पीछे जन्म लेनेवाली सहयोगिनीके तीन चार बार दर्शन हो गये। सहयोगिनीके जन्मदाताओंको बधाई है। जैनपताकाके बाद इधर कुछ समयसे सहयोगिनीका स्थान खाली था और अनेक सहयोगियोंके बीचमें यह कभी बहुत खटकती थी। अच्छा हुआ कि इसकी पूर्ति हो गई। सहयोगि-नीका जन्म बड़े घरोंमें हुआ है, बड़े २ धनिकोंकी उसपर सुदृष्टि है। आर्थिक चिन्ता उससे कोसों दूर है। इससे आशा है कि, वह समाजको अपने पुनीत दर्शनोंसे निरन्तर ही प्रसन्न किया करेगी।

दो हजार वर्षकी पुरानी मूर्तियां—सहयोगी जैनमित्रमें जो कटकके पासके उदयगिरि खडगिरि तीर्थोंका वृत्तान्त प्रकाशित हुआ है। इससे मालूम होता है कि, वहाकी हाथीगुफामें जो दिगम्बर जैनप्रतिमाएं हैं। वे मौर्यसवत् १६५ की अर्थात् इस्वी सन्से १९९ वर्ष पहिलेकी प्रतिष्ठित की हुई है। कलिंगदेशके **खारावेल** नामक जैनराजाके समयमें उक्त प्रतिमाए स्थापित हुई थीं। ऐसा वहाके एक शिलालेखसे मालूम होता है। वहाके अन्यान्य लेखोंसे यह भी

पता लगा है कि, जिस उडीसा और बंगाल प्रान्तमें इस समय जैन-धर्मका लोप हो गया है, वहा पहिले जैनधर्मका खूब जोर शोर था। वहा बहुतसे राजा भी जैनी हुए हैं। जैनधर्मके प्राचीन वैभवका इतिहास ऐसे न जाने कितने पर्वतों और गुफाओंमें छुपा हुआ पड़ा है। न जाने जैनी उसे कब प्रकाशमें लानेका प्रयत्न करेंगे।

वंगालमें जैनधर्म—का परिचय और प्रचार करनेके लिये जो बंगीय सार्व धर्मपरिषद स्थापित हुआ है, हर्षका विषय है कि, उस की ओर जैनसमाजका चित्त आकर्षित हुआ है। थोड़े ही दिनोंके प्रयत्नसे उसको जो सफलता प्राप्त हुई है, उससे इस बातका अच्छी तरहसे अनुमान होता है कि, समाजमें नई जागृती उत्पन्न हो गई है और लोग नई पद्धतिके अनुसार जैनधर्मके प्रचार करनेकी आवश्यकता समझने लगे हैं। उनके पुराने खयाल बदलते जा रहे है और एक ऐसे जनसमूहका उत्थान हो रहा है, जो थोड़े ही समयमें कुछ करके दिखलानेको समर्थ हो सकेगा। इन थोडे ही दिनोंमें बंगीय परिषदको लगभग १५००) की सहायता मिल चुकी है और बहुत लोग सहायता देनेका वचन दे रहे हैं। यहापर हम बम्बईके शेठ नाथारगजी गांधीकी प्रशंसा किये विना नहीं रह सकते जिन्होंने परिषदको लगभग ९००) की सहायता देकर उपकृत किया है। नाथारगजीके परिवारसे इस समय विद्योन्नतिके कार्योंमें जैसी सहायता मिलती है, वैसी शायद ही किसी जैनपरिवारसे मिलती हो। समाजके कोट्याधिशोंको आपका अनुकरण करना चाहिये। यदि आपके समान अन्य धनिक गण अपने द्रव्यदानका प्रवाह विद्याकी ओर बदल दें, तो थोड़े ही दिनोंमें जैनधर्मकी विजयपताका फहराने लगे। परिषदको दो अच्छी सहायताएँ और मिली हैं, एक कलक-

त्तेके बाबू धन्नूलालजी अटर्नीसे—आपने एक बंगला ट्रेक्ट छपाना स्वीकार किया है, जिसमें सौ या डेढ़सौ रुपया लगेंगे और दूसरी शोलापुरके शेठ बालचन्द रामचन्दजीसे—आप परिषदको प्रतिवर्ष १०१) की सहायता दिया करेंगे। इनके सिवाय लगभग ४९०) के और फुटकर सहायताएँ मिली हैं। परिषदके मन्त्री महाशय काशीमें एक पुस्तकालय खोलनेकी बड़ी भारी आवश्यकता बतला रहे हैं और उसके लिये किसी एक दानीसे सिर्फ ९००) चाहते हैं। इस पुस्तकालयमें बंगला तथा हिन्दीके अखबार मंगाये जावेंगे और उत्तमोत्तम पुस्तकें रक्खी जावेंगी। जिनके पढ़नेके लिये बंगाली सज्जन आवेंगे और उस समय उन्हें जैनधर्मका परिचय कराया जावेगा।

सहायता ' पं० पन्नालालजी बाकलीवाल भेलूपुरा बनारस सिटीके' पतेसे भेजना चाहिये।

हर्ष समाचार।

सर्व सज्जन विद्याप्रेमी महाशयोंकी सेवामें निवेदन है कि, बुन्देलखंडके मुख्य शहर ललितपुरमें अति रमणीक व सुन्दर स्थान क्षेत्रपाल पर श्रीअभिनन्दन दिगम्बर जैन पाठशाला स्थापित हुई है, जिसमें उच्च कोटिकी धार्मिक व लौकिक शिक्षा दी जाती है। संस्कृतके साथ साथ अंग्रेजी भी पढ़ाई जाती है। बाहरसे आए हुए विद्यार्थियोंके लिए खान, पान, रहन, सहन, का भी अति उत्तम प्रबंध है। और हमको इस बातका अभिमान है कि, जैनियोंकी जितनी संस्थाए है उन सबमें स्वास्थ्य और स्थानकी अपेक्षा इस

पाठशालाका स्थान क्षेत्रपाल उत्तम है। इस स्थानपर कमसेकम २०० विद्यार्थी अति सुगमतासे विद्याध्ययन कर सकते है और ऐसी ही आशासे इस पाठशालाका मुहूर्त किया गया है। सर्व भाईयोंको और खासकर बुन्देलखण्डके भाइयोंको इस पाठशालाकी ओर ध्यान देना चाहिये, इसके कोषकी वृद्धि करना चाहिए और हिन्दीमें अच्छी योग्यता रखनेवाले तीक्ष्णबुद्धि विद्यार्थियोंको विद्वान पंडित बनानेके लिए इस पाठशालामें भेजना चाहिए।

इस पाठशाला सम्बन्धी समस्त पत्रव्यवहार श्रीयुत सेठ मथुरादासजी ललितपुरके नामसे करना चाहिये।

दयाचन्द्र जैन बी. ए.

पुस्तक-समालोचन।

पत्नीधर्म संग्रह—गिरिधरलाल शर्मा बहुगुण द्वारा संग्रहीत और अनुवादित। २०पृष्ठोंकी इस छोटीसी पुस्तकमें व्यास, दक्ष, शख, वसिष्ठ, गौतम, कात्यायन, पाराशर, अत्रि, याज्ञवल्क्य, और मनुकी स्मृतियोंसे स्त्रियोंके सदाचार सम्बन्धी श्लोक संग्रह किये गये हैं और नीचे उनका हिन्दी अनुवाद दिया हुआ है। यदि इसमें पतिके मरनेपर स्त्रीको अग्निमें भस्म हो जाना चाहिये, जो ऋतुस्नात स्त्री पतिसे संभोग नहीं करती है, वह नरकको जाती है और बार २ विधवा होती है। ब्रह्माने अपनी देहके दो खंड करके एकसे पुरुष और एकसे स्त्री बनाई, इत्यादि पुराने मिथ्याविश्वासके श्लोक न संग्रह किये जाते, तो अच्छा होता। ऐसी शिक्षाओंसे अब स्त्रियोंका कल्याण नहीं हो सकता है। पुस्तक भरमें यह कहीं भी नहीं लिखा कि, पढना लिखना भी स्त्रियोंका धर्म है।

कविरत्नमाला, प्रथमभाग— जोधपुर निवासी मुंशी देवीप्रसादजी मुन्सिफ द्वारा लिखित। इसमें राजपूतानेके १०८ हिन्दी कवियोंका परिचय और उनकी कविताका नमूना दिया गया है। परिचय बहुत ही संक्षिप्त है तो भी इसके लिये हमें मुंशीजीको धन्यवाद देना चाहिये। क्योंकि उनके परिश्रमसे हिन्दी जाननेवालोंको ऐसे २ कवियोंकी कविता पढ़नेको मिली, जिनका कभी नाम भी नहीं सुना था। कोई २ कविता बहुत ही अच्छी है। कई पद्योंसे बहुतसी ऐतिहासिक बातोंका ज्ञान होता है।

आत्मसुधार—बाबू वृन्दावनलालजी वर्मा, गुदरी, झांसी लिखित। इस छोटीसी ४१ पृष्ठकी परन्तु महत्त्वपूर्ण पुस्तकको पढ़कर हम बहुत प्रसन्न हुए। हिन्दीमें ऐसी पुस्तकोंकी बहुत बड़ी जरूरत है। एक अंग्रेज विद्वानके लिखे हुए अंग्रेजी निबन्धका आशय लेकर इसकी रचना की गई है। भाषा परिमार्जित और सरल है। ऐसा नहीं मालूम होता है कि, किसी दूसरी भाषासे अनुवादित की गई है। इसमें आत्मसुधार अर्थात् अपना सुधार करनेके तत्त्व बतलाये गये है। पढ़कर वा रटकर प्राप्त की हुई विद्यासे स्वयं उपार्जित की हुई विद्याका महत्त्व बहुत अधिक है। रटन्तके द्वारा विषयको गलेके नीचे न उतारकर मस्तकमें चढ़ाना चाहिये। आत्मशिक्षा ही सच्ची शिक्षा है। जो दूसरोंके द्वारा जबर्दस्ती गलेमें ठूंसी जाती है, वह दूर भी बहुत जल्दी हो जाती है। जिस तरह अध्ययनसे मन सुधरता है, उसी तरह कामसे शरीर सुधरता है। श्रम न करना प्रकृतिके नियमके विरुद्ध है। शरीर अच्छा हो, तब मन अच्छा रह सकता है और मन अच्छा हो, तब ही सच्चा आनन्द मिलता है। शारीरिक परिश्रम नहीं

करनेवाले पुरुषोंका चरित्र कभी शुद्ध नहीं रह सकता है। असन्तुष्ट दुःखी निकम्मे निराश और उदासचित्त विद्यार्थियोंके सुधारनेकी एक मात्र औषधि शारीरिक श्रम और व्यायामकी पाबन्दी कड़ाईके साथ करना है। लगातार परिश्रम करनेसे असाध्य कार्य भी साध्य हो जाते है। मनुष्यको श्रेष्ठता श्रमके बदलेमें मिलती है—योंही पडे पड़े नहीं मिल जाती। किसी भी कामके पूरा करनेके लिये दृढ़ प्रतिज्ञा, अटल इच्छा, अचल पुरुषार्थ और असीम साहस चाहिये। जो कुछ पढ़ो, ध्यानसे पढो। धुधला ज्ञान किसी कामका नहीं। एक साथ जल्दी २ तरह २ की किताबोंके पढ़नेसे दिमाग कमजोर हो जाता है। और रोगोंके समान किताबें पढनेका भी एक रोग है। सदा काममें लगे रहनेसे बड़ा आनद आता है। धुल धुलकर मर जाना बहुत अच्छा, पर जग मोर्चा खाकर मरना बहुत ही निकृष्ट है। दिमागमें ढेरकी ढेर विद्याका रखना और सदुपयोग न करके उसका घमड करना वैसा ही है, जैसे किसी कुलीका भारी बोझ लादकर यह कहना कि, यह मेरी ही जायदाद है। विना व्यावहारिक बुद्धिके मनुष्य मनुष्यता हीन होता है। केवल विद्या बोझ मात्र है। विद्याका उद्देश बुद्धिको बलिष्ट और चरित्रको उन्नत करना है। यदि तुम्हारी विद्यासे यह न हुआ, तो तुम्हारे पढनेका समय व्यर्थ ही गया। आत्ममर्यादा मनुष्यकी सर्वश्रेष्ट पोशाक है। आमोद प्रमोद निरोगताके देनेवाले है, पर उनमें ज्यादती अच्छी नहीं। उच्च चरित्रके विना बडे २ प्रतिभाशा लियोंका भी जीवन निकम्मा और निर्बल हो जाता है। कठिनाइ- योंका पहाड मनुष्यको मनुष्य बनाता है। समझ सफलतासे नहीं विफलतासे आती है। समयकी प्रतिकूलता हमारी छुपी हुई शक्ति-

योंको हमारे सामने खोलकर रख देती है और पुरुषार्थको सम्मुख बुला देती है। आत्मसुधारके कार्यमें हद दर्जेकी निर्धनता भी आड़े नहीं आ सकती। दृढनिश्चय, कष्ट सहिष्णुता और परिश्रमशीलता भर होनी चाहिये। परिश्रमी पुरुषोंने वृद्धापनमें भी विद्याएँ प्राप्त करके संसारको चकित किया है। मन्दबुद्धि भी परिश्रम और उद्योगसे तीक्ष्णबुद्धि हो सकते है। इत्यादि बातें यूरोपादि देशोंके नामी २ विद्वानोंके उदाहरण देकर विस्तारके साथ लिखी है। आत्मसुधारकी इच्छा रखनेवाले प्रत्येक पुरुषको इस पुस्तकका स्वाध्याय करना चाहिये।

उक्त तीनों पुस्तकें भारतमित्र प्रेस, मुक्ताराम बाबू ष्ट्रीट कलकत्तासे मिल सकती हैं। गतवर्षके उपहारमें पांच पुस्तकें दी गई थीं उसमेंसे तीन ये हैं। शेष दो की समालोचना आगामी अकमें की जायगी।

चित्रमय जगत् (दिल्लीदरबारका अंक)—हिन्दीके भाग्य कुछ अच्छे जान पडते हैं। हिन्दीकी सर्व श्रेष्ठ मासिक पत्रिका सरस्वतीके प्रकाशक जिस तरह एक बंगाली सज्जन है, उसी प्रकार सुविपुल और सुन्दर चित्र प्रकाशित करनेवाले इस पत्रके स्वामी एक दक्षिणी है। इससे यह स्पष्ट होता है कि, हिन्दी भाषा-भाषियोंके सोते रहने पर भी हिन्दीकी उन्नति अवश्यभावी है। पूनेके चित्रशाला प्रेससे यह मासिकपत्र प्रकाशित होता है। इसके सम्पादक हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी है। मुल्य साधारण संस्करणका ३।) और उत्तम संस्करणका ९।।) है। इस पत्रमें यद्यपि चित्रोंकी प्रधानता है, तो भी लेख और कविताएँ भी अच्छी २ रहती है। इस अंकमें सब मिलाकर लगभग ७० चित्र है। शाही खान्दानका

रगीन चित्र तो वहुत ही मनोमोहक है। दरवारसम्बन्धी लेख वहुत महत्त्वके हैं। वाजी प्रभु देशपाडेका लेख पढ़कर स्वदेश भक्ति जागृत हो उठती है। वावू मैथिलीशरणजीकी युगद्वय नामक कविताके पाठसे हर्प और शोक दोनों एक साथ उद्भूत हो उठते हैं।

सृष्टिकर्तृत्व मीमांसा और भूगोल मीमांसा—जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा. इटावाके ये १२ और १३ नम्बरके ट्रेक्ट हैं। पहिलेका मूल्य एक आना है और दूसरेका आधा आना। ये दोनों ही लेख जैनमित्रसे उद्धृत किये गये हैं। दूसरे ट्रेक्टमें कुछ थोडासा परिवर्तन किया गया है। पहिले ट्रेक्टमें ईश्वर सृष्टि कर्ता है या नहीं, इसका विचार किया गया है। इसके पहिलेके ५-६ पृष्ठोंकी भापा जैसी सरल है। यदि वैसी आगेकी भी होती, तो सर्व साधारणको इससे वहुत लाभ होता। आगेकी भाषा वहुत ही क्लिष्ट है। पडितोंके सिवाय उसे शायद ही कोई समझ सके। दूसरे ट्रेक्टमें पृथ्वीकी गुलाई और गतिका न्यायकी पद्धतिसे खडन किया गया है। दोनों ट्रेक्ट उक्त सभाके मत्री वावू चन्द्रसेनजी वैद्यके पाससे मिलेंगे।

जैन तिथि दर्पण—यह सुन्दर क्यालेन्डर स्याद्वाद महाविद्यालय काशीके छात्रोंद्वारा स्वर्गीय वावू देवकुमारजीके स्मरणार्थ प्रकाशित किया गया है। इसमें उक्त वावू साहवका सुन्दर चित्र है। और पचमी अष्टमी तथा चतुर्दशीका तिथिपत्र है। प्रत्येक जैनीभाईको इससे अपने वैठकखानेकी शोभा वढ़ानी चाहिये और समय २ पर वावू साहवके गुणोंका स्मरण करके उनके समान धर्मसेवा करना सीखना चाहिये। मूल्य लिखा नहीं। स्याद्वाद महाविद्यालयके मैनेजरको पत्र लिखकर मगाना चाहिये।

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासन जिनशासनम्॥

आठवां भाग] वैशाख श्रीवीर नि०सं० २४३८ [सातवां अंक

तारनपन्थ।

(१)

बुन्देलखंड और मध्यप्रान्तको छोड़कर अन्य प्रान्तोंमें बहुत कम लोग ऐसे होंगे जो यह जानते हों कि, दिगम्बरियोंमें भी एक पथ ऐसा है, जो प्रतिमापूजनका निषेधक है। इस पंथका परिचय हम लोगोंके समान पिछले दो सौ तीन सौ वर्षोंमें जो हमारे ग्रन्थकार हुए है, उन्हें भी शायद नहीं था। क्योंकि उनके किसी प्रचलित ग्रन्थमें इस पंथका खडन नहीं मिलता है। जिन ग्रन्थकारोंने श्वेताम्बर, रक्ताम्बर, ढूंढिया आदि मतों वा पथोंका खडन किया है, यदि उन्हें परिचय होता, तो वे अवश्य ही इस पन्थका खंडन करते। इस लेखमें हमने अपने पाठकोंको इसी पन्थका परिचय करा देनेका विचार किया है।

इस पन्थको **तारनपन्थ** वा **समैया पन्थ** कहते है। **तारन** वा **तरन तारन** नामक एक गुरु इस पथके सचालक हुए है, इसलिये इसे तारनपंथ कहते है और इसके अनुयायी समय वा शास्त्रोंकी उपासना करते है, इसलिये इसे समैयापथ कहते हैं।

मध्यप्रदेशके सागर, जबलपुर, दमोह, हुशंगाबाद, नागपुर, छिन्दवाडा आदि कई जिलोंमें, ग्वालियर टोंक और भोपाल राज्यमें, बुन्देलखडके कुछ भागमें और खानदेशके कुछ स्थानोंमें इस पन्थके अनुयायी रहते है। **परवार, (समैया) असैटी, गोलालारे, चरनागरे, अजुध्यावासी,** और **दोसखे** परवार इन छह जातियोंमें इस पथके माननेवाले है। तारनपथी इन्हें छहसघ कहते है। असैटी और गोलालारे सुनते हैं कि, आपसमें मिल गये है अर्थात् उनमें परस्पर बेटीव्यवहार होने लगा है। शेष जातियोंमें परस्पर बेटीव्यवहार नहीं है। भोजनव्यवहार कई जातियोंमें पक्कीका है और कईमें कच्चीका है। इन छहों जातियोंमें लगभग ढाई हजार घर तारनपथी है। मनुष्यसंख्या आठ नौ हजार होगी।

तारनपथी परवारोंका पहिले दिगम्बरी परवारोंके साथ बेटीव्यवहार और भोजनव्यवहार होता था, परन्तु अब सकीर्ण विचारोंके कारण यह प्रथा प्राय बन्द हो रही है। भोजनव्यवहार तो आधे तिहाई लोग रखते भी हैं, पर बेटीव्यवहार एक प्रकारसे बन्द ही हो गया है। शायद ही किसी सालमें इस प्रकारके एक दो सम्बन्ध होते हों। तारनपथी गोलालारोंमें और दिगम्बरी गोलालारोंमें भी सुनते है कि, बेटीव्यवहार अब नहीं होता है।

इन छह सघोंमें जो चरनागरे नामकी जाती है, वह तारनपथियोंमें पूज्य समझी जाती है। पाडे वा पडित इसी जातिमें होते है। दोसखे एक प्रकारके परवार हैं, जिनमें दो साकें मिलाकर विवाहसबन्ध किया जाता है। अजुध्यावासी अपनेको पूर्वमें अयोध्याके रहनेवाले बतलाते हैं। इनके कुछ घर मैनपुरी और इटावाके जिलेमें भी पाये जाते है।

तारनपंथकी एक दो जातियोंके विषयमें लोगोंके ऐसे खयाल हैं कि, वे वास्तवमें कोई शूद्र वा नीच जातिया है। उन्हें जब तारनस्वामीने जैनधर्मका उपदेश दिया और जब वे जैनधर्मकी माननेवाली होकर शूद्रोंका कर्म छोड़कर वैश्यवृत्तिसे निर्वाह करने लगीं तब कुछ समयमें उनकी गणना वैश्योंमें होने लगी। जैनधर्मके माननेवाले प्राय. वैश्य ही है, इस कारण भी इन्हें लोग वैश्यजाति समझने लगे। हमारे दिगम्बरियोंमें (प्रतिमापूजकोंमें) भी बहुत सी जातिया ऐसी है, जो पहिले ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्रादि वर्णोंकी थी परन्तु अब वैश्य कही जाने लगी है। जातियोंमें वा वर्णोंमें इस प्रकारके परिवर्तन हजारों वर्षोंसे होते आ रहे है। उत्कर्ष और अपकर्षका नियम अन्य पदार्थोंके समान जाति वा वर्णके लिये भी लागू है।

तारनपंथकी स्थापना विक्रमकी सोलहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें हुई है। इसके स्थापक तारनस्वामी वा तारकल मार्गशीर्ष शुक्ला ७ रविवार विक्रम संवत् १५०५ में उत्पन्न हुए थे और जेठ वदी ६ शनिवार संवत् १५७२ में पंचत्वको प्राप्त हुए थे। इनके जन्मस्थानका निश्चय नहीं है—कोई २ देहलीमे बतलाते है, कोई २ सेमरखेड़ी रिसायत टोंकमें बतलाते है और समैयोंकी एक पुस्तकमें पुष्पावती नगरी लिखा है। पर बहुत करके सेमरखेड़ी ही इनका जन्मस्थान होगा। इनके पिताका नाम गुढ़ासाहु और माताका वीरसिरी वा विसासुरी था। ये जातिके चौसके परवार थे। इनका गोत्र गोहिल और मूर गाहो था। परवारोंकी वस्ती देहलीकी ओर बिलकुल नहीं है, पर टोंककी ओर है, इसी लिये इनका जन्मस्थान सेमरखेड़ीमें मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

तारनपन्थकी पुस्तकोंमें तारनस्वामीके विषयमें जो कुछ लिखा है, वह इतना अस्पष्ट, अस्तव्यस्त और कलई किया हुआ है कि उससे उनके जीवनकी वास्तविक घटनाओंका पता लगाना एक प्रकारसे असमव मालूम होता है। एक तो ऐसे लोगोंके चरित्रको जिन्हें कि जनसमूह श्रद्धाकी दृष्टिसे देखने लगता है, नाना प्रकारकी अलौकिक अमानुषिक घटनाओंसे भर देनेको इस देशकी कुछ प्रथा ही है–दूसरे तारनपंथमें मूर्खताका इतना अधिक विस्तार रहा मालूम होता है कि, उन्होंने अपने इस विचित्र गुरुका चरित्र किसी ऐसी भाषामें लिखनेका प्रयास ही नहीं किया, जिसे लोग समझ सकें। इस पथकी छद्मस्तवाणी और निर्वाणहुंडी आदि दो एक पुस्तकोंमें जो कुछ लिखा है, उससे सिर्फ इतना ही पता लग सकता है कि, तारनस्वामीने अपनी पिछली उमरमें अपने आस-पासके लोगोंको उपदेश देकर अपना अनुयायी बनाया है और ग्वालियर रियासतके मल्हारगढ नामक स्थानमें समाधिमरण किया है। छद्मस्तवाणीमें तारनस्वामीकी आयुके इस प्रकार विभाग किये हैं––मिथ्यावली वर्ष ११, समय मिथ्यावली वर्ष १०, प्रकृति मिथ्यावली वर्ष ९, मायावली वर्ष ७, निदानावली वर्ष ७, अज्ञानवर्ष ८, वेदक कषाय वर्ष २॥, क्षायक वर्ष ३॥, और परम उत्पन्न वर्ष ९= कुल वर्ष ६७। इसके मिथ्यावली आदि शब्दोंका अर्थ क्या है, सो तो तारनपथी भाई ही समझते होंगे, परन्तु इनसे इतना अनुमान हो सकता है कि, लगभग १९–२० वर्षतक उन्होंने तारनपथका उपदेश दिया होगा। उक्त पुस्तकमें यह भी लिखा है कि, तारनस्वामीने ५९,३,३१९ जीवोंको सम्बोधित किया था। तारनपथी भाई कहते है कि, तारकस्वामी ५८ वर्षकी उमर तक

तो अपने मातापिताको मूर्तिपूजाका त्याग करनेके लिये उपदेश देते रहे, पीछे जब वे शास्त्र पूजक हो गये तब उन्होंने दूसरोंको सम्बोधना प्रारम्भ किया और तब ही वे गुरु कहलाये।

तारन स्वामीके विषयमें एक किंवदन्ती उन लोगोंमें प्रसिद्ध है, जो तारनपथसे परिचित है और जिनके आसपास तारनपथी रहते है। जो लोग यह किंवदन्ती कहते है, वे तारनपंथसे द्वेष रखते है; इसलिये हो सकता है कि, इसमें बहुतसी बातें बनावटी हों, तो भी इसे सर्वथा निस्सार वा कल्पित नहीं कह सकते है और इसलिये हम उसे सक्षेप रूपमें प्रकाशित कर देना उचित समझते है —

सेमरखेड़ीमें गुढ़ासाहु नामके एक चौसके परवार रहते थे। उनके एक लड़का था, जो लिखना पढना तो साधारण जानता था पर पूजा पाठ अच्छी तरहसे जानता था। गुढासाहुके घरमें एक चैत्यालय था। जब वे घर रहते थे, तब जिनदेवकी पूजा और शास्त्रस्वाध्याय स्वय करते थे। परन्तु जब घर नहीं रहते थे—व्यापारादिके लिये किसी दूसरे गांवको चले जाते थे, तब उनका लडका यह कार्य करता था। पूजामें जो नैवेद्य और मिष्ट फलादि चढाये जाते थे, इस लड़केको उनके खानेकी आदत पड़ गई। इस तरह गुप्त रीतिसे निर्माल्य खाते हुए उसे बहुत दिन बीत गये। एक बार निर्माल्य ले जानेवाले मालीने उसे निर्माल्य खाते देख लिया। उसने गुढ़ासाहुसे यह बात कह दी। उन्हें पहिले तो विश्वास नहीं हुआ, परन्तु जब स्वयं परीक्षा कर ली, तब उन्होंने लड़केको बहुत तिरस्कृत किया और अपने घरमेंसे निकाल दिया। लडकेने कहा कि, निर्माल्य खानेमें कोई दोष नहीं है, इसलिये मै खाता हूं। इसके बाद उसने अपने एक जुदे मार्गको चलानेका विचार किया।

और वही पीछेसे तारनस्वामी हुआ। एक राजाने कुछ नटों तथा जादूगरोंको कैद कर रक्खा था। उनकी स्त्रिया चिन्तामें थीं कि किसी प्रकारसे हमारे पति छूट जावें। अपने पतियोंके सम्पर्क वे भी कुछ जादू टोना जानती थीं। उन्होंने थोडीसी इलायची मन्त्रित करके चाहा कि, राजाके पास पहुचावें। परन्तु उन्हें कोई पहुँचाने-वाला नहीं मिलता था। अचानक उनकी भेंट तारनसे हो गई। उससे उन्होंने अपना अभीष्ट कहा। उसने कहा—मैं इलायची पहुंचा दूगा, यदि तुम यह प्रतिज्ञा करो कि, इसके बदलेमें हम तुम्हें जादू-गरी सिखला देंगी। स्त्रियोंने शपथ की। इलायची राजाके पास पहुच गई। नट छूट गये और तारनने जादूगरी सीख ली। इसी जादूगरीके द्वारा उसे अपने नये मार्गकी स्थापनामें सफलता प्राप्त हुई। जितनी उसमें बुद्धि थी उसके अनुसार उसने चौदा ग्रन्थ बनाये और उन्हें आकाशसे उतरते हुए बतलाये। इसके सिवाय और भी कई प्रकारकी कलाओंसे लोगोंको आश्चर्यचकित किया और अपना अनुयायी बनाया। एक मुसलमान आवारा फिरता था। उसने इनसे पूछा, मैं क्या करू। उन्होंने कहा, इसी वक्त उत्तरकी ओर चले जाओ। तुम्हारा भाग्य चमकेगा। मह उत्तरकी ओर चला गया और भाग्यवश शाही फौजमें नौकर होकर एक बडा ओहदेदार हो गया। कुछ वर्षोंके बाद लौटकर वह तारनस्वामीके पास आया। परन्तु उस समय तारनकी मृत्यु हो गई थी। लोग अग्निसंस्कारकी तयारी करते थे। ओहदेदार साहब ने आकर कहा—ये तो हमारे उस्ताद थे, इन्हें तुम जलाते क्यों हो? हम तो इन्हें दफन करेंगे। झगडा हो पडा। आखिर यह फैसला हुआ कि, पहिले मिया साहब दफन करनेकी रश्म अदा करलें, पीछे

दूसरे लोग अग्निसंस्कार करें। तारनस्वामीका एक शिष्य नट भी था। उसने भी चाहा कि, मै अपनी पद्धतिसे इनका संस्कार करूं। निदान तीनोंने अपनी २ विधिसे संस्कार किया। सुनते है, तारन पंथियोंमें पहिले नाममात्र दफन करनेकी और नटोंके समान थाली रखनेकी पद्धति अब भी कहीं २ की जाती है।

तारनकी जन्मभूमि सेमरखेड़ी टोंक रियासतकी सिरोंज तहसीलमें है। वहापर तारनका एक चैत्यालय बना हुआ है। बहुत लोग उसके दर्शनोंको जाया करते है। मृत्यु उनकी मल्हारगढमें हुई थी। यह स्थान ग्वालियर रियासतमें मूंगावली स्टेशनसे तीन कोसपर है। इसे तारनपंथी 'नसईजी' कहते है। यही उनका प्रधान तीर्थ है। यहा तारनस्वामीका एक समाधिमन्दिर और चैत्यालय बना हुआ है और प्रतिवर्ष फागुन सुदी ८ से चैत वदी ९ तक मेला भरता है। कई हजार तारनपथी यहा दर्शनोंको आते हैं। चैत्य शब्दका प्रसिद्ध अर्थ प्रतिमा है, इसलिये पाठक चैत्यालयका अभिप्राय ऐसे मन्दिर न समझ लेवें, जिनमें प्रतिमाएँ वा मूर्तिएं होती है। नहीं, तारनपथमें चैत्यालयका अर्थ ग्रन्थालय होता है। इनके चैत्यालयोंके मध्यमें एक बेदी होती है, उसपर तारनस्वामीके चौदहों ग्रन्थ विराजमान रहते है। पद्मपुराणादि ग्रन्थ भी कहीं २ रहते है।

जिस तरह परवारोंमें सिंगई वा सेठकी पदवी मिलती है, उसी प्रकार तारनपथी भाइयोंको सेठका पद मिलता है। पर इस पदके लिये बहुत द्रव्य व्यय नहीं करना पड़ता है। मल्हारगढ़में जो चैत्यालय है, उसकी प्रतिष्ठा करा देनेसे, नया चैत्यालय बनवानेसे अथवा पुराने चैत्यालयोंमें वेदी रखवाकर विरादरीको भोजन करा-

देनेसे ही यह पदवी मिल जाती है। इस पदके लिये तारनपथी भाई मल्हारगढके चैत्यालयकी बीसों प्रतिष्ठाएँ करा चुके है।

जितने मतोंके वा पन्थोंके स्थापक हुए है, प्राय उन सबको ही उनके अनुयायियोंने ईश्वरका दूत अथवा सिद्ध पुरुष माना है साथ ही यह भी प्रतिपादन किया है कि, उनका धर्म अनादि कालसे है और उसकी परम्परा इस इस प्रकारसे है। इसी परम्पराके मिलानेके लिये बौद्धोंको २४ बुद्धोंकी और ब्राह्मणोंको २४ अवतारोंकी कल्पना करनी पडी है। प्राय प्रत्येक धर्ममें यह साधारण नियम पाया जाता है। सब ही अपने धर्मको अनादि कालका और ईश्वरप्रेरित मानते है। फिर तारनपथ इस नियमसे वाहिर क्यों रहे? उसने भी इस विषयमें प्रयत्न किया है।

दिगम्बर जैनग्रन्थोंमें लिखा है कि, राजा श्रेणिकका जीव पहिले नरक गया है। वहाकी २४००० वर्षकी आयु समाप्त करके वह आगामी कालमें पद्मनाभ तीर्थंकर होगा। इस विषयमें दिगम्बर सम्प्रदायके किसी भी ग्रन्थमें मतभेद नहीं है। परन्तु तारनपथी इसके मध्यमें अपना कल्पना—कौशल्य इस प्रकारसे दिखलाते हैं—उनके ग्रन्थोंमें लिखा है कि, पहिले नरकके पहिले बिलेकी आयु पौने दो हजार वर्षोंकी है। उसे पूरी करके श्रेणिकका जीव भद्रवाहु आचार्य हुआ। भद्रबाहुकी आयु ९९ वर्षकी हुई। फिर कुन्दकुन्दाचार्य हुआ। कुन्दकुन्दकी आयु ८४ वर्षकी हुई। फिर तारनस्वामी हुआ। तारनकी आयु ६७ वर्षकी हुई। तारनस्वामीका शरीर छोडकर श्रेणिकका जीव सर्वार्थसिद्धि स्वर्गके जयन्तनामक विमानमें ८२००० हजार वर्षकी आयुवाला देव हुआ। इस आयुको पूरी करके वह अगामी कालमें

पद्मनाभ तीर्थंकर होगा। श्रेणिकके और पद्मनाभके बचिका काल जो ८४ हजार वर्ष है, वह इस तरह पूरा हो गया। (१७५०+ ९९+८४+६७+८२०००=८४०००)। तारन स्वामीका एक रुइयारमन नामका शिष्य था, जो कि बहुतकरके मुसलमान था, उसके विषयमें निर्वाणहुंडीमें लिखा है कि, वह आगामी चौथे कालके इतने मास इतने दिन बीतनेपर कार्तिक वदी अमावसकी रातको गणधरपद प्राप्त करेगा।

तारनपन्थी यह भी मानते है कि, तारनस्वामीके समान धर्मोद्धारक पहिले अनेक हो गये है और आगे भी होवेंगे। बीच २ में धर्मकी व्युच्छित्ति हो जाती है, उसे तारन वा तारकल ही दूर करते है। १४९ चौवीसी हो जानेके बाद विरहिया काल (हुंडा काल) आता है, तब एक तारकल वा तारन होता है और भूले हुए प्राणियोंको राह लगाता है।

तारनस्वामीके बनाये हुए चौदह ग्रन्थ है। उनके नाम और उनका परिमाण नीचे लिखा जाता है—

ग्रन्थ	परिमाण	मत
१ न्यायसमुच्चयसार—	९०९ गाथा	सार मत।
२ उपदेशसुद्धसार —	५८८ गाथा	
३ त्रिभंगीसार —	६९ श्लोक	
४ चौवीसठाणा—	लगभग ३०० गाथा	मलल मत।
५ ममल पाहुड़—	५५०० गाथा	
६ सुंन सुभाव—	ल० ३० गाथा	केवलमत।
७ सुद्धसुभाव—	,, ,,	
८ खातका विशेष—	ल० ३०० गा.	
९ छद्मस्थवाणी—	ल० ३०० श्लो.	
१० नाममाला—	३२ श्लोक	

११ मालाजी (गद्य)–लगभग ६०० श्लोक } विचारमत ।
१२ पडित पूजा—— ३२ श्लोक
१३ कमलबत्तीसी ३२ श्लोक
१४ श्रावकाचार—— ४६२ गाथा } आचारमत ।

तारनपथका ग्रन्थभडार बस इतना ही है। इनके सिवाय निर्वाणहुंडी, चौदहमंगल, गुरावली तिलक आदि दो चार छोटी छोटी पुस्तकें और भी है, जो तारनपन्थके पडितोंकी बनाई हुई है।

इन सब ग्रंथोंमें क्या है, इनकी भाषा कौनसी है, इनमें महत्त्व क्या है, आदि बातोंका वर्णन तो हम आगे करेंगे——यहा यह बतला देना चाहते है कि, तारनपथी अपने चैत्यालयोंमें जाकर क्या करते है और इन ग्रन्थोंकी उपासना किस प्रकार करते है–

तारनपन्थी चैत्यालयोंमें जाकर पहिले नमोकार मन्त्रका उच्चारण करते हैं। नमोकारमन्त्रका शुद्ध उच्चारण करनेवाले हमारे यहाँ भी थोडे है, परन्तु तारनपन्थी भाइयोंमें तो इस मन्त्रकी इतनी दुर्दशा हुई है कि, सुनकर दुःख होता है। ये बहुत ही अशुद्ध पाठ बोलते है। इसके पश्चात् पंचपरमेष्ठी, रत्नत्रय, अनुयोग, और देव गुरु शास्त्रको नमस्कार करके शास्त्रकी वेदीके सम्मुख साष्टाग प्रणाम करते हैं। फिर सामायिक होती है । इसमें संस्कृत देव पूजाका कुछ थोडासा भाग पढ़ते हैं। फिर पंचपरमेष्ठी आदिके १८२ गुणोंका अपनी विलक्षण सस्कृत प्राकृत भाषामें उच्चारण करते हैं। इसके पश्चात् ग्यारह नमस्कार करते है। और उनमें अपने कई ग्रन्थोंके प्रारंभके श्लोक पढ़ते हैं। फिर सतखरी पचखरी जिसका कि कुछ अभिप्राय समझमें नहीं आता, कहकर एक सौ आठगुण, त्रेपन क्रिया, और तीनों चौवीसीके नाम पढते है । सोलहकारण, दश-

लक्षण, आठ अंग, पांच समिति, तीन गुप्ति, चार अनुयोग, आठ सिद्ध गुण, तेरह चारित्र, सात तत्त्व, छह द्रव्य, नवपदार्थ, पाच अस्तिकाय, छह सम्यक्त, और पचपरमेष्ठी आदि मिलाकर १०८ गुण कहे जाते है और जघन्यपात्रकी आठ मूलगुण, चार दान, रत्नत्रयादि १८, मध्यमपात्रकी ग्यारह प्रतिमादि १६ और उत्तमपात्रकी बारहव्रतादि १९ इस तरह त्रेपन क्रिया कहलाती हैं। यह सामान्य सामायिक है। जो लोग भक्त तथा पडित होते है, वे भाषा भक्तामर, कल्याणमन्दिर, निर्वाणकाड, बारह भावना, बाईसपरीषह आदिका भी पाठ करते है। साधारण स्त्रिया नमोकार मत्रकी और १०८ गुणोंकी जाप देती है।

शास्त्रके समय जब सब भाई जमा हो चुके, पडितजीने शास्त्रका बस्ता उठाकर चौकीपर विराजमान किया। चौकी रेशमी और जरीके कपडोंसे सुसज्जित रहती है। सबने दर्शन किये फिर बैठकर सबने ममलपाहुडके मंगलाचरणके द्वारा स्तवन किया। इसके पश्चात् जो कट्टर तारनपथी होते हैं, वे तो अपने ही पन्थके श्रावकाचार, न्यायसमुच्चयसार आदि ग्रन्थ घंटे दो घटे पढते है किन्तु जो कुछ शिथिल होते है, वा भोले होते है, वे पद्मपुराण रत्नकरंडादि ग्रन्थ पढ़ते है। इसके पीछे आटे की १० आरती बनाई जाती है। उन्हें दो रकाबियोंमें रखकर एक पुरुष जामा पगड़ी पहिनकर आरती उतारता है और सब लोग झांझ मृदगादि बजाकर भजन पढ़ते है। भजन हो चुकनेपर तत्त्व अर्थात् ममलपाहुड़का मगलाचरण, तीर्थकरोंकी नामावली, और नीतिके दोहे तथा श्लोक पढ़े जाते है।

यहा इतना विशेष होता है कि दशलक्षणके दिनोंमें ममलपाहुड़का एक गीत और पंडितपूजा पढ़ी जाती है। और रातको

मालाजी तथा कमलबत्तीसी अर्थसहित पढी जाती है। दिवालीके बाद पाच दिनतक जब चैत्यालय होता है, तब छद्मस्तवाणीका पाठ होता है और होलीके बाद पाच दिन फाग फूलना गाया जाता है।

श्लोकादि पढे जानेके बाद अवलवानी पढ़ी जाती है जिसमें कुछ तरन तारनकी प्रशसा है और कुछ बेसिर पैरके श्लोक है। यह पढी जानेपर सबने खड़े हो कर बाजे गाजेके साथ अन्तका भजन गाया और एक आदमीने आरती उतारी। फिर चन्दन घिसा गया। पहिले उसे शास्त्रोंमें लगाया और फिर सब लोगोंने लगाया। अनन्तर परसाद (मिठाई मेवा आदि) का थाल लाया गया। पण्डितजीने शास्त्रके पास थाल रखकर परसाद लानेवालेकी कई पुश्तोंका नाम लेकर कहा—अमुककी ओरसे परसाद आया है। फिर 'जय नमोस्तु' कह कर सबको बॅटवा दिया। इसके बाद फिर तत्त्व पढा गया और सब लोग अपने अपने घर गये। परसादको सब लोग प्रेमके साथ खाते है।

तारनपंथके अनुयायियोंकी विवाहविधि देखनेका हमको कभी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु सुनते हैं, उसमें कई बातोंमें अन्य परवारादि जैनियोंसे विलक्षणता है। सुनते है, उनके यहा सप्तपदी नहीं होती है। कन्यावरके गलेमें माला पहिना देती है और वर कन्याके कठमें माला डाल देता है। उस समय मालाजीका पाठ पढ़ दिया जाता है।

तारनपंथके अनुयायी जिस तरह अपने ग्रन्थोंके सिवाय पद्मपुराणादि ग्रन्थ भी पढते है, उसी प्रकारसे अपने तीर्थोंके सिवाय सम्मेदशिखर, गिरनारजी आदि तीर्थोंकी वन्दनाको भी जाते हैं। परन्तु

६ जाकर प्रतिमाओंके दर्शन नहीं करते हैं—पर्वतकी वन्दना करके

चले आते है, जो लोग कट्टर नहीं है, वे प्रतिमाओंके दर्शन भी करते है। पद्मपुराणादि ग्रन्थोंमें यदि कहीं प्रतिमापूजनादिका सम्बन्ध आता है, तो ये भाई इस प्रकार अपनी शंकाका समाधान कर लेते हैं कि प्रतिमापूजकोंने मिला दिये हैं।

अनेक स्थानोंके तारनपथी प्रतिमापूजक जैनियोंके सम्बन्धसे जिनमन्दिरोंमें भी जाते आते और दर्शन पूजनादि करते है, परन्तु इस कारण उनकी विरादरी अथवा पथके लोग उनपर कुछ शासन करनेका साहस नहीं कर सकते है। कारण यह है कि उनकी जातीय शक्ति वा समूहशक्ति बहुत ही क्षीण हो गई है।

तारनपंथके अनुयायियोंमें विद्याकी बहुत ही कमी है। न्याय व्याकरण धर्मशास्त्रादि पढा हुआ यदि आप एक भी तारनपंथी चाहें, तो नहीं मिलेगा। एक भी पडित उनमेंसे ऐसा नहीं, है जो यह बतला सके कि, हमारे मतका सार क्या है और हमारे ग्रन्थोंमें लिखा क्या है? यह तो धर्मविद्याकी दशा हुई, रही लौकिक विद्या। सो उसमें भी सफाई है। एक भी बी०ए०, एम्०ए० आपको इस पथमें नहीं मिलेगा। ऐसा मालूम होता है कि, तारनपथमेंसे विद्या निर्वासित कर दी गई है।

(अपूर्ण–)

जैनदर्शनके जीवतत्त्वका एकांश।

बौद्ध जिस तरह 'आर्य आष्टाङ्गिकमार्ग' के नामसे प्रसिद्ध सम्यग्दर्शनादिको निर्वाणका पथ मानते है, उसी प्रकारसे जैनधर्ममें भी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको मोक्षमार्ग कहा है। इस मोक्षमार्गकी साम्प्रदायिक व्याख्या न की जावे तो भी

मालाजी तथा कमलबत्तीसी अर्थसहित पढ़ी जाती है। दिवालीके बाद पाच दिनतक जब चैत्यालय होता है, तब छद्मस्तवाणीका पाठ होता है और होलीके बाद पाच दिन फाग फूलना गाया जाता है।

श्लोकादि पढे जानेके बाद अवलवानी पढ़ी जाती है जिसमें कुछ तरन तारनकी प्रशसा है और कुछ बेसिर पैरके श्लोक है। यह पढी जानेपर सबने खडे हो कर बाजे गाजेके साथ अन्तका भजन गाया और एक आदमीने आरती उतारी। फिर चन्दन घिसा गया। पहिले उसे शास्त्रोंमें लगाया और फिर सब लोगोंने लगाया। अनन्तर परसाद (मिठाई मेवा आदि) का थाल लाया गया। पडितजीने शास्त्रके पास थाल रखकर परसाद लानेवालेकी कई पुश्तोंका नाम लेकर कहा—अमुककी ओरसे परसाद आया है। फिर 'जय नमोस्तु' कह कर सबको बँटवा दिया। इसके बाद फिर तत्त्व पढा गया और सब लोग अपने अपने घर गये। परसादको सब लोग प्रेमके साथ खाते है।

तारनपंथके अनुयायियोंकी विवाहविधि देखनेका हमको कभी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु सुनते है, उसमें कई बातोंमें अन्य परवारादि जैनियोंसे विलक्षणता है। सुनते है, उनके यहा सप्तपदी नहीं होती है। कन्यावरके गलेमें माला पहिना देती है और वर कन्याके कठमें माला डाल देता है। उस समय मालाजीका पाठ पढ़ दिया जाता है।

तारनपथके अनुयायी जिस तरह अपने ग्रन्थोंके सिवाय पद्मपुराणादि ग्रन्थ भी पढ़ते है, उसी प्रकारसे अपने तीर्थोंके सिवाय सम्मेदशिखर, गिरनारजी आदि तीर्थोंकी वन्दनाको भी जाते है। परन्तु वहा जाकर प्रतिमाओंके दर्शन नहीं करते है—पर्वतकी वन्दना करके

चले आते है, जो लोग कट्टर नहीं है, वे प्रतिमाओंके दर्शन भी करते हैं। पद्मपुराणादि ग्रन्थोंमें यदि कहीं प्रतिमापूजनादिका सम्बन्ध आता है, तो ये भाई इस प्रकार अपनी शकाका समाधान कर लेते है कि प्रतिमापूजकोंने मिला दिये है।

अनेक स्थानोंके तारनपंथी प्रतिमापूजक जैनियोंके सम्बन्धसे जिनमन्दिरोंमें भी जाते आते और दर्शन पूजनादि करते है, परन्तु इस कारण उनकी विरादरी अथवा पंथके लोग उनपर कुछ शासन करनेका साहस नहीं कर सकते है। कारण यह है कि उनकी जातीय शक्ति वा समूहशक्ति बहुत ही क्षीण हो गई है।

तारनपंथके अनुयायियोंमें विद्याकी बहुत ही कमी है। न्याय व्याकरण धर्मशास्त्रादि पढ़ा हुआ यदि आप एक भी तारनपंथी चाहें, तो नहीं मिलेगा। एक भी पडित उनमेंसे ऐसा नहीं, है जो यह बतला सके कि, हमारे मतका सार क्या है और हमारे ग्रन्थोंमें लिखा क्या है? यह तो धर्मविद्याकी दशा हुई, रही लौकिक विद्या। सो उसमें भी सफाई है। एक भी बी०ए०, एम्०ए० आपको इस पंथमें नहीं मिलेगा। ऐसा मालूम होता है कि, तारनपंथमेंसे विद्या न्निर्वासित कर दी गई है।

(अपूर्ण–)

जैनदर्शनके जीवतत्त्वका एकांश।

बौद्ध जिस तरह 'आर्य आष्टाङ्गिकमार्ग' के नामसे प्रसिद्ध सम्यग्दर्शनादिको निर्वाणका पथ मानते हैं, उसी प्रकारसे जैनधर्ममें भी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको मोक्षमार्ग कहा है। इस मोक्षमार्गकी साम्प्रदायिक व्याख्या न की जावे तो भी

केवल यथाश्रुत अर्थसे जैनधर्मके मर्मस्थानका एक रमणीय आभास प्राप्त हो जाता है। जैनी इन तीनोंको रत्नके समान अतिशय उपादेय समझते है और इसीलिये जैनशास्त्रोंमें ये रत्नत्रयके नामसे प्रसिद्ध है। यहा हम इस रत्नत्रयके सम्बन्धमें विशेष आलोचना नहीं करना चाहते हैं। इसके अन्तर्गत सम्यग्ज्ञानके विषयीभूत तत्त्वसमूहमें जो एक जीव नामक तत्त्व है, उसीके सम्बन्धमें हम कुछ बातें सक्षेपसे वर्णन करना चाहते है।

तत्त्व वा प्रमेय–पदार्थोंकी सख्याके विषयमें जैनाचार्योंमें कुछ मतभेद मालूम होता है। कोई २ चित् और अचित् इन दो परमतत्त्वोंको स्वीकार करके अन्य सत्वोंको इन्हींमें गर्भित कर लेते है। कोई २ सात तत्त्व बतलाते है और कोई २ विस्तृतरूपसे नव (पदार्थ) मानते है। चित् और अचित् जिन्हें दूसरे शब्दोंमें हम जीव और अजीव कह सकते हैं, सभी मतोंमें प्रधानतत्त्वरूपसे माने गये हैं।

दूसरे दर्शनोंमें अथवा साधारण व्यवहारमें जीव शब्दसे हम जो अर्थ समझते हैं, जैनदर्शनका जीव शब्द उसकी अपेक्षा और अधिक व्यापक अर्थ प्रकाशित करता है और यह बात विशेषतासे ध्यान देने योग्य है।

जैनी जीवको प्रधानतासे दो भागोंमें विभक्त करते है—एक मुक्त और दूसरे ससारी। जिन्हें जन्मादि क्लेश नहीं है, और जो सर्वदा आनन्दमय एकरूप रहते है, वे मुक्त और उनके अतिरिक्त अन्य सब ससारी। ससारी जीव दो प्रकारके हैं—स्थावर और जङ्गम। जैनदर्शनमें जगम जीवोंका पारिभाषिक नाम त्रस है। त्रस् धातु, कम्पन अर्थमें व्यवहृत होती है, और जगमजीव स्वय कपित वा चलित होते हैं इसलिये उन्हें त्रस कहा है।

स्थावर और जंगम जीवोंको भी दो भागोंमें विभक्त किया है–पर्याप्त और अपर्याप्त। आहार, शरीर, इन्द्रिय, प्राण ([१] स्वासोच्छास), भाषा और मन ये छह पर्याप्ति हैं। जिसके ये छह पर्याप्ति हों, वह पर्याप्त और जिसके न हों वह अपर्याप्त। एकेन्द्रिय जीवोंके चार, विकलेन्द्रियोंके पांच, और पचेन्द्रिय जीवोंके छह पर्याप्ति हो सकती है।

पृथ्वी, जल, [१] तेज, वायु और वृक्ष (उद्भिज) ये स्थावर है और इनके केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय है। इसलिये इनकी गिनती एकेन्द्रिय जीवोंमें होती है। [२] द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीव जंगम है।

इस स्थानमें दो बातें ध्यान देने योग्य है–एक तो, जैन दार्शनिकोंकी जीवविद्याकी पर्यालोचना। कौन २ जीवोंके कितनी २ इन्द्रियाँ है, यह निर्णय करना सामान्य पर्यवेक्षणका फल नहीं है। इसके लिये उन्हें बहुत समय तक निःसीम परिश्रम करना पड़ा होगा, इस विषयमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इनके सिद्धान्त कहा तक सत्य है, इस विषयकी आलोचना करनेका भार आधुनिक वैज्ञानिक जीवविद्याके जानने वालोंके ऊपर है। इन सम्पूर्ण जीवोंके नाम अनेक जैन ग्रन्थोंमें प्राप्त होते है। जीवविद्याविज्ञ उनकी सूची बनाकर परीक्षा करके देख सकते है। दूसरी बात यह है कि–जैन दार्शनिकोंने पृथिवी

१–तत्त्वार्थाधिगमसूत्र (२ १३,१४) में उमास्वाति कहते हैं–तेज और वायु जंगम जीवोंमें हैं। २ कृमि, गण्डूपद (केंचुआ), शंख, सीप, जोंक, और शम्बूक आदि द्वीन्द्रिय हैं। इनके स्पर्शेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय है। चिंउटी, तिरूला आदि त्रीन्द्रिय हैं, इनके स्पर्शन रसन और घ्राण है। भ्रमर, मक्खी आदि चौइन्द्रिय हैं; इनके पिछली तीन और आखें हैं। मनुष्य और चौपाये आदि पचेन्द्रिय है, इनके समस्त इन्द्रिया हैं।

जल आदिको भी जीवोंकी श्रेणीमें आसन दिया है। वे इन सत्र पदार्थोंको सचेतन वतलाते है—कहते है, इनके भी इन्द्रिय है। यह कोई सामान्य वा उपेक्षाका विषय नहीं है। वे किस युक्तिसे इस प्रकार अग्रसर हुए है अर्थात् पृथिवी आदिमें वे जीव कैसे मानते है और उनके उस माननेका कितना मूल्य है—उसमें कितना तथ्य है, यह दर्शनरसिकों वा ऐतिहासिक विद्वानोंकी गवेषणाका विषय है। पृथिवी आदि जिन२ जीवोंको वे जीव मानते हैं, उन सबके विषयमें युक्तिया दी गई है। उनमेंसे वृक्षोंके जीवत्व सम्बन्धमें जो युक्तिया प्रदर्शित की गई है, वे वहुत ही रमणीय है। स्थानकी कमीके कारण अन्यान्य अंशोंको छोड़कर हम यहा पर केवल वृक्षके जीवत्वके विषयमें जैन दार्शनिकोंकी युक्तियोंको सक्षेपमें सकलन करनेकी चेष्टा करेंगे। पृथ्वी आदि जीवोंके विषयमें जो कुछ वे कहते है, उसका स्थूल तात्पर्य यह है कि—यद्यपि पृथिवी आदिमें स्पष्ट जीवलक्षण नहीं दिखलाई देता है, तव भी उनमें अस्पष्ट जीवलक्षण लक्षित होता है। वृक्षके जीवत्वसम्बन्धमें वे कहते हैं—

मनुष्य चेतन है, इस विषयमें तो किसीको कोई प्रकारका सन्देह नहीं है। इस चेतन मनुष्यके साथ वृक्षकी वहुत कुछ समानता है। मनुष्य शरीर जिस प्रकारसे वाल्य, कौमार, यौवन आदि अवस्थाओंसे सर्वदा वृद्धि प्राप्त करता है, उसी प्रकार वृक्षशरीर भी अङ्कुर किशलय, शाखा, प्रशाखादिसे सर्वदा वढ़ता रहता है। मनुष्य जिस प्रकार सोते जागते है, अगस्त्य, शमी (सोंठ ?) और आँवला आदि वृक्ष भी ऐसे ही देखे जाते है। लज्जावती (लजनू) आदि लताओंको स्पर्श करो, तो वे सकुचित हो जाती है और कोई कोई वृक्ष ऐसे है कि, वे स्पर्श करनेसे उल्लसित होजाते हैं। लतादि वन-

स्पतियां दूसरे वृक्षोंपर चढ़ जाती है। ये सब संकोच, उल्लास और उपसर्पण आदि विविध क्रियाएँ चेतन मनुष्यमें ही सर्वदा देखी जाती है। वृक्षका कोई अवयव काटा जाता है, तो वह म्लान हो जाता है। वृक्ष नियमित आहार ग्रहण करते है। ये सब धर्म अचेतनमें नहीं हो सकते। मनुष्यकी आयुका जिस प्रकार परिमाण होता है, वैसा ही वृक्षोंका भी होता है। अच्छे और बुरे आहारसे मनुष्य शरीरमें जिस प्रकार वृद्धि और हानि होती है, वृक्षशरीरमें भी वैसी ही होती है। रोग हो जानेसे मनुष्य शरीरमें जिस प्रकार नानारूप विकार और कष्ट होते है, वृक्षोंमें भी ठीक वैसे ही होते हैं; और चिकित्सा करनेसे रोगक्षय भी दोनोंमें समान रूपसे होता है। रसायनसेवनसे मनुष्य शरीरकी जिस प्रकार विशिष्ट कान्ति और रसबलकी वृद्धि होती है, वृक्षशरीरकी भी वैसी ही होती है। स्त्रिया जैसे दोहद उपभोग कर पुत्रादि उत्पन्न करती है, वृक्ष भी वैसे ही फलते है। अतएव मनुष्यके समान वृक्ष भी चेतन है और उनके भी आत्मा है[1]।

उद्भिज विद्यामें भी जैन दार्शनिकोंकी पर्यवेक्षण शक्ति कितनी उच्चश्रेणीकी थी, यह बात यहां विचारणीय है। किन्तु वृक्षोंमें चेतनताका दर्शन इन्हींने सबसे पहिले किया था, ऐसा नहीं है। जैनधर्मके आविर्भावके बहुत पहिले महाभारतमें हम इस विषयका उल्लेख पाते है। महाभारत शान्तिपर्व, १८४ अध्याय ६ आदि श्लोकोंमें वृक्षका जीवत्व बहुत सी युक्तिया देकर निर्णीत किया है। वृक्षोंका शरीर मनुष्यादिकोंके शरीरके समानपंच भूतोंसे

---

१ आचारागसूत्र १. १ ५—६, षड्दर्शनसमुच्चय ५८—५९, गुणरत्नकृत तर्कपरीक्षा टीका।

बना है, यह बात भी वहा बतलाई गई है। जैनदार्शनिक वृक्षोंके एक ही इन्द्रिय बतलाते है, परन्तु महाभारतमें पाच इन्द्रियां बतला कर उन्हें सिद्ध करनेके लिये युक्तिया दी है। हम यहा महाभारतसे इस विषयके श्लोक उद्धृत करते है।

उष्मतो म्लायते पर्णं त्वक्फल पुष्पमेव च।
म्लायते शीर्यते चापि स्पर्शस्तेनात्र विद्यते ॥
वाय्वग्न्यशनिनिर्घोषै फल पुष्प विशीर्यते।
श्रोत्रेण गृह्यते शब्दस्तस्माच्छृण्वन्ति पादपा ॥
वल्ली वेष्टयते वृक्ष सर्वतश्चैव गच्छति।
नह्यदृष्टश्च मार्गोऽस्ति तस्मात्पश्यन्ति पादपा ॥
पुण्यापुण्यैस्तथा गन्धैर्धूपैश्च विविधैरपि।
अरोगा.पुष्पिता शान्त तस्माज्जिघ्रन्ति पादपा ॥
पादै सलिलपानाच्च व्याधीनाञ्चैव दर्शनात्।
व्याधि प्रतिक्रियत्वाच्च विद्यते रसन द्रुमे ॥
व्यक्तेनोत्पलनालेन यथोर्द्ध्वं जलमाददत्।
तथा पवनसयुक्त पादै पिवति पादपा ॥
सुखदु.खयोश्च ग्रहणात् छिन्नस्य च विरोहणात्।
जीव पश्यामि वृक्षाणामचेतन्य न विद्यते ॥

अर्थात्—उष्णताके सयोगसे वृक्षके पत्ते, फूल, और छाल आदि मुरझा जाते हैं और शीर्ण हो जाते है अतएव मालूम होता

---

१ महाभारतके प्रसिद्ध टीकाकार नीलकठ इस अशकी टीकामें कहते है—शीर्यंत इत्यनेन वज्रमणेरपि मत्कुणशोणित स्पर्शात्शीर्यमानस्य चेतनत्व व्याख्यात। एवमेकदेशे कम्पादिदर्शनाद् गोरिव भूमेरपि तद्दृष्टव्यम्।

है, वृक्षोंको स्पर्शानुभव होता है। वायुके शब्दसे अग्निके शब्दसे और बिजलीके कड़कनेसे वृक्षके फल फूल सूख जाते है, कानके द्वारा ही शब्द ग्रहण किया जाता है, अतएव इससे जाना जाता है कि वृक्ष सुनते है। वल्ली (लता) वृक्षको वेष्टित करती है, और सब ओरको गमन करती है, दृष्टिहीन व्यक्तिको मार्ग नहीं सूझता अतएव वृक्ष देखते है। बुरी भली गन्ध और विविध प्रकारकी धूपोंसे वृक्ष नीरोग होकर फूलते है, अतएव वे सूंघते है। वृक्ष अपनी जड़ोंसे [1]पानी पीते हैं, उन्हें व्याधियां होती है और उनका निवारण भी होता है, अतएव वे रसानुभव करते है। पद्मनाल छोटे २ छिद्रोंके द्वारा जल जैसे ऊपरको खींचता है, वृक्ष भी उसी तरह वायुके संयोगसे जडोंके द्वारा जलपान करते है। वृक्ष सुख और दुःखका अनुभव करते है। उनका यदि कोई अंग कट जाता है, तो वह फिर अच्छा हो जाता है। अतएव हम वृक्षोंके जीव देखते है, उनमें अचेतनता नहीं है। वृक्ष जो जल ग्रहण करते है, अग्नि और वायुके प्रभावसे वह जीर्ण होता है, उनका भुक्त द्रव्य परिपक्व होता है और इसीसे उनमें स्नेह जन्मता है तथा वृद्धिगत होता है।*

वृक्षोंमें जीव है, इसका वैदिक साहित्यमें भी पता लगता है। छान्दोग्योपनिषद (६'११,१-२) में कहा हैः—हे सौम्य, यदि कोई व्यक्ति इस महा वृक्षके पाददेशमें (नीचे) आघात करे, तो यह जीवित रह कर ही (रस) क्षरित करता है। यदि कोई मध्यमें आघात करे, तो यह जीवित रहकर ही (रस) क्षरित करता है और यदि कोई

---

१ एतेन क्षीरादिपायिन पारदेरपि चेतनत्व व्याख्यातम्।

* श्रीजगदीशचन्द्र वसु महाशयने इस सम्बन्धमें वैज्ञानिक प्रक्रियासे जो समस्त तत्त्व प्रकाशित किये हैं, वे भी विचारणीय हैं।

अग्रभागमें आघात करे, तो भी यह जीवित रहकर ही-(रस, क्षरित करता है। यह जीवरूप आत्माके द्वारा व्याप्त है और अतिशय (रस) पान करते करते मोदमान होकर खड़ा है। जीव यदि इसकी एक शाखाका त्याग करता है, तो सबका सब वृक्ष सूख जाता है।

तन्त्रशास्त्रों पर दृष्टि डालनेसे जाना जाता है कि, हिन्दुओंने वृक्षोंके मध्यमें स्त्री जाति और पुरुषजाति पर्यन्त निर्णय करलिया था।

बौद्ध भी उद्भिदोंमें अर्थात् वृक्षोंमें जीवका अस्तित्व स्वीकार करते हैं, ऐसा महावग्ग (९.७.१—२) ग्रन्थसे मालूम होता है। इसी लिये ब्राह्मण बौद्ध और जैन इन तीनों सम्प्रदायोंमें इस प्रकारका उपदेश दृष्टिगोचर होता है कि, जहा तक बने वृक्षोंका छेदन मत करो।

नोट—यह लेख बगलाके प्रसिद्ध मासिकपत्र प्रवासीकी गत फाल्गुनकी सख्यामें प्रकाशित हुए बगला लेखका अनुवाद है। इसके लेखक है श्रीविधुशेखर भट्टाचार्य शास्त्री। आप संस्कृत प्राकृत और पाली भाषाके नामी विद्वान् हैं। आपने अभी हाल ही बंगलामें पालीभाषाके एक सर्वोत्कृष्ट व्याकरणकी रचना की है। जैनग्रन्थोंके अध्ययनका भी आपको शौक है। जैनेतर विद्वानोंने जैनधर्मके विषयमें अभी तक जितने लेख लिखे है, हमारी समझमें शायद ही कोई ऐसा होगा, जिसमें जैनधर्मके एक तात्त्विक विषयका इतना निर्भ्रान्त वर्णन किया हो। औरोंकी अपेक्षा हम ऐसे लेखोंको मूल्यवान् समझते हैं। जैनधर्मका सच्चा सौन्दर्य उसके प्रतिपादन किये हुए तत्त्वोंमें है। और यदि कभी जैनधर्मपर ससारकी श्रद्धा होगी, तो उसके आचार्योंकी गभीर गवषेणा शक्तिसे

कार्यस्वरूप तत्त्वविचारके प्रकाशसे ही होगी। हमें चाहिये कि, उक्त लेखक महाशयके ढंगपर अपने तत्त्वोंके एक २ अंशको ऐसी सरलताके साथ कि जिसे सब लोग सहज ही समझ लेवें प्रसिद्ध २ पत्रोंके तथा स्वतंत्र ट्रेक्टोंके द्वारा प्रकाशित करनेका प्रयत्न करें। शास्त्रीजी कहते है कि, जैन दार्शनिकोंके कहे हुए पदार्थोंकी जो कि उनके गहरे पर्यवेक्षणके फल हैं आधुनिक वैज्ञानिक जीवविद्याके जाननेवालोंको जांच करना चाहिये। हम कहते है और जोरके साथ कहते है कि, जरूर करना चाहिये। "**सदाकत जैनमतकी आजमाए जिसका जी चाहे।**" जैनियोंको विश्वास है कि, उनकी फिलासोफी सच्ची और सर्वश्रेष्ठ है। साथ ही हम अपने जैनी भाइयोंसे प्रार्थना करते है कि, वे अपनेमें कुछ ऐसे विद्वान् भी तयार करनेकी कोशिश करें, जो आधुनिक जडविज्ञान, जीवविज्ञान, मनोविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान और दर्शनशास्त्रके पारंगत पंडित हों। जिससे वे निश्चय कर सकें कि, जैनधर्ममें कहा हुआ जड़, जीव, मन, आदिका स्वरूप कहांतक सत्य है और संसारको बतला सकें कि, सर्वज्ञ प्रणीत धर्म कौनसा है। यह जमाना इस तरहसे किसी बातपर विश्वास करनेवाला नहीं है कि, अमुक बात हमारे भगवानकी कही हुई है, अथवा अमुक बात न्यायकी पंक्तियोंसे सिद्ध होती है, इसलिये इसे मान लो। वह तो प्रत्यक्षपर सबसे बड़ी भक्ति रखनेवाला है। और आधुनिक विज्ञान कमसे कम इंद्रियगम्य पदार्थोंको प्रत्यक्ष दिखलानेवाला है। इसलिये हमें अब इसकी सहायता अवश्य लेनी चाहिये।

उक्त लेखके पिछले भागमें महाभारतके कुछ श्लोक उद्धृत करके यह कहा है कि, "वैदिक विद्वानोंने वनस्पतिमें पांचों इन्द्रियां मानी

हैं, परन्तु जैनी वनस्पतिमें एक इन्द्रिय मानते है। यह विषय विचारणीय है।" हमारी समझमें महाभारतकारका वनस्पतिमें पंचेन्द्रियत्व मानना भ्रमपूर्ण है। आगामी अकमें हम एक स्वतत्र लेखकके द्वारा इस विषयका विचार करेंगे। जैन विद्वानोंको चाहिये कि, वे उन युक्तियोंसे जिन्हें अन्य धर्मावलम्बी मी मान सकें वनस्पतिका एकेन्द्रियत्व सिद्ध करनेका प्रयत्न करें।

सम्पादक।

विनोद-विवेक-लहरी।

(१)

बिल्ली।

मै अपने शयनागारमें चारपाईपर बैठा हुआ हुक्का पी रहा था। आलेमें एक छोटासा चिराग टिम टिमा रहा था। दीवालपर चंचल छाया प्रेतके समान नृत्य करती थी। भोजन तयार होनेमें कुछ देरी थी, इसलिये मै हाथमें हुक्का लिये हुए और नेत्रोंको बन्द किये हुए विचार कर रहा था कि, यदि मैं नेपोलियन होता, तो वाटर्लूके युद्धमें विजय प्राप्त कर सकता या नहीं। इसी समय आवाज आई—"म्याऊ।"

मैंने आखें खोलकर इधर उधर देखा, पर एकाएक कुछ समझमें नहीं आया। पहिले सोचा कि, ड्यूक आफ [१]वैलिंगटनने किसी कारणसे बिल्लीका शरीर प्राप्त करके मेरे पास अफीम मांगने आया है। उस समय पाषाणके समान कठोर होकर मैंने कहा ड्यूक महा-

१. वाटर्लूके प्रसिद्ध युद्धमें इसी अंग्रेज सेनापतिने जगद्विजयी नेपोलियनको हराया था।

शयको यथोचित पुरस्कार दिया जा चुका है; अब और नहीं दिया जा सकता। अधिक लोभ करना कोई अच्छी बात नहीं है। ड्यूक महाशय बोले—"म्याऊ।"

इस समय आखें फाड़कर अच्छी तरहसे देखा तो मालूम हुआ कि, वैलिंगटन नहीं, एक छोटीसी बिल्ली है जो मेरे लिये रक्खे हुए दूधसे अपनी उदर ज्वालाको शान्त करके प्रसन्नता प्रगट करनेके अभिप्रायसे मधुर स्वरसे कह रही है—"म्याऊ।" जिस समय वह दुग्धपान कर रही थी, उस समय मै वाटर्लूके मैदानमें व्यूह रचना कर रहा था, तब उसे रोकता कौन ? मै शब्दशास्त्रके प्रमाणसे सिद्ध तो नहीं कर सकता हूं, परन्तु मुझे मालूम होता है कि उसके 'म्याऊ' शब्दमें कुछ व्यग अवश्य था। वह या तो मन ही मन हँसती और मेरी ओर देखती हुई यह कहती थी कि, "कोई मरपचके संग्रह करता है और कोई हाथ साफ करता है" या मेरे मनका भाव पूछना चाहती थी कि, तुम्हारा दूध तो मै पी चुकी हूं, अब कहिये क्या विचार है ?

कहूं क्या ? मैं तो कुछ निश्चय नहीं कर सका। दूध मेरे बापका नहीं था। दूध मंगला गायका था और दुहा था प्रसन्नो ग्वालिनीने। अतएव उसपर मेरा अधिकार था, वही बिल्लीका भी था। इस हिसाबसे बिल्लीपर क्रोध करनेकी जरूरत नहीं थी। परन्तु एक पुरानी चाल चली आ रही है कि, बिल्ली यदि दूध पी जावे, तो उसके पीछे मारनेको दौड़ना चाहिये। फिर मै इस बापदादोंकी पद्धतिकी अवमानना करके कुलाङ्गार क्यों बनू ? और यह भी तो चिन्ता लगी थी कि, कहीं यह बिल्ली अपनी जातीय सभामें मेरी यह कहकर निन्दा करने लगी कि, कमलाकान्तका पुरुष है तो ?

अतएव मैने पुरुषोंके समान आचरण करना ही ठीक समझा। इच्छा न रहते हुए भी हुक्केको नीचे रखकर और एक टूटीसी लकड़ीको लेकर जो कि मुश्किलसे सारा घर ढूंढने पर मिली थी, मै बिल्लीके पीछे दौड़ा।

बिल्ली कमलाकान्तको जानती थी। उसने लकड़ी देखकर विशेष भयभीत होनेके कोई लक्षण प्रकाश न किये। केवल मुंहकी और देखती हुई वह कुछ पीछे सरक गई और बोली—"म्याऊ।" मैंने समझा यह कुछ प्रश्न करती है, इसलिये लकड़ी फैंककर मैं फिर चारपाईपर जाकर बैठ गया और हुक्का पीने लगा। उस समय एकाएक मुझे दिव्य कर्ण प्राप्त हो गये, इसलिये मैंने बिल्लीका जो कुछ वक्तव्य था, अच्छी तरहसे समझ लिया।

बिल्ली कहती थी—"तुम मुझे यह लकडी क्यों दिखलाते हो? जरा स्थिर होके और थोड़ासा धूम्रपान करके विचार तो करो कि, इस ससारके दूध, मलाई, दही, मक्खन आदि पदार्थ क्या केवल तुम्हारे ही लिये हैं? हमारे लिये कुछ भी नहीं हैं? तुम मनुष्य हो, हम मार्जार हैं, बतलाओ, हममें तुममें क्या अन्तर है? तुम्हें भूख प्यास लगती है, तो क्या हमें नहीं लगती? तुम अच्छी तरहसे खाओ, पीओ, इसमें हमारा कोई एतराज नहीं है, परन्तु हमने खाया कि, तुम लकडी लेके चलते हो। यह किस शास्त्रके आधारसे? तुम्हें हमसे कुछ उपदेश ग्रहण करना चाहिये। जब तक तुम सुचतुर चौपायोंसे कुछ शिक्षा प्राप्त नहीं करोगे, तब तक सच समझना तुम्हारे ज्ञानकी उन्नति होना असभव है।

"कमलाकान्त, क्या तुम जानते हो कि धर्म क्या है? सुनो, परोपकार ही धर्म है। इस दूधके पीनेसे मेरा बड़ा भारी उपकार

हुआ है। तुम्हारे दूधसे यह परोपकार सिद्ध हुआ—अतएव इस परमधर्मका फल भी तुम्हें मिलेगा। हम चोरी करें चाहे कुछ भी करें, पर इसमें सन्देह नहीं कि, तुम्हारे धर्मसंचयके मूल है। इसलिये तुम्हें हमको मारना नहीं चाहिये—उलटी प्रशंसा करनी चाहिये। चोर तुम्हारे सहायक है।

"देखो, हम चोर मालूम होते है, पर क्या हम इच्छा करके शौकसे चोर हुए हैं? खानेको मिलता रहे, तो काहेको कोई चोर होवे? जो बड़े २ साधु है—भले मानस है, चोरका नाम भी जिन्हें पसन्द नहीं है, उनमेंसे बहुतसे चोरोंकी अपेक्षा भी अधर्मी हैं। वे चोरी नहीं करते है, सो यह समझ कर नहीं कि चोरी करना पाप है, किन्तु उन्हें चोरी करनेकी आवश्यकता नहीं है—इसलिये नहीं करते है। वास्तवमें उनके पास आवश्यकतासे अधिक धन है, तो भी वे चोरकी ओर ऑख उठाकर नहीं देखते हैं, इसीलिये चोर चोरी करते है। चोर जो चोरी करते हैं, उसके पापके भागी चोर नहीं किन्तु कंजूस धनिक है। चोर दोषी मालूम होते है, परन्तु कंजूस धनी उनकी अपेक्षा सौ गुणे दोषी है। चोरोंको तो दंड दिया जाता है, परन्तु चोरीके मूल कारण जो धनी है, उनको दंड क्यों नहीं दिया जाता?

"देखो, हमने जहा तहा 'म्याऊ! म्याऊ! करते फिरनेका व्रत लिया है, तौ भी कोई हमारे आगे एक रोटीका टुकड़ा नहीं डालता है। भोजनके वर्तनोंके धोवनको, बचे हुए रोटीके टुकड़ें तथा भातके सीतोंको लोग मोरियोंमें डाल देते है—पानीमें बहा देते हैं, परन्तु हमको बुलाकर नहीं देते। भाई, जब तुम्हारे पेट सदा भरे रहते है, तब हमारे पेटकी भूखका अनुभव तुम्हें क्यों होने लगा? हाय!

लिष्टिक् है। समाज विशृङ्खलाकी जड है। जिसमें जितना सामर्थ्य है, उसके अनुसार यदि वह धनसचय नहीं कर पायगा, अथवा सचय करके चोरोंके उपद्रवसे निर्विघ्नता पूर्वक उसे भोग नहीं सकेगा, तो फिर कोई धनसचय करनेका यत्न नहीं करेगा। और इससे फिर समाजकी धनवृद्धि नहीं हो सकेगी।

मार्जारीने कहा—"नहीं होगी, तो न सही, उससे हमारा क्या? समाजकी धनवृद्धिका अर्थ है, धनियोंकी धनवृद्धि। जो यदि धनियोंके धनवृद्धि नहीं होगी, तो उससे गरीबोंकी क्या हानि होगी"

मैंने समझाकर कहा—"सामाजिक धनवृद्धिके विना समाजकी उन्नति नहीं हो सकती है।" मार्जारीने क्रोधित होकर कहा—'हमको यदि खानेको नहीं मिला, तो समाजकी उन्नतिको लेकर हम क्या करेंगे?"

बिल्लीको समझाना कठिन हो गया। विचारक वा नैयायिकको कोई कभी समझा ही नहीं सकता है। बिल्ली सुविचारका है और अच्छी नैयायिका भी मालूम होती है, इससे उसको मेरी बात न समझनेका अधिकार है, इस खयालसे उसपर क्रोध न करके मैंने कहा—"समाजकी उन्नतिसे दरिद्रोंका कुछ प्रयोजन हो चाहे मत हो, परन्तु इससे धनियोंकी आवश्यकता कम नहीं हो सकती। अतएव चोरोंपर दड होना ही चाहिये।"

मार्जारीमहाशयाने कहा—"चोरको फासी दो, इसमें हमारी ओरसे कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु इसके साथ ही एक और नियम बनाओ। जो विचारक वा न्यायाधीश चोरको सजा देवें, उसे सजा देनेके पहिले तीन उपवास करना चाहिये। इन तीन लंघनोंमें भी यदि उसकी चोरी करके खानेकी इच्छा न हो, तो

खुशीसे वह चोरको फांसीपर लटकवा देवें। तुमने हमारे मारनेके लिये लाठी उठाई थी। तुम आजसे तीन लंघनें करके देखो। इस बीचमें यदि तुम नशी बाबूके रसोई घरमें न पकड़े जाओ, तो फिर तुम प्रसन्नतासे हमको लकड़ी मारना।"

पंडितोंका सिद्धान्त है कि, यदि कभी वाद विवादमें परास्त होना पड़े तो उस समय गंभीर भाव धारण करके कुछ उपदेश करने लगना चाहिये। तदनुसार मैंने मार्जारीसे कहा—"ये सब बातें नीतिसे सर्वथा विरुद्ध हैं। इनकी चर्चा और आन्दोलन करनेमें भी पाप है। तुम इन सब कुविचारोंको छोड़कर धर्माचरणेंमें चित्त लगाओ। तुम यदि चाहो, तो तुम्हारे स्वाध्यायके लिये हम न्यूमान और पार्करके ग्रन्थ दे सकते हैं। इस समय अपने स्थानको गमन करो। प्रसन्नो ग्वालिनीने कल खोवा देनेको कहा है। कलेवाके समय आ जाना हम तुम दोनों बांटकर खावेंगे। आज और किसी की हंडी नहीं चाटना। किन्तु यदि भूलसे बहुत ही व्याकुलता हो जाय, तो फिर दूसरी बार आना, एक सरसों भर अफीम दे दूंगा।

मार्जारीने कहा—"अफीमकी मुझे आवश्यकता नहीं है। रही किसीकी हंडीपर हाथ मारनेकी बात, सो इसका विचार भूखके अनुसार किया जायगा।"

मार्जारी चली गई। कमलाकान्तको इस खयालसे बड़ी भारी प्रसन्नता हुई कि, मै आज एक पतित आत्माको अज्ञानाधकारसे प्रकाशमें ले आया।

---

* बंगला 'कमलाकान्तेर दफ्तर'के एक लेखका अनुवाद।

सम्पादकीय विचार।

१ नवीन शक्तिका दर्शन।

गत ता० ५ अप्रैलसे ९ अप्रैल तक श्रीजैनतत्वप्रकाशिनी सभाका वार्षिक जल्सा हो गया। अब की बार हमको भी उक्त सभाके अधिवेशनमें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। सभाके कार्यसे हमको बडी भारी प्रसन्नता हुई। हमने वहा पर एक ऐसी नवीन शक्तिके दर्शन किये, जिसकी प्रत्येक समाजके तथा धर्मके उत्थानके समय आवश्यकता होती है और जिसके विना कोई भी समाज ऊपर उठनेका प्रयत्न नहीं कर सकता है। सभाके सभापतिसे लेकर व्याख्याता गायक और श्रोताओं तकमें उनके जोशीले शब्दोंसे, उत्तेजक सुरोंसे और उत्साह युक्त करतल ध्वनि-योंसे इस शक्तिके अस्तित्वका पता लगता था। इसमें सन्देह नहीं है कि, यह शक्ति अभी २ उत्पन्न हुई है, इसलिये यह क्या कर सकती है, इसका यथार्थ अनुमान सहसा नहीं हो सकता है। पर हमको विश्वास है कि, यदि जैनसमाजने इसका उचित आदर किया, इसके पोषणमें सहायता दी--कमसेकम इसे संकीर्ण हृदय लोगोंके उपद्रवसे बचा ली, तो थोडे ही समयमें लोगोंको मालूम हो जायगा कि, यह वही शक्ति है, जिसके द्वारा भगवान् महावीर और उनके शिष्योंने सारी पृथ्वीपर जैनधर्मका डंका बजा दिया था, और अपने पवित्र उपदेशोंके द्वारा किसी प्रकारका बल प्रकाश किये विना ही करोडों मनुष्योंको जैनधर्मका अनुयायी बना दिया था। यह वही प्रचंड शक्ति है जिसने निकलंक और अकलंकभट्टके हृदयमें विराजमान होकर बौद्ध धर्मके प्रबल प्रतापकी परवा न करके

सार्वधर्मकी विजय दुंदुभि फिर बजा दी थी और यह वही उदार शक्ति है, जिसने पीछेके अनेक आचार्य्योंके चित्तपर अधिकार करके सैकड़ों ऊंच नीच सभ्य असभ्य जातियोंको जैनधर्मकी शीतल छायामें स्थान दान दिया था। हम इस नवीन शक्तिका सादर स्वागत करते है और आशा करते हैं कि, हमारे पाठक भी इसकी अभ्यर्थना किये विना न रहेंगे।

२ नवीन शक्तिका कार्य।

इस नवीन शक्तिकी प्रेरणासे तत्त्वप्रकाशिनी सभाने भारतवर्षके कल्याणके लिये-भारत ही क्यों समस्त पृथ्वीके कल्याणके लिये जैन धर्मके तत्त्वोंका सर्व साधारणमें प्रचार करनेका, जैन धर्म दुर्बल नहीं है, उसके सामने किसी भी धर्मकी युक्ति नहीं ठहर सकती है, यह स्पष्ट कर देनेका और जैन धर्म उदार है-उसमें ऊच नीच जाति सम्बन्धी सकीर्णता नहीं है, ब्राह्मणसे लेकर चांडालतक बल्कि पशुओंतक को भी वह अपनी पवित्र दीक्षासे दीक्षित कर सकता है, यह वतलानेका बीड़ा उठाया है। और प्रसन्नताकी वात है कि, इसमें उसने आशातीत सफलता प्राप्त की है। गतवर्षमें उसके जहां जहां दौरे हुए है, वहाकी सर्वसाधारण प्रजाके हृदयमें जैनधर्मका खूब प्रभाव पड़ा है, उसके ट्रेक्टोंने भी बहुत काम किया है और पिछली वर्ष दो और इस वर्ष तीन अन्य धर्मावलम्बियोंको जैन धर्मकी दीक्षा देकर तो उपर्युक्त नवीन शक्तिके प्रादुर्भावकी उसने डोंडी पीट दी है सभाके प्लेटफार्म पर इस वर्ष जो जैनी हुए, उनमें एक ब्राह्मण पंडित, एक आर्यसमाजी अग्रवाल और एक नाई था। जिस समय ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने उक्त भव्योंको दीक्षा दी, उस समय सभामें अपूर्व उत्साह और अपार आनन्द दिखलाई

देता था। तत्त्वप्रकाशिनी सभाके उक्त कार्योंसे भिन्न धर्मियोंपर जो जैन धर्मका प्रभाव पडता है—सो तो पड़ता ही है, साथ ही नययुवक जैनियोंमें एक विलक्षण ही भाव उत्पन्न होता है। उन्हें अपनी शक्ति पर विश्वास होता है, हमको भी कुछ धर्मसेवा करना चाहिये, ऐसा उत्साह उत्पन्न होता है और यह ज्ञान होता है कि, यह समय जैन धर्मका प्रसार करनेके लिये बडे ही मारकेका है।

३ ऐसी और भी कई संस्थाओंकी आवश्यकता है।

जैनसमाजमें मेले, उत्सव, रथ प्रतिष्ठादि कार्य बहुत ही अधिक होते हैं। शायद ही कोई वर्ष ऐसा जाता हो, जिस वर्ष ऐसे सौ पचास सम्मिलन न होते हों। अभी तक समाजकी अज्ञानतासे इन सम्मेलनोंका जैसा उपयोग होना चाहिये, वैसा नहीं होता था—पूजा पाठ नृत्य गान आदि कार्यों तक ही इनका अन्तिम उद्देश पहुचता था। परन्तु अब लोगोंमें धीरे २ ज्ञानका प्रकाश होने लगा है। वे तत्त्वप्रकाशिनी सभा जैसी सस्थाओंका बुलाना और उनके द्वारा सच्ची प्रभावना करनेकी आवश्यकता समझने लगे है। तत्त्व-प्रकाशिनी सभाके पास इस वर्ष इतने अधिक आमंत्रण आये कि, वह इच्छा रहते हुए भी समयकी कमीसे उन सबको स्वीकार न कर सकी—लाचार होकर उसे बहुतोंको निराश करना पड़ा। जब अभी प्रारम ही प्रारममें यह दशा है, तब आगे कितने आमत्रण आवेंगे, इसका विचार पाठक ही कर सकते हैं। ऐसी दशामें यह उचित मालूम होता है कि, जुदे २ प्रान्तोंमें तत्त्व प्रकाशिनी सभाके ढगपर• काम करनेवाली और भी कई सस्थाएँ स्थापित की जावें और उनके द्वारा ऐसा प्रबन्ध किया जावे जिससे कोई भी मेला

उत्सव आदि ऐसा न हो जिसमें जैन धर्मकी सच्ची प्रभावना न की जाय और इस नई शक्तिसे कुछ काम न लिया जाय।

---

४ परवारोंका चार सांकों सम्बन्धी प्रस्ताव।

जैनहितैषीके गत तीसरे अंकमें हमने एक प्रस्ताव इस विषयका प्रकाशित किया था कि, परवारोंमें विवाह सम्बन्ध करते समय जो आठ सांकें (गोत्र) मिलाई जाती है, उनसे बड़ी भारी हानि हो रही है, इसलिये उनके स्थानमें चार सांकें मिलानेकी पद्धति जारी कर दी जाय। जिस समय हमने और हमारे मित्र **बाबू मौजी-लालजी सिंगईने** इस प्रस्तावको प्रकाशित किया था, उस समय हमको आशा नहीं थी कि, परवार समाज इसकी ओर कुछ विचार करेगा। परन्तु वास्तवमें वह हमारा भ्रम था। हम यह नहीं सोच सके थे कि, शिक्षाप्रचारके साथ २ जो समाजसुधारकी लाट उठी है, उससे परवार भाई कैसे अछूते रह जावेंगे। इसके सिवाय आव-श्यकतामें कार्य सम्पादन करानेकी जो विलक्षण शक्ति रहती है, उसपर भी हमने कुछ ध्यान नहीं दिया था। हमको यह लिखते बड़ी भारी प्रसन्नता होती है कि, **श्रीद्रोणागिरि** सिद्धक्षेत्रपर गत वैशाख कृष्णामें जो बुन्देलखंड प्रान्तिक सभाका वार्षिक अधिवेशन हुआ, उसमें यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया और लगभग दश **हजार भाइयोंकी सम्मतिसे खूब उत्साहके साथ पास हो गया।** अधिवेशनके सभापति सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० गणेशप्रसा-दजी वर्णीने अपनी प्रभावशालिनी वक्तृतामें स्वयं इस प्रस्तावकी आवश्यकता प्रतिपादन की और श्रोताओंको समझा दिया कि, यह प्रस्ताव परवार जातिकी रक्षाके लिये बहुत आवश्यक है और इसमें

धार्मिक दृष्टिसे कोई हानि नहीं है। सारी सभामेंसे केवल दो सज्जनोंने इस प्रस्तावका विरोध किया था। जोकि नहींके समान हैं। वास्तवमें विचारा जाय, तो इस तरह प्रायः सर्व सम्मतिसे इस प्रस्तावका पास हो जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि इस समय जितने बालबच्चेवाले परवार भाई हैं, वे सब ही इन आठ साकोंके दुखको पीढ़ियोंसे अनुभव कर रहे हैं और कोई २ तो बहुत ही ऊब गये है। इस दुखसे मुक्त होनेके लिये वे बहुत वर्षोंसे तड़फड़ा रहे थे। पर बेचारे यह नहीं सोच सकते थे कि, इसका भी कोई मार्ग है या नहीं? कुछ कल्पित पापके खयालसे भी इस विषयकी चर्चा नहीं छेडते थे। परन्तु ज्यों ही उन्होंने एक विद्वान्‌के मुहसे सुना कि, इससे मुक्त होनेका भी मार्ग है और उसमें कुछ पाप नहीं है। त्यों ही चिरकालका रुका हुआ पूर बढ़ आया और एक साथ दश हजार कंठोंमेंसे निकल पड़ा—"यह प्रस्ताव हमको स्वीकार है।"

---

५ शिक्षित परवारोंका कर्तव्य।

प्रस्ताव तो पास हो गया। अब उसको कार्यमें परिणत करना शिक्षित भाइयोंके हाथमें है। उन्हें चाहिये कि, अब वे गाव २ की पचायतीमें इसकी चर्चा करें और सौ पचास व्याह इस प्रस्तावके अनुसार करके दिखलावें। क्योंकि जब तक दश बीस व्याह इस प्रकारके न हो जावेंगे, तब तक सर्वसाधारण लोग इस प्रथाको स्वीकार न करेंगे और ऐसी दशामें प्रस्तावका पास होना न होना बराबर ही होगा। हमने सुना है कि, पन्ना रियासतकी ओरके अठसखे परवार भाई चार छह वर्ष पहिलेसे चार साकें मिलाकर विवाह करने लगे है और उनका सम्बन्ध जबलपुरकी ओरके अठसखे परवारोंसे बरा-

वर होता है। इसके सिवाय झांसी जिलेमें कई व्याह छह सांके मिलाकर किये गये हैं और वहांके वहुतसे भाई चार सांकें भी स्वीकार करनेके लिये तयार है। इन सव वातोंपर विचार करके शिक्षित परवार भाई देखेंगे कि, इस विषयमें भयका कोई कारण नहीं है। जातिका वहुत वड़ा भाग इस प्रस्तावको स्वीकार करनेके लिये प्रस्तुत है। केवल अगुआ वनकर थोड़ासा प्रयत्न मात्र करनेकी आवश्यकता है।

---

६ महासभाकी दो प्रवन्धकारिणी कमेटी।

महासभाकी प्रवन्धकारिणी कमेटीकी एक नहीं दो—और एक स्थानमें नहीं दो स्थानोंमें—वैठकें हो गईं। कोरम भी दोनोंका पूरा हो गया। एक वैठक इटावामें ता० ७ अप्रैलको हुई और दूसरी ९ अप्रैलको फीरोजावादमें हुई। पहिली कमेटीको दूसरीने नाजायज ठहराया वल्कि इस विषयका उसने एक प्रस्ताव भी कर डाला। प्रस्तावमें कहा गया कि, वह नियमानुकूल नहीं हुई है, उसका कोरम पूरा नहीं हुआ था। दूसरी कमेटीवाले अपना कोरम पूरा और नियमानुकूल वतलाते है। अव देखना यह है कि, वे फीरोजावादकी कमेटीको किस तरह नाजायज ठहराते है। हमारी समझमें उन्हें फीरोजावादकी सभाको नाजायज ठहरानेका कोई हक नहीं है, क्योंकि उनकी कमेटीमें कोई एक भी सेठ नहीं था—विरुद्ध इसके फीरोजावादकी कमेटीमें चार पांच सेठ स्वयं उपस्थित थे और छह सात सेठोंकी तथा 'प्राय सेठों'की प्राक्सी आ गई थीं।

फीरोजावादकी कमेटीमें मान्यवर मुंशी चम्पतरायजीने एक प्रस्ताव यह पेश किया था कि, प्रवन्धकारिणीके सभासदोंकी फीस

२९) रक्खी जाय। यदि यह प्रस्ताव पास हो जाता, तो बहुत अच्छा होता। महासभा सेठों वा धनिकोंके लिये ही रिजर्व हो जाती। पढ़े लिखे वा निर्धन लोग जो इसमें धींगाधींगी किया करते हैं, उससे सदाके लिये छुट्टी मिल जाती। दुःखकी बात है कि, यह प्रस्ताव पास नहीं हो पाया। हम सिफारिश करते है कि, आगामी अधिवेशनमें इस पर फिर गौर किया जाय।

एक प्रस्ताव यह पास हुआ कि, जैनगजट रायबहादुर सेठ मेवारामजी की निगरानीमें कमसेकम दो सालके लिये खुर्जा भेजा जावे और उन्हें अपनी रायसे किसी वैतनिक सम्पादकको नियत करनेका अधिकार दिया जाय। हमारी समझमें इसमें इतना और निवेश कर दिया जाता, तो अच्छा होता कि, जैन रत्नमालाके सम्पादक पं० जवाहरलालजी शास्त्री ही जैनगजटके सम्पादक बना दिये जावें और जैन रत्नमाला तथा जैनगजट दोनों मिला दिये जावें–जैनगजटके गलेमें ही रत्नमाला डाल दी जाय। रत्नमाला अपना काम कर चुकी अब उसकी पृथक् रहनेकी आवश्यकता नहीं। उसका काम अब जैनगजट भी अच्छी तरहसे कर सकेगा।

श्रीश्रुतपञ्चमी पर्व।

जेठ सुदी ५ बहुत ही समीप है। हम प्रतिवर्ष अपने पाठकोंको इस पूज्य पर्वका स्मरण करा दिया करते है और इस बातका आग्रह करते हैं कि, यह पर्व प्रत्येक नगर और ग्राममें मनाये जानेका प्रयत्न करना चाहिये। यद्यपि गत कई वर्षोंके आन्दोलनसे अनेक स्थानोंमें यह पर्व मनाया जाने लगा है, परन्तु अभी तक यह ऐसा पर्व नहीं बन सका है जैसे कि, हमारे दूसरे पर्व सर्वत्र माने जाते

है और प्रत्येक जैनीको उनका ज्ञान रहता है। इसके लिये समाजके शिक्षितोंको शक्तिभर उद्योग करना चाहिये और इस पर्वका महत्त्व प्रत्येक जैनीको समझा देना चाहिये। यह पर्व कोई साधारण पर्व नहीं है। यह हमारे पूर्व पुरुषोंकी अपार विद्याका, असाधारण पाडित्यका और संसारी जीवोंपर उनके निःसीम करुणाभावका पवित्र स्मारक है। इसमें अब भी वह शक्ति मौजूद है कि, यदि हम उसे उपयोगमें लावें, तो हम न केवल अपने समाजमें से ही अज्ञान अंधकारको निकाल कर बाहिर कर दें, किन्तु सारे संसारमें सर्वज्ञके ज्ञानका प्रकाश कर दें। जिस समाजमें ज्ञानकी उपासनाके और ज्ञानको महत्त्व देनेके ऐसे २ पर्व मौजूद है, उस समाजमें अज्ञान अधकार टिक ही नहीं सकता है–प्रयत्न भर होना चाहिये और लोगोंको मालूम हो जाना चाहिये कि, इस पर्वका अभिप्राय क्या है। जिस समय हम इस ज्ञानपर्वका सच्चा उत्सव मनाने लगेंगे-इस पर्वमें हमारा आदरभाव स्थापित हो जायगा, उस समय प्रति-वर्ष हम सुनेंगे कि, अब की जेठ सुदी पचमीको अमुक २ स्थानोंमें पुस्तकालय स्थापित हुए, अमुक मन्दिरोंमें वाचनालय खोले गये अमुक नगरोंमें श्रुतका विस्तार करनेवाले विद्यालयोंकी नीव डाली गई और अमुक २ धर्मात्माओंने जनसमाजका अज्ञान दूर करनेके लिये ग्रन्थोंके प्रकाश करने और बहुलतासे प्रचार करने वा दान करनेके लिये अपनी २ पूंजीका इतना २ अंश देना स्वीकार किया। जिनेन्द्र देव हमारे भाइयोंको सुमति देवें, जिससे हम शीघ्र ही उक्त सौभाग्य दिवसको देखकर धन्य होवें।

निर्बलोंपर प्रबलोंका अत्याचार ।*

(लेखक—श्रीयुक्त बाबू मैथिलीशरण गुप्त ।)

(१)

हम बली, तुम निर्बल, देखना ।
बस हमें निज नाशक लेखना ॥
जब विनोद हमें करना हुआ—
समझ लो कि तुम्हें मरना हुआ ॥१॥

(२)

सबल हो तुम, सो हम जानते,
अबलता अपनी हम मानते ।
पर नहीं यह न्याय विचार लो,
अबल देख हमें तुम मार लो ॥

(३)

तब नृशंसपना खलता नहीं,
निज दशापर जी जलता नहीं ।
पर हताहत देख हमें पड़े—
अहह ! क्या तुम हो हँसते खड़े ॥

(४)

कर हमें पदमर्दित सर्वदा—
तुम मदान्ध हुए फिरते यदा ।
फिर हमें न महीपर ठौर क्या ?
बस तवार्थ बनी यह, और क्या ?

---

* जैन शासनके दिवालीके अङ्कपरसे उद्धृत ।

(५)

तनिक कंकड़ भी पदमें गड़ा—
कि तुमको फिर चैन नहीं पड़ा।
तदपि हो तुम हिंसकता-भरे,
तब सजीव तुम्हीं ठहरे अरे!

(६)

अति असंख्यक प्राणि-विघात हो,
रुधिरमग्न मही दिनरात हो।
न तुमको इसका कुछ ध्यान है,
अहह! स्वार्थ बड़ा बलवान है॥

(७)

समझकी बस है यह भिन्नता,
अबल जान हमें तुम लो सता।
यदि कभी हम भी बल पायँगे—
अबल देख तुम्हें उर लायँगे॥

(८)

कर नहीं परपीड़नके लिये,
पर-हितार्थ तुम्हें प्रभुने दिये।
तुम न जो परपालक हो अहो!
मनुज! तो परपीड़क तो न हो॥

पुस्तकसमालोचन।

पार्वती परिणय नाटक—अनुवादक, आरा–पथारग्रामनिवासी प० रामदहीन शर्मा काव्यतीर्थ। वाणभट्ट कविके पार्वती परिणय नाटकमें पार्वतीके साथ महादेवके ब्याह होनेका वर्णन है। धार्मिक दृष्टिसे वह चाहे जैसा हो, परन्तु काव्यदृष्टिसे उसकी गणना अच्छे नाटकोंमें होती है। उक्त संस्कृत नाटकका यह गद्यपद्यमय हिन्दी अनुवाद है। इस गद्यकी भाषा तो अच्छी है—समझमें आती है, परन्तु पद्यकी भाषा हमें अच्छी नहीं मालूम हुई। एक तो उसका भाव कठिनाईसे समझमें आता है, दूसरे उसमें अशुद्धियां भी बहुत है। अनुवादक संस्कृतके अच्छे विद्वान हैं, तो भी जिस भाषामें उन्होंने पद्य लिखा है, उसके व्याकरण का उन्हें यथेष्ट बोध नहीं जान पड़ता है। १९ वें पद्यमें लिखा है–"प्रथमगिरी शिवशिरपै पीछे, तोहि शिखर समुदाई। फिर जो तोहि शिखरसे गिरिकै, मृत्युलोकमें आयी (१)॥" इसमें जो तोहि शब्द दो स्थानोंमें आया है. उसे लेखकने 'तेरे' या 'तुम्हारे' अर्थमें लिखा है, परन्तु भाषामें इसका अर्थ 'तुझे' होता है। ९८ वें पद्यके "पावत जाहि न भेद।" इस चरणमें 'जाहि' शब्द 'जिसके' के अर्थमें लाया गया है। परन्तु वास्तवमें 'जाहि' का अर्थ 'जिसे' होता है। 'जिसके' के बदले 'जासु' लिखा जाता तो ठीक होता। ८९ वें पद्यमें 'माला' और ८८ वें पद्यमें 'करधनी' शब्द पुल्लिंग माना गया है। इसी तरह और भी बहुतसी भूलें है। यदि इसका पद्य खड़ी बोलीमें लिखा जाता तो शायद इतनी भूलें नहीं होतीं और लोग कविके अभिप्रायको भी ठीक २ समझ लेते। बहुतसे पद्य

अच्छे और भावपूर्ण है। ग्रन्थके प्रारंभमें यदि छोटी मोटी भूमिका होती, तो मूलग्रन्थ कर्त्ताका कुछ परिचय मिल जाता और यह भी मालूम होजाता कि, अनुवाद मूलका भाव लेकर किया गया है, या शब्दशः किया गया है। यह बड़ी कमी है।

धर्मतत्त्व—बंगलाके सुप्रसिद्ध लेखक स्व० बाबू बंकिमचन्द्रके लिखे हुए ' अनुशीलन ' नामक ग्रन्थका यह हिन्दी अनुवाद है। बाबू महावीरप्रसादजीने अनुवाद किया है। बंकिमबाबू श्रीकृष्ण-जीके परम भक्त थे। परन्तु भक्त होकर भी वे उन्हें ईश्वर नहीं मानते थे। उनका विश्वास था कि, संसारमें अब तक जितने पुरुष-रत्न हुए है, श्रीकृष्ण उन सबमें शिरोमणि थे। उनका चरित्र हिन्दुओंका आदर्श और उनका उपदेश हिन्दुओंका धर्म है। जिस समय बंगालके नव युवकोंमें पश्चिमी शिक्षाके विस्तारसे नास्तिकता व ईसाइपनका जोर बढ़ रहा था, उस समय बंकिम बाबूने अपने उक्त विश्वासके अनुसार 'अनुशीलन' की रचना की थी और अपनी प्रतिभाशाली लेखनीके द्वारा अपने इस नये ढगसे संस्कृत किये हुए हिन्दू धर्ममें आस्था उत्पन्न की थी। गुरु और शिष्यके प्रश्नोत्तर रूपसे यह ग्रन्थ लिखा गया है। दुःख क्या है, सुख क्या है, मनुष्यत्त्व क्या है, आदि बातोंको इसमें बड़ी उत्तमतासे समझाया है। सुखका उपाय धर्म बतलाया है और धर्मका लक्षण शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका अनुशीलन (शक्तिका विकाश) किया है। सुखके परमोत्कर्षको मोक्ष कहा है। परलोक हो या न हो, पर अनुशीलन सुखका कारण अवश्य है। अनुशीलनसे इस लोकमें सुख मिलेगा और यदि परलोक है तो वहां भी सुख मिलेगा। यह बात दूसरी है कि, इस ग्रन्थके

मतसे सब लोग सहमत न होंगे, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, प्रत्येक विद्वानके पढ़ने योग्य इसका विषय है। वर्तमानमें धर्म ग्रन्थोंकी रचना इस ढंगसे होनी चाहिये। अनुवाद अच्छा हुआ है। परन्तु भाषा कुछ और भी सरल की जाती तो अच्छा होता। बंगलाकी झलक उसमें साफ दिखलाई देती है। लेखक महाशय ने यह अनुवाद करके हिन्दीका बड़ा भारी उपकार किया है, इसलिये हमें उनके कृतज्ञ होना चाहिये।

उक्त दोनों पुस्तकें " भारतमित्र प्रेस—नं० ९७ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट कलकत्ता " से मिल सकती हैं। मूल्य पुस्तकोंपर लिखा नहीं।

भारतकी वर्तमान दशा—बम्बईके बैरिष्टर मि० के. ई. घमटकी 'दी प्रेजेण्ट स्टेट आफ इंडिया' का प० जगन्नाथ प्रसादजी चतुर्वेदी कृत हिन्दी अनुवाद। प्रकाशक, हिन्दी ट्रैन्सलेटिंग कम्पनी बडाबाजार, कलकत्ता। मूल्य पुस्तकपर लिखा नहीं। भारतमें कुछ वर्ष पहिले जो उग्र असतोष फैला था, उसके इसमें देशी अखबारोंका निरादर, देशियोंके साथ अशिष्टता, विचारालयोंमें वर्णभेद, हाईकोर्टोंका अंग भंग, बडी २ नौकरियोंसे वंचित रखना, उच्चाभिलाषाओंकी उपेक्षा, शिक्षासे विराग, किसानोंका दारिद्र, पार्लीमेंटकी बेपरवाई, और लार्ड कर्जनका शासन ये दश कारण बतला कर प्रत्येक कारणका बहुत बारीकीसे विवेचन किया है। यद्यपि इस पुस्तकको छपे हुए छह सात वर्ष हो गये और इसके लेख भारतमित्रमें भी एक एक करके प्रकाशित हो चुके हैं, तो भी इसके लेखोंका महत्त्व नहीं घटा है। हिन्दीके पाठक अब भी इससे बहुत ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

प्राकृत मार्गोपदेशिका—प० बेहेचरदास जीवराज द्वारा रचित और श्रीयशोविजय जैन पाठशाला—बनारस द्वारा प्रकाशित। पृष्ठ संख्या

लगभग १८० (डिमाई अष्टपेजी)। मूल्य बारह आना। काशीकी यशोविजय पाठशाला ग्रन्थप्रकाशन कार्यमें बड़ा उद्योग कर रही है। थोड़े ही दिनोंमें इसने बीसों ग्रन्थरत्न प्रकाशित करके जैन साहित्यकी अभूत पूर्व सेवा की है। यह पुस्तक भी उक्त पाठशालाके उद्योग का फल है। प्राकृत भाषा जैनियोंके धर्मसाहित्यकी प्रधान भाषा है। विना इसके जाने जैन धर्मके प्राचीन ग्रन्थोंका मर्म नहीं समझा जा सकता है। यद्यपि–संस्कृतकी अपेक्षा यह भाषा बहुत सरल है परन्तु वर्तमानमें पठन पाठनकी परम्परा नष्ट होजानेसे और योग्य साधन न मिलनेसे यह संस्कृतसे भी बहुत कठिन मालूम होने लगी है। विना संस्कृत का अच्छा ज्ञान सम्पादन किये तो इसका जानना एक प्रकार से असंभवसा हो गया है। इस भाषाके जो व्याकरण है, वे भी इस समय प्राय संस्कृतमें ही मिलते है। इन सब बातोंका विचार करके गुजराती भाषा जानने वालोंके उपकारके लिये इस पुस्तककी रचना हुई है। ग्रन्थकर्त्ता भूमिकामें कहते हैं कि, केवल गुजराती जाननेवाले भी इसके द्वारा प्राकृतके ज्ञाता हो सकते हैं। डा० भाण्डारकरकी बनाई हुई संस्कृतमार्गोपदेशिकाको आदर्श मानकर उसीके ढंगपर यह रची गई है। इसमें सन्देह नहीं कि, विद्यार्थियोंको इससे बहुत लाभ पहुँचेगा। सामान्यतः पुस्तक अच्छी बनी है और परिश्रम भी अच्छा किया गया है। गुजराती जाननेवालोंको इससे जरूर लाभ उठाना चाहिये। इसमें हमको दो एक त्रुटियां मालूम पड़ती हैं। एक तो यह कि, इसमें वर्तमानकालकी क्रियाओंके जो रूप और वाक्य दिये है, वे तो बहुत ही ज्यादा है, परन्तु भूत और भविष्यत्कालके वाक्य बहुत ही थोड़े हैं। इससे विद्यार्थियोंको भूत भविष्यत् कालका ज्ञान वर्तमानकालकी अपेक्षा बहुत

ही कम होगा। दूसरे समासका प्रकरण बहुत ही संक्षिप्त लिखा है-और तीसरे कारकका स्वरूप नहीं बतलाया गया, जिसके विना कि वाक्योंकी शुद्ध रचना नहीं हो सकती है। यदि इसके प्रारभमें प्राकृत भाषाकी उत्पतिका इतिहास उसके भेद, उसका प्राचीन साहित्य, उसकी वर्तमान अवस्था आदि बातोंका परिचय करानेका प्रयत्न किया जाता तो बहुत अच्छा होता।

विविध विषय।

जैन सिद्धान्त भास्कर–आराके जैन सिद्धान्त भवनकी ओरसे उक्त नामका त्रैमासिक पत्र शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। उसमें शिलालेखोंकी नकल, जैन इतिहास, आचार्योंके जीवन चरित, तथा प्राचीन शास्त्रोंके प्रशस्ति लेख आदि विषय प्रकाशित हुआ करेंगे। जैनियोंमें अपने ढगका यह अपूर्व पत्र होगा। इससे जैन साहित्यकी बहुत उन्नति होगी। और हमें अपनी लुप्तप्राय इतिहास संग्रह करनेके लिये बहुत सहायता मिलेगी। वार्षिक मूल्य तीन रुपया रक्खा गया है। प्रत्येक शिक्षित जैनीको इसके ग्राहक बनना चाहिये। यदि 'जैन पुरा तत्त्वसंग्रह' अथवा 'जैन पुरावृत्त' सरीखा कोई नाम पत्रके लिये चुना जाता तो अच्छा होता। 'जैनसिद्धान्त भास्कर' नामसे यह बोध नहीं होता है कि, यह कोई ऐतिहासिक पत्र होगा।

सात महीनेकी कन्या और पच्चीसवर्षका वर–दक्षिणके बोरगांव नामक स्थानमें एक २५ वर्षके जैनने सात महीनेकी लड़कीके साथ विवाह किया। और विवाहके कुछ समय पीछे एक विधवाके साथ पुनर्विवाह कर डाला। दक्षिणकी कुछ जैन जातियोंमें पुन-

विवाह प्रचलित है। परन्तु अविवाहित पुरुषको विधवाके साथ सम्बन्ध करनेका अधिकार प्राप्त नहीं है। इसी कारण उक्त पुरुषने किसी तरह सात महीनेकी लड़कीके साथ ही व्याह करके विवाहितोंमें गणना करा ली और लगे हाथ विधवासे सम्बन्ध करके अपनी इच्छा पूर्ण करली।

आर्यसमाजीसे जैनी—पसरूर (स्यालकोट) के पं० दुर्गादत्त नामक आर्यसमाजी उपदेशक जैनधर्मके ग्रन्थोंका अवलोकन करके जैनी हो गये हैं। आपने प्रकाशित किया है कि, यदि आत्माको सच्ची शान्ति मिल सकती है, तो केवल एक जैनधर्म ही के द्वारा मिल सकती है।

गुरुकुल कांगड़ीका—दशम वार्षिकोत्सव इस वर्ष बड़े उत्साह और ठाटबाटसे हुआ। लगभग १९ हजार दर्शक उपस्थित हुए थे। बड़े २ नामी विद्वानोंके गवेषणापूर्ण व्याख्यान हुए। लगभग ६२ हजार रुपयोंका चन्दा हुआ। आर्य समाजका यह गुरुकुल बड़ा काम कर रहा है। इसकी शिक्षाप्रणाली भारतकी आदर्श प्रणाली बनती जा रही है। आर्य समाजी भाई काम करना जानते है।

आवश्यक सूचनायें।

(१) जैनधर्म्म आत्माका निज स्वभाव है और एकमात्र उसीके द्वारा सुख सम्पादन किया जा सकता है।

(२) सुख मोक्षमें ही है जिसको कि प्राप्त करके यह अनादि कर्म मलसे ससार चतुर्गतिमें परिभ्रमण करनेवाला अशुद्ध और दुखी आत्मा निज परमात्म स्वरूपको प्राप्त कर सदैव आनन्दमें मग्न रहा करता है।

(३) स्मरण रक्खो कि मोक्ष मागने और किसीके देनेसे नहीं मिलती। उसकी प्राप्ति हमारी पूर्ण वीतरागता और पुरुषार्थसे कर्म-मल और उनके कारण नष्ट कर लेने पर ही अवलम्बित है।

(४) स्याद्वाद सत्यताका स्वरूप है और वही वस्तुके अनन्त धर्म्मोंका यथार्थ कथन कर सकता है।

(५) जैनधर्म्म ही परमात्माका उपदेश है क्योंकि वही पूर्वापर विरोध और पक्षपातरहित सब जीवोंको उनके कल्याणका उपदेश देता है और उसीके परमात्माकी सिद्धि और छाप इस संसारमें है।

(६) एकमात्र 'ही, और 'भी, हीं अन्य धर्म्म और जैनधर्म्मका भेद है। यदि उन सबके भाव और उपदेशकी इयत्ताकी "हीं" "भी" से वदल दी जाय तो उन्हीं सबका समुदाय जैनधर्म्म है।

(७) मत समझो कि जैनधर्म्म किसी समुदाय विशेषका ही धर्म्म है या हो सकता है। मनुष्योंकी तो कहे कौन जीवमात्र इसको स्वशक्त्यानुसार धारण कर तद्रूप निज कल्याण कर सकता है।

(८) जैनधर्म्मके समस्त तत्त्व और उपदेश वस्तुस्वरूप प्राकृतिक नियम, न्यायशास्त्र, शक्यानुष्ठान और विकाश सिद्धान्तके अनुसार होनेके कारण सत्य है।

(९) सर्वज्ञ वीतराग और हितोपदेशक देव, निर्ग्रन्थ गुरु और अहिंसा प्ररूपक शास्त्र ही जीवको यथार्थ उपदेश दे सकते हैं, और उन सबके रखनेका सौभाग्य एकमात्र जैनधर्म्मको ही प्राप्त है।

(१०) समस्त दु:खोंसे उद्धार करनेवाली जैनेन्द्री दीक्षा ही है। यदि उसकी शक्ति न हो तो भी वैसा लक्ष्य रख अन्याय और अभक्ष्यका त्याग करके गृहस्थ मार्गद्वारा क्रमश स्वपर कल्याण करते रहना चाहिये।

नोट—यह सूचनायें हेण्डबिलके रूपमें हजारों पृथक भी छपाई है जिनको चाहिये आध आनेका टिकट भेज कर मंगा लें और प्रचार करें। हिन्दीके अलावा उर्दू, इंग्लिश, गुजराती, मराठी और बंगलामें भी छपनेका प्रबन्ध हो रहा है।

चन्द्रसेन जैन वैद्य,
मंत्री—जैन तत्त्वप्रकाशिनी सभा—इटावा

भट्टारक मीमांसा।

जैनहितैषीमें जो भट्टारक नामक लेख कई अंकोमें छपा था, उसे पाठकोंने पढा होगा। इस लेखको विद्वानोंने बहुत पसन्द किया और हमसे प्रेरणा की कि, इसे जुदा पुस्तकाकार छपाकर उन प्रान्तोंमें फैलाना चाहिये जहा कि भट्टारकोंकी मानता होती है। इससे वहाके लोगोंकी आखें खुल जावेंगी और वे भट्टारकोंका असली स्वरूप समझकर उनके सुधारका प्रयत्न करने लगेंगे। इसलिये हम इसे शीघ्र ही जुदा छपाना चाहते है, यदि कोई धर्मात्मा मुफ्त बाटनेके लिये इसे लेना चाहें तो हम लागतके दामोंपर दे देवेंगे। आर्डर कमसे कम २५० प्रतिका लिया जायगा। पत्रव्य-वहार हमसे शीघ्र करना चाहिये।

मैनेजर श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय.
हीराबाग, पो० गिरगांव—मुंबई.

नई पुस्तकें।

धूर्ताख्यान।

छपकर तयार है। शीघ्रता कीजिये।

धर्मपरीक्षाके ढगका यह नवीन ग्रन्थ एक संस्कृत ग्रन्थके आधारसे हिन्दीमें लिखा गया है। इसमें पुराणोंकी पोलें एक मजेदार कथाके साथ खोली गई है। नामी २ धूर्तोंकी बातें सुनकर आप चकरावेगें और कहेंगे कि ये पुराण हैं या किसी मसखरेकी लिखी हुई किताबें हैं। छपाइ बहुत सुन्दर है। मूल्य सिर्फ तीन आने है। आप पढ़िये और अपने पौराणिक मित्रोंको सुनाईये।

धर्मरत्नोद्योत।

आरा निवासी बाबू जगमोहनदासजी कृत यह कविता ग्रंथ है। इसमें उपासना, प्रमाण, प्रमेय, भेदविज्ञान, उद्यमोपदेश, सुव्रत क्रिया द्वादशानुप्रेक्षा, समाधि भावना और आराधना इस प्रकार नौ अधिकार है। प्रत्येक अधिाकरमें कई कई विषयोंका वर्णन है। ग्रन्थ देखने योग्य है। सुन्दर एन्टिक पेपरपर छपा हुवा है। न्यो० १) मात्र है।

प्राणप्रिय-काव्य।

यह सुन्दर और सरस काव्य दो वर्ष पहिले जैनहितैषीमें प्रकाशित हुआ था। अब जुदा पुस्तकाकार हिन्दी अनुवाद सहित छपाया गया है। प्रत्येक सहृदयको इसे पढ़ना चाहिये। भक्तामरके चौथे चरणोंकी समस्या पूर्ति की गई है और उसमें नेमिनाथ और राजीमतीका सरस चरित्र निबद्ध किया गया है। मूल्य दो आना.

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासन जिनशासनम्॥

आठवां भाग] जेष्ठ श्रीवीर नि०सं० २४३८ [आठवां अंक.

जैन लाजिक (न्याय)।

प्रस्तावना।

हमारे जो पाठक इतिहास और साहित्य विषयपर थोडीसी भी रुचि रखते है तथा ऐतिहासिक संस्थाओंकी रिपोर्टोंके देखनेका जिनको सुअवसर प्राप्त हुआ है, वे प्रेसिडेन्सी कालिज कलकत्तेके संस्कृत तथा पाली भाषाके प्रोफेसर **पंडित सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम. ए., पी. एच. डी.** के नामसे अवश्य परिचित होंगे। आप पाली, संस्कृत, तथा अग्रेजी भाषाके अपूर्व विद्वान् है। आपने वहुतसे अग्रेजी, संस्कृत, प्राकृत, और पाली भाषाके ग्रन्थों तथा शिलालेखोंका अध्ययन करके दो वर्ष हुए १९० पृष्ठका एक ग्रन्थ लिखा है जिसका नाम 'हिस्ट्री आफ दि मिडिवल स्कूल ऑफ इन्डियन लाजिक' (History of Mediæval School of Indian Logic) है। इस ग्रन्थमें आपने जैन तथा वौद्ध न्याय शास्त्रोंका सक्षिप्त इतिहास दिया है और कलकत्तेके विश्वविद्यालयने

इसको प्रकाशित करके 'डाक्टर ऑफ फिलॉसफी' Degree of Doctor of Philosophy के कोर्समें रक्खा है। यद्यपि विद्या-भूषण महाशयने जैनियोंके विषयमें लिखते हुए स्थान स्थानपर दिगम्बर शास्त्रोंके प्रमाण दिये हैं तथापि उनके ग्रन्थसे श्वेताम्बर सम्प्रदायकी अधिक गन्ध आती है जिसका मुख्य कारण यह है कि, ग्रन्थकर्ता महाशयका श्वेताम्बर पंडितों व आचार्योंसे विशेष सम्बन्ध रहा है और उनके ग्रन्थोंका अंग्रेजी, जर्मनी इत्यादि भाषाओंमें अनुवाद हो जानेके कारण सुगमतासे आपको समागम हुआ है। इसके अतिरिक्त प्रकाशित होनेके पूर्व यह ग्रन्थ श्वेताम्बर विद्वानोंके पास संशोधनार्थ तथा समालोचनार्थ गया है और उन्होंने स्थान २ पर अपनी अपनी सम्मति प्रगट की है जिनका ग्रन्थकर्ता महोदयने सादर स्वागत किया है। अस्तु कुछ हो, हमको इस पुस्तकके प्रकाशित होनेका अभिमान है और हमारा समाज इस ग्रन्थकर्ताका आभारी है। चूं कि यह ग्रन्थ अंग्रेजी भाषामें है और जिस विषयका इसमें वर्णन है, उस विषयके विद्वान् हमारी समाजमें प्राय अंग्रेजीसे वञ्चित हैं और पुस्तकके सम्बन्धमें अंग्रेजी न जाननेके कारण कुछ भी नहीं जान सकते, अतएव हम ग्रंथके जैन लाजिक विभागका आशयानुवाद इस पत्र द्वारा पाठकोंको भेट करनेका विचार करते हैं और आशा करते है कि, हमारे पाठकगण इसको सहर्ष स्वीकार करेंगे। हम इसमें अपनी तरफसे कुछ भी न मिलायेंगे, केवल ग्रन्थकर्ताका आशय लिखेंगे, कारण इस समय इस भाषान्तरका आशय समालोचना करनेका नहीं है केवल यह दिखलाना है कि एक अन्यमती इतिहासवेत्ता विद्वान्ने हमारे विषयमें क्या लिखा है।

प्रथम अध्याय।

(ईस्वी सन् ६०७ वर्ष पूर्वसे ४९३ ईस्वी तक।)

जिन और महावीर।

१, जैनमतानुयायियोंका विश्वास है कि, जैनधर्म अनादि कालसे है। उनके कथनानुसार भिन्न २ समयमें संसारके इतिहासमें ऐसे महात्मा पैदा हुए है, जिन्होंने अपनी इच्छाओंका निरोध किया है। उनको वे जिन व तीर्थंकर कहते है। इन्हीं महात्माओंने जैनमतका प्रचार किया। उनका कथन है कि, हर एक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालमें ऐसे ऐसे चौवीस तीर्थंकर पैदा होते है। वर्तमान अवसर्पिणी कालके प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और अन्तिम **वर्द्धमान या महावीर** थे। जिन्होंने ईस्वी सन्से ५२१ वर्ष पूर्व* पावापुरीमें निर्वाणपद प्राप्त किया था। जिन शास्त्रोंको जैनी मानते है, वे महावीर स्वामीके उपदेशोंपर स्थिर हैं अर्थात् उनके उपदेशानुसार लिखे गये है। इस बातमें किसीको भी विवाद नहीं और प्राय करके सभी विद्वान् यह मानते है कि महावीर जैनमतके सस्थापक थे और उनसे पूर्वके तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथके सिवाय शेष तीर्थंकरोंके अस्तित्वके सिद्धान्तकी पीछेसे कल्पना की गई है।

श्वेताम्बरमतके मेरुतुंगकी विचारश्रेणी, जिनप्रभसुरिके तीर्थकल्प, विचार सार प्रकरण, तप गच्छ पट्टावली, इत्यादिके

---

*पणछस्सय वस्सं पण-मासजुदं गमिय वीरणिव्वुइदो सगराजो। (त्रिलोकसार, दिगम्बर) अर्थात् महावीरने शक राजाके राज्य सिंहासनपर बैठने (७८ ईस्वी) से ६०५ वर्ष पाच मास पूर्व अर्थात् ईस्वी सन्से ५२७ वर्ष पूर्व, निर्वाण प्राप्त किया। जब कि महावीर स्वामीकी ७२ वर्षकी आयु हुई, तो ईस्वीसन्से ५९९ वर्ष पूर्व वे पैदा हुए होंगे!

अनुसार महावीर स्वामीने विक्रम सम्वत्से १७० वर्ष पूर्व अर्थात् ईस्वीसन् ५२७ वर्ष पूर्व निर्वाण प्राप्त किया था।

वौनके डाक्टर जैकोबी अपने २१ अक्टूबर सन् १९०७ ईस्वीके एक पत्रमें इस प्रकार लिखनेकी कृपा करते है कि, एक दूसरी दन्तकथाके अनुसार महावीर स्वामीका निर्वाण ६० वर्ष पश्चात् अर्थात् ईस्वीसन्से ४६७ वर्ष पूर्व सिद्ध होता है (देखो परिशिष्ट-पर्वकी उत्थानिका पृष्ठ ४, कल्पसूत्रकी उन्थानिका पृष्ठ ८) यह तारीख भी ज्यादा गलत नहीं हो सकती कारण कि महावीर स्वामीका बुद्धदेवसे (जिनकी मृत्यु ईस्वीसन्से ४७० और ४८० वर्षके बीचमें मानी जाती है) कुछ वर्ष पहले शरीरान्त हुआ है।

श्वेताम्बर दिगम्बर।

२ जैन लोग दो सम्प्रदायोंमें विभाजित है —एक श्वेताम्बर जो श्वेत वस्त्र धारण करते है और दूसरे दिगम्बर जिनका दिशा ही वस्त्र है अर्थात् नग्न। श्वेताम्बर लोग अपनेको दिगम्बरियोंसे प्राचीन कहते है और इनके पृथक् सम्प्रदायका अस्तित्व ईस्वीसन् ८२ से अर्थात् महावीर स्वामीके निर्वाणके ६०९ वर्ष पश्चात्से कहा जाता है। (क्रमश)

दयाचन्द्र गोयलीय बी , ए , ललितपुर.

---

१ श्वेताम्बर कहते हैं —छव्वाससयाइ णवुत्तराइं तईया सिद्धिं गयस्स वीरस्स तो बोडियाण दिट्ठो रहवीरपुरे समुप्पण्णो" अर्थात् दिगम्बरमतका रथ वीरपुरमें महावीर स्वामीके निर्वाणके ६०९ वर्ष पश्चात् प्रचार हुआ (आवश्यक निरुक्ति ५२)। परन्तु दिगम्बर लोग इस बातसे इंकार करते हैं और कहते हैं कि, श्वेताम्बर विक्रम सम्वत् १३६ अर्थात् ईस्वीसन् ८९ में प्रगट हुए। देखो भद्रबाहु चरित्र ४ ५५.

मृते विक्रमभूपाले षट्त्रिंशदधिके शते।
गतेऽब्दानामभूल्लोके मतं श्वेताम्बराभिधम् ॥

विनोद–विवेक–लहरी।

(२)

पतंग.

बाबूके बैठकखानेमें फानूस जल रहा है। मैं पास ही तकियेके सहारे बैठा हू। बाबूजी इधर उधरकी गप्पें हांक रहे है और मैं अफीमके नशेमें झूम रहा हू। गप्पोंमें अन्य मनस्क हो जानेके कारण अफीमकी मात्रा कुछ ज्यादा हो गई है। क्या किया जाय? विधाताकी इच्छा ही ऐसी थी। इस अखिल ब्रह्माडकी अनादि क्रिया परम्पराके दफ्तरमें उसने यह पहलेहीसे लिख रक्खा था कि, कमला-कात चक्रवर्त्ती उन्नीसवीं शताब्दिमें जन्म ग्रहण करके आज रातको नसीराम बाबूके बैठकखानेमें बैठकर अफीम चढ़ा जायगा। तब मेरी क्या शक्ति, उसे अन्यथा कर सकूं।

झूमते झूमते मैने देखा कि, एक पतङ्ग (पतंगा) फानूसके चारों ओर घूम रहा है और "चों-ओं-ओं-ओं" "चों-ओं-ओं" शब्द कर रहा है। अफीमकी झोंकमें मै सोचने लगा, पतंगकी भाषा क्या समझी नहीं जा सकती है? कुछ देर तक कान लगाकर सुना, परन्तु कुछ समझमें नहीं आया कि, यह क्या कह रहा है। तब मन ही मनमें मैने पतंगसे कहा कि, मेरी समझमें नहीं आता है तू क्या "चों-चों" कह रहा है। उसी समय अफीम महादेवीके प्रसादसे मुझे दिव्यकर्ण प्राप्त हो गये। सुना, पतग कह रहा है कि "मै प्रकाशसे बातचीतकर रहा हूं, तुम चुप रहो।" मैं चुप हो रहा और पतगका वक्तव्य सुनने लगा। पतंग कह रहा है.—

"देखो, प्रकाशमहाशय, तुम उस समय बहुत भले थे। पीतलके शमादानके फूलपर तुम्हारा आसन रहता था और हम स्वच्छन्द-

तासे पड़कर जल जाते थे। इस समय तुम परदेके भीतर छुप रहे हो—हम चारों ओर भटकते फिरते है—भीतर प्रवेश करनेका मार्ग नहीं पाते है और इसलिये जलके मर नहीं पाते।

"देखो जल मरनेका हमको चिरकालसे अधिकार मिला हुआ है। हमारी पतंग जाति हमेशासे प्रकाशमें जलकर मरती आ रही है। कभी किसी भी प्रकाशने हमारी इस इच्छाका व्याघात नहीं किया है। तेलके प्रकाशने, मोमबत्तीके प्रकाशने, लकड़ीके प्रकाशने, गरज यह कि किसी भी प्रकाशने हमको कभी नहीं रोका है, फिर हे प्रभो, आज तुम काचके कोटमें बैठकर हमें क्यों रोक रहे हो? हम गरीब पतङ्ग है—हमपर यह सहमरण निषेधका कानून क्यों जारी करते हो? हम क्या हिन्दुओंकी स्त्रिया है, जो जलके नहीं मर सकेंगी?

"देखो, हिन्दुओंकी स्त्रियोंमें और हममें बहुत बडा अन्तर है। हिन्दुओंकी स्त्रिया जब तक आशा भरोसा रहता है, तब तक कभी मरना नहीं चाहती हैं, पहले विधवा हो जाती है, तब जलनेको तयार होती है। परन्तु हम तो सर्वदा ही आत्मविसर्जन करनेके लिये तयार रहते है। फिर हमारे साथ स्त्री जातिकी तुलना कैसी?

"यह ठीक है कि, हम लोगोंके समान स्त्री जाति भी रूपकी शिखाको जलती हुई देखकर कूद पडती हैं और इसका परिणाम भी एक ही होता है। हम भी जल मरते है और वे भी मरती हैं, परतु देखो उस जलनेमें उन्हें सुख है हमें तो सुख नहीं है? हम तो केवल जलनेके लिये जलते है और मरनेके लिये मरते है। क्या स्त्री जाति ऐसा कर सकती है? फिर हमारे साथ उसकी तुलना क्यों?

"सुनो, यदि जलते हुए रूपमें शरीरकी आहुति नहीं दी, तो फिर यह शरीर ही किस लिये है? अन्य जीव क्या सोचते है,यह तो हम नहीं कह सकते, परन्तु हमारी पतंग जाति यह नहीं सोच सकती है कि, हमारा यह शरीर किस लिये है? और इसको रखकर हम क्या करेंगे? प्रतिदिन फूलोंका मधुपान करते है? प्रतिदिन विश्व प्रफुल्लकर सूर्यकिरणोंमें विचरण करते है। भला, इसमें क्या सुख है? फूलोंकी वही एक ही गन्ध, मधुकी वही एक ही मिष्टता और सूर्यकी वही एक ही प्रकाशकी प्रतिमा फिर कहो, ऐसे असार, पुरातन और विचित्रता-शून्य जगतमें रहकर क्या करेंगे? आओ, काचके बारह आओ, तुम्हारी जलन्तरूप, शिखापर हम अपना शरीर निछावर कर दें।

"देखो, हमारी भिक्षा बहुत ही छोटी है। हम अपने प्राण तुम्हें देवेंगे तुमसे हम कुछ नहीं चाहते है। फिर तुम्हारी इसमें क्या हानि है? तुम रूप हो—जलानेके लिये जन्मे हो, हम पतंग है—जलनेके लिये जन्मे है। आओ, जिसका जो काम है, उसे कर डालें। तुम हंसते रहना, हम जल जावेंगे।

"तुम सारे संसारको जला देनेकी शक्ति रखते हो, जगतमें ऐसा कोई नहीं है जो तुम्हारी शक्तिको रोक सके—फिर तुम काचके भीतर क्यों घुसे हो? तुम जगतकी गतिके कारण हो, फिर किसके भयसे काच महलके भीतर छुपे हो? तुम तो विश्वव्यापी हो, क्या इस काचको तोड़कर हमको दर्शन नहीं दे सकते हो?

"तुम कौन हो, यह हम नहीं जानते। हम और कुछ नहीं जानते, केवल इतना ही जानते है कि, तुम हमारी वासनाकी वस्तु हो। जगतके ध्यान हो, निद्राके स्वप्न हो, जीवनकी आशा हो और मरणके आश्रय हो। तुम्हें कभी नहीं जान सकेंगे—जाननेकी चाह

भी नहीं है। जिस दिन जानेंगे, उस दिन हमारा सुख नष्ट हो जायगा। कान्यवस्तुका स्वरूप जान चुकनेपर उसमें सुखकी भावना कैसे रह सकती है?

"क्या तुमको हम नहीं पासकेंगे? देखें, तुम कितने दिन काचके भीतर रहते हो। क्या हम इस काचको नहीं तोड सकेंगे? अच्छा रहो, हम छोडनेवाले नहीं हैं। फिर कभी देखा जावेगा. इस समय तो जाते हैं—वों—ओं—ओं—पतग उड़ गया।

नसीराम बाबूने पुकारा—"कमलाकान्त ' मै चौंक पड़ा—मालूम हुआ कि. लुड़ककर तकियेके नीचे आ गया हूं। नसीराम बाबूकी ओर आंखें फाड़कर देखा, तो भी उन्हें पहिचान नहीं सका। ऐसा मालूम हुआ कि. एक वृहदाकार पतंग तकियेसे झुका हुआ हुक्का पी रहा है। वे बातें करने लगे—मुझे मालूम होने लगा कि, पतग 'वों-वों' करके कुछ बोल रहा है। इसी समयसे मुझे जान पडने लगा कि, संसारमें जितने मनुष्य हैं, वे सब पतंग हैं और उन सबके लिये कोई न कोई एक अग्नि है। सब ही उस अग्निमें जलकर मरना चाहते हैं और सब ही यह सोचते हैं कि, हमको इस अग्निमें जल मरनेका अधिकार है। कोई मर जाता है और कोई काचका विघ्न आ पड़नेसे बच जाता है। ज्ञानाग्नि. धनाग्नि, मानाग्नि. रूपाग्नि. धर्माग्नि, इंद्रियाग्नि आदि नाना अग्नि है। सारा ही ससार अग्निमय है और ससार काचमय भी है। जो प्रकाश देखकर मोहित होते है—मोहित होकर उसमें कूद पड़ना चाहते हैं उनमेंसे कितने ही कूद नहीं सकते हैं, इसलिये लौटकर 'वों' करके चले जाते हैं और फिर चक्कर लगाने लगते हैं। यदि यह काचका आवरण न होता, तो ससार अब तक जल जाता। यदि

सारे ही धर्मज्ञ धर्मको अपने मानस प्रत्यक्ष कर सकते, तो कितने मनुष्य बच सकते थे? बहुतसे मनुष्य ज्ञानाग्निके आवरण-काचसे रुककर बच जाते है। साक्रेटीज और गेलीलिओ जल मरे। रूपाग्नि, धनाग्नि, और मानाग्निसे प्रतिदिन हजारों पतंग मरते है। यह हम अपनी आखोंसे निरन्तर ही देखते है। इस अग्निके दाहका जिसमें वर्णन होता है, उसे पंडितोंकी भाषामें काव्य कहते हैं। महाभारतके कर्त्ताने मानाग्नि उत्पन्न करके उसमें दुर्योधन पतङ्गको जलाया और जगतमें अतुलनीय काव्य ग्रन्थकी सृष्टि की। ज्ञानाग्निके दाहका गीत Paradise Lost नामक अग्रेजी ग्रन्थमें है। धर्माग्नि-का अद्वितीयकवि 'सेण्टपाल' गिना जाता है। भोगाग्निके पतंग "एण्टोनी क्लीयोपेट्रा," रूपवह्निके "रोमिओजुलियट" ईर्षावन्हिका "अथेल्लो" "गीतगोविन्द" और "विद्यासुन्दरमें" इंद्रिय-वन्हि जल रही है। स्नेहाग्निमें सीतापतङ्गके जलानेके लिये रामायण की सृष्टि हुई है। अग्नि क्या है, यह हम नहीं जानते है। रूप, तेज, ताप, क्रिया, गति इन सब बातोंका अर्थ हमारी समझमें नहीं आता। यहापर दर्शन हार मानते है। विज्ञान हार मानता है, धर्म ग्रन्थ हार मानते है, और काव्यग्रन्थ हार मानते है। ईश्वर क्या है, धर्म क्या है, स्नेह क्या है. ये सब क्या है, हम कुछ नहीं जानते। तो भी उस अलौकिक अपरिज्ञात पदार्थके चारों ओर भटकते फि-रते है। हम पतग नहीं, तो और कौन है?

देखो भाई, पतंगगण, इस तरह भटकते फिरनेमें कुछ लाभ नहीं है। यदि अग्निमें पड़कर जल सको, तो जलमरो। नहीं तो जाओ 'वों' करके चले जाओ।

धर्मवीरोंसे पुकार ।

कमर कस लो धरमवीरो, उठालो जैनका झंडा ।
जगत उद्धार करनेको, बजा दो धर्मका डंका ॥ टेक ॥ १ ॥
नहीं है [१]तर्का मौरूसी, किसीका जैनमत प्यारो ।
सुनाकर सबको जिनवानी, मिटा दो उनकी सब शंका ॥ २ ॥
जगत मिथ्यात-सागरमें, ये देखो ! खा रहा गोते ।
करो उद्धार अब जल्दी, लगा सम्यक्तकी नैय्या ॥ ३ ॥
जगतमें पाप है फैला, हुआ परचार हिंसाका ।
दयाधर्मी ! दयाकर खोल दो मारग अहिंसाका ॥ ४ ॥
* हटा दो अब स्वार्थको जीसे, बनो समुदारचित भविजन ।
दयाका हाथ फैलाकर, करो उपकार सब जगका ॥ ५ ॥
तुम्हारे धर्मपर मोहित, तुम्हारे तत्त्वके [२] कायल ।
तुम्हारी जो शरण आवें, करो सन्मान तुम उनका ॥ ६ ॥
'जुगल' सोओ न गफलतमें, उठो जागो कमर बांधो ।
अविद्या दूरकर सारी, करो परचार जिनमतका ॥ ७ ॥

जातिसेवक—

जुगलकिशोर मुखतार, देवबन्द

---

१ पैतृक संपत्ति । २ परीक्षापूर्वक श्रद्धान करने (मानने) वाले ।

*इसके स्थानपर उर्दूका ऐसा भी पाठ है—"करो अब तर्क खुदगर्जी, कुशादा दिल बनो साहब,"

सालभरमें एकबार तो याद कर लिया करो।

अपने नामोंको जाति हितैपिताकी पदवीसे अलंकृत करनेवालो, और पत्रान्तमें जाति सेवक इत्यादि शब्दोंका प्रयोग करनेवालो, क्या तुम सचमुच ऐसे ही हो। क्या तुमने अपने जीवनका कभी एक दिन भी उन जाति वीरोंकी यादमें गिनाया है जिन्होंने अपने प्राणोंको जातिके उद्धारके लिये तृणकी बराबर कदर नहीं की थी? क्या तुमने कभी उन नेताओंका जीवनचरित पढ़ा है जिन्होंने वर्षो गृह छोड़ कर केवल जातिके उपकारार्थ भयानक जगलोंमें रह-कर जीवन व्यतीत किया है। जिनकी हड्डियाँ कभी २ अंग्रेजों द्वारा खुदवाये हुए स्थानोंमें पाई जाती है। प्रथम तो हमारे प्रश्नका उत्तर आप महाशय " नहीं " ही देंगे, यदि किसीने बहुत साहस किया तो शायद डरता हुआ हाँ हाँ हाँ कहता रह जायगा। लज्जाका स्थान है कि, तुमने उनकी याद तक न की। जिन्होंने तुम्हारे लिये इतना कष्ट उठाया और यदि तुम धन्यवाद नहीं दे सकते थे तो कृतघ्नी क्यों बने जो कुछ तुमने ज्ञान प्राप्त किया है वह उन्ही नेताओंकी मास, हड्डी रुधिर इत्यादिकी बदौलत है। यदि वे लगातार परिश्रमके द्वारा दिन और रात पसीना बहाकर जाड़े और गर्मीका विचार न करते हुऐ ऐसे अनुपम ग्रथोंकी रचना न कर गए होते, तो आप सभामें खडे होकर व्याखान देनेका साहस न कर सकते। केवल इतना ही नहीं किन्तु आप अपने पाँवोंपर खड़े हुए लड़ खड़ाते। अय कृतघ्निओ, एक दिनतो साल-भरमें उनको याद कर ही लिया करो। चाहिए तो यह था कि, प्रत्येक जैनीके घरमें निकलंक देवके देहत्यागके दिन एक अकथनीय विलक्षणता देखनेमें आती। चाहिए तो यह था कि,

अकलंकदेवका स्वर्गवासका दिन प्रत्येक जैनीकी जिव्हापर रहता। चाहिए तो यह था कि, टोडरमलजी जैसे महान् विद्वान्का चित्र प्रत्येक जैनीके कमरेकी शोभा बढाता। परन्तु यह तो बड़ी वडी वात, आज कल सौ प्रतिदस मनुष्य कठिनतासे ऐसे मिलेंगे जो इन महान् पुरुषोंके जीवन चरित्रसे भी परिचित हों। जैन जातिके विद्वानो, अब क्यों हमारे हृदयको जलाते हो और इस अङ्कित पग चिन्होंको मिटाते हो। क्यों तुम उसी हाडीमें खाकर द्वेष करते हो? क्यों तुम वृक्षकी छायामें बैठकर उसीको काटते हो? अब भी सँभलो, नहीं तो ऐसे डूबोगे कि, थाह भी नहीं मिलेगा। देखो, अभी तो इन पग चिन्होंपर धूल ही पडी है। आओ और जल्दीसे इनको चमकाओ, नहीं तो फिर यह इतने दब जायगे कि, तुमको इनकी स्थितिका भान भी न रहेगा। यदि तुममें जरा भी अपने पूर्वजोंका अश बाकी है, तो प्रतिज्ञा करो कि तुम अपने धर्मपर जान देनेवालोंको साल भरमें एक दिन अवश्य याद कर लिया करोगे।

दीपचंद,

विद्यार्थी—ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम, हस्तिनापुर।

सभ्यता।

हम प्रश्न किया चाहते हैं कि, सभ्यता क्या वस्तु है और किन २ पदार्थोंसे सम्बन्ध रखती है? क्या यह कोई कृत्रिम वस्तु है या प्रकृतिने ही इसे मनुष्यकी प्रकृतिमें उत्पन्न किया है? इसका अर्थ क्या है? क्या यह कोई पारिभाषिक शब्द है जिसको सर्व साधारण मनुष्योंने या सिद्धांतकारोंने स्थापितकर लिया है, या कोई ऐसी

वस्तु है कि जिन २ पदार्थोंसे उसका सम्बन्ध है वे प्रकृतिके नियमोंमें पाये जाते है। इस विषयके निर्धारके लिए मनुष्यके विचारों और कार्योंपर दृष्टि डालना चाहिए। यदि सभ्यता एक स्वाभाविक वस्तु है, तो ग्रामीण और शहरके मनुष्योंमें सबमें उसका पता मिलेगा। उसकी आकृतिया भले ही भिन्न २ दिखाई देती हों परतु सबकी जड एक ही होगी। मनुष्यमें एक यह स्वाभाविक बात है कि, वह अपने विचारोंके अनुसार किसी वस्तुको पसद करता है और किसीको नापसद करता है, या दूसरे शब्दोंमें यों कहिये कि, किसीको अच्छा ठहराता है और किसीको बुरा और उसका यह जी चाहता है कि उस बुरी चीजकी दशाको ऐसी दशामें परिवर्तन करले जिसको अच्छा समझता है। यही चीज सभ्यताकी जड है जो मनुष्योंके प्रत्येक समूहमें और प्रत्येक व्यक्तिमें पाई जाती है। इसी परिवर्तनका नाम सभ्यता है, और यह परिवर्तनकी इच्छा मनुष्यमें स्वाभाविक है।

अतएव सभ्यताकी ओर मनुष्यका स्वभाव आकर्षित होनेके दो नियम ठहरे—अच्छा और बुरा, और बुरेको अच्छा करना सभ्यता ठहरी। परन्तु अच्छा बुरा ठहरानेके लिये भिन्न २ स्वाभाविक, प्राकृतिक. लौकिक, और सामाजिक, कारण ऐसे होते है, कि, उनसे जातियोंकी सभ्यतामें अन्तर पड़ जाता है। एक जाति जिस बातको अच्छा समझती है दूसरी जाति उसी बातको बहुत बुरी और असभ्य ठहराती है। सभ्यतामें यह भिन्नता जातियोंमें होती है व्यक्तियोंमें नहीं और यदि होती है तो बहुत ही कम। जब मनुष्योंका एक समूह किसी स्थानपर एकत्रित होकर बसता है, तो प्राय उसकी आवश्यकताएँ, उसके भोज्य पदार्थ, उसके

वस्त्र, उसका ज्ञान, उसके विचार, उसकी आनदकी वातें, उसकी घृणित वस्तुएँ सब समान होती हैं और इसी लिए बुराई और भलाईके विचार भी सबमें समान उत्पन्न होते हैं। बुराईको भलाइमें परिवर्तन करनेकी इच्छा भी सबमें एकसी होती है और परिवर्तनकी यही समुदित इच्छा या समुदित इच्छासे वह परिवर्तन उस जाति या समूहकी सभ्यता है। परन्तु जब भिन्न २ जातिया पृथक् २ स्थानोंमें निवास करती है, तो उनकी आवश्यकताए और इच्छाएँ भी भिन्न २ होती है और इस कारणसे सभ्यताके विचार भी भिन्न भिन्न होते है। किन्तु अवश्य कोई ऐसी बात होगी, जो सभ्यताकी उन भिन्न २ दशाओंका निर्धार कर सके।

सामाजिक व्यवस्थाओंका जहा तक कि वे रहनसहनसे सम्बन्ध रखती हैं न कि चिंता, विचार, और मस्तकसे—सभ्यतासे विशेष सम्बन्ध नहीं होता किन्तु केवल मनुष्यके उस विचारका उससे सम्बन्ध है जिसके कारण वह अच्छा और बुरा ठहराता है और जिस कारणसे उसके हृदयमें परिवर्तनकी इच्छा होती है और वह परिवर्तन होता है, जो सभ्यता कहलाती है। अतएव सभ्यताकी भिन्न २ व्यवस्थाओंका निर्धार वे कारण कर सकते हैं, जिनके कारण भले बुरेका विचार दिलमें आता है।

विचारोंकी स्थिरता और पसदका सशोधन, ज्ञानकी बहुलता और विज्ञानकी परिचयतापर निर्भर है। मनुष्यके ज्ञानकी प्रति दिवस वृद्धि होती जाती है और उसके साथ सभ्यता भी बढ़ती जाती है। क्या आश्चर्य है कि, भविष्यतमें कोई ऐसा समय आवे जब मनुष्यकी सभ्यतामें ऐसी उन्नति हो कि इस समयकी सभ्यताको भी लोग ऐसे ही ठडे दिलसे देखें जैसे कि हम अपने पूर्वजोंकी

सभ्यताको ठंडे परन्तु विनययुक्त दिलसे देखते है। सभ्यता या यों कहिये कि बुरी दशासे अच्छी दशामें लाना, ससारकी और समस्त वस्तुओंसे, चाहे वे जड़ हों या चैतन्य संबंध रखती हैं और समस्त मनुष्योंमें पाई जाती है। दु:खसे निर्वृत्ति और सुखप्राप्तिका सबको समान खयाल है। शिल्प कलाकौशल्य और उसको उन्नति देना संसारकी समस्त जातियोंमे विद्यमान है। जहा एक शिक्षित जाति हीरे मोतियोंसे अति उत्तम और सुन्दर आभूषण बनाती है, वहां अशिक्षित जाति भी कोड़ियों और पोथों (चीन) से अपनी सुन्दरताकी सामग्री एकत्रित करती हैं। शिक्षित जातिया अपनेको सुसज्जित करनेमें सोने, चांदी और मूंगे मोतियोंको काममें लाती है। अशिक्षित जातियॉ भी पक्षियोंके सुन्दर रंग बिरगे परोंको सुनहरी पोशत और नीलम कैसे रंगकी बारीक और शोभनीय घासमें गूंथकर अपने आपको सुशोभित करती है। शिक्षित जातियोंको अपने वस्त्राभरणके ठीक करनेका खयाल है, अशिक्षित भी उसके ठीक करनेमें लगे हुए है। राजाओंके मकान अति सुन्दर और शोभायमान बनते है, अशिक्षित भी उसके ठीक करनेमें लगे हुए है। राजाओंके मकान अति सुन्दर और शोभायमान बनते है, अशिक्षित जातियोंके झोंपड़े और उनके रहनेके घोंपे, वृक्षोंपर बाधे हुए टाड, जमीनमें खोदी हुई गुफाऍं भी सभ्यतासे खाली नहीं है। गृहस्थकी सामग्री, पारस्परिक सम्बन्धके नियम, मेल जोलके कार्य्य, हर्ष आनंदकी सभाऍं, प्रेम और भक्तिके चिन्ह दोनोंमें (शिक्षितों वा अशिक्षितोंमें) पाए जाते है। ज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाले विचारोंसे भी अशिक्षित जातियॉ वचित नहीं बल्कि कुछ चीजें उनमें विशेष वास्तविक और स्वाभाविक रीतिसे दृष्टिगोचर होती है। जैसे कविता जो एक उत्तम

कौशल्य शिक्षित जातियोंमें है अशिक्षित जातियोंमें भी असाधारण उत्तमता और सुन्दरतासे पाया जाता है। वहां केवल ख्याली बातें प्रगट की जाती हैं, यहा आन्तरिक उत्साहों और हार्दिक जोशोंका प्रकाश होता है। निःसन्देह गायनविद्याने शिक्षित जातियोंमें विशेष उन्नति प्राप्त की है, परन्तु अशिक्षित जातियोंमें भी उसने अद्भुत शोभा धारण की है। शिक्षितोंमें हाव भाव और आवाजका फरत, उसका घटाव, और उसका बढ़ाव, उसका ठहराव और उसकी उपज हाथोंका भाव और पैरोंकी धमक अधिक तर नियोजित नियमोंके आधीन है परन्तु अशिक्षित जातियोंमें ये सब चीजें हार्दिक जोशकी तरंगें हैं। वे लय, ताल, और रागरागनीको नहीं जानते किन्तु दिलकी लहर उनकी लय और दिलकी फड़क उनका ताल है। यद्यपि उनका गोलबांधकर खड़ा होना स्वाभाविक हलन चलनके साथ उछलना, दिलकी आकस्मिक उमंगोंसे झुकना फिर जोशमें आकर सीधा हो जाना, आज कलकी नजाकत और गायनविद्याके तत्त्वोंसे खाली है, तथापि वह स्वाभाविक जोशों और उमंगोंकी अवश्य तसवीर है। दिली उमंगोंका रोकना और उनको उत्तम दशामें रखना दूसरी समस्त जातियोंके विचारोंमें है. अतएव जिस प्रकार हम सभ्यताका स्वाभाविक सम्बन्ध सर्व मनुष्योंमें पाते हैं, उसी प्रकार उसका सम्बन्ध सजीव अथवा निर्जीव सम्पूर्ण पदार्थोंमें देखते हैं। जिस वस्तुमें उन्नति अर्थात् बुराईसे भलाईकी ओर झुकने या नीचेसे ऊंची श्रेणीकी ओर जानेकी शक्ति है, उसीसे सभ्यता भी सम्बन्ध रखती है।

अतएव सभ्यता क्या है? मनुष्यकी इच्छित क्रियाओं हार्दिक विचारों और दिली जोशोंको सम रखना, समयको प्रिय समझना,

कार्य्योंके कारणोंको ढूंढ़ना और उनका शृंखलाबद्ध रखना, शिष्टाचार, रहनसहन, खानपान, कलाकौशल, ज्ञानविज्ञानको यथासम्भव प्राकृतिक सुन्दरता और स्वाभाविक उत्तमतापर पहुचाना तथा उनको समीचीनतासे कार्य्य रूपमें लाना। इसका परिणाम क्या है? धार्मिक आनंद, शारीरिक सुख, सच्ची प्रतिष्ठा और आत्मगौरव। और वास्तवमें यह पिछली एक बात है जिससे मनुष्यत्व और पशुत्वमें भेद होता है।*

दयाचन्द्र जैन, बी. ए.

क्षेत्रपाल, ललितपुर।

विलक्षण धैर्य।

महाराष्ट्र प्रान्तमें वीर केसरी शिवाजीमहाराजने जो स्वराज्यका वीज बोया था, उसमें अभी अंकुर निकल रहा था। आज आठ ही दिन हुए कि, महाराजने चाकनका किला अपने अधिकारमें किया था और उसके समुचित प्रवध करनेको वे वहां थोडे दिनोंके लिये ठहर गये थे। आज किलेकी व्यवस्था ठीक हो जानेके कारण महाराज प्रसन्नतासे महलमें सोनेके लिये गये। और एक प्रकारकी निश्चिन्तताके कारण शय्याका आश्रय लेते ही उनकी आख लग गई।

थोड़ी ही देर नहीं हुई थी कि, महाराज अचानक जाग पड़े आख खोलते ही उन्होंने देखा कि, सिरानेकी तरफ एक अल्पवयस्क पुरुष हाथमें वड़ासा छुरा लिये खड़ा है; और समझ लिया कि, आज मेरे प्राणोंपर आ बनी है। यद्यपि उनकी 'भवानी' नामकी

---

* स्वर्गीय सर सैय्यद अहमद, के. सी. एस. आई. एल. एल. डी. के 'सिवलीजेशन' नामक लेखका अनुवाद।

प्यारी तलवार पास ही खुटीपर टगी थी, परन्तु पड़े २ उस तक हाथ पहुचाना उनकी सामर्थ्यसे बाहिर था। उनके नेत्र अभी भले प्रकार खुले न थे, तो भी उनके प्रशान्त गंभीर मुखपर जो मानासिक चलविचलकी छाया पडी थी, उसे युवक भाप गया और उसने उनके लगाये हुए स्वराज्यरूपी पौधेपर अन्तिम घाव मारनेके लिये अपना हाथ ऊपर उठाया। महाराजमें प्रसगावधानता बड़ी विलक्षण थी। संकटके समय रक्षा करनेके लिये जिन दाव--पेचोंकी जरूरत होती है, उनमें वे सिद्धहस्त थे। वे युवकके इस भयंकर कृत्यसे किंचित् भी भयभीत नहीं हुए। उन्होंने विद्युद्वेगसे लपककर युवककी गर्दन ऐसे जोरसे पकड़ ली कि, युवकने उसको छुडानेके लिये अनेक उपाय किये, परन्तु वे सब निष्फल हुए। महाराजने लेटे ही लेटे युवककी गर्दन पकड़ी थी, इस लिये इस अवस्थामें वे बहुत समय तक नहीं रह सकते थे। उन्होंने एक दो बार गर्दनको छोड़े बिना ही उठनेका प्रयत्न किया, परन्तु वह व्यर्थ ही हुआ।

युवकने अपनी गर्दन छुड़ाने और इष्टसिद्धि करनेका निश्चय करके दाहिने हाथका छुरा बायें हाथमें लिया और महाराजपर वार करनेके लिये ज्यों ही उसे उसने ऊपर उठाया, त्यों ही किसीने पीछेसे आकर उसका वह हाथ जोरसे पकडकर उसे पीछे खींच लिया। महाराज उठकर खडे हो गये। उन्होंने देखा कि, उनके खूनके प्यासे युवककी छातीपर एक बलवान् पुरुष चढ़ बैठा है और वह उनका अतिशय प्यारा मित्र है। वे इस मित्रका पहलेसे ही बहुत आदर करते थे परन्तु आज उस आदरकी मात्रा सौ गुणी बढ़ाई। उनके नेत्र कृतज्ञतासे भर आये और कठ गद्गद हो गया। उन्होंने स्नेहयुक्त स्वरसे पुकारा--"तानाजी"।

महाराजकी हाक सुनते ही तानाजीने युवकके हाथसे छुरा छीनकर उसे उनके सन्मुख खड़ा किया। उस युवकके—युवक क्यों सोलह वर्षके लड़केके—इस साहसको देखकर महाराज बहुत विस्मित हुए। परन्तु उन्होंने अपनी इस मनोगत आश्चर्यकी तरंगको मुख-पर न आने दिया और अपनी तीक्ष्ण तथा भेदभरी दृष्टिसे कुमारकी और देखा। उसकी मुद्रा बिलकुल बेफिकर दिखाई देती थी। महाराज अत्यंत गम्भीर स्वरसे बोले—तेरा अपराध कितना भारी है, इसकी तो कल्पना तुझे होगी ही। मुझे तो अपने मरनेकी कुछ चिन्ता नहीं है, परन्तु मैने अपने हाथमें जो महाराष्ट्र देशके उद्धार-का कार्य लिया है, उसमें बाधा आजाती और मेरी इच्छा मनकी मनमें ही रह जाती।

महाराजके प्रश्नका उत्तर कुमारने भी वैसे ही गम्भीर भावसे दिया "मुझे अपने अपराधकी पूरी २ कल्पना है। इसके बदलेमें आप मुझे चाहे जितना कठिन दंड देवें, मैं उसे भोगनेके लिये तैयार हूं। आप खुशीसे मुझे तोपके मुह पर रख दीजिये। मरनेका मुझे ज़रा भी भय नहीं है।"

लडकेके इस मनोधैर्यको देखकर महाराजको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। वे अबकी बार कुछ कोमलस्वरसे बोले "मुझे इस बातका आश्चर्य है कि, तेरे समान भोले लड़केसे यह दुष्ट कार्य कैसे हुआ? क्या तू चाहता है कि, महाराष्ट्रदेशमें हिन्दुओंका राज्य न हो? और यह मुझे याद नहीं आता कि, मैने कभी तुझे कुछ हानि पहुं-चाई है। इसलिये मालूम होता है कि, तू किसीके कहनेसे इस दुष्ट कार्यके करनेके लिये तैयार हुआ था। यदि तू सच २ बतला देगा, तो मैं तेरा अपराध क्षमाकर दूंगा। तू अभी बालक है।"

" महाराज क्षमा कीजियेगा। आपने यह कैसे समझ लिया कि, मै मरनेके भयसे किसीके गुप्त रहस्यको प्रगट कर दूगा ? क्या मैं इतना नीच हूं ? यदि आप इसका रहस्य जानना चाहते है, तो इसके बदले मेरे सिवाय और सबको क्षमा प्रदान कीजिये। मुझे आप जो उचित समझें. वह दंड देवें, मै उसे सहर्ष स्वीकार करनेको तत्पर हूं।"

' अच्छा, मैने अन्य सबके अपराधको क्षमा कर दिया, तू अपनी सारी बातें सुना।"

" महाराज मुझे मेरे पेटने इस हत्याके कार्यमे प्रवृत्त किया है।' आज दो वर्ष हुए मेरे पिता आपकी लड़ाइमें मर चुके है। घरमें मैं हूं और मेरी माता है। गरीवी क्या चीज है, यह आप जैसे राजा महाराजा नहीं जान सके। आज चार महीने होगये, हम दोनों आधे पेट भोजन करके रहते है। धनके लोभसे मैने यह कार्य स्वीकार किया था। क्योंकि मुझसे अपनी माताका असह्य दुःख देखा नहीं जाता था। सुभानरावने आपकी हत्या करनेके बदले मुझे सौ रुपया देनेका वचन दिया था और पेटकी प्रेरणासे मैने इन निन्दनीय कृत्यके करनेका सकल्प किया था। यही मेरी सारी कहानी है। मुझे अपने प्रयत्नमें सफलता नहीं हुई, इस लिये आपके दिये हुए दंडको मुझे भोगना ही पड़ेगा।'

महाराजका हृदय दयार्द्र हो गया। बालकके कार्यसे उन्हें एक प्रकारका कौतुक मालूम होने लगा। परन्तु भली भाति उसके धैर्यकी परीक्षा करनेके लिये वे बोले-" तानाजी! इसे अभी तोपमे उड़ा दो!"

इस आज्ञाको सुनते ही उसके आंसू भर आये। वह विनीत स्वरमे

बोला " महाराज ! मुझे अपनी माताके दर्शन करनेको दो घड़ीकी छुट्टी दीजिये। मेरे एकाएक लुप्त हो जानेसे उसे बड़ा दु ख होगा।"

" यदि तू एक बार छोड़ दिया गया, तो फिर तेरे लौटनेकी आशा करना भ्रम है। जान बूझकर कालके गालमें जानेको कौन तैयार होगा ? तू यहासे छूटा कि, अपने छिपने योग्य किसी सुरक्षित स्थानके ढूंढ़नेमें लगेगा।"

" महाराज ! मेरे कहनेपर विश्वास कीजिये। यदि मै नियत समयपर न लौटू, तो आप मुझे मराठेका पुत्र न कहकर खुशीसे वर्ण-सकर कहिये। आपको यदि अपनी माताके प्रेमकी कल्पना होगी, तो मुझे आशा है कि आप मुझे अपनी जननीसे अन्तिम भेंट करनेकी आज्ञा अवश्य देंगे।"

महाराजने सिर हिलाकर जानेका इशारा किया। आज्ञा पाते ही युवकका हृदय आनन्दसे उछल पड़ा। वह बोला—" महाराज आपके इस बर्तावसे मुझे विश्वास होता है कि, आप बहुत उदार है। इस समय मेरा ऐसा जी होता है कि, आपके हृदयसे लग कर भेंट लूं।"

" क्या इतने ही में ? नहीं, यदि तेरी इच्छा है, तो तू लौटकर तोपके मुंहपर जानेके पूर्व मुझसे भेंट कर सकता है। जो पुरुष मृत्युसे डरता है, उसके आलिंगनको मै अग्निके समान समझता हूं।"

इसके बाद ही युवक वहासे अदृश्य हो गया। उसके चले जानेपर कुछ समय तक वहा निस्तब्धता रही। इस सन्नाटेको भंग करते हुए महाराज बोले—"तानाजी ! तुमने मेरे साथ न जाने कितने उपकार किये है। प्रत्येक विपत्तिसे छुडानेके लिये तुम ही तैयार रहते हो। सच पूंछो, तो संसारमें जीवके बदले जीव देनेवाला तुम्हारे सदृश

दूसरा मित्र नहीं है। मैने तुम्हारे ही भरोसे पर यह स्वराज्यरूपी महलकी भीति खडी की है। मुझे सन्देह है कि, मुझे सुरक्षित रखनेकी चिन्तासे, तुम्हें नींद आती है या नहीं ? तुम्हारे उपकारको बदला मैं अपने इस जन्ममें शायद ही चुका सकूगा।"

"प्रभो! आप यह क्या कहते है ? मुझ सरीखे तुच्छ व्यक्तिको आप इस प्रकार गौरवान्वित कर रहे हैं। आपके वाक्योंको सुनकर मुझे लज्जा आती है। आपकी रक्षा करना प्रत्येक महाराष्ट्रीयका सब-से पहला कर्तव्य है। परन्तु मालूम नहीं होता कि, सुभानराव इस नीच कृत्यके करनेको क्यों उद्यमी हुआ ? उसके इस दुष्ट कृ-त्यसे मालूम होता है कि, अभी तक महाराष्ट्र देशके बुरे दिन गये नहीं है।"

"तानाजी! इस देशोद्धारके कार्यमें मुझे अपनी इच्छाके विरुद्ध बहुत लोगोंको हानि पहुचाना पडती है। इस किलेके फतह करनेमें जो वीर काम आये है, उनमें सुभानरावका भवानी नामका इक-लौता पुत्र भी था। भवानी अपनी मंडलीमें शामिल है यह जान कर मुसलमानोंका क्रोध भभक उठा और उन्होंने सुभानरावकी जमीन छीन ली। इस तरह एकके पीछे एक आपत्तिने आकर उसे (सुभान रावको) इस दुष्कृत्यके करनेके लिये लाचार किया है, और इसमें कुछ आश्चर्य भी नहीं है। मै इस विषयमें उसे दोष भी नहीं दे सकता हूं। और इस लिये मैने उसका अपराध क्षमा भी कर दिया है।"

"कृपानिधे! आपकी उदारता और मनकी उच्चता अलौकिक है। परन्तु मुझे इस लड़केके विषयमें पश्चाताप होता है। यदि यह

शूर वीर लड़का अपनी ओरसे कभी रणक्षेत्रमें लड़ता, तो निस्सन्देह मराठा राज्यका बृहत् स्तम्भ बनता।"

"तानाजी, क्या आप ऐसा समझते है कि, मै इस बालकको तोपसे उड़वा दूंगा? मुझे उसके सम्बन्धमें जो कल्पना हुई है, यदि वह सत्य हुई अर्थात् यदि वह अपने वचनकी सत्यता दिखानेको यह आया तो, उसे मैं अपने पास रखके मराठोंका यश फैलाऊंगा इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।"

तानाजीको आज महाराजके धीरोदात्त गुणकी पूर्ण पहिचान हुई। "महाराज, आप देव है।" ऐसा कह कर उन्होंने अपना मस्तक महाराजके चरणोंपर रख दिया। तानाजीकी इस भांति भक्ति देख महाराजने उन्हें बड़े प्रेमसे उठा कर हृदयसे लगा लिया। अब तानाजी महाराजके पास प्रसन्नतासे बैठ गये। इतनेमें ही वह बालक आकर महाराजके सन्मुख खड़ा हो गया।

उसके धैर्य प्रदर्शक मुंहको देखकर महाराज मधुर स्वरसे बोले "बालक तू इतनी जल्दी आगया? अपनी माताके पास और अधिक क्यों नहीं बैठा? यदि कुछ देर और भी हो जाती, तो कुछ हानि न थी।"

"महाराज, यदि मै समयपर उपस्थित न होता, तो आप मुझे क्या कहते? मैंने भेंट करते समय माताको सम्पूर्ण घटना सुनानेका संकल्प किया था। परन्तु उसे देखते ही मै अपने विचारको भूल गया। उससे यह सब सुनानेका मुझे साहस ही नहीं हुआ। मुझे देखते ही उसने मेरे मस्तकपर कितने प्रेमसे हाथ फेरा, उसे मै कह नहीं सकता हू। इस दारुण दुःखको उसका हृदय कभी सहन नहीं कर सकेगा, ऐसा समझ कर मै बिना कहे वैसे ही लौट

आया। वह जब सुनेगी तब समझ लेगी। परन्तु मैं एक वीरके समान मरा हूं, आप पीछेसे इतना ही समाचार उसके पास पहुचा देना, यही मेरी अंतिम प्रार्थना है।"

युवकके वचनोंको सुनकर महाराजका हृदय विदीर्ण हो गया। वे अधीर हो कर बोले—"बालक, मैं तेरे समान वीरको ऐसा दंड कैसे दूं? मैं तेरा अपराध क्षमा कर चुका हूं। तू आकर एक बार मुझे भेंटकर अपनी इच्छा पूर्ण कर ले।"

इसे सुनते ही युवकने दौडकर महाराजके पैरोंपर सिर रख दिया। महाराजने उसे उठा कर हृदयसे लगा लिया। दोनोंके नेत्रोंमें आनंदाश्रु भर आये। युवक अपनी आती हुई हिचकियोंको रोक-कर रोते २ बोला—"महाराज आप मेरे धर्मपिता है। आज आ-पने मुझे और मेरी माताको प्राणदान दिया है।"

"पुत्र, जिस तरह तू अपनी मातापर प्रेम करता है, उसी प्रकार अपने इस देशके ऊपर प्रेम कर। क्या तू देशोद्धारके कार्यमें मेरी सहायता करेगा?" "महाराज, जब तक मेरे शरीरमें जीव है। तब तक मै आपकी चरणसेवा न छोडूंगा।"

आगे महाराजके आधीन रहकर इस युवकने बड़ी भारी योग्यता प्राप्त की, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। सरदार माळोजीरा-वके धैर्य, स्वदेशाभिमान और स्वामिभक्तिकी कहानी महाराष्ट्र प्रान्तके वृद्ध लोग अब भी बड़े प्रेमसे कहा करते हैं।*

बाबूलाल अध्यापक,
जैनपाठशाला, मुड़वारा।

---

* नागपुर मारिस कालेजके प्रोफेसर नारायण केशव वेहरे बी. एस. सी. की एक मराठी गोष्टका अनुवाद।

उद्बोधन ।*

आज पचमीके दिवस, एक वर्षके वाद ।
द्वारे आकर भारती, हमें दिलाती याद ॥ १
नैनोंके तारे सुनो, जीवनके अवलम्ब ।
भूल गये क्या सर्वथा, यह दुखिनी तव अम्ब ॥ २
फटे पुराने चीथड़े, इस कृशतनपर देख ।
नाक न मोड़ो "रेखपर, मारी जाय न मेख" ॥ ३
दुखी दरिद्रा दीखती, तुम सबको जो आज ।
सीस झुकाते थे उसे, बड़े बड़े महाराज ॥ ४
रुधिर-तृषित इस भूमिपर, मैंने ही सब ओर ।
करुणा–समता–सुधाका, जल वरसाया घोर ॥ ५
जब कुसमयने पतनके, तटपर पटकी लाय ।
तब तुमने धक्का दिया, दया न आई हाय ॥ ६
यदि तुम माता समझते, रखते जरा विवेक ।
तो न आज यह देखते, जननी दुख-उद्रेक ॥ ७
अस्तु पुरानी कथा यह, सुन अब करो न क्लेश ।
इसे भूल कर्तव्यके, पथमें करो प्रवेश ॥ ८
पहिचानो निज मातुको, लाओ उरमें भक्ति ।
कर दो सारी खर्च वह, जो हो तुममें शक्ति ॥ ९
सारी पुण्य प्रभावना, सारे दान-विधान ।
सारे कार्य सुमातुहित, करो बचाओ प्रान ॥ १०
दानी धर्मी बने तुम ठाट बाटमें भूल ।
पर जिनकी जननी दुखी, उनके धनपर धूल ॥ ११

---

* यह कविता मोरेनाके श्रुत पंचमीके उत्सवके समय लिखी गई थी ।

विना एकके अकके, सारे शून्य निरर्थ ।
जननी-सेवा अंक लिख, उन्हें बनाओ सार्थ १२
कैसा सुन्दर समय है, पाया शान्ति-निकेत ।
कैसे साधन मिल रहे, फिर कब होगा चेत ? ॥ १३
दम घुटती होता हहा, शिथिल शक्ति दिनरात ।
अंधेरेमें अब नहीं, रहा जाय हे तात ॥ १४
ऑखिया जिसके दरसको, तरसर ही हैं हाय ।
उस उजियालेमें मुझे, लाओ दया दिखाय ॥ १५
एक लालसा और है, सुन लो समज विचार ।
पृथिवीका पर्यटन फिर, करवा दो इकबार ॥ १६
वीर पिताके समयमें, जाकर देश विदेश ।
अपने सब हीको किये मैंने दे उपदेश ॥ १७
पर न रहे वे दिन सदा, प्रबल हुआ मिथ्यात ।
पक्षपात आधी उठी, हुई दिवसमें रात ॥ १८
अवसर तबसे देखती, बॅधी बधनों बीच ।
आशावश बस रही हू, तनमें स्वासें खींच ॥ १९
अब आया है समय शुभ, करो न नेक विलम्ब ।
विश्व व्यापिनी बना दो, दे उदार अवलम्ब ॥ २०
बोली जितनी विश्वकी, सुन पडती हैं अद्य ।
उन सबसे ही करा दो, मम परिचय अनवद्य ॥ २१
जिससे सबको दे सकू, मै हितकर उपदेश ।
सभ्य असभ्य असभ्यतर, रहै न कोई देश ॥ २२
यवन यहूदी हूण ज्यू, बौद्ध और क्रिस्तान ।
अतिशय वन्य अनार्य भी, समझें दया प्रधान ॥ २३

स्याद्वाद सत सुधाका, करके सुखकर पान ।
पावें शान्ति अनन्त सब, और वस्तु-विज्ञान ॥ २४
जैसे तुम हो और भी, वैसे ही सन्तान ।
द्विधा-भाव नहिं, मुझे है, सबके हितका ध्यान ॥ २५
बस अब जाती हूं हुआ, मेरा कथन समाप्त ।
श्रीजिन तुम्हें सुबुद्धि दें, मुझको हो सुख प्राप्त ॥ २६

काकान्योक्ति-पञ्चक ।

(१)

रुचिर आम-वनमें निशंक, कट काक ! बसेरा ।
कॉव काँव कर खूब, दोष नहिं इसमें तेरा ॥
पर होता है दुःख बुद्धिपर, उसकी मुझको ।
कोकिलके संग बास, दिया है जिसने तुझको ॥

(२)

मजु मनोहर अमराईमें मौज उड़ावे ।
काली है तव देह, विविध फल भी तू खावे ॥
नरकोकिलकी दिखलाता यों लीला सब ही ।
किन्तु बोलते समय, नीच तू काक काक ही ॥

(३)

अतिमलीन तू काक, कर्णकटु वाणी तेरी ।
नहिं अभक्ष्य कुछ तुझे चपलता है बहुतेरी ॥
सब दोषोंका कोष यदपि है, यों तेरा तन ।
जाति-प्रेम लख किन्तु सराहै तुझको सज्जन ॥

(४)

स्पर्धाके वश काक, शब्द केकीका सुनके ।
करता अधिक प्रलाप, आप अतिशय जल भुनके ॥
मनमें कर अभिमान, और अनुमान कुटेकी ।
काँव काँवको नीच. समझता कलरव—केकी ॥

(५)

मोरोंकेपर लगा, भले ही हवस मिटा ले ।
हो न सकेगा किन्तु, मोर रे कौवे काले ॥
उधर नुचेगा इधर, बहिष्कृत होगा, " पाडे—
गये दीन दुनियासे, हलुवा मिले न माडे " ॥

शिवसहाय चौबे—
देवरी (सागर)

पुस्तक समालोचन ।

सौंदर्यप्रभा वा अद्भुत अंगूठी—ठाकुर बलभद्रसिंह लिखित और भारतमित्र प्रेस, कलकत्ताद्वारा प्रकाशित । पृष्ठ संख्या १९६ । इस पुस्तकमें छत्रपतिमहाराज शिवाजीका और उनके समयका ऐतिहासिक वृत्तान्त उपन्यासके रूपमें लिखा गया है । परन्तु हमारी समझमें इसे औपन्यासिक ग्रन्थोंकी अपेक्षा ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें स्थान देना अच्छा होता । क्योंकि इसमें ऐतिहासिक भाग ही अधिक है और वह बहुत खोजके साथ लिखा गया है । (और-गजेबकी कैदसे शिवाजीके छूटनेके विषयमें ऐसी प्रसिद्धि, है कि वे मिठाईकी टोकरियोंमें छुपकर भागे थे । परन्तु ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं कि यह सत्य नहीं है । शिवाजी मालीका वेष धारण करके भागे थे)।

इसके सिवाय काव्य वा उपन्यासके रस भागको पुष्ट करने और मनोहर वनानेके लिये जो नायिकाकी कल्पना की जाती है, वह इसमें नहीं है ग्रन्थ साधारणतया अच्छा है। हिन्दीमें ऐसे ग्रन्थोंकी जितनी विपुलता हो, उतनी ही अच्छी है। प्रत्येक घटनाके वर्णनके साथ ग्रन्थकर्त्ताने वहुतसा उपदेश दिया है और वह अच्छा है। तो भी उसकी मात्रा कहीं २ इतनी अधिक हो गई है कि, अरुचि हो जाती है। भाषा शुद्ध होनेपर भी कठिन है और वह जान वूझकर संस्कृत वहुत वनाई गई है। ग्रन्थका नाम सौन्दर्य प्रभा वा अद्भुत अँगूठी क्यों रक्खा गया, यह हम सारा ग्रन्थ पढ जानेपर भी नहीं जान सके। ग्रन्थके नामसे उसके वर्णनीय विषयका थोड़ा वहुत ज्ञान जरूर होना चाहिये। ग्रन्थमें भूमिकाका अभाव है, इस लिये यह मालूम न हुआ कि, लेखककी यह स्वतत्र रचना है अथवा किसी दूसरी भाषाका अनुवाद है।

सिरोही राज्यका इतिहास—श्रीयुक्त पंडित गौरीशकर हीराचन्द ओझा, अजमेर रचित और प्रकाशित। हिन्दी भाषा भाषियोंको यह जानकर प्रसन्न होना चाहिये कि, उनकी भाषाके ऐतिहासिक साहित्यकी पूर्ति एक ऐसे विद्वानद्वारा हो रही है जो इतिहासका अपूर्व विद्वान है और जिसके ग्रन्थ न केवल हिन्दीहीमें अपूर्व होते है किन्तु भारतवर्ष भरमें अपूर्व समझे जाते है। पं० गौरीशंकरजीने अभी कुछ वर्ष पहिले सोलंकियोंका प्राचीन इतिहास लिखकर हमें उपकृत किया ही था कि, इस वर्ष यह नवीन ग्रन्थ रचकर हिन्दीको गौरवान्वित किया है। लगभग २०–२२वर्षके संग्रह और परिश्रमसे आपने इस ग्रन्थ की रचना की है और इसके रचनेमें आपने संस्कृत, अंग्रेजी, फारसी, प्राकृत और हिन्दीके लग–

भग १०४ ग्रथोंका मथन किया है। डेमी चारपेजीके कोई ४०५ पृष्ठोंमें यह महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ समाप्त हुआ है। सिरोहीके प्राचीन और वर्तमान राजाओंके ४–५ चित्र हैं। प्रारंभमें एक सुन्दर भूमिका है। ग्रन्थ आठ अध्यायोंमें विभक्त है।

पहले अध्यायमें भूगोल सम्बन्धी वृत्तान्त ४० प्रसिद्ध और प्राचीन स्थानोंका सक्षिप्त वर्णन, दूसरे अध्यायमें मौर्य, क्षत्रय, गुप्त, हूण, वैस, चावडा, गुहिल, पडिहार, सोलकी, परमार आदि राजवशोंका जिन्होंने कि सिरोहीमें राज्य किया है शोधपूर्ण परिचय, चौथेसे सातवें तकके अध्यायोंमें चोहान वशकी उत्पत्ति, उसकी शाखाएँ और इस वंशके वासुदेव, सामन्तदेव, तथा जयराजसे लेकर वर्तमान महाराजके पहले तकके सम्पूर्ण राजाओंका क्रमश परिचय तथा उनकी वीरता आदिका वर्णन है। आठवें अध्यायमें वर्तमान महाराज केसरीसिंहजी और युवराज स्वरूपसिंहजीका चरित्र, उनके कार्य तथा उनकी विलायतयात्रा आदिका वर्णन है। सिरोही राज्य शिक्षा आदिमें वहुत ही पीछे है, इसलिये यद्यपि उसके शासक इतनी प्रशंसाके पात्र नहीं हो सकते हैं जितनीकी इस अध्यायसे ध्वनित होती है, तो भी इसमें सन्देह नहीं कि उनके पूर्वजोंका इतिहास वहुत ही महत्त्व पूर्ण और गौरवचिन्हित है। और इसलिये उनके प्रति ग्रन्थकर्त्ताकी श्रद्धा होना स्वाभाविक है। वडे वडे विद्वानोंने इस ग्रन्थकी प्रशंसा की है। यह स्वतत्र ग्रन्थ है और इसके समान सिरोहीका इतिहास अग्रेजी, वगला जैसी उन्नत भाषाओंमें भी नहीं मिल सकता है। हिन्दीका आसन तव ही ऊंचा होगा, जव उसमें ऐसे २ स्वतत्र ग्रन्थोंकी रचना होगी। ओझाजीको इस ग्रन्थकी रचना करनेके उपलक्ष्यमें हम जितना धन्य-

वाद दें, उतना ही थोड़ा है। इतने बड़े ग्रन्थका मूल्य बहुत ही कम अर्थात् २) रक्खा गया है। अब भी यदि इसकी बिक्री न हो तो हिन्दीका दुर्भाग्य समझना चाहिये।

आर्योंकी प्रलय—बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार, देवबन्द ज़िला सहारनपुर लिखित। मूल्य एक आना। यह जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा—इटावाका पद्रहवा ट्रेक्ट हैं। इसमें आर्यसमाजके संस्थापक स्वामी दयानन्दजीने अपने ऋग्वेद भाष्य, आदि ग्रन्थोंमें सृष्टिके प्रलयतत्त्वका स्वरूप लिखा है, उसकी नि सारता, परस्पर विरोधिता, और असंभवता दिखलाई है। पुस्तक योग्यता और परिश्रमसे लिखी गई है। प्रत्येक जैनीको अपने आर्यसमाजी मित्रोंमें बांटनेके लिये इसकी सौ २ पचास २ प्रतियां अवश्य मंगाना चाहिये। आर्योंकी प्रलय' इस नाममें प्रलय शब्दको लेखकने जो स्त्री लिंग माना है, सो कुछ खटकता है।

धर्म और शील—लाला मुंशीलालजी जैनी एम. ए. गवर्नमेंट पेन्शनर लाहौरद्वारा लिखित और प्रकाशित। पृष्ट छोटे साइजके ११२ मूल्य साढ़े छह आना। मुंशीलालजीसे हमारे बहुतसे पाठक परिचित होंगे। आपने हिन्दीमें जितनी पुस्तकें लिखी हैं, प्राय वे सब ही आध्यात्मिक और उच्च नैतिक शिक्षाकी है और हमारी समझमें इस समय हिन्दीमें ऐसी पुस्तकोंकी बहुत आवश्यकता है। यह पुस्तक भी इसी प्रकारकी है। इसके पहले चार अध्यायोंमें इसलाम धर्मके अनुसार आत्मज्ञान, परमात्माका ज्ञान, इस लोकका ज्ञान और परलोकका ज्ञान इन चार महत्त्वके विषयोंपर विचार किया है और वह आध्यात्मिक पद्धतिको लेकर किया गया है। यद्यपि हमारा उक्त विषयोंमें मतैक्य नहीं हो सकता है तो भी इसमें सन्देह नहीं

कि, उक्त चारों ही अध्याय पढ़ने योग्य है विशेपकर उन लोगोंके जो वेदान्त वा अध्यात्मसे प्रेम रखते हैं। ये चार अध्याय 'दि अलकेमी ऑफ हैपिनेस' नामक अग्रेजी पुस्तकसे अनुवादित किये गये है। आगे आत्मध्यान और मोक्ष, जीवतत्त्व, अजीवतत्त्व. शेषतत्त्व, ध्याता, ध्याताओंकी प्रशसा छात्रोंके लिये नीति शिक्षा, कार्य, वचपनके सस्कार, सत्यकी महिमा, सर्वोत्तम स्त्रीके लक्षण, ब्रह्मचर्य आदि कई विषयोंपर छोटे २ निबन्ध है, और एक दो को छोड़ कर वे जैनहितैषीमें प्रकाशित हुए उक्त लाला साहबके लेखोंका सग्रह है। पिछले सब लेख जैनधर्मसे अविरुद्ध है, और अजैनी सबके पढ़ने योग्य है। भाषा शुद्ध हिन्दी होनेपर भी कहीं २ सशोधन योग्य है। हमारी समझमें पुस्तकके पहले चार अध्याय जुदे छपाये जाते और शेष भाग जुदा, तो अच्छा होता। पुस्तकका नामकरण भी अन्वर्थक नहीं हुआ है। कालीमाताकी गली गुमठी बाजारके ठिका-नेसे ग्रन्थकर्ताको पत्र लिखनेसे पुस्तक मिल सकती है।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

विविध भाषाओंका जैन साहित्य।

ज्यों ज्यों जुदी २ भाषाओंके साहित्यके इतिहासकी खोज की जाती है, त्यों त्यों विद्वानोंके हृदयमें निष्पक्षपातता बढ़ती जाती है और ज्यों ज्यों प्राचीन ग्रन्थोंके सम्पादन तथा प्रकाशनकी ओर लोगोंका उद्योग बढ़ता जाता है, त्यों त्यों इस बातका निश्चय होता जाता है कि प्राचीनकालमें जैन विद्वानोंने प्राय प्रत्येक भाषाके साहित्यकी पुष्टि की है और अपनी विलक्षण प्रतिभाके बलसे प्रत्येक भाषाके साहित्यमें जैनसासित्यको उच्च स्थानपर पहुचानेका प्रयत्न

किया है। संस्कृत साहित्यमें जैनियोंके अगणित ग्रन्थ है और दूसरे धर्मोंके ग्रन्थोंके मुकाबिलेमें उनकी प्रतिष्ठा किसी प्रकार कम नहीं है, इस बातको अब प्राय. सब ही विद्वान स्वीकार करने लगे हैं। ऐतिहासिक तत्त्वोंकी खोज करनेमें जैनियोंके शिलालेख, ताम्र-पत्र, मन्दिरों और ग्रन्थोंकी प्रशस्तिया, कथाभाग आदि सामग्री सबसे अधिक सहायता पहुंचा रही है। प्राकृतसाहित्य तो एक प्रकारसे जैनियोंका ही है। इस साहित्यमें सबसे अधिक ग्रन्थ जैनियोंके ही पाये जाते है। प्राकृत जैनियोंकी मुख्य भाषा है। कनड़ी-साहित्यके विषयमें जैनहितैषीके पाठक पढ़ ही चुके है कि, लगभग १३ वीं शताब्दीतक कनड़ीमें जैनियोंके सिवाय और कोई ग्रन्थ-कर्त्ता ही नहीं हुए है और अठारहवीं शताब्दी तकका जितना कनड़ी साहित्य प्राप्य है, उसमें दो तिहाईसे भी अधिक ग्रन्थ जैनविद्वा-नोंके बनाये हुए है। हिन्दी—साहित्यमें भी जैनग्रन्थोंकी कमी नहीं है। ' दिगम्बर जैनग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ ' नामक पुस्तकमें हमने भाषाके ग्रन्थकर्त्ताओंकी एक सूची दी है, जिससे पाठक जान सकते है कि, हिन्दीमें भी जैनधर्मके हजारों गद्यपद्यमय ग्रन्थ है। परन्तु दु:खका विषय है कि, अभीतक हिन्दीका कोई शृंखलाबद्ध इतिहास नहीं बना है और न हिन्दीके वर्तमानलेखकोंका ध्यान जैनसाहित्यकी ओर आकर्षित हुआ है। इससे इस विषयमें यद्यपि निश्चित रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता है, तो भी हमको विश्वास है कि, हिन्दीमें भी जैनियोंका साहित्य कुछ कम महत्त्वका नहीं होगा। गुजराती भाषामें जैसा कि हम आगेके नोटमें बतलावेंगे जैनसाहित्य की कनड़ीके ही समान प्रधानता है। तामिल भाषा बहुत प्राचीन और प्रौढ़ भाषा है। इसमें भी जैनविद्वानोंके बनाये

हुए सैकड़ों ग्रन्थ हैं और उनका तामिलसाहित्यमें वडा सत्कार है। यहा तक कि तामिलके कई जैन ग्रन्थ मद्रास यूनीवर्सिटीकी उच्च कक्षाओंमें पढ़ाये जाते हैं। जैनमित्रमें तामिलके जैनग्रन्थोंकी एक सूची प्रकाशित हुई थी, उसे पाठकोंने पढी ही होगी। द्रविड-भाषामें भी वहुतसे जैनग्रन्थ है। भारतवर्षकी उक्त भाषाओंके सिं-वाय दूसरे देशोकी भाषाओंमें भी जैनग्रन्थोंके अस्तित्वका पता लगा है। तिव्वतीभाषामें वहुतसे जैनग्रन्थोंका अनुवाद हुआ है, ऐसा मालूम हुआ है। प्रश्नोत्तररत्नमालाके तिव्वती अनुवादसे ही इस वातका निश्चय किया गया है कि, वह जिनसेनस्वामीके शिष्य महाराज अमोघवर्षकी वनाई हुई है–शकराचार्य, विमलचन्द्र आदि की नहीं।

गुजराती जैन साहित्य।

गुजराती भाषाके दश पन्द्रह वर्ष पहलेके लेखक गुजराती साहित्यमें जैनियोंका कोई विशेष अधिकार वा स्थान ही स्वीकार नहीं करते थे, परन्तु पिछले तीन चार वर्षोंमें इस विषयकी जो चर्चा हुई है, उससे विद्वान लोग मुक्तकठसे स्वीकार करने लगे हैं कि, गुजराती साहित्यको जैन विद्वानोंने अतिशय पुष्ट और गौर-वान्वित किया है। कई लेखक तो यहा तक कहते हैं कि, गुजरा-तीको जन्म ही जैनियोंने दिया है। इस विषयमें हम यहापर कुछ गुजराती पत्रों और लेखकोंके विचार उद्धृत करते है। सितम्बर सन १९०९ के समालोचक नामक पत्रने 'रायचंद्रकाव्यमाला' की समालोचना करते हुए लिखा था–"इन सव प्रयत्नोंमें जैनसा-हित्यको जैसा न्याय मिलना चाहिये, वैसा नहीं मिल सका...... .. ग्रन्थोंकी दुर्लभता, जैन और जैनेतर साहित्य प्रेमियोंकी उदासीनता

और धनिकोंकी सहायताका अभाव भी इसमें एक कारण है। जैन-साहित्य गुर्जर साहित्यके अंगोंमेंसे एक मुख्य अंग है। गुजरातमें एक समय जैनी प्रबलतर राज्यसत्ताका उपयोग करते थे। उनके धर्मका, साधुओंका, यतियोंका और सेठोंका जनसमाजपर गहरा प्रभाव पड़ा था, और वह अब तक हमारे जीवन व्यवहारमें प्रत्यक्ष हो रहा है। जैन धर्मी लेखकोंने गुजराती साहित्यकी साधारण सेवा नहीं की है। ग्यारहवीं शताब्दीमें जैनियोंने प्राकृतमें ग्रन्थ लिखे थे, उससे एक अपभ्रंश भाषा बनी और उस अपभ्रंश भाषाका आधुनिक स्वरूप गुजराती है। ······ ऐसा मालूम होता है कि, साहित्यके इतिहासकी टूटी संकलोंको जैनसाहित्य जोड़ेगा। ··· जैनसाहित्यके प्रकाशित होनेसे गुर्जरसाहित्यपर अधिक प्रकाश पड़नेकी संभावना है। जैनियोंके 'रासा' ऐतिहासिक है। उनमेंसे देशकालकी परिस्थिति, लोकाचार, लोकव्यवहार, जनस्वभाव आदि बहुतसे उपयोगी विषयोंका बहुतसा आवश्यक परिचय मिलता है। देशकी तात्कालिक सासारिक आर्थिक तथा व्यापारसम्बन्धी स्थिति कैसी थी, इसका भी पता इन रासाओंसे लगेगा।··· कविता प्रचलित देशी (राग) और दोहोंमें लिखी गई है। भाषाका स्फुरण शुद्ध, सरल और सुगम है··· ·विचार स्पष्टतासे प्रगट किये है। कविताका व्याकरण शुद्ध मालूम होता है। शब्दोंकी विपुलता है। अलंकार सरल और भाषा आडम्बर रहित है।" प्रथम गुजराती साहित्यपरिषद्के सभापति श्रीयुत गोवर्धनराम महाशयने अपने व्याख्यानमें जैनियोंके साहित्यका ग्यारहवीं शताब्दीसे अठारहवीं शताब्दीतकके इतिहासका श्रृंखलाबद्ध परिचय दिया है। उसमें आपने एक जगह कहा है—चौदहवीं शताब्दीमें गुजरातके बाहिर

जब संस्कृतके बडे २ प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे गये हैं। तब गुजरातमें तेजसिंह कविके एक ग्रन्थके सिवाय जितने ग्रन्थ लिखे गये हैं, वे सब जैनसाधुओंके ही बनाये हुए हैं। ' इन साधुओंने अपने गच्छोंका आश्रय पाकर साहित्यवृक्षको जब इतना अंकुरित किया था, तब ब्राह्मणादिकोंका साहित्य जो राजपूत राजाओंके कालमें स्फुरायमान था, वह सर्वथा अस्त हो गया था और इस साहित्यके अस्त होनेके पीछे गुजराती साहित्यका मूल पहले आरोपित किया गया था।"

शास्त्रीजीका सन्देह।

हमने गत छठे अंकमें लिखा था कि, "जैनपताकाके बाद इधर कुछ समयसे सहयोगिनीका स्थान खाली था और अनेक सहयोगियोंके बीचमें यह कमी बहुत खटकती थी। अच्छा हुआ कि, इसकी पूर्ति जैनरत्नमालासे हो गई।" इसपर शास्त्रीजीको न जाने कौनसे सन्देहने आकर घेरा कि, आप, अपनी श्रीमती रत्नमालाको "मान न मान मैं तेरा महमान"की उक्तिके अनुसार सारे सहयोगियोंकी बहिन करार देते हैं। पर हमारी समझमें सभ्य और सदाचारी समाजमें रहनेवाले शास्त्रीजीको इतनी चिन्ताकरनेकी और इस प्रकार 'बादरायण' सम्बन्ध मिलानेकी जरूरत नहीं थी। क्या बहिनके सिवाय स्त्रियोंके साथ और कोई सम्बन्ध ही ऐसा नहीं हो सकता है, जिसमें पवित्रव्यवहारकी कल्पना हो सके? शिष्ट पुरुष तो स्त्रीमात्रको अच्छी दृष्टिसे देखते है और फिर एक चार पाच महीनेकी बालिकाके विषयमें तो शंकाका कुछ कारण ही नहीं है। शास्त्रीजी महाराज, हृदयकी इतनी दुर्बलता अच्छी नहीं। आप घबड़ाइये नहीं, सहयोगीगण अपनी सहयोगिनीकी बाल-लीला स्नेह कौतुक

दृष्टिसे देख रहे है। न आप उसके आदर सत्कारकी चिन्ता कीजिये और न कुछ और सोचिये।

शास्त्रीजीका सामयिक संलाप।

जैनहितैषीके छठे अकमें हमने महासभापर कुछ थोड़ेसे नोट किये थे। उनको जैनरत्नमालाके सम्पादकने अनवसर-प्रलाप बतलाकर अपनी सामायिक सुरीली वाणीसे समाजके कर्ण-पुटोंमें अमृतकी वर्षा की है। शास्त्रीजीकी उक्त अमृतमयी वाणीका पूरा परिचय देनेके लिये हितैषीके छोटेसे कलेवरमें स्थान नहीं है और ऐसे विषयोंमें बहुतसा स्थान रोक देना वह अच्छा भी नहीं समझता है, इसलिये हम "पीयूषं न हि निःशेषं पिवन्नेव सुखायते"की उक्तिके अनुसार अपने पाठकोंको थोड़ेमें ही सन्तुष्ट करनेका प्रयत्न करते है—आप फरमातें है कि, "फिरोजाबादमें महासभाका अधिवेशन करानेमें दस्सों वीसोंके झगड़ेसे कोई सम्बन्ध नहीं था। केवल महासभाको वास्तविक महासभा बनानेकी गरजसे यह कोशिश की गई थी और इसका प्रत्यक्ष सुबूत यह है कि, वहा दस्सों वीसोंका नाम तक नहीं लिया गया।" इसपर मैं यह पूछता हू कि, महासभामें अब वास्तवपना क्या आगया है? क्या महासभाके पिछले तीन वर्षोंके हिसाबको विना जाच कराये ही पास कर देना, जिनका पहले कभी नाम भी नहीं सुना था और जिनके एक चार पक्तियोंके लेखको भी देखनेका कभी समाजको सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, ऐसे किसी अपरिचित पुरुषको जैनगजटका सम्पादक बना देना, इस डरसे कि पूर्वसम्पादक जो एक प्रेस माग रहा है, उससे कहीं छापेका प्रचार न होने लगे, और जो लोग काम नहीं करना चाहते है—जिनके कामसे कोई सन्तुष्ट नहीं है—आख बन्द

करके दस्तखत कर देना मात्र ही जो अपना कर्तव्य समझते है, उनके गले जबरदस्ती बडी २ जबावदारीके काम डाल देना, क्या इसीको वास्तविक महासभा बनाना कहते हैं ? प्रत्यक्ष प्रमाण भी आपने खूब दिया। दस्सों बीसोंका नाम न लिया गया, उससे उत्पन्न हुए आन्तरिक द्वेषकी प्रेरणासे यह कार्य नहीं हुआ है ? यह भी तो बतलाइये कि, आपके श्रीमानोंने और भी कभी महासभाके अधिवेशनके विषयमें इतना प्रयत्न किया था ? हमने एक दल शिक्षितोंका और दूसरा धनिकोंका बतलाया था। इसपर शास्त्रीजी इस चिन्तासे—कि कहीं मेरी अशिक्षितोंमें गिनती न हो जाय— कहते है–" धनिक पक्षमें भी शिक्षितोंकी कमी नहीं है।" महाराज, व्याकुल मत हूजिये, आपका शास्त्री परीक्षाका सर्टिफिकेट नहीं छीना जायगा। पर कुसुर माफ हो, आपकी ओर आप जैसे दूसरे शिक्षितोंकी गणना धनिकोंमें ही की जायगी। क्योंकि आपके विचार अब धनिकों सरीखे ही हो गये है। और यह अच्छा भी नहीं मालूम होता है कि, श्रीमानोंकी बग्गियोंमें बैठनेवाले, उनकी बराबरीसे मसनदपर झुकनेवाले तथा सब ओरसे अपनी पाचों उंगली घीमें तर रखनेवाले महाशय गरीब शिक्षितोंमें शामिल कर दिये जाय। एक नीतिकारने कहा है कि, " जो स्वय काचके मकानमें रहता हो, उसे दूसरेके मकानपर ईंट न फेंकना चाहिये।" परन्तु शास्त्रीजी महाराज अपने नये ग्रहण किये हुए पक्षके जोशमें इसकी कुछ भी परवाह न करके हमपर स्वार्थपरताका दोष मढ़नेको तैयार हुए हैं। आपने जैनहितैषी भाग ९ अक ४ का प्रमाण देकर यह सिद्ध करना चाहा है कि, " पहले हम बाबुओंकी निंदा और कई सेठोंकी प्रशसा करते थे, पर अब उससे विरुद्ध लिखने

लगे है । " इस विषयमें हमारा निवेदन यह है कि, एक तो जैन-हितैषीके जिस लेखका आपने प्रमाण दिया है, वह उसके वर्तमान सम्पादकका (मेरा) नहीं, किन्तु पूर्वसम्पादक पं० पन्नालालजीका लिखा हुआ है, उस समय वे ही उसके सम्पादक थे, (इस तरह झूटे प्रमाण देकर समाजको धोखा देनेमें शास्त्रीजी सिद्ध हस्त है ।) दूसरे यह कोई बात नहीं कि, जिसे कोई पहले अच्छा समझता हो, उसे कभी बुरा न समझे और जिसे बुरा समझता हो, उसे कभी अच्छा नहीं समझे । ज्यों ज्यों मनुष्यका अनुभव वा परिचय बढता है, त्यों त्यों वह अपने विचारोंमें प्ररिवर्तन वा संशोधन करता रहता है । यह ससारका नियम है । अब अपनेको ही देखिये न ? कल आप छापेके पूरे पक्षपाती थे, आपने स्वयं कई ग्रन्थोंकी टीकाएं लिखकर छपवाईं थीं ।

छापेका विरोध करनेवाली ' पताका ' की आपने खबर ली थी, पंचामृताभिषेक, श्राद्ध तर्पण, आचमनादिके आप कट्टर पक्षपाती थे, तेरहपंथी प्रतिष्ठापाठके लिये आपने जीभर विरोध किया था, छापेकी पुस्तकें बेचने, कमीशन खाने और मत्रयंत्रतावीजादि भेजनेमें भी आप दोष न समझते थे, एक ईसाईको जो कि पहले जैनी था आप प्रायश्चित्तसे शुद्ध कर फिरसे जैनी बनानेके लिये तैयार थे, पर आज आप छापेके यहा तक विरोधी हो गये है कि, रत्नमालाके मुखपत्रपर ' श्रीवीतरागायनम. ' या ' जिनाय नम ' आदि लिखनेमें भी पाप समझते हैं, और शुद्धाम्नायी, दस्सोंका भी सदा अशुद्ध माननेवाले, तथा सेठोंके अनन्य भक्त बननेमें तो अब कुछ कसर ही नहीं है । और कल आश्चर्य नहीं कि, आपको अपना यह मत भी परिवर्तन करना पड़े और किसी तीसरेको ग्रहण करना पड़े । तो

इससे क्या यह हम कहने लगें कि आपने किसी स्वार्थके वशवर्ती हो कर श्रीमानोंकी कृपासे धनवान होनेकी इच्छासे अथवा जीविका बनाये रखनेके विचारसे अपना मत परिवर्तन किया है ? यह तो अपने २ विचार है, जब जैसे हो जावें। आगे इसका तो, आपने कोई झूठा सच्चा प्रमाण देनेकी भी जरूरत नहीं समझी कि हमने श्रीमन्त सेठजीको जैनधर्मका भक्षक कहां और कब लिखा है। आपका विश्वास है कि, " जैनहितैषीका अब तक बहुत कुछ गौरव नष्ट हो चुका है और ऐसी ही प्रवृत्ति रही, तो सच कहते हैं रहा सहा भी न बचेगा। " आप झूठ क्यों कहने लगे ? पर हम यह न समझे कि, गौरव किसको कहते है ? यदि धनिकोंकी कृपाका अर्थ ही गौरव है, तो सचमुच ही जैनहितैषी उसको खो बैठा है—वह आपकी रत्नमालाहीको मुबारिक हो, और यदि ग्राहकोंकी संख्यासे गौरवका कुछ अनुमान होता हो, तो वह दिनपर दिन बढ़ती जाती है। आपकी कृपासे इस वर्ष उसके लगभग ११०० ग्राहकोंने पेशगी मूल्य भेज दिया है। कलके छापेके भक्त शास्त्रीजी आज अपने श्रीमानोंको प्रसन्न रखनेकी इच्छासे कहते है कि, " महासभा भी यदि छापेका पक्ष ले लेगी, तो उसका स्वरूप ही क्या रहेगा—उसका अमर नियम भग हो जायगा। जैनहितैषीको यदि छापा इष्ट है, तो वह दूसरी महासभा कायम कर ले। " यह अमर नियम आज शास्त्रीजीके ही द्वारा सुना गया। बड़े २ सरकारी कानून बदलते रहते हैं, समाज अपने लाभके लिये निरन्तर रहते २ नियम बनाता है, बड़े २ विद्वान् अपने कामोंकी रोज २ पद्धतिया बदलते हैं, इस तरह सबके नियमोंमें परिवर्तन होते रहते है, परन्तु शास्त्रीजी अपनी महासभाको सर्वथा कूटस्थ रखना चाहते है और

छापेके स्वीकार करनेसे उसके स्वरूपको ही नष्ट हुआ समझते है। अच्छा महाराज, कीजिये कोशिश जिससे आपका अमर नियम भंग न होने पावे। हितैषीको जुदी महासभाकी जरूरत नहीं है। उसे विश्वास है कि, आप जैसे सैकडों शास्त्रियों और श्रीमानोंके हजार सिर पटकने पर भी उसी महासभामें जिसे आप अपनी बतला रहे है छापेका प्रस्ताव पास होगा और उसका आप ही सब एक दिन समर्थन करेंगे। जो भारतवर्षकी वर्तमान प्रगतिको सूक्ष्मदृष्टिसे देख रहे है, उन्हें इस विषयमें जरा भी सन्देह नहीं।

अच्छा, आप ही की जय सही।

हितैषीके छट्ठे अकमें मैने 'सत्यकी जय' शीर्षक विज्ञापनके विषयमें थोड़ीसी पक्तिया लिखी थीं, उसपर विज्ञापन दाता लाला पुरणमलजीने रत्नमालाकी आठवीं संख्यामें फिर एक लेख लिखा है और इस बातको कि, 'दस्सों वीसोंके झगड़े' में हमारी जय हुई है, जिस तरह उनसे बन सका है सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है। परन्तु अब इस विषयमें मै कुछ नहीं लिखना चाहता हूं। लिखनेमें कुछ लाभ भी नहीं है। जब सेठ लोगोंकी यही इच्छा है कि, हमारी ही जय होनी चाहिये, तब मै भी उसमें बाधक नहीं बननां चाहता। और में समझता हूं कि, हितैषीके पाठक महाशय भी इस बातका खयाल करके कि, अब सेठ महोदय कृपा करके स्वयं अपनी उठाई हुई अशातिसे उपरत होते है, उन्हींकी विजय स्वीकार कर लेंगे और अब इस मामलेकी 'कोठीको धोकर अधिक कीचड़ निकालने'के प्रपचमें न पड़ेंगे।

पूरणमलजी अपने उक्त लेखमें लिखते हैं कि, आगरेमें पं० गोपालदासजीका बहिष्कार करनेके लिये हस्ताक्षर नहीं कराये गये थे। किन्तु इस लेखपर दस्तखत कराये गये थे कि, "जो लोग तीर्थंकरोंको व्यभिचारियोंकी औलाद बतलाते हैं, सो बिलकुल गलत है। क्योंकि तीर्थंकर महाराज उच्च गोत्रमें अर्थात् कुल जाति विशुद्ध उत्तम क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न होते हैं। इसलिये हम लोग खुशीसे दस्तखत करते हैं कि, हमारे तीर्थंकरोंमें कोई कलंक नहीं है।" बहुत ठीक, मै भी मानता हू। इसी विषयमें दस्तखत कराये गये होंगे, परन्तु मेरी अल्प बुद्धिमें हस्तिनापुरमें जो झगडा शान्त हो गया था, उसको फिरसे सुलगानेके विचारके विना तो तीर्थंकरोंके लिये इन सर्टिफिकटोंके सग्रह करनेका प्रयत्न ही नहीं हो सकता था। खैर जो हो। मै इस विषयमें और वादविवादकी आवश्यकता नहीं देखता। पर सेठ लोगोंको मैं यह स्मरण दिला देना अपना कर्तव्य समझता हू कि, वे तीर्थंकरोंके समान अपने पूर्व पुरुषोंके, आचार्योंके और दूसरे शलाका पुरुषोंके विषयमें भी इसी प्रकारके सर्टिफिकट पहलेसे तयार करके रख छोडें, जिसमें आगे कभी काम पडे तो दिक्कत न उठानी पडे। क्योंकि इस अग्रेजी जमानेमें विना सर्टिफिकटोंके किसीका महत्त्व जायज नहीं समझा जाता है। और ऐसे मौके इस पंचमकालमें अकसर आते है।

अन्तमें लेखक महाशयने लिखा है कि, "तुमने जो सेठोंकी मानहानि करनेका साहस किया है, सो इसका परिपाक अच्छा नहीं होगा।" इस विषयमें मेरी भी यही राय है कि, सेठोंका उक्त विजयमदिर विना इस कलशके शोभा नहीं देगा, इसलिये लगे हाथों इसे भी चढवा दीजियेगा। जिससे "वह मन्दिर यह

कलश कहावै।" जिन्होंने इतना बड़ा मन्दिर खड़ा किया है, वे क्या उसपर कलशकी कमी रक्खेंगे? द्रव्य है, ऐश्वर्य है, सहायक है? और शास्त्रीजी जैसे पुरोहित मौजूद है, फिर चिन्ता ही किस बातकी है? ऐसे महत्त्वसूचक समारंभमें यदि एकाध मेरे जैसा निर्धन पिस गया, तो कुछ अन्देशेकी बात नहीं है। लाला पूरणमलजी, अथवा परदेकी ओटसे चोट करनेवाले शास्त्रीजी महाराज, इस माहेन्द्र योगको खाली मत जाने दीजिये। इस पुण्यकर्ममें आप प्रेरणा करनेसे मत चूक जाइये।

वही, उचित वक्ता।

विविध-विषय।

विलायतमें जैनधर्मके प्रसारका प्रयत्न—मि० के. खुशरू जमसेदजी ताराचन्द बी. ए. नामक, एक पारसी सज्जन लगभग ४।१ महीनेसे विलायतमें जीव दयाके प्रचारका प्रयत्न कर रहे है। आपने अपने जीवदया प्रचारके उत्तम कार्यके लिये एक नवीन ढंग निकाला है। मि० हर्बर्ट वारेन नामक अंग्रेजसे जो कि जैनधर्मके उपासक है। आप जैनधर्मसम्बन्धी व्याख्यान जगह २ दिलाते हैं और वहांकी प्रजाको अहिंसाके स्वरूपका ज्ञान कराते है। ता० २१ अप्रैलको मि०वारेनका एक व्याख्यान 'जैनधर्ममें आत्माका स्वरूप' के विषयमें 'चर्च आफ दी यूनीवरसल' नामक गिरजाघरमें हुआ था और श्रोताओंपर उसका अच्छा प्रभाव पड़ा था। व्याख्यान समाप्त होनेके बाद मि० ताराचन्दने प्रत्येक प्रकारकी हिंसा छोड़ देनेके विषयमें सम्पूर्ण श्रोताओंसे आग्रह किया था। आप जैनधर्मसम्बन्धी व्याख्यान दिलानेके लिये और भी

प्रयत्न कर रहे है। जैनियोंको लज्जा आना चाहिये कि, उनके धर्मका प्रचार दूसरे लोग कर रहे है और वे स्वयं चुप बैठे है—उनसे कुछ नहीं होता है।

स्त्रियोंके लिये कॉलेज—भोपालकी बेगम साहबाने देहलीमें स्त्रियोंको उच्च श्रेणीकी शिक्षा देनेके लिये एक कालेज स्थापित करनेका प्रस्ताव किया है। जिसे कि माननीय वाइसराय और उनकी पत्नीने स्वीकार किया है। इस कार्यमें लगभग १२ लाख रुपया खर्च होगा। जिसमें एक लाख रुपया बेगम साहबाने देना स्वीकार किया है। भारतवर्षमें स्त्रियोंको उच्चशिक्षा देनेवाली यह सबसे पहली संस्था होगी।

६७ वर्षका वर और १० वर्षकी कन्या—बम्बईमें कच्छी दशा ओसवाल जातिमें एक ६७ वर्षके वृद्धकी सगाइ १० वर्षकी कन्याके साथ हुई है। और शीघ्र ही विवाह होनेवाला है। इस विषयको लेकर उक्त जातिमें बड़ा भारी आन्दोलन हो रहा है। पंचायतने बुढ्ढे बाबाको रोका है कि, आप बेचारी लड़कीपर दया कीजिये, नहीं तो आपकी कुशल नहीं।

विशाल पुस्तकालय—बडोदा महाराजने बड़ोदामें एक बड़े भारी पुस्तकालयकी नीव डलवाई है। इसमें लगभग १८ लाख रुपया खर्च होगा। इमारतमें ३—४ लाख रुपया लग जावेगा। महाराजने पुस्तकालय सम्बन्धी एक महकमा ही जुदा स्थापित कर दिया है। इसके द्वारा रियासतभरके पुस्तकालयोंका निरीक्षण और पोषण किया जायगा।

दि० जैं० प्रा० सभा बम्बईका नवमा वार्षिकोत्सव—खामगावमें वैशाख सुदी १०-११-१२ को हो गया। कलकत्ताके सेठ पदमरा-

जनीने सभापतिके आसनको सुशोभित किया था। लगभग तीन हजार भाई उपस्थित हुए थे। प्रान्तिक सभाकी सहायताके लिये ९००) आरा सरस्वती भवनके लिये ९००), 'खंडेलवालजैन' नामका नवीन मासिक पत्र निकालनेके लिये १२००) और जैन-शिक्षा प्रचारक फंडके लिये ११००) की सहायता प्राप्त हुई। वऱ्हाड़के जैनियोंमें शिक्षा प्रचार करनेके लिये और वहाके असमर्थ विद्यार्थियोंकी सहायता पहुचानेके लिये एक सस्था खोली गई, जिसके सेक्रेटरी श्रीयुक्त चवरे वकील आकोला नियत हुए। महा-सभामें जो दो पक्ष हो गये है, उनके लिये खेद प्रकाशित किया गया और पालिनाणामें आगामी वर्ष प्रान्तिक सभाके साथ महा-सभाका आधिवेशन करानेके लिये तथा उक्त समयपर इन पक्षोंमें सुलह करानेके लिये प्रस्ताव पास किया गया। जैनमहिला परि-षद् और खंडेलवाल महासभाका भी जलसा इस अवसरपर किया गया।

आठसौ मुसलमानोंकी शुद्धि—विहार प्रान्तके एक जिलेमें लगभग ८०० मुसलमान ऐसे थे जो कि, किसी समय हिन्दू कहार थे। भारतशुद्धि सभा नामक आर्यसमाजकी संस्थाने इन सबको शुद्ध करके हिन्दू बना लिया है। कुछ पुराने ढर्रेके पंडितोंने इसका विरोध किया था। परन्तु वे शास्त्रोंके प्रमाण देकर चुप कर दिये गये। इन शुद्ध हुये कहारोंको सुनते है कि, वहाके हिन्दूओंने हिन्दूकहारोंके समान ग्रहण कर लिया है।

भारतमें शिक्षाप्रचार—भारतवर्ष भरमें सन् १९०९ में ६२०-३३०९ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे और उनके लिये ६८६७६००० रुपया खर्च किया गया था। सन् १९१० में कुछ वृद्धि हुई है।

विद्यार्थियोंकी सख्या ६३४५५८२ हो गई थी और उनके लिये ७१८८८००० रुपया खर्च किया गया था। दूसरे देशोंकी अपेक्षा यहांके विद्यार्थियोंकी संख्या और व्ययकी सख्या बहुत ही कम है।

खुर्जेका अनाथालय—राय बहादुर सेठ मेवारामजीके परलोकगत पिता सेठ अमोलकचन्दजीके स्मरणार्थ जो अनाथालय खुर्जामें खुला है, उसके विषयमें सहयोगी जैनप्रचारक एक विलक्षण बात सुनाता है। उसे खबर लगी है कि, उक्त अनाथालयका सुप्रिंटेंडेंट एक ईसाई है। तब क्या शुद्धाम्नायियोंकी इस संस्थाके बच्चोंको ईसाई धर्मकी वा ईसाई विचारोंकी शिक्षा दी जाती होगी?

समितिपर कर्ज—यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि, जयपुरकी जैनशिक्षाप्रचार समितिकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है। उसपर दो हजार रुपयाके करीब कर्ज हो गया है। एक काम करनेवाली सस्थाके विषयमें समाजकी इस प्रकार उपेक्षा ठीक नहीं। सेठीजीने इस विषयमें जैन प्रचारकमें एक बड़ी हृदयद्रावक अपील की है। उदार सज्जनोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये।

राजाकी उदारता—भावनगरके महाराजने अपनी प्रजाकी रक्षाके लिये २० लाख रुपयाका दान किया है।

भस्माकर चूर्ण—करहल जि० मैनपुरीकी जैनमित्र कमेटीने हमारे पास भस्माकर चूर्णकी एक शीशी भेजनेकी कृपा की है। इसका जायका अच्छा है अजीर्ण आदि अनेक रोग इससे आराम होते है। हमने दश पाच बार खाया तो मालूम हुआ कि, इससे हाजमा अच्छा होता है। जिन्हें बदहजमीकी शिकायत हो, उन्हें चाहिये, भस्माकरकी एक शीशी मगाकर जाच कर देखें।

परीक्षा.

विदित हो कि " भारतवर्षीय जैन शिक्षा प्रचारक समिति " की आगामी परीक्षा अगस्त १९१२ ईस्वी से प्रारम्भ होगी।

जो पाठशालाओंके प्रबन्धक महाशय अपने विद्यार्थियोंको उक्त परीक्षामें शामिल कराना चाहें वा अन्य कोई महाशय परीक्षा देना चाहें तो उन्हें योग्य है कि निम्न लिखितपते से "परीक्षा-प्रवेश फार्म" मगाकर १९ जौलाई १२ ईस्वी तक उसकी पूर्ति करके वापिस भेज देवें।

नोट—विशेष हाल जाननेके लिये पठनक्रम और परीक्षा नियम मँगाके देखिए।

आपका सेवक,

मन्त्री—भारतवर्षीय जैन परीक्षा समिति, जयपुर.

नई पुस्तकें.

धूर्ताख्यान ।

छपकर तयार है ।   शीघ्रता कीजिये ।

धर्मपरीक्षाके ढंगका यह नवीन ग्रन्थ एक संस्कृत ग्रन्थके आधारसे हिन्दीमें लिखा गया है । इसमें पुराणोंकी पोलें एक मजेदार कथाके साथ खोली गई हैं । नामी २ धूर्तोंकी बातें सुनकर आप चकरावेगें और कहेंगे कि ये पुराण है या किसी मसखेरकी लिखी हुई किताबें है । छपाइ बहुत सुन्दर है । मूल्य सिर्फ तीन आने है । आप पढ़िये और पौराणिक मित्रोंको सुनाईये ।

धर्मरत्नोद्योत ।

आरा निवासी बाबू जगमोहनदासजी कृत यह कविता ग्रन्थ है। इसमें उपासना, प्रमाण, प्रमेय, भेदविज्ञान, उद्यमोपदेश, सुव्रत क्रिया द्वादशानुप्रेक्षा, समाधि भावना और आराधना इस प्रकार नौ अधिकार है। प्रत्येक अधिकारमें कई कई विषयोंका वर्णन है । ग्रन्थ देखने योग्य है। सुंदर एन्टिक पेपरपर छपा हुवा है। न्यो० १) मात्र है।

प्राणप्रिय–काव्य ।

यह सुन्दर और सरस काव्य दो वर्ष पहिले जैनहितैषीमें प्रकाशित हुआ था । अब जुदा पुस्तकाकार हिन्दी अनुवाद सहित छपाया गया है । प्रत्येक सहृदयको इसे पढना चाहिये । भक्तामरके चौथे चरणोंकी समस्या पूर्ति की गई है और उसमें नेमिनाथ और राजीमतीका सरस चरित्र निबद्ध किया गया है । मुल्य दो आना.

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

आठवां भाग] आषाढ श्रीवीर नि०सं० २४३८ [नौवां अंक.

चुने हुए उपदेश।

१. धन जीवनको आराम देनेके लिये है, न कि जीवन धन जमा करनेके लिये। एक बुद्धिमानसे लोगोंने पूछा कि "भाग्यवान् कौन है, और अभागी किसे कहते है?" उसने उत्तर दिया कि "भाग्यवान् वह है, जिसने खाया और बोया (अर्थात् दान दिया) और अभागी वह है, जो मर गया और छोड़ गया।"

२. दो मनुष्योंने व्यर्थ कष्ट सहा और व्यर्थ परिश्रम किया, एक उसने जिसने माल जमा किया परन्तु खाया नहीं, दूसरे उसने जिसने विद्या पढ़ी और अमल न किया। चाहे तू कितनी ही अधिक विद्या पढ़े, जब कि तू अमल नहीं करता तो नादान है—न बुद्धिमान होता है और न सत्यको प्राप्त कर सकता है। जिसपर कुछ किताबें लदीं हों उस गधेको क्या ज्ञान और खबर है कि, मेरी पीठपर लकड़ियां लदीं हैं या कि[illegible]?

३. ज्ञान धर्मके पालनेके लिये है न कि सांसारिक आनंद लूटनेके लिये। जिस मनुष्यने सद्गुण, ज्ञान, और धार्मिकताको बेच दिया,

उसने एक खलियान रक्खा और सब जला दिया अर्थात् उसने उनको व्यर्थ खोया--उनका दुरुपयोग किया।

४ एक बुद्धिमान--पंडित--जो कि सांसारिक विषयोंमें फंसा रहता है, अंधे मशालचीके समान है, जो कि उससे दूसरोंको मार्ग दिखाता है और स्वत (खुद) राह नहीं देखता। जिस मनुष्यने व्यर्थ उम्र खोई, उसने विना कोई वस्तु मोल लिये ही अपना रुपया खो दिया।

५. दश मनुष्य एक थालीमें खा सकते है, परन्तु दो कुत्ते बहुत-सा खाना मिलने पर भी उसे शान्ततासे--विना लड़े--नहीं खा सकते। लोभी पुरुष सब संसारकी माया पालेनेपर भी भूखा ही रहता है और संतोषी एक रोटीसे ही तृप्त हो जाता है। बुद्धिमानोंने कहा है कि "असंतोषी धनिकसे संतोषी भिक्षुक कई गुणा अच्छा है।" जिस मनुष्यने विद्या पढी और अमल न किया, वह उसके समान है कि जिसने हल जोता और बीज न बोया। अन्त.करणकी शुद्धता विना, केवल शरीरशुद्धिसे परमात्माका ध्यान वा पूजन करना ऐसा है जैसे विना गरीका नारियल।

७. मूर्ख लोग बुद्धिमानोंको नहीं देख सकते, जैसे कि बाजारी कुत्ते शिकारी कुत्तेको देखकर भोंकते है और उसका साम्हना करनेकी शक्ति नहीं रखते है। अर्थात् जब नीच पुरुष किसीकी भलाई नहीं कर सकता, तो बदीसे उसके दोष ढूंढ़ने लगता है। अशक्त शत्रु अवश्य बुराई करता है। क्योंकि साम्हने तो बात करते समय उसकी जबान गूगी हो जाती है।

८. जो बुद्धिमान मूर्खोंसे झगडा करे, उसे चाहिये कि इज्जत (मान) की आशा न रक्खे और यदि कोई मूर्ख कड़ी बातोंसे ज्ञानवान् पर प्रबल हो जाय, तो कुछ आश्चर्य नहीं। क्योंकि मूर्ख उस पत्थर-

के समान है, जो कि जवाहरातको तोड़ देता है। यदि कोई ज्ञानवान् किसी मूर्खसे अपमानित किया जाय, तो शोक नहीं करना चाहिये। यदि एक बुरा ढेला गिरकर सोनेकी रकाबीको फोड़ दे, तो न तो ढेलेकी क़ीमत बढ़ जाती है और न सोने (स्वर्ण) की कम हो जाती है।

९. इस संसारके प्राणियोंमें सबसे श्रेष्ठ मनुष्य और सबसे नीच कुत्ता माना गया है। परन्तु महात्माओंका कहना है कि, कृतघ्न (उपकार न माननेवाले) मनुष्यसे कृतज्ञ (उपकार माननेवाला) कुत्ता उत्तम है। कुत्ता एक रोटीके टुकड़ेका भी अहसान नहीं भूलता चाहे तुम उसे सैकड़ों बार भी पत्थरोंसे मारो। परन्तु कमीने (नीच)-की चाहे तुम उम्रभर परवरिश करो, तो भी वह जरासी बातमें तुमसे लड़नेको तैयार होगा। (गुलिस्ता)

भैयालाल जैन-टीचर,

गाडरवारा।

विनोद-विवेक-लहरी।

(३)

स्त्रियोंका रूप।

अनेक स्त्रिया रूपके गर्वसे पृथ्वीपर पैर नहीं रखना चाहतीं। वे समझती है कि, हम जिस ओरसे कमरको बल देकर निकल जाती है, लावण्यकी तरगोंमें उस ओरकी सुधबुध डूब जाती है और एक नूतन जगत्की सृष्टि होजाती है। उनके जीमें यह बात जमी हुई है कि, हमारे रूपकी आंधी जिस ओरको चलती है, उस ओरके

लोगोंका धैर्य-फूस उड़ जाता है और धर्म-कोट धराशायी होजाता है। जिस समय पुरुषोंके मनरूपी मैदानमें हमारे रूपकी बाढ़ आती है, उस समय उनका कर्म-जहाज, धर्म-नौका, बुद्धि-डोंगी सब ही डूब जाती है। केवल सौन्दर्याभिमानिनी कामिनीजनोंका ही यह विश्वास नहीं है-बहुतसे पुरुष भी जब स्त्रियोंकी मोहिनीशक्तिके वशीभूत होकर उनके रूपका वर्णन करना आरम्भ करते हैं, तब विस्मित होना पड़ता है। वे आकाशके ज्योतिर्विमानोंकी और पृथ्वीके पर्वत पशु, पक्षी, कीट, पतंग, लता, गुल्माढिकोंकी उपमाओंके लिये खूब ही खींचातानी करते है और उनमेंसे वहुतोंको तो अपमानित करके लौटा देते है। वे पहले चन्द्रमाको रूपसी-ललनाओंके मुख-मंडलके साथ तुलना करनेके लिये आमन्त्रित करते हैं और फिर उसे स्याहीके समान मलीन बतलाकर लौटा देते हैं। बेचारा चन्द्रमा अपना कलंक अपने साथ रखकर रातोंरात आकाशकी ड्यूटी पूरी करके छुप जाता है। सुन्दरियोंके ललाटके सिन्दूर-विन्दुको देखकर वे सूर्यप्रभाकी निन्दा करते है। सूर्यदेव क्रोधके कारण पृथिवीको दग्ध करके चले जाते है। वे रसमयी रमणियोंके मुखकी हँसीके साम्हने फूले हुए कमलोंमें सूर्यकी किरणोंके नृत्यको वा विकसित, कुसुदमें कौमुदी (चादनी) के नृत्यको कोई चीज नहीं समझते है, शायद तबहीसे कमल कुमुदोंमें कीटपतंगोंका निवास होगया है। कामिनियोंके कंठहारका निरीक्षण करके वे तारागणोंका अपमान करते है। इससे मालूम होता है कि, भविष्यतमें वे ज्योतिषका अनुशीलन करना छोड़कर सुनारोंकी विद्या सीखनेमें मन लगावेंगे। रंगिनी-ललनाओंके शरीरसंचालनमें वे इतनी लावण्यलीलाका अवलोकन करते हैं कि, उसके साम्हने चादनी रातमें मन्द मन्द आन्दोलित वृक्षोंके पत्रोंपर अथवा चचल

सरिताकी हिल्लोलोंपर दिखलाई देनेवाली चन्द्रिका-क्रीड़ाको भी कुछ नहीं समझते है। इसीलिये वे रातको सो जाते है और पानी भरभरकर नदियोंको सुखा देना चाहते है। और जिस समय वे रमणियोंके नेत्रोंका वर्णन करते है, उस समय मलयपवनसे हिलते हुए नील कमलोंकी तो बात ही क्या है, संसारका कोई भी पदार्थ उन्हें अच्छा नहीं लगता है।

इन नारीमूर्तियोंके स्तवन करनेवालोंकी जो उपमानुभवशक्ति है, उसकी भी प्रशंसा किये विना नहीं रहा जाता। एक नेत्र उनकी कल्पनाके प्रभावसे—कभी पक्षी जैसे खंजन, चकोर, कभी जलचारी जैसे मछली, कभी वनस्पति जैसे पद्म, पलाश, इन्दीवर, कभी जड़ पदार्थ जैसे आकाशके तारे,—बन जाते है। एक चन्द्रमा कभी रमणियोंका मुखमंडल और कभी उनके पैरोंका नख बन जाता है। ऊंचा कैलासशिखर और छोटीसी कमल-कलिका ये दोनों एक ही अंगके उपमा-स्थल है। परन्तु कवियोको जब इतनेसे भी संतोष नहीं होता है, तब वे अनार, कदम्ब, हाथीका मस्तक आदि विषम उपमाएँ ढूंढ़ते है। जलचारी छोटासा पक्षी हस और स्थलचारी प्रकाण्ड पशु हाथी, इनकी चालमें स्वभावसे ही बड़ी भारी विषमता है। परन्तु कवियोंकी दृष्टिमें ये दोनों ही रमणीकुल-चरण-विन्यासका अनुकरण करनेवाले है। साधारण हाथीकी गतिसे ही इन हंसगामिनियोंकी गतिकी समानता बतलानेमें उन्हें सतोष नहीं होता है; किन्तु जो हाथी हाथियोंका राजा होता है, उसके साथ इन गजेन्द्रगामिनियोंकी गतिका मिलान किया जाता है। सुना है, हाथी एक दिनमें बहुत लम्बी सफर कर सकता है, घोड़ा आदि कोई पशु उतनी नहीं कर सकता। जिन्हें दूरकी मजिल तय करना पड़ती है,

वे इन गजेन्द्रगामिनियोंकी पीठपर चढ़के क्यों नहीं जाते है? क्यों जी, जहा कहीं रेल नहीं हुई है, वहा बीच बीचमें गजगामिनी स्त्रियोंकी डांक लगानेका प्रबन्ध क्यों नहीं किया जाता है?

मै भी किसी समय कामिनीभक्त कवि था। उस समय मुझे रमणीके समान सुन्दर और कोई भी वस्तु नहीं दिखलाई देती थी। चम्पक, कमल, कुन्द, शिरीष, कदम्ब, गुलाब आदि पुष्प उस समय कामिनीकान्तिग्रथित पुष्पमालिकाके समान मनोहर नहीं मालूम होते थे। वसन्तकी कुसुमवती वसुमती (पृथ्वी) से भी मैं कुसुमवती युवतीपर अधिक प्यार करता था और वर्षाकी उच्छ्वसित सलिला चिररगिनी तरगिनीसे भी रसवती रमणीका अधिक पक्षपाती था। परन्तु इस समय मेरे वे विचार नहीं रहे है। मुझे अब दिव्यज्ञान हो गया है। मायामय मानव-मडलका इन्द्रजाल छिन्न करके अब मै बाहर आगया हू। धीवरके दुर्बल जालको काटकर जिस प्रकार महामच्छ पलायन कर जाता है, क्षुद्र मकड़ीके जालमेंसे जिस तरह गुबरीला निकल भागता है, और दुरन्त बैल रस्सी तोड़ पानेपर जिस तरह पूछ उठाकार पलायन करता है, उसी प्रकार मै भी इस जालसे निकल सिरपर पैर रखके भाग आया हू। कहनेकी जरूरत नहीं है कि, यह सब महा महिमामयी अफीमका प्रसाद है। हे माता अफीम देवी, तुम्हारा भडार भरपूर रहे। तुम प्रतिवर्ष सोनेके जहाजपर विराजमान होकर चीनदेशको कृतार्थ किया करो, जापान, साइबेरिया, यूरोप, अमेरिका सब ही तुम्हारे अधिकारमें आजावें और तुम्हारे नामकी देशमें जयन्ती मनाई जावे। पर माता, अपने कमलाकान्तको न भूल जाना। इसको अपने चरणोंमें ही रखना। आज मैं तुम्हारी कृपासे सबके उपकारके लिये दो चार मनकी बातें, कहना चाहता हूं।

मेरी बातें सुनकर केवल स्त्रियां ही क्यों बहुतसे पुरुष भी मुझे पागल बतलावेंगे। भले ही बतलावें, मेरी क्या हानि है? जो कोई नई बात कहता है, वह पागल कहलाता ही है। गालिलिओने कहा था पृथ्वी घूमती है, इटालीका भद्रसमाज, धर्मसमाज और पंडितसमाज सुनकर हँसने लगा और सबने स्थिर कर लिया कि, गालिलिओकी बुद्धिमें कुछ अन्तर आगया है। परन्तु समयका स्रोत बह गया। अब इटालीका कोई समाज पृथ्वीका घूमना सुनकर नहीं हँसता है और गालिलिओको भी अब कोई पागल नहीं समझता है।

सौन्दर्यके विषयमें सब ही कोई स्त्रियोंकी प्रधानता स्वीकार करते है। विद्या, बुद्धि, और बलमें पुरुषोंकी श्रेष्ठता स्वीकार करके भी रूपका तिलक स्त्रियोंकेही मस्तकपर लगाया जाता है। मेरी समझमें यह बड़ी भारी भूल है। मैने दिव्यदृष्टिसे देखा है कि, पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंका रूप बहुत ही निकृष्ट है। हे मानमयी महिलाओ, कहीं इस अपराधके कारण तुम अपने कुटिल कटाक्षोंसे कालकूट वर्षण करके मुझे दग्ध नहीं कर डालना, काली नागिनके समान वेणीके द्वारा मुझे बाध नहीं लेना, अथवा क्रोधित होकर भ्रूधनुषपर तीक्ष्ण बाणोंकी योजना करके मुझे विद्ध नहीं कर डालना। तुम्हारी निन्दा करनेमें मुझे भय मालूम होता है। मार्ग रोककर यदि तुम अपनी नथुनीका फंदा फैला रक्खो, तो न जाने कितने हाथी उलझकर तुम्हारी नाकसे लटक सकते है। फिर बेचारा कमलाकान्त तो किस गिनतीमें है। यदि तुम्हारी नथका नोलक खिसककर गिर पड़े, तो एक आध आदमीका खून होजाना कोई बडी बात नहीं है। चन्द्रहारका यदि एकाध चाद स्थान-च्युत होकर किसीके ऊपर गिर पड़े, तो उसके हाथपैर टूट जाना असंभव नहीं है। इसलिये मुझपर क्रोध नहीं करना। और हे रमणी-प्रिय, कल्पना-

प्रिय, उपमाप्रिय कविगण, आप लोग अपनी स्त्रीदेवीकी सुखमयी सुवर्ण-मयी प्रतिमाके भग करनेके अपराधमें मुझे मारनेके लिये उद्यत न हो जाना। मै सप्रमाण सिद्धकर दूगा कि, तुम कुसस्काराविष्ट पौत्तलिक (मूर्तिपूजक) हो। क्योंकि तुम उपास्य देवताकी प्रकृतिमूर्तिको छोडकर विकृत प्रतिमूर्तिकी पूजा करते हो।

जिनके सुन्दर बाल होते है, वे नकली बनावटी बालोंको उपयोगमें नहीं लाते है। जिनके उज्ज्वल और सुदृढ दात होते है, उन्हें बनावटी दातोंकी जरूरत नहीं होती। जिनका वर्ण यों ही लोगोंके मनको हरण करता है, उन्हें 'पाउडर' लगाकर लावण्यवृद्धिका उपाय नहीं करना पडता है। जिनके नेत्र होते है, उन्हें काचके नेत्रोंका आश्रय लेनेकी आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार जिसके पास जो वस्तु होती है, वह उसके लिये ललचाता नहीं है। जो यह समझता है कि, प्रकृतिने उसे किसी पदार्थसे वचित रक्खा है, वही अपनी कमी पूरी करनेके लिये उपाय करता है। यह सब देख सुनकर मैंने निश्चय कर लिया है कि, स्त्रियोंमें सौन्दर्यका अत्यन्त अभाव है। वे निरन्तर अपने रूपको बढानेके उपायोंमें ही लगी रहती है। किस उपायसे हम सुन्दरी मालूम होंगी, इस चिन्तामें वे पागलसी बनी रहती है। अच्छे २ आभूषण कैसे मिलें, यही उनकी निरन्तर भावना रहती है—यही उनकी चेष्टा रहती है, अधिक क्या कहा जाय आभूषण ही उनका जप, आभूषण ही उनका तप, आभूषण ही उनका ध्यान और आभूषण ही उनका ज्ञान है। अपने शरीरको सुसज्जित करनेके लिये जो इतना प्रयत्न करती है, उनमें प्रकृत सौन्दर्यकी अधिकता होगी, यह मेरी समझमें तो नहीं आता है। जिसकी नाक सुन्दर नहीं होती, उसीको नाकमें नथरूपी रस्सीसे नोलक जगन्नाथको

झुलानेकी रुचि होती है। जिसके कान सुन्दर नहीं होते, उसीको अपने कानोंमें कर्णफूलरूपी नाना फलफूलपशुपक्षीविशिष्ट बगीचोंका जोड़ा लटकाना पसन्द आता है। जिसका वक्षःस्थल मनोहर नहीं होता, उसीको उसपर सात लड़की फासी डालकर पुरुष-जातिको विशेषकर दूध पीनेवाले बच्चोंको भयभीत करनेका उपाय करना पड़ता है। यदि वे अलंकारोंके विना ही आपको सुन्दरी समझतीं, तो अलकारोंका बोझा लादनेके लिये कभी इतनी व्यग्र न होतीं। पुरुष भूषणोंके विना सन्तुष्ट रहता है, परन्तु स्त्रियां भूषणोंके विना मनुष्य-समाजके सम्मुख मुँह दिखलानेमें भी लज्जित होती है। अतएव स्त्रियोंके निजव्यवहारसे मालूम होता है कि, पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रीजाति सौन्दर्यमें बहुत निकृष्ट है।

प्रकृतिकी रचनापद्धतिकी समालोचना करनेसे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि, स्त्रीजातिकी अपेक्षा पुरुषजाति अधिक सुन्दर है। जिस विस्तीर्ण चन्द्रकलाप (मोरकी पूछ) को देखकर जलदमुकुट इन्द्रधनुष भी लज्जित होता है, वह मयूरके ही होता है—मयूरीके नहीं। जिस केसरसे सिंहकी इतनी शोभा है, वह सिहनीके नहीं होती है। जिस कन्धरसे बैलकी कान्ति बढ़ती है, वह गायके नहीं होता है। मुर्गेके जैसी सुन्दर कलगी और पंखे होते है, वैसे मुर्गीके नहीं होते। इस प्रकार जब देखा जाता है कि, उच्चश्रेणीके जीवोंमें स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुष आधिक सुन्दर होते है, तब केवल मनुष्योंकी रचना करते समय विधाताने इस नियमका भंग किया होगा, यह समझमें नहीं आता है। विद्यासुन्दर नाटकके रचयिता महाशय, क्या तुम्हारे मनमें यही तत्त्व उदित हो गया था? इसी लिये क्या तुमने अपने नाटकके नायकका नाम 'सुन्दर'

रक्खा था? तुम क्या यह बात समझ गये थे कि, स्त्री चाहे जितनी विद्यावती क्यों न हो, पुरुषके स्वाभाविक सौन्दर्य और ज्ञानके आगे उसे पराजित होना ही पडता है?

सुन्दरताकी बहार जवानीमें होती है। किन्तु हे रूपान्ध ललनाओ, कहो तो, तुम्हारी जवानी कितने दिन टिकती है? मेरी समझमें तो वह समुद्रके ज्वारके समान आते आते ही चली जाती है। बीस हुए कि, तुम्हारा ज्वार उतरा। थोडे ही दिनोंमें तुम्हारे अंग शिथिल हो जाते हैं। बुढ़ापा शीघ्र ही आकर तुम्हारे गलेकी लावण्यमाला छीन ले जाता है। पुरुषमें चालीस पैंतालीसपर जो ओज वा सुन्दरता रहती है, वह तुममें बीस पचीसके ऊपर खोजनेसे भी नहीं मिलती है। तुम्हारे रूपकी स्थिति सौदामिनी (बिजली) अथवा इन्द्रधनुष्यके समान बहुत थोड़े समय तक रहती है।

जो लोग रूपका उपभोग करनेमें उन्मत्त रहते हैं, उनके दुःखका थोड़ा बहुत अनुभव हम भोजन करते समय कर सकते हैं। सबसे बडा दुःख यह है कि, भोजन थालीमें आते आते ही ठंडा हो जाता है। इसी प्रकार सौन्दर्यरूप भात प्रणय-कलारूप थालीमें आते आते ही ठंडा हो जाता है, फिर क्या मजाल जो उसे कोई खा लेवे? निदान वस्त्रालंकारादिरूप " आमलीका रस" मिला कर तथा थोड़ासा आदररूप लवण डाल कर किसी प्रकार उसे गलेके नीचे उतारते हैं।

हे सौन्दर्यगर्वित महिलाओ, सच सच तो कहो, क्षणस्थायी होनेके कारणसे ही क्या तुम अपने रूपका इतना आदर करती हो? तुम्हारा रूप अच्छी तरहसे देखने न देखने, अच्छी तरहसे उपभोग करते न करते अन्तर्हित हो जाता है, क्या इसी कारण लोग

उसके लिये प्यासे पपीहेके समान उन्मत रहते हैं? तुम्हारा रूप वैसा धन है, जो विना जाना हुआ होता है और खो जाता है। क्या इसीलेये तुम उसका असली मूल्य नहीं बतला सकती हो? केवल क्षणस्थायी पदार्थ होनेके कारण ही नहीं, एक दूसरे कारणसे भी स्त्रियोंके सौन्दर्यने मनोहर मूर्ति धारण की है। आज तक जितने ग्रन्थकारोंका मत ससारमें मान्य समझा गया है, वे सब ही पुरुष थे, स्त्री नहीं। इसलिये उन्होंने कामिनियोंके रूपका वर्णन अनुरागदृष्टिसे किया है। मजनूकी अनुरागदृष्टिमें बदसूरत लैला परियोंसे भी बढ़कर थी। जो रमणिया प्रणयकी वस्तु हैं, उन्हें सहजके नेत्रोंसे कौन देखेगा? सुन्दर दर्पणके प्रभावसे कुत्सित वस्तु भी अच्छी दिखने लगती है। मनोमोहिनियोंका रूप प्रीतिका अंजन आजकर देखना चाहिये, फिर पुरुषोंकी अपेक्षा उसका माधुर्य क्यों न अधिक प्रतीत होगा?

हे प्रणयदेव, पाश्चात्य कवियोंने तुम्हें अन्ध बतलाया है। और है भी यह ठीक। तुम्हारे प्रभावसे लोगोंको अपनी प्यारी वस्तुके दोष नहीं दिख सकते है। जिनके नेत्र तुम्हारे अजनसे रंजित रहते है, वे निरन्तर विश्वविमोहक पदार्थोंसे घिरे रहते है। विकट मूर्तिको वे देखते है कि वह मनोहर है। कर्कशस्वरका अनुभवन करते हैं कि वह सुमधुर है। भूतनीकी अंगभंगीको देखकर कहते हैं कि, यह मृदु-मन्द समीरसे डोलती हुई ललित लवङ्गलताकी लावण्यलीलासे भी अधिक सुखकर है। इसीलिये चीनदेशमें चपटी नाकका आदर होता है, इसीलिये विलायती बीबियोंके ताम्रवर्णबालों और कंजे नेत्रोंपर लोग लट्टू होते है, इसीलिये हबशियोंके देशमें मोटे होठोंका सन्मान है, और इसीलिये इस देशमें गोदना—गोदित मिस्सी-कलंकित

चन्द्रवदनका आदर है। यदि स्त्रिया अपने मनकी बातोंको पुरुषोंके समान मुंहपर लाती होतीं, तो हे प्रणयदेव, हम और किसी तरह नहीं, तो तुम्हारे प्रभावसे ही यह अवश्य सुनते कि, पुरुषोंके सौन्दर्यके आगे स्त्रियोंका रूप कुछ भी नहीं है। यद्यपि मनके गुप्त भाव वचन द्वारा प्रकाशित करनेमें स्त्रियोंको बहुत ही सकोच होता है, तो भी कार्यद्वारा उनके आन्तरिक गूढ़ विचार बाहिर हो जाते हैं। यह कौन नहीं जानता कि, स्त्रियाँ परस्परका सौन्दर्य तो स्वीकार नहीं करती हैं, परन्तु पुरुषोंकी भक्त हो जाती है। इससे क्या यह सिद्ध नहीं होता है कि, वास्तवमें वे स्त्रियोंके रूपकी अपेक्षा पुरुषोंके रूपकी अधिक पक्षपातिनी हैं?

रूप ही रूपमें स्त्रियोंका सर्वनाश हुआ है। सब यही समझते हैं कि, रूप ही स्त्रियोंका अमूल्य धन है। रूप ही स्त्रियोंका सर्वस्व है। इसीलिये स्त्रिया जिस किसी इच्छित वस्तुको मागती हैं, लोग उसे केवल रूपके बदलेमें देना चाहते है। इसीसे ही संसारमें मनुष्यसमाजको कलकित करनेवाली वाराङ्गनाओं वा वेश्याओंकी सृष्टि हुई है। और इसीसे परिवारमें स्त्रियोंको दासत्व प्राप्त हुआ है।

इस बातको अब हम नहीं सुनना चाहते कि, क्षणस्थायी सौन्दर्य ही स्त्रियोंकी एकमात्र पूजी, और ससार सागरसे पार होनेका एकमात्र नौ-यान (जहाज) है। बहुत दिनों सुना, सुनते २ कान अघा चुके है--अब और नहीं सुन सकते। हम यह सुनना चाहते हैं कि, नारी जातिमें जो गुण है, वे उनके रूपकी अपेक्षा सौ गुणे, हजार गुणे, लाख गुणे, और करोड़ गुणे महत्त्वके हैं। हम सुनना चाहते है कि, स्त्रिया मूर्तिमती सहिष्णुता, भक्ति, और प्रीति हैं।

जिन्होंने देखा है कि, वे कितने कष्ट सहन करके सन्तानका पालन करती हैं, जिन्होंने देखा है कि, वे कितने प्रयत्न और परिश्रमसे रोगी कुटुम्बियोंकी सेवा सुश्रूषा करती है, उन्होंने स्त्रियोंकी सहिष्णुताका थोडा बहुत परिचय अवश्य पाया होगा। जिन्होंने किसी सुन्दरीको पतिपुत्रोंके लिये जीवन विसर्जन और धर्मके लिये बाह्यसुख विसर्जन करते देखा है, उन्होंने थोड़ा बहुत अवश्य समझा होगा कि, किस प्रकारकी प्रीति और भक्ति स्त्रियोंके हृदयमें निवास करती है।

जब हम सोचते है कि, कुछ दिन पहिले हमारे देशकी स्त्रिया कोमलाङ्गी होकर भी अपने पति पुत्रों और कुटुम्बियोंके लिये अपने जीवनका उत्सर्ग कर देती थीं—अपने सुखकी अपेक्षा दूसरोंके सुखको महत्त्वका समझती थीं, उसमय हमारे हृदयमें एक नवीन आशाका उदय होता है कि, जब महत्त्वका बीज हमारे अन्तरंगमें छुपा हुआ है, तब क्या हम आज नहीं कल भी अपना महत्त्व नहीं दिखला सकेंगे? हे भारतललनागण, तुम भारतकी सारभूत मणिया हो। तुम्हें झूठे रूपके लिये भटकते फिरनेकी क्या आवश्यकता है? तुम्हारे लिये यह योग्य भी नहीं है।

श्रीकमलाकान्त चक्रवर्ती।

कर्नाटक-जैन-कवि।

(गत छट्ठे अकसे आगे)

२९ राजादित्य—ईस्वी सन् ११२० के लगभग इस कविके अस्तित्वका पता लगता है। राजवर्म, भास्कर और वाचिराज इसके नामान्तर है। पद्यविद्याधर इसका उपनाम था। इसके पिताका नाम

श्रीपति और माताका वसन्ता था। कौंडि मंडलके 'पूविन बाग' में इसका जन्म हुआ था। यह विष्णुवर्धन राजाकी सभाका प्रधान पंडित था। विष्णुवर्धनने ईस्वी सन् ११०४ से ११४१ तक राज्य किया है। कविके समक्ष उसका राज्याभिषेक हुआ था। अपने आश्रयदाता राजाकी इसने एक पद्यमें बहुत प्रशसा की है और उसको सत्यवक्ता, परहितचरित, सुस्थिर, भोगी, गंभीर, उदार, सच्चरित्र अखिलविद्यावित् और भव्यसेव्य बतलाया है। यह कवि गणित शास्त्रका बडा भारी विद्वान् हुआ है। कर्नाटक कवि-चरित्रके लेखकका कथन है कि, कनडी साहित्यमें गणितका ग्रन्थ लिखनेवाला यह सबसे पहला विद्वान् था। इसके बनाये हुए व्यवहारगणित, क्षेत्रगणित, व्यवहाररत्न, जैनगणितसूत्रटकोदाहरण, चित्रहसुगे और लीलावती ये गणित ग्रन्थ प्राप्य है। ये सब ग्रन्थ प्राय गद्यपद्यमय हैं। इसका व्यवहारगणित नामक ग्रन्थ बहुत ही अच्छा है। इसमें गणितके त्रैराशिक, पचराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक, चक्रवृद्धि आदि सम्पूर्ण विषय है और वे इतनी सुगम पद्धतिसे बतलाये गये है कि, गणित जैसा कठिन और नीरस विषय भी सहज और सरस हो गया है। कविने अपनी विलक्षण प्रतिभासे इस ग्रन्थको केवल पाच ही दिनमें बनाकर तयार किया था, ऐसा इसके एक पद्यसे प्रतीत होता है। यद्यपि इस कविका कोई काव्य ग्रन्थ नहीं मिलता है, तो भी उक्त ग्रन्थोंके पद्य देखकर विश्वास होता है कि यह कवि भी अच्छा था। व्यवहारगणितके प्रत्येक अध्यायके अन्तमें इसने इस प्रकार थोड़ासा गद्य दिया है,—"इति श्रीशुभचन्द्रदेवयोगीन्द्रपादारविन्दमत्तमधुकरायमानमानसानन्दितसकलगणिततत्त्वविलासे विनेयजननुते श्रीराज्यादित्यविरचिते व्यव-

हारगणिते—इत्यादि ।" इससे मालूम होता है कि, कविके गुरुका नाम श्रीशुभचन्द्रदेव था और ये संभवत. वे ही शुभचन्द्र है जिनका वर्णन श्रवणबेलगुलके ४३ वें शिलालेखमें आया है और जिनकी मृत्यु ईस्वी सन् ११२३ में बतलाई गई है।

३० कीर्तिवर्मा—ईस्वी सन् ११२५ में इस कविके अस्तित्वका पता लगता है। यह चालुक्यवंशीय (सोलंकी) महाराज त्रैलोक्यमल्ल-का पुत्र था । त्रैलोक्यमल्लने १०४४ से १०६८ तक राज्य किया है। इसके चार पुत्र थे—विक्रमांकदेव (१०७६ से ११२६), जयसिंह, विष्णुवर्धन—विजयादित्य और कीर्तिवर्मा । कीर्तिवर्मा त्रैलोक्यमल्लकी जैनधर्मकी धारण करनेवाली केतलदेवी रानीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। केतलदेवीने सैकडों जैनमन्दिर बनवाये थे और जैनधर्मकी प्रभावनाके लिये अनेक कार्य किये थे। उसके बनवाये हुए मन्दि-रोंके खंडहर और उनके शिलालेख अब भी उसके नामका कर्ना-टक प्रान्तमें स्मरण कराते हैं। कीर्तिवर्माके बनाये हुए ग्रन्थोंमेंसे इस समय केवल एक गोवैद्य नामक ग्रन्थ प्राप्य है। इसमें पशु-ओंके विविध रोगोंका और उनकी चिकित्साका विस्तारपूर्वक वर्णन है। इससे जान पड़ता है कि, वह केवल कवि ही नहीं वैद्य भी था। गोवैद्यके एक पद्यमें उसने आपको कीर्तिचन्द्र, वैरिकरिहरि, कन्दर्प-मूर्ति, सम्यक्त्वरत्नाकर, बुधभव्यबान्धव, वैद्यरत्नपालभवन्द्य (?) कविताब्धिचन्द्र, कीर्तिविलास आदि विशेषण दिये है। वैरिकरिहरि विशेषणसे बोध होता है कि, वह बड़ा भारी वीर तथा योद्धा भी था। उसने अपने गुरुका नाम देवचन्द्रमुनि बतलाया है। श्रवणबेलगु-लके ४० वें शिलालेखमें राघवपाण्डवीय काव्यके कर्त्ता श्रुतकीर्ति त्रैविद्यके समकालीन जिन देवचन्द्रकी स्तुति की है, हमारी समझमें वे ही कीर्तिवर्माके गुरु होंगे।

३१ ब्रह्मशिव—यह ईस्वी सन् ११२५ के लगभग हुआ है। कीर्तिवर्म और आहवमल्ल नरेशका यह समकालीन था। यह वत्सगोत्री ब्राह्मण था। इसके पिताका नाम अग्गलदेव था। पहिले यह वैदिकमतका अनुयायी था। और फिर उसे निःसार समझकर लिंगायतमतका उपासक होगया था। इस समयतक वह वेदस्मृति पुराण आदि नाना ग्रन्थोंका अध्ययन कर चुका था। परन्तु उसे इन ग्रन्थोंसे कुछ संतोष नहीं हुआ। लिंगायत मतको भी उसने यथार्थ नहीं समझा, और निदान उसने स्याद्वादानुयायी जैनधर्मको ग्रहण करके अपने आत्माको सन्तुष्ट वा शान्त किया। इसका बनाया हुआ एक **समयपरीक्षा** नामका ग्रन्थ मिलता है, जिसमें शैव वैष्णवादि मतोंके पुराणग्रन्थों तथा आचारोंमें दोष बतलाके जैनधर्मकी प्रशंसा की है। इस ग्रन्थकी कविता बहुत ही सरल और ललित है। कनडी भाषाका यह महाकवि समझा जाता है। **समयपरीक्षासे** संस्कृतका भी यह अच्छा विद्वान् था, ऐसा मालूम होता है। निम्न लिखित गद्यसे मालूम होता है कि, इसके गुरु श्रीवीरनन्दि मुनि थे.——

" इदु भगवदर्हतपरमेश्वरचरणस्मरणपरिणतान्तःकरणवीरनन्दिमुनीन्द्रचरणसरसीरुह-षट्चरण-मिथ्यासमयतीव्रतिमिरचण्डकिरण-सकलागमनिपुण-महाकविब्रह्मशिवविरचितसमयपरीक्षायां:—"

ये वीरनन्दि चन्द्रप्रभकाव्यके कर्त्ता नहीं, किन्तु दूसरे मेघचन्द्र त्रैविद्यदेवके पुत्र होंगे जिनकी कि मृत्यु ईस्वी सन् १११५ में हुई थी, ऐसा अनुमान होता है।

३२ कर्णपार्य—समय ईस्वी सन् ११४०। इसके कण्णप, कर्णप, कण्णमय, कण्णमय्य, आदि नामान्तर हैं, जो इसके ग्रन्थोंमें जगह

जगह पाये जाते हैं। ' किलेकिल ' दुर्गके स्वामी गोवर्धन वा गोपन राजाके विजयादित्य, लक्ष्मण वा लक्ष्मीधर, वर्धमान और शान्ति नामके चार पुत्र थे। कवि इनमेंसे लक्ष्मीधरका आश्रित कवि था। इस कविके बनाये हुए नेमिनाथपुराण, वीरेशचरित्र और मालती-माधव नामक तीन ग्रन्थ कहे जाते हैं, परन्तु इस समय केवल एक नेमिनाथपुराण ही उपलब्ध है। इसमें २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथका चरित्र है। ग्रन्थ चम्पूरूप है और उसमें १४ आश्वास है। यह ग्रन्थ कविने अपने परिपोषक राजा लक्ष्मीधरकी प्रेरणासे बनाया है, ऐसा प्रशस्तिसे मालूम होता है। इसमें लक्ष्मीधरराजाकी और श्रीकृ-ष्णकी समता बतला कर स्तुति की गई है। लक्ष्मीधरके गुरु नेमि-चन्द्र मुनि थे और कविके गुरु कल्याणकीर्ति थे। कल्याणकीर्ति मलधारि गुणचन्द्रके शिष्य और मेघचन्द्र त्रैविद्यदेवके जो कि ११९ में मृत्युको प्राप्त हुए हैं, सतीर्थ वा सहपाठी थे, ऐसा श्रवण-बेलगुलके ९९ में शिलाशासनसे मालूम होता है। गुणचन्द्र भुवनैकमल्ल राजा (१०६९ से १०९७ तक) के समयमें उनके गुरु थे। इसकी कविता सुगम और ललित है। रुद्रभट्ट (११८०), अण्डय्य (१२३९), मंगरस (१५०९), और दोड्डय आदि कवियोंने इसकी प्रशंसा की है।

* द्वितीय नागवर्म—समय ईस्वी सन् ११४५। यह जातिका जैनब्राह्मण था। इसके पिताका नाम दामोदर था। चालुक्यनरेश जयदेमल्लका यह कटकोपाध्याय (?) और जन्न कविका गुरु था। अभिनव शर्ववर्म, कविकर्णपूर और कवितागुणोदय ये इसकी उपा-

---

* जैनहितैषीके पाचवे अक पृष्ठ २१० में इस कविका जो वर्णन आया है, वह अधूरा है। यहा पूरा किया जाता है।

धिया थीं। वाणिवल्लभ (१२००), जन्न, साल्व आदि कवियोंने इसकी स्तुति की है। इसके बनाये हुए काव्यावलोकन, कर्नाटकभाषाभूषण और वस्तुकोश नामके तीन ग्रन्थ हैं। काव्यावलोकन अलंकारका ग्रन्थ है। इसमें ५ अध्याय है। पहिले भागमें कनड़ीका व्याकरण है। नृपतुग (अमोघवर्ष)के अलकारशास्त्रकी अपेक्षा यह विस्तृत है। कर्नाटक भाषाभूषण संस्कृतमें कनड़ी भाषाका उत्कृष्ट व्याकरण है। मूलसूत्र और वृत्ति सस्कृतमें है—और उदाहरण कनड़ीमें हैं। उपलब्ध कनडी व्याकरणोंमें जो कि संस्कृत सूत्रोंमें है, यह सबसे पहिला और उत्तम व्याकरण है। इसीको आदर्श मानकर सन् १६०४ में भट्टाकलंक (द्वितीय) ने कनड़ीका वृहत् व्याकरण (शब्दानुशासन) सस्कृतमें बनाया है। वस्तुकोश कनडी भाषामें प्रयुक्त होनेवाले संस्कृत शब्दोंका अर्थ बतलानेवाला पद्यमय निघण्टु वा कोश है। वररुचि, हलायुध, साश्वत, अमरसिंह आदिके ग्रन्थ देखकर इसकी रचना की गई है।

(क्रमश)

जैन लाजिक (न्याय)।

(२)

इन्द्रभूति गौतम (६०७—५१५ ईस्वीसे पूर्व)

३. कहते है कि, महावीर स्वामीके उपदेश और सिद्धातोंको जो जैन शास्त्रोंमें वर्णन किए जाते है उनके एक शिष्य इन्द्रभूतिने एकत्रित किए है। ये शिष्य प्रायः गौतमके नामसे प्रसिद्ध है।[१]

---

१ अथ सत्यार्थसम्पन्नं श्रुतार्थं जिनभाषितम्।
द्वादशाङ्गश्रुतस्कन्धं सोपाङ्गं गौतमो व्यधात्॥
(जैन हरिवंशपुराण।)

ये केवली थे और महावीर स्वामीके मुख्य गणधर थे। इनके पिताका नाम ब्राह्मण वसुभूति और माताका ब्राह्मणी पृथिवी था। ये मगध देशमें गोर्वर[3] नामक ग्राममें पैदा हुए थे और महावीरस्वामीके निर्वाणके १२ वर्ष पश्चात् ९२ वर्षकी अवस्थामें इनका

इन्द्रभूति गौतम और सुधर्मस्वामी दोनोंने मिलकर जैन शास्त्रोंको सम्पादन किया था, परतु इन्द्रभूति उसी दिन केवली हो गए अर्थात् उन्होंने केवल-ज्ञान प्राप्त कर लिया, जिस दिन महावीर स्वामीका निर्वाण हुआ। इस कारण वे अपने गुरु महावीरके पदपर आरूढ नहीं हुए और उसको अपने धर्मभ्राता सुधर्मस्वामीके सुपुर्द किया—

इन्द्रभूतिप्रभृतीनां त्रिपदीं व्याहरत् प्रभुः॥

(हेमचद्रकृत महावीरचरित्र अध्याय ५ हस्तलिखित प्रति मुनि धर्मविजय व इन्द्रविजयजीसे मागी हुई।)

१ "पूर्ण ज्ञानके प्रोफेसर"—इस उपाधिके विषयमें विशेष जाननेके लिये आर. जी. भाडारकरकी सन् १८८३–१८८४ की रिपोर्टके पृष्ठ १२२ को देखो।

२ यत् प्रज्ञाप्रसरेऽतिशायिनि तथा प्रालेयशैलोज्ज्वले
जैनी गौरचरित्र यद्यपि यथा सद्यः पदैः कोटिशः।
अङ्गोपाङ्गमहोदया समभवत्त्रैलोक्यसंचारिणी
वन्द्योऽसौ गणभृज्जगत्त्रयगुरुर्नाम्नेन्द्रभूतिः सताम्॥४॥

(सिद्धजयती–चरित्र टीका)

पिटरसन साहबकी तृतीय रिपोर्ट (पृष्ठ ११०.)

श्रीमन्तं मगधेषु गोर्वर इति ग्रामोऽभिरामः श्रिया।
तत्रोत्पन्नप्रसन्नचित्तमनिशं श्रीवीरसेवाविधौ।
ज्योतिः संश्रयगौतमान्वयवियत्प्रद्योतनद्योमणिं
तापोत्तीर्णसुवर्णवर्णवपुषं भक्त्येन्द्रभूतिं स्तुवे॥

(गोतमस्तोत्र जिनप्रभसूरि कृत, काव्यमालासप्तमगुच्छक।)

४. इन्द्रभूति गौतमके विषयमें विशेष जानना हो, तो सितम्बर सन् १८८२ के इन्डियन एंटिकुयेरीके अक ११ में डाक्टर क्लाटकी खरतरगच्छकी पट्टा-

राजगृही (राजगिर) के गुणावा ग्राममें देहान्त हुआ था। यह मान-कर कि महावीर स्वामीने ईस्वीसन्‌से ५२७ वर्ष पूर्व निर्वाण पद प्राप्त किया, इन्द्रभूतिकी उत्पत्ति ईस्वीसन्‌से ६०७ वर्ष पूर्व और मृत्यु ५१५ वर्ष पूर्व होनी चाहिए।

जैनियोंके धर्मशास्त्र।

४. जैनियोंके शास्त्र जो प्राय धार्मिक समझे जाते है, ४५ सिद्धा-न्तों अथवा आगमोंमें विभाजित है। और वे ११ अंग, १२ उ-पांग, इत्यादिमें बँटे हुए हैं। ये बालकों, स्त्रियों, वृद्धों और मूर्खोंके लाभार्थ अर्द्धमागधी या प्राकृत[1] भाषामें बनाए गए थे। इसी उ-द्देश्यसे बौद्धधर्मके शास्त्र भी प्रारभमें मागधी या पाली भाषामें लिखे गए थे। ऐसा माना जाता है कि, आदिमें अंगोंकी सख्या ११ थी। बारहवा अंग जो 'दृष्टिवाद' अंग कहलाता था, संस्कृतमें[2] लिखा गया था।

५. दृष्टिवाद—दृष्टिवाद अंग अब नहीं रहा है। इसके ५ भाग थे। प्रथम भागमें तर्कशास्त्रका कथन बताया जाता है। ऐसा

वलीको और वेवर साहबकी जरमन भाषाकी पुस्तकके पृष्ठ ९८३ व १०३० को देखो, जहा जिनदत्तसूरिके 'गणधरसार्धशतकम्' पर सर्वराजगणिकी वृत्ति और खरतरगच्छकी "श्रीपट्टावलीवाचना" दी हुई है।

१. हरिभद्रसूरि अपनी दशवैकालिकवृत्तिके तीसरे अध्यायमें लिखते हैं कि —

बालस्त्रीवृद्धमूर्खाणां नृणां चारित्रकाङ्क्षिणाम्।
अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः सिद्धान्त प्राकृत स्मृत ॥

२ वर्द्धमानसूरि अपने आचारदिनकरमें आगमसे यह उद्धृत करते हैं —

मुत्तूण दिट्ठिवायं कालिय उक्कालियंग सिद्धंतं।
थीबालवायणत्थं पाइय मुइयं जिनवरेहिं ॥

प्रसिद्ध है कि, दृष्टिवाद अंग स्थूलभद्रके[1] समयमें जिनका तपगच्छ पट्टावलीके अनुसार उस वर्षमें देहांत हुआ जिसमें नौवां नन्द चंद्रगुप्तसे मारा गया। अर्थात् ईस्वी सन्‌से ३२७ वर्ष पूर्वमें वह पूर्ण विद्यमान था[2] ईस्वी सन् ४७४ तक दृष्टिवाद अंग सर्वतया लोप हो गया। दृष्टिवादमें किस प्रकारसे तर्कशास्त्रका कथन किया गया है, इसका कुछ पता नहीं है।

६. जैनियोंके ४९ प्राकृत शास्त्रोंमेंसे कईमें न्याय विषयका कथन किया गया है। अनुयोगद्वारसूत्र[3], स्थानांगसूत्र, नन्दीसूत्र, इत्यादिमें नयका वर्णन किया है। नंदीसूत्र, स्थानागसूत्र, भगवती[4] सूत्र इत्यादिमें प्रमाणके पूरे भेद किये गए हैं।

---

१. धनपतसिंह कलकत्ता द्वारा प्रकाशित नंदिसूत्रके चूर्णिक पृष्ठ ४७५ को और पिटरसन साहबकी सस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थोंकी चौथी रिपोर्ट पृष्ठ १३६ को देखो।

२. दृष्टिवाद (जिसको प्राकृतमें दिट्ठिवाद कहते हैं) के, पूर्ण इतिहासके लिए वेबर साहबके जैनियोंके धर्मशास्त्रोंको देखो। जिनका बेयर स्मिथने मई १८९१के इन्डियन एटिकुयेरीके वीसवें अकके पृष्ठ १८०—१९२ में अनुवाद किया है।

३. अनुयोगद्वार सूत्रमें नयके सात भेद किये गये हैं—१ नैगम, २ सङ्ग्रह, ३ व्यवहार, ४ ऋजुसूत्र, ५ शब्द, ६ समभिरूढ, ७ एवभूत। इन शब्दोंके अर्थके लिये उमास्वातिकृत तत्त्वार्थाधिगम (२१-२६) में देखो, जिसमें नयको सात प्रकारसे विभाजित करनेके स्थानमें प्रथम उसके ५ भेद किए हैं, फिर उन पाचमेंसे एकके अर्थात् शब्दके ३ भेद किये हैं।

४. स्थानाग सूत्रमें ज्ञानके दो भेद किए हैं—१ प्रत्यक्ष, २ परोक्ष। प्रत्यक्षके फिर दो भेद किये है—१ केवलज्ञान, २ अकेवलज्ञान। अकेवलज्ञानके दो भेद किए हैं—१. अवधिज्ञान, २ मन·पर्य्ययज्ञान। परोक्ष ज्ञानके दो भेद किए हैं.—१ अभिनिवोध (मतिज्ञान), ५ श्रुतज्ञान (देखो स्थानागसूत्र पृष्ट ४५-४८ व नंदीसूत्र पृष्ठ १२०-१२४ धनपतसिंह द्वारा कलकत्तेमें प्रकाशित, उमास्वातीके विषय में जो कुछ लिखा है उसे भी देखो।)

७ हेतु—यद्यपि हेतु शब्द इन प्राकृत ग्रन्थोंमें पाया जाता है परन्तु इन ग्रन्थोंमें इसका जो प्रयोग किया गया है उससे यह प्रगट होता है कि उस समयमें इस शब्दके कोई खास ठीक २ अर्थ नहीं हुए थे। स्थानांगसूत्रमें[1] यह शब्द न केवल युक्तिके अर्थमें किन्तु प्रमाण और अनुमानके पर्य्यायवाची शब्दके तौर पर भी प्रयोग किया गया है। हेतु प्रमाणके अर्थमें चार प्रकारका वर्णन किया जाता है—१ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ४ आगम।

८ जब हेतु अनुमानके तौरपर लाया जाता है, तब निम्न लिखित रीतिसे कहा जाता है.—

१ यह है, कारण कि वह है। वहां अग्नि है कारण कि वहां धूम है।

२ यह नहीं है, कारण कि वह है। यह ठडा नहीं है कारण कि वह अग्नि है।

३ यह है कारण कि वह नहीं है। यहा ठंडा है कारण कि अग्नि नहीं है।

४ यह नहीं है, कारण कि वह नहीं है। यहा शिंशप (शीशम) वृक्ष नहीं है कारण कि वहा वृक्ष ही नहीं है। (क्रमशः)

दयाचन्द गोयलीय, बी. ए.

---

१ अथवा हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते तं जहा। पच्चक्खे अनुमाणे उवमे आगमे। अथवा हेऊ चउव्विहे पण्णते तं जहा अत्थितं अत्थि सो हेऊ अत्थितं णत्थि सो हेऊ णत्थि तं अत्थि सो हेऊ णत्थि तं णत्थि सो हेऊ। (स्थानागसूत्र पृष्ठ ३०८–३१० धनपतसिंहद्वारा कलकत्तेमें प्रकाशित)

धन और विद्या।

(१)

मानवनगरीमें हुआ, उत्सव एक महान।
दूर दूरके बहुतसे, जुड़े धनिक धीमान॥
जुड़े धनिक धीमान, सभामें बैठे सब ही।
विद्या औ धन लगे, अचानक लड़ने तब ही॥
बीच बचावा किया बहुत, पर बात न सम्हरी।
वचन-युद्धसे हुई, शब्दमय मानव-नगरी॥

(२)

विद्यासे धनने कहा, क्यों करती तकरार।
तुझसे मेरे रहत है, चाकर बीस हजार॥
चाकर बीसहजार, पलें करुणासे मेरी।
आना कानी करूं, दाल फिर गले न तेरी॥
है सब विधि मुहताज, अरी विद्या तू मेरी।
मै हूं जगमें श्रेष्ठ, बजै मेरी ही भेरी॥

(३)

तू मतवाला जगतमें, रे कृतघ्न मतिमंद।
मेरे बिन चलता नहीं, तेरा ठीक प्रबन्ध॥
तेरा ठीक प्रबन्ध, कहूं तुझको समझाकर।
हीरा समझा जाय, पारखीके विन पत्थर॥
पाता सद्‌गति, वृद्धि, सदा मेरी संगतिसे।
नाहक तू गरवाय, कहै विद्या यों धनसे॥

(४)

सुन तू विद्या बावरी, क्या समझाऊं तोहि॥
करता पर उपकार मैं, मुझसा हुआ न होहि॥

मुझसा हुआ न होहि, मनुज गजराज चढ़ाऊं ।
जो है मेरा भक्त, उसे नरराज बनाऊ ॥
रहती निर्धन सदा, न समझै मेरे गुण तू ।
जा धनिकोंके निकट, द्रव्य-महिमाको सुन तू ॥

(५)

हंसकर विद्या भनत तब, देखा तव उपकार।
जैसी तव करतूत है, जानै सब संसार ॥
जानै सब संसार, करै तू जिसपर छाया ।
करतबसे गिर जाय, अजब तेरी है माया ॥
आलसयुत तू करै, बनावै तूही तसकर।
अद्भुत तव उपकार, कहै विद्या यों हंसकर ।

(६)

करती विद्या तू मुझे, नाहक ही बदनाम।
निकल पड़ूं मैं जिधरसे, लाखों करैं सलाम ॥
लाखों करै सलाम, राजती जाय जहांपर।
दान, धर्म, सुखवृद्धि, बहुतविध करूं तहांपर ॥
उल्टी सीधी बात, सदा धनकी है चलती ।
भिखमॅगनी मतिहीन, डाह क्यों मुझसे करती ॥

(७)

सुनकर ऐसे वचन, रोषयुत विद्यारानी।
कहके 'शेखीखोर' फेर उससे बतरानी ॥
तुझको पाकर मूढ, बता कितने ऐसे है।
अमर किया निज नाम, जाय सुरलोक बसे है ॥
पर विद्याके परभावसे, लाखों ही ऐसे हुए ।
कर धवल धराको सुयशसे, अमर-नगर-वासी हुए ॥

(८)

सुनकर उनकी बहस, एक ऋषि ऐसे बोले ।
वचन समय अनुसार, नीतिरस पगे अमोले ॥
होता है क्या लाभ, वृथा झगड़ा करनेसे ।
चलै न गाड़ी कभी, एक पहिया फिरनेसे ॥
है लाल यही शिक्षा तुम्हें, मिलकरके दोनों चलो ।
करके उन्नति संसारमें, सुखी रहो फूलो फलो ॥

पन्नालाल जैन,
लश्कर (ग्वालियर)

ग्रन्थावलोकन ।

(१)

ससार बीच यदि कोइ पदार्थ सार,
संग्राह्य है उभय लोक सुधारकार ।
तो जान लो कि वह सम्यक् ज्ञान ही है,
अज्ञान घोर तमनाशक भानु ही है ॥

(२)

सत्संगसे नर सुबुद्धि अनेक पाते ।
या ग्रन्थपाठ करके उसको बढ़ाते ।
ज्ञानाभिवृद्धि—पथ दो सुखगम्य ये है ।
लाते मनुष्यपन दिव्य मनुष्यमें है ॥

(३)

सत्संग प्राप्त सब ठौर कहो कहा है ?,
ग्रन्थावलोकन सुमित्र ! जहां तहां है ।

त्यों ही सुप्राप्ति इसकी सब कालमें है,
सत्संगसे सुलभ यों यह हालमें है ॥

(४)

आपत्तिमें सुखद मंत्र यही बताता,
दे ज्ञान-चक्षु शुभ-मार्ग यही दिखाता।
निष्काम-कार्य-पथ-तत्परबुद्धिदाता,
ग्रन्थावलोकन समान न और भ्राता ॥

(५)

मारे बिना अथ च कोप किये बिना ही,
देते सुग्रन्थ उपदेश अमोल ग्राही।
द्रव्यादि किन्तु तुमसे नहिं मागते है,
त्यों ही न और बदला कुछ चाहते हैं ॥

(६)

पूछो कभी वह कदापि नहीं छिपाते,
भूलो निरन्तर तथापि दया दिखाते।
अज्ञानता लख कभी न हंसी उड़ाते,
जाओ समीप जब ही तब ही सिखाते ॥

(७)

विद्वान धार्मिक स्वदेश-स्वजाति बन्धु,
उद्योगशील शुचि शुद्ध-चरित्रसिन्धु।
होता वही समझ लो स्वपरोपकारी,
जो भाग्यवान जन, पुस्तकप्रीतिधारी ॥

(८)

आदर्शरूप गुरु ग्रन्थ त्वदीय सेवा,
देती अवश्य जनको शिव-स्वर्ग-मेवा।

है धन्य वे नर सुकीर्ति सुख्याति पावै,
जो ग्रन्थ बाचकर स्वात्म-स्वरूप ध्यावैं॥

शिवसहाय चतुर्वेदी।

वनस्पतिमें क्या पांचों इंद्रियां हैं ?

हितैषीके पिछले सातवें अंकमें श्री विधुशेखरशास्त्रीका 'जैनद-र्शनके जीवतत्त्वका एकाश' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है, उसमें महाभारतके कुछ श्लोक उद्धृत किये गये हैं, जिससे मालूम होता है कि, वृक्षादि वनस्पतियोंमें एक नहीं पाचों इंद्रिया हैं। इस लेखमें महाभारतकी दी हुई युक्तियोंकी आलोचना करके हम यह देखना चाहते हैं कि, वनस्पतियों एक स्पर्शनेन्द्रिय ही है अथवा पाचों इंद्रिया हैं।

पहले यह जान लेना बहुत आवश्यक है कि, इन्द्रिय किसे कहते है—उसका स्वरूप क्या है। क्योंकि जबतक हम इन्द्रियोंको ही नहीं समझेंगे, तब तक वे अमुक जीवमें है या नहीं, इसका निर्णय ही कैसे कर सकेंगे।

आत्माके लिङ्ग वा चिह्नको इन्द्रिय कहते हैं। अर्थात् आत्माकी पहिचान इन्द्रियसे होती है। संसारी जीवोंके ऐसी कोई अवस्था नहीं है, जिसमें कोई न कोई इंद्रिय न रहती हो। कमसे कम एक स्पर्शनेन्द्रिय तो प्रत्येक जीवके होती है। साधारणतः इन्द्रियोंके पांच भेद हैं। स्पर्शन, जीभ, नाक, आख और कान। जिससे ठडे गरम, चिकने और खुरदरे आदिका ज्ञान होता है, उसको स्पर्शनेन्द्रिय कहते है, जिससे खारे, खट्टे, चिरपरे आदि रसोंका ज्ञान होता है, उसे जीभ वा रसना कहते है, जिससे सुगंधि दुर्गन्धिका अनुभव

होता है, उसे नाक वा नासिका कहते है; जिससे काले, पीले, नीले, हरे आदि वर्णोंका तथा चौकोने, तिकोने आदि आकारोंका ज्ञान होता है, उसे आंख कहते हैं, और जिससे अक्षर शब्द आदिका ज्ञान होता है, उसे कान कहते हैं। ये सब इंद्रिया द्रव्य और भावरूप दो २ प्रकारकी है। द्रव्येन्द्रिय भी दो तरहकी होती हैं—निवृत्ति और उपकरण और भावेन्द्रियके भी दो भेद हैं—लब्धि और उपयोग। इन सबको अच्छी तरह समझनेके लिये एक आखको ले लीजिये। आखमें जो शरीरकी आखरूप रचना है उसे, और उसमें जो आत्माके प्रदेशोंकी आखके आकाररूप रचना है उसे, निर्वृत्ति कहते हैं। तथा आखमें जो काला (पुतली) और सफेद मंडल होता है उसे, और पलक वगैरह होते है उन्हें, उपकरण कहते हैं। उपकरण इद्रिय निर्वृत्तिइन्द्रियका उपकार करती है—उसकी रक्षा करती है। अभिप्राय यह कि जीवोंके शरीरमें जो आख, कान आदिकी बनावट दिखलाई देती हैं और जिसके द्वारसे पदार्थका विविधरूप ज्ञान होता है, उसे द्रव्येन्द्रिय कहते है। उक्त सब इन्द्रियोंके ज्ञानको ढॅकनेवाला एक कर्म होता है। यह कर्म जिससे कुछ उघड़ता है (क्षयोपशम रूप होता है), उसे लब्धि कहते हैं और इस उघड़नेसे आत्माका ज्ञान जो अपने विषयकी ओर रुजू होता है, उसे उपयोग कहते हैं। तात्पर्य यह कि, आत्माकी वह शक्ति जिससे कि वह ऊपर कही हुई द्रव्येन्द्रियके द्वारा पदार्थका ज्ञान करता है, उसे भावेन्द्रिय कहते हैं। अर्थात् द्रव्येन्द्रिय ज्ञानका द्वार है और भावेन्द्रिय ज्ञानरूप है। ये दोनों इन्द्रिया एक दूसरेकी अपेक्षा रखती है। जब दोनों होती हैं, तब ही ज्ञान होता है। द्रव्येन्द्रिय नहीं हो अथवा उसमें कुछ विकार होगया हो, तो भावेन्द्रियके होते हुए भी अर्थात् ज्ञानका क्षयोपशम और उपयोग होते हुए भी स्पर्श रसा-

दिका ज्ञान नहीं हो सकता है। इसी प्रकारसे बाह्य इंद्रिय होते हुए भी क्षयोपशम वा उपयोगका अभाव होनेसे स्पर्शादिका ज्ञान नहीं हो सकता है।

ये द्रव्यभावादि भेद आंखके समान अन्य सब इंद्रियोंमें भी होते हैं।

इंद्रियोंका स्वरूप आप समझ चुके, अब महाभारतका यह श्लोक देखिये.—

वाय्वग्न्यशनिनिर्घोषैः फलं पुष्पं विशीर्यते।
श्रोत्रेण गृह्यते शब्दस्तस्माच्छृण्वन्ति पादपाः॥

इस श्लोकसे वृक्षोंके कर्णेन्द्रिय सिद्ध की गई है। वे कहते है कि, "वायुके शब्दसे, अग्निके शब्दसे और बिजलीके कड़कनेसे वृक्षोंके फलफूल सूख जाते है, और शब्द कानके द्वारा ही ग्रहण किया जाता है, इसमें मालूम होता है कि, वृक्ष सुनते है।" अनेक दार्शनिकोंने शब्दको आकाशका गुण माना है। जान पड़ता है कि, इसी भ्रमपूर्ण विश्वासपर महाभारतकारने अपनी युक्तिकी इमारत खड़ी की है। परन्तु वास्तवमें शब्द आकाशका गुण नहीं है। वह पौद्गलिक स्कन्धोंके परस्पर टकरानेसे उत्पन्न होता है। किसी भी शब्दकी उत्पत्ति स्कन्धोंकी (परमाणुसमूहकी) टक्करके विना नहीं होती है। शब्द अपने उत्पत्तिस्थानके समीपके स्कन्धोंमें हरकत उत्पन्न करके उन्हें भी शब्दरूप करते हैं और फिर वे शब्दपरिणतस्कन्ध अपने २ आसपासके स्कन्धोंमें धक्का देते हैं—इस तरह परम्परासे शब्दस्कन्ध कानोंकी झिल्ली तक पहुंचते हैं—और वहां जीवको अपना ज्ञान कराते हैं। एक लम्बी लकड़ीमें बहुतसे बराबर धागे २ बाध कर उसके छोरोंपर काठकी या और किसी चीजकी गोलियां लटकाओ। फिर एक छोरकी गोलीको अपनी

ओर खींचकर छोड़ दो, तो वह गोली अपने पासकी दूसरी गो-लीको और दूसरी तीसरीको इस तरह अन्त तककी सब गोलियोंको धक्का देकर आगेकी ओर हटाती है। ठीक इसी तरह, एक शब्द-परिणतस्कन्ध दूसरेको और दूसरा तीसरेको शब्दशक्तियुक्त करता हुआ प्राणियोंके कानोंतक पहुचता है। 'फोनोग्राफ' 'विना तारका तार' आदि यन्त्रोंके प्रत्यक्ष प्रयोगोंने तो इस विषयको अब सर्वथा निर्विवाद सिद्ध कर दिया है कि, शब्द पौद्गलिक है। वर्तमानका उन्नत विज्ञान इससे सहमत नहीं हो सकता कि, शब्द आकाशका गुण है।

वायु अग्नि बिजली आदिके शब्दोंसे फूलोंका झड़ जाना तो हमने सुना है, परन्तु सूखजाना कहीं नहीं सुना। परन्तु यदि थोडी देरके लिये ऐसा मान लिया जाय कि, कोई वृक्ष ऐसे भी होंगे जिनके फल फूल सूख जाते होंगे, तो भी इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि, वे शब्दोंको सुनते है। किन्तु यह जान पडता है कि बिजली आदिके शब्दोंका जो कि पौद्गलिक है वृक्षोंसे स्पर्श होता है और उसका असर उनके फल फूलोंपर इस प्रकारका होता है कि, वे सूख जाते हैं। जिस तरह लजनू वा लज्जावती अपने पत्तोंको किसीके स्पर्श होनेसे सिकोड़ लेती है, और कमल सूर्यप्रकाशके स्पर्शसे खिल जाता है, उसी प्रकारसे कोई २ वृक्ष ऐसे भी होंगे, जिनके फल फूल बिजली आदिके शब्दस्पर्शसे सूख जाते होंगे। यह बहुत संभव है कि, बिजली आदिके कड़कनेसे हवा आदिमें इस तरहकी खासियत आजाती होगी, जिसका असर वृक्षोंके लिये अहितकर होता होगा। एक पाश्चात्य विद्वानने यूरोपमें इस प्रकारके वृक्षका पता लगाया है, जिसमें भूकम्प होनेके महीनों पहले एक खास प्रकारका असर होता है और उससे मालूम हो जाता है कि, अब

भूकम्प होनेवाला है। इससे यदि कोई यह अनुमान कर लेवे कि, उक्त वृक्षको भविष्यका ज्ञान हो जाता है, तो बड़ी गलती होगी। वास्तवमें भूकम्प होनेके पहिले वायुमें एक विशेष प्रकारका परिणमन होता है और उसका असर उक्त वृक्षपर दृष्टिगोचर होने लगता है। इसी प्रकार वायु बिजली आदिके शब्दोंका भी उन वृक्षोंपर जिनके फल फूल सूख जाते है, कुछ असर पड़ता है। यह नहीं कि वे उन्हें सुनकर अपने फल फूलोंको सुखा देते है। सूख जाना दूसरी बात है और सुनना दूसरी। कानका विषय शब्दका अनुभव करना है—यह जानना कि शब्द हुआ। शब्द सुनकर उसमें अपने हिताहितकी कल्पना करके सूख जाना सभव हो सकता है। परन्तु यह नियम नहीं हो सकता कि, शब्द सुनकर ही सूखना होता है। इसके सिवाय वृक्षोंके हिताहितका विचार भी तो नहीं है।

आगे नेत्र इद्रियकी सिद्धिके लिये कहा है:—

> बल्ली वेष्टयते वृक्षं सर्वतश्चैव गच्छति।
> न ह्यदृष्टश्च मार्गोस्ति तस्मात्पश्यन्ति पादपाः॥

अर्थात् "बेल वा लता वृक्षको वेष्टित करती है और सब ओरको गमन करती है। दृष्टिहीन व्यक्तिको मार्ग नहीं सूझता है, अतएव वृक्ष देखते है।" हमारी समझमें गमन करनेरूप कार्यमें नेत्र कारण नहीं हो सकते है। नेत्र होते है, इसी लिये लताएँ वृक्षपर चढ़ती हैं, यह कोई बात नहीं है। नेत्र न होनेपर भी उनके चढ़नेमें कोई बाधा नहीं आ सकती है। नेत्रहीन मनुष्य चलते फिरते दिखलाई देते है, बल्कि लताएँ तो वेसिलसिले चाहे जिस ओरको चढ जाती हैं परन्तु कोई २ नेत्रहीन मनुष्य तो विना भूले अपने इच्छित स्थानपर पहुंच जाते है।

नेत्र इंद्रियका कार्य देखना है और देखना काले पीले हरे नीले रंगोंका तथा तिकौने चौकाने आदि आकारोंका होता है। यह हो सकता है कि, मनुष्योंको छोड़कर दूसरे जीव जिनके नेत्र होते हैं, यह नहीं जान सकें कि यह हरा रंग है या पीला, परन्तु उन्हें वर्णरूप अनुभव अवश्य होता है। वनस्पतिको वर्ण तथा आकारका अनुभव कदापि नहीं हो सकता और न इसका कोई प्रमाण दे सकता है कि, उसे रूपका ज्ञान होता है। वृक्षोंमें आंखका कोई नियत स्थान नहीं है, जिसके द्वारा वे रूपका अनुभव कर सकें। फिर यह कैसे संभव हो सकता है कि लता देखकरके वृक्षपर चढ़ती है। वात तो यह है कि, लताओंका वृक्षपर चढ़ना उनकी स्पर्शनेन्द्रियका कार्य है। जितने जीव हैं, वे सब अवस्थाके अनुसार बढ़ते हैं, तदनुसार लताएँ भी बढ़ती हैं, और जिस ओरको उन्हें अवकाश तथा सहारा मिलता है, उस ओरको बढ़ती हैं। यदि एक पोले बासकी नलीके भीतर एक लता कर दी जाय, तो वह उसीमें एक सीधमें ऊपरको बढ़ जायगी, यह नहीं होगा कि, वह नलीको देखकर उसमें जाना छोड़कर बाहर हो जाय और दूसरी ओरको बढ़ने लगे। क्योंकि उसके नेत्र इंद्रिय नहीं है।

कर्ण इंद्रियके सिद्ध करमें जो युक्ति दी है, उसीके समान महाभारतकारकी यह युक्ति भी बिलकुल निर्बल है। भ्रमरके आंख होती है। यदि उसकी ओर उंगली दिखलाते हैं, तो वह भागता है। जब तक वनस्पतिमें भी इसी प्रकारकी किसी हरकतका होना बतलाया जाय, तब तक उसमें नेत्र इंद्रिय सिद्ध नहीं हो सकती।

पुण्यापुण्यैस्तथा गन्धैर्धूपैश्च विविधैरपि।
अरोगाः पुष्पिताः शान्त तस्माज्जिघ्रन्ति पादपाः ॥

अर्थात् "बुरी भली गन्ध और विविध प्रकारकी धूपोंसे वृक्ष नीरोग होकर फूलते है। इससे मालूम होता है कि, वे सूघते है।" इससे वृक्षोंके नासिका इंद्रिय सिद्ध की गई है। परन्तु यह युक्ति भी किसी कामकी नहीं है। फूलने और नीरोग होनेसे नाकका क्या सम्बन्ध? नाकका कार्य तो पदार्थकी सुगन्धि दुर्गन्धिका अनुभव करना है, नीरोग होना वा फूलना नहीं है। मनुष्योंके भी बहुतसे रोग ऐसे होते है, जो रोगीके अंगपर किसी पदार्थका धुआँ वा गन्ध लगनेसे आराम हो जाते है। पर इसका मतलब यह नहीं है कि, उस धूप-को सूंघनेसे वे आराम होते है। वृक्षोंमें जो रोग होते है, वे यदि कृमिजन्य हों, तो तीक्ष्ण गन्धके संयोगसे कृमि नष्ट हो जानेके कारण आराम हो ही जाते होंगे, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। फूलना कार्य भी वृक्षकी स्पर्शनेन्द्रियका है। जैसे शीतकी अधिकतासे मनुष्यके रोम खड़े हो जाते है, उसी प्रकार सुगन्धित परमाणु-ओंके स्पर्शसे कोई २ वृक्ष भी फूल जाते होंगे। इंद्रियां ज्ञानात्मक है। घ्राणेन्द्रिय सिद्ध करनेके लिये भी वृक्षमें कोई ज्ञानात्मक फल बतलाना चाहिये। नीरोग होना, पुष्पित होना, शान्त होना आदि सब शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं। इनसे वृक्षके घ्राणेन्द्रिय सिद्ध नहीं हो सकती है।

पादैः सलिलपानाच्च व्याधीनाञ्चैव दर्शनात्।
व्याधिप्रतिक्रियत्वाच्च विद्यते रसनं द्रुमे॥
व्यक्तेनोत्पलनालेन यथोर्द्धं जलमाददेत्।
तथा पवनसंयुक्तः पादैः पिबति पादपः॥

अर्थात् "वृक्ष अपनी जड़ोंसे पानी पीते है, उन्हें व्याधियां होती है और उनका निवारण भी होता है, अतएव उनके रसना इन्द्रिय होती है। कमलकी नालसे जिस तरह छोटे २ छिद्रोंके द्वारा

जल ऊपर खिंचता है, उसी तरह वृक्ष भी वायुके संयोगसे जड़ोंके द्वारा जलपान करते है।" इससे ऐसा मालूम होता है कि, व्यासजी पानी पीने आदिको ही जीभका कार्य समझते थे। रसनाका कार्य जो रसका अनुभव करना—यह जानना कि यह खट्टा है, मीठा है, चिरपिरा है इत्यादि—इसकी ओर उनकी दृष्टि नहीं थी। यहीं क्यों प्रत्येक इन्द्रियके सिद्ध करनेमें उन्होंने यही भूल की है। पानी हम नाकसे भी पी सकते है, बहुतसे योगी गुदाद्वारसे पानीका आकर्षण कर लेते है। पर इससे क्या हम यह समझ लेवें कि, नाक आदि स्थानोंमें रसना इंद्रिय है। वास्तवमें पानी पीना शरीरका कार्य है, रसनाका नहीं। वृक्षोंको रोग होते हैं, सो उनके शरीरमें होते हैं। और विशेष प्रकारके खाद्य आदि देनेसे उनका रस उनकी जड़ोंके द्वारा शरीरमें ही पहुंचता है और इससे उनका रोगविकार नष्ट हो जाता है। इसमें जीभका कोई सम्बन्ध नहीं। जब तक यह न बतलाया जाय कि, वृक्षोंको इसका अनुभव होता है और वृक्षकी अमुक हरकतसे वह मालूम होता है, तब तक वृक्षके रसना इंद्रिय सिद्ध नहीं हो सकती।

महाभारतके उक्त सब श्लोकोंसे केवल वृक्षोंकी चेतनता और उनकी एक स्पर्शनेन्द्रिय सिद्धि होती है। और एक इंद्रियके सिवाय दूसरी कोई इंद्रिय वृक्षके है भी नहीं।

अन्तमें हम विद्वानोंसे प्रार्थना करते है कि, वे जैनधर्मके जन्तुविज्ञानशास्त्रका बारीकीसे अवलोकन करें और उसे वर्तमान विज्ञानकी शोधोंसे तथा दूसरे दर्शनोंके प्राचीन सिद्धान्तोंसे मिलान करें। हमको विश्वास है कि ऐसा करनेसे उन्हें मालूम होगा कि, जैनधर्म केवल धर्म ही नहीं है, वह एक उच्चश्रेणीके विज्ञानका भंडार है।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

कलकत्तेमें स्मृतिसमारोह।

कलकत्तेके सुप्रसिद्ध अटर्नी (सॉलिसिटर) बाबू धन्नूलालजी अगरवालोंने अपनी पूज्य माताके स्वर्गवास होनेके उपलक्ष्यमें ता० १ जूनसे ४ जून तक एक स्मृति-समारोह किया था। जैनियोंमें यह बिलकुल नई बात थी. और यह बतलाती थी कि, जैनियोंका शिक्षितसमुदाय वर्तमान देशकालके अनुरूप उन्नति करनेके पथपर अग्रसर होने लगा है। वह समझने लगा है कि, अब केवल ब्रह्म-भोज तथा ऐसे ही दूसरे निरर्थक कार्य्योंमें रुपया बरबाद करनेसे हमारी उन्नति नहीं हो सकेगी। अब अपने प्रत्येक जातीयव्यवहारमें और प्रत्येक रीति-रवाजमें अपने उद्देशोंको प्रगट करना चाहिये। इस स्मृति-समारोहमें बाबू धन्नूलालजीने स्याद्वादवारिधि पं० गोपालदासजी, बाबू अर्जुनलालजी सेठी बी. ए., कुँवर दिग्विजयसिंहजी, पंडित माणिकचन्दजी आदि विद्वानोंको बहुत आग्रह और सत्कारके साथ बुलवाया और कलकत्तेके प्रसिद्ध २ जैनेतर विद्वानोंके समक्ष उनके जैनधर्मसम्बधी व्याख्यान दिलवाये और कलकत्तानगरीमें यह घोषित कर दिया कि, जैनधर्म भी एक ऐसा धर्म है, जिसकी फिलासफी बहुत ऊंचे दर्जेकी है और उसके जाननेवाले तथा अच्छी तरहसे समझानेवाले भी जैनियोंमें मौजूद है। इस समारोहसे यह भी प्रगट हो गया कि, शिक्षितोंके और आशिक्षितोंके कार्येमें जमीन आसमानका अन्तर होता है। जिस कार्यको आशिक्षित धनिक केवल मूर्खोंमें वाहवाही लूटनेके किये करते है, उसीको शिक्षित पुरुष अपनी जाति धर्म और देशकी उन्नतिपर लक्ष्य रखके स्थायी लाभके लिये करते है। बाबू साहबने इस उत्सवमें लगभग आठ

हजार रुपयाका दान किया और वह न केवल जैनियोंकी ही संस्थाओंको दिया किन्तु सर्वसाधारणकी उपयोगी संस्थाओंको भी देकर अपने विशाल हृदयका परिचय दिया।

सत्कार, व्याख्यान, शंकासमाधानादि।

पूज्यवर प० गोपालदासजी ता० ३१ मईको कलकत्ता पहुंचे। स्टेशनपर उनका अपूर्व सत्कार हुआ। लगभग १५० सज्जन जिनमें कलकत्तेके प्रायः सब ही प्रतिष्ठित जैनी थे पंडितजीके स्वागतके लिये गये थे। पंडितजी कारणवश कलकत्तेमें लगभग १६ दिन रहे। इस बीचमें उनके कई पब्लिक व्याख्यान हुए, बहुतसे आर्यसमाजी तथा दूसरे भाइयोंके शंकासमाधान होते रहे और जैनसिद्धान्त सम्बन्धी चर्चा तो प्रायः निरन्तर ही होती रही। आपकी पब्लिकसभाओंमें कलकत्तेके नामी २ विद्वान्, पंडित, प्रोफेसर, वकील, वैरिस्टर आदि उपस्थित होते थे। बाबू अर्जुनलालजी सेठी तथा कुँवर दिग्विजयसिंहजीके भी कई प्रभावशाली और महत्त्वके व्याख्यान हुए। गरज यह कि कलकत्तेमें इस बार जैनधर्मकी खूब ही प्रभावना हुई।

सुप्रसिद्ध विद्वानोंके विचार और सभापतिकी वक्तृता।

ता० ४ जूनको कलकत्तेमें जो पब्लिक सभा हुई, उसके सभापति महामहोपाध्याय प० शतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम. ए., पी. एच. डी. बनाये गये थे। इस सभामें स्याद्वादवारिधि पं० गोपालदासजीका 'दिगम्बरजैनसिद्धान्त' के विषयमें एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण व्याख्यान हुआ। इस व्याख्यानकी प्रशसामें जस्टिस सर गुरुदासजी बनर्जीने जो कि कलकत्तेके ही नहीं, भारतवर्षके रत्न समझे जाते है, जो कुछ कहा, वह जैनधर्मके अनुयायियोंके लिये अभिमानका विषय है। आपने कहा—" मैने आज जो परमतत्त्व पंडि-

तजीके मुखसे सुने है, वे अत्यन्त गंभीर और महत्त्वपूर्ण है। मेरा ज्ञान अल्प है। मै ऐसी कोई बात इस विषयमें नहीं कह सकता हूं, जिससे सुज्ञजनोंको कुछ नूतन आनन्द उत्पन्न हो अथवा कुछ विशेष लाभ हो। परन्तु सभापति महाशयके अनुरोधकी रक्षाके लिये मुझे कुछ कहना ही चाहिये। पंडितजीका कथन बहुत गहन और गुरुतर है। ऐसे सुपंडित और ऐसे सुवक्ताको धन्यवाद देना मेरे लिये आनन्दजनक है। पंडितजीकी तर्कशैली बहुत सीधी और सरल है। इसलिये उसको मानना हमारा कर्तव्य है। हम लोग ऐसा नहीं समझते थे कि, पडितजी ऐसे गहन विषयको इतनी सरलतासे समझावेंगे। ऐसे महत्त्वके तत्त्वोंका ऐसी सरलतासे उपदेश होना सचमुच ही आश्चर्यजनक है। पंडितजीका ज्ञान बहुत बढ़ा हुआ है। ऐसे सद्वक्ताको अवश्य ही धन्यवाद देना चाहिये। पडितजीने जो कुछ कहा, वह सरल शृंखलाबद्ध कहा। तर्क और युक्तिपूर्वक समझानेमें पंडितजीने कोई कसर नहीं रक्खी। उसको ग्रहण करना न करना दूसरी बात है। इत्यादि।" इसके पश्चात् महामहोपाध्याय पं० प्रमथनाथ तर्कभूषण महाशयने कहा कि, "हम स्या० वा० वादिगजकेसरी पं० गोपालदासजीकी वक्तृता सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए है। मेरे पहिले पं० जीकी विद्वत्ता आदिके विषयमें जास्टिस महाशयने जो कुछ कहा है, उसे मै दोहराना नहीं चाहता हूं। परन्तु मै सारे वगदेशकी ओरसे पण्डितजीको धन्यवाद देकर कहता हूं कि, पण्डितजीने जैनमतके कठिन तत्त्वोंको बहुत ही सरलतासे समझाया है। पडितजीका तत्त्वज्ञान प्रगाढ़ है। आपकी अन्य धर्मोंकी खंडनशैली बहुत सुन्दर और तर्कयुक्त है। हम बहुत प्रसन्न हों, यदि अन्यदर्शन भी इसी प्रकार सरल रीतिसे कहे जावें तो। हम लोगोंका आज बड़ा सौभाग्य है जो पंडितजीने हमको जैनधर्मके विषयमें

जिससे कि हम बिलकुल अनाभिज्ञ थे अभिज्ञ किया।" अन्तमें सभापति महाशयने अपनी स्पीचमें कहा कि, "मै बड़ी प्रसन्नताके साथ कहता हूं कि आजतक मुझे जैनधर्मका जानकार आप जैसा एक भी विद्वान् नहीं मिला। मैने अनेक स्थानोंमें भ्रमण किया है। पंडितजीकी तत्त्व, द्रव्य, स्याद्वादनय, कर्मफिलासोफी आदिकी धाराप्रवाह वक्तृता अद्वितीय हुई। मेरा अनुरोध है कि, पंडितजीके व्याख्यानोंके लिये और भी सभाएँ की जावें और जैनधर्म विषयक आलोचनाएँ की जावे। मुझे जैनशास्त्रोंसे अनुराग है। मै निवेदन करता हू कि, कलकत्तेके दिगम्बर जैन सज्जन एक क्लब स्थापित करें और उसमें सब प्रकारके ग्रन्थोंका सग्रह करें, जिससे हम लोग उन्हें सहज ही प्राप्त कर सकें। अनेकान्तका स्वरूप जो पंडितजीने बतलाया वह लोगोंके लिये अपूर्व है। स्वामी शकराचार्यका खडनविषय अच्छा है। परन्तु अनेकान्तका खडन उनसे अच्छा नहीं हुआ और इसका कारण यह मालूम होता है कि, उस समय दूसरोंके धर्मग्रथ कठिनाईसे प्राप्त होते थे। पंडितजीसे हमारा निवेदन है कि, आगामी शीतकालमें आप यहा कमसे दो व्याख्यान और भी देवें। उस समय बहुतसे विद्वान् जो अभी ग्रीष्मके कारण अन्यत्र चले गये हैं आ जावेंगे। जैन सम्प्रदायमें दो पथ है— एक श्वेताम्बर दूसरा दिगम्बर। इन दोनोंमें परस्पर बड़ा विरोध है। मुझे बडा आश्चर्य हुआ, जब मै काशी गया और वहा एक श्वेताम्बर साधुसे श्वेताम्बर सम्प्रदायके विषय सुनें, परन्तु दिगम्बर सम्प्रदायकी बातें पूछनेपर उत्तर मिला कि, हम कुछ नहीं जानते। जो विद्वान् छहों दर्शनोंका ज्ञान रखता है और उनका खंडन मंडन कर सकता है, वही अपने साथी सम्प्रदायका कुछ भी ज्ञान नहीं रखता है। हमने यहां तक सुना है कि, दोनों सम्प्रदाय एक दूसरेके ग्रंथ भी

अपने यहां नहीं रखते है। मैने दोनों सम्प्रदायके ग्रन्थोंका अवलोकन किया है। मेरी समझमें श्वेताम्बर सम्प्रदायसे दिगम्बर स० प्राचीन है। अंगसूत्रमें दिगम्बर सम्प्रदायका ही उल्लेख है। दि० सम्प्रदायमें बड़े २ प्रसिद्ध आचार्य हो गये है और उनके प्रमेयकमलमार्तंड, अष्टसहस्त्री, श्लोकवार्तिक, राजवार्तिक आदि न्यायके ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। इनके न्याय ग्रन्थोंकी युक्तिया अतीव प्रशंसा योग्य है। दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायकी पारस्परिक लड़ाईके कारण ही आज हिन्दूधर्मका इतना विस्तार हो रहा है। यदि यह न होती, तो आज जैनधर्मकी ही बहुलता दिखलाई देती। अन्तमें मै पडितजीको, और जस्टिस महाशय आदि सम्पूर्ण विद्वज्जनोंको धन्यवाद देकर सभाका कार्य समाप्त करता हू।"

कलकत्तेसे बाबू मौजीलालजी सिंगईने स्मृतिसभाका जो विशाल विवरण हमारे पास भेजा है, उसी परसे हमने उक्त विद्वानोंके व्याख्यानोंको सारांश दिया है।

विरोधी लेख प्रकाशित होना चाहिये या नहीं ?

इस समय जैनसमाजमें विरोधकी आग सुलग हो रही है। यों तो जिन्हें नेता वा अगुआ कह सकते हैं, उनकी तो उत्पत्ति ही अभी इस समाजमें नहीं हुई है, परन्तु नाममात्रके लिये जो अगुआ गिने जाते हैं—अथवा अगुआ बननेकी आकाक्षा रखते हैं, उन्होंने अपने दल बनाकर समाचारपत्रों द्वारा तथा व्याख्यानादिके द्वारा अपने २ प्रतिपक्षी दलपर आक्षेप करना शुरू किये हैं। कुछ दिनोंसे इन आक्षेपोंने वडा जोर पकडा है और बडा बेढब रूप धारण किया है। जो महाशय खुर्जासे निकलनेवाली रत्नमालाके ग्राहक हैं और उसके सुयोग सम्पादकके आततायी लेखोंको जिन्होंने जैनियोंकी किसी भी सस्थाको अपने वारसे खाली नहीं जाने दिया है, विचारपूर्वक पढते हैं, वे इस बातके साक्षी हैं। इससे वे लोग जो शान्तिके पक्षपाती हैं, बहुत उद्विग्न हुए हैं और

इस प्रकारके लेखोंको बन्द करनेमें समाजका कल्याण देख रहे हैं। उधर जो रत्नमालासम्प्रदायके अनुयायी हैं, वे भी जब जैनप्रचारक जैसे पत्रोंसे मुहतोड़ उत्तर पाते हैं–तब अपने आपेमें नहीं रहते हैं और समाजहितैषिताका ढोल बनाकर कहते हैं कि, "कौमकी बदकिस्मतीसे आजकलके सम्पादकोंने ऐसी चाल चलना अख्तियार कर रक्खी है कि, वे अपने अखबारोंकी तरक्कीका वसीला ही इसमें जान रहे हैं कि, कौममें अशान्ति फैलानेवाले चटपटे लेख प्रकाशित करें। इन्हीं कारणोंसे आजकल लोगोंकी यह आम राय हो गई है कि, अखबारोंसे जो जैनको फायदा पहुचना चाहिये था, उतना नहीं पहुचा बल्कि नुकसान हो रहा है।" महासभाके स० महामत्री महाशय तो दिक होकर यहातक लिख गये है कि, "महासभा सम्बन्धी कोई भी लेख विना हमसे पूछे किसी पत्रसम्पादकको न छापना चाहिये।" अब हमको स्वस्थ होकर इसका विचार करना चाहिये कि, इस प्रकारके लेख जैसे कि, वर्तमानमें जुदे २ पक्ष-वाले प्रकाशित कर रहे है–प्रकाशित होना चाहिये या नहीं और उनसे समा-जको हानि पहुचेगी या लाभ?

सुप्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता डा० मिलने अपनी 'स्वाधीनता' नामक पुस्तकमें इस विषयपर बहुत गभीरताके साथ विचार किया है और सैकडों अकाट्य युक्ति-योंसे यह सिद्ध कर दिखाया है कि, प्रत्येक मनुष्यको प्रत्येक विषयमें अपने विचार प्रगट करनेका, चाहे वे असत्य ही क्यों न हों अधिकार है और उससे समाजको हानिकी अपेक्षा लाभ ही अधिक होता है। इस पुस्तककी भूमिकामें श्रीयुक्त प० महावीरप्रसादजी द्विवेदीने डा० मिलके कथनका जो थोडासा साराश दिया है, उसे हम यहा उद्धृत करते हैं और आशा करते हैं कि, समाजके हितैषी उसपर विचार करनेकी कृपा करेंगे।

"जिस आदमीको सर्वज्ञ होनेका दावा नहीं है, उसे अपने काम काजकी विवेचना या समालोचनाको रोकनेकी भूलसे भी चेष्टा न करना चाहिये। इस तरहकी चेष्टा करना सार्वजनिक समाजके लिये तो और भी अधिक हानिकारक है। भूलना मनुष्यका स्वभाव है। बडे २ महात्माओं और विद्वानोंसे भूलें होती है। इससे यदि समालोचना बन्द कर दी जायगी, तो सत्यका पता लगाना असभव हो जायगा। तो लोगोंकी भूलें उनके ध्यानमें आवेंगी किस तरह? हा, यदि वे सर्वज्ञ हों तो बात दूसरी है।

"अकसर लोग कहा करते है कि, हम समालोचनाको तो नहीं रोकते, पर व्यर्थनिन्दाको रोकना चाहते हैं। किन्तु व्यर्थ निन्दा कहते किसे हैं? व्यर्थ

निन्दासे मतलब शायद झूठी निन्दासे है। जिसमें जो दोष नहीं है, उसमें उस दोषके आरोपणका नाम व्यर्थनिन्दा हो सकता है। परन्तु इसका जज कौन है कि, निन्दा व्यर्थ है या अव्यर्थ? क्या जिसकी निन्दा की जाय वह? यदि यही न्याय है, तो जितने मुलजिम हैं, उन सबकी जुवानहीको सेशनकोर्ट समझना चाहिये।...कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जो अपनी निन्दाको सुनकर खुशीसे इस बातको मान लेगा कि मेरी उचित निन्दा हुई है? जो इतने साधु, इतने सत्यशील और इतने सच्चरित्र हैं कि, अपनी यथार्थ निन्दाको निन्दा और दोषको दोष कबूल करते नहीं हिचकते, उनकी कभी निन्दा ही नहीं होती। अतएव जो कहते हैं कि, हम अपनी व्यर्थनिन्दा मात्र रोकना चाहते हैं, वे मानों इस बातकी घोषणा देते हैं कि हमारी बुद्धि ठिकाने नहीं। जो समझदार हैं, वे अपनी निन्दाको प्रकाशित होने देते हैं और जब निन्दा प्रकाशित हो जाती है, तब उपेक्ष्य होनेपर या तो उसे उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं, या वे इस बातको सप्रमाण सिद्ध कर देते हैं कि उनकी जो निन्दा हुई है, वह व्यर्थ है। अपने पक्षका जब वे समर्थन कर चुकते हैं, तब सर्वसाधारण जजका काम करते हैं। दोनों पक्षोंकी दलीलोंको सुनकर वे इस बातका फैसला करते हैं कि निन्दा व्यर्थ हुई या अव्यर्थ।

"हम कहते हैं कि, जबतक कोई बात प्रकाशित न होगी, तब तक उसकी व्यर्थता या अव्यर्थता साबित किस तरह होगी? क्या निन्द्य व्यक्तिको उसकी निन्दा सुना देनेसे ही काम निकल सकता है? हरगिज नहीं। संभव है कि, वह निन्दाको अपनी स्तुति समझे और यदि निन्दाको वह निन्दा मान भी ले, तो उसे दण्ड कौन देगा? जिन लोगोंके कामकाजका सर्वसाधारणसे सम्बन्ध है, उनकी निन्दा सुनकर सब लोग जबतक उनका धिक्कार नहीं करते, तबतक उन्हें उचित दण्ड नहीं मिलता। जो लोग इन दलीलोंको नहीं मानते, वे शायद अखबारवालोंसे किसी दिन यह कहने लगें कि, तुमको जिसकी निन्दा करना हो, या जिसपर दोष लगाना हो, उसे अखबारमें न प्रकाशित करके चुपचाप उसे लिख भेजो! परन्तु जिनकी बुद्धि ठिकाने है—जो पागल नहीं है, वे कभी ऐसा न कहेंगे। (जैनसमाजमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है।)

"कल्पना कीजिये कि किसीकी राय या समालोचनाको बहुत आदमियोंने मिलकर झूठ ठहराया। उन्होंने निश्चय किया कि, अमुक आदमीने अमुक

सभा, समाज, सस्था या व्यक्तिकी व्यर्थ निन्दा की। तो क्या इतनेसे ही उनका निश्चय निर्भ्रान्त सिद्ध हो गया? साक्रेटीसपर व्यर्थनिन्दा करनेका दोप लगाया गया। इसलिये उसे अपनी जानसे भी हाथ धोना पडा। परन्तु इस समय सारी दुनिया इस अविचारके लिये अफसोस कर रही है और साक्रेटीसके सिद्धान्तकी शतमुखसे प्रशसा हो रही है। इस तरह जब सैकडों वर्ष वाद विवाद होनेपर भी निन्दाकी यथार्थता नहीं सावित की जा सकती, तब किसी वातको पहलेहीसे कह देना कि यह हमारी व्यर्थ निन्दा है, अतएव इसे मत प्रकाशित करो, कितनी वडी धृष्टताका काम है?"

"मनुष्यके लिये सवसे अधिक अनर्थकारक वात विचार और विवेचनाका रोकना है। जिसे जैसे विचार सूझ पडें, उसे उन्हें साफ २ कहने देना चाहिये। इसीमें मनुष्यका कल्याण है। इसीसे जितने सभ्यदेश है, उनकी गवर्नमेंटोंने सव लोगोंको यथेच्छ विचार, विवेचना और आलोचना करनेकी अनुमति दे रक्खी है। कल्पना कीजिये कि, किसी विपयमें कोई आदमी अपनी राय देना चाहता है और उसकी राय ठीक है। अव यदि उसे वोलनेकी अनुमति न दी जायगी, तो सव लोग उस अच्छी वातके जाननेसे वचित रहेंगे, और यदि वह वात या राय सर्वथा सच नहीं है, केवल उसका कुछ ही अंश सच है, तो भी यदि वह प्रगट न की जायगी, तो उस सत्याशसे भी लोग लाभ न उठा सकेंगे। अच्छा अव मान लीजिये कि, कोई पुराना ही मत ठीक है, नया मत ठीक नहीं है। इस हालतमें भी यदि नया मत प्रगट न किया जायगा, तो पुरानेकी खूविया लोगोंकी समझमें अच्छीतरह न आवेंगी। दोनोंके गुण दोपोंपर जव अच्छीतरह विचार होगा, तभी यह वात ध्यानमें आवेगी, अन्यथा नहीं। एक वात और भी है। वह यह कि प्रचलित रूढ या परम्परासे प्राप्त हुई वातों या रस्मोंके विपयमें प्रतिपक्षियोंके साथ वाद विवाद न करनेसे उनकी सजीवता जाती रहती है। उनका प्रभाव धीरे २ मन्द हो जाता है। इसका फल यह होता है कि, कुछ दिनोंमें लोग उनके मतलवको विलकुल ही भूल जाते है और सिर्फ पुरानी लकीरको पीटा करते है।"

उदयलाल।

पुस्तकसमालोचन ।

मनुष्याहार—लन्दनके एक प्रसिद्ध पत्रके सम्पादक मि० सिडनी एच. बियर्ड नामक अंग्रेजकी लिखी हुई अंग्रेजी पुस्तकका यह हिन्दी अनुवाद है। इसके अनुवादक डा० प्यारेलाल गुप्त, एल. एम. एस , संशोधक बाबू दयाचन्दजी जैन बी. ए., और प्रकाशक बाबू चेतनदासजी मंत्री भारत जैन महामण्डल—ललितपुर है। इसमें अनेक डाक्टरों, वैज्ञानिकों, पहलवानों और वृद्धपुरुषोंकी साक्षी देकर तथा नाना प्रकारके अनुभवसिद्ध प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि, मनुष्यका आहार मांस नहीं है। वास्तवमें वह अन्नभोजी वा शाकभोजी है। मासका भोजन प्रकृतिके विरुद्ध है, अनावश्यक है, क्षय आदि घातक रोगोंका घर है, और अन्न तथा फलका भोजन योग्य है, उत्तम है, बलकारक है, पौष्टिक है, शान्तिदायक है, तथा मानसिक शक्तियोंको विकसित करनेवाला है। अनुवाद अच्छा हुआ है, पर अनेक स्थलोंमें भाषासम्बन्धी दोष रह गये है। पुस्तक बहुत ही अच्छी है, और इस समय इसके प्रचारकी इतनी आवश्यकता है कि, इसकी लाखों नहीं करोडों कापिया छपाकर मुफ्तमें वितरण करना चाहिये। इसमें एक जगह लिखा है कि, केवल लन्दन शहरमें ४०० वधगृह (कसाईखाने) है और वे इतने बडे २ है कि, सुनकर हृदय काप उठता है। एक ' स्विफ्ट एण्ड को ' के ही वधगृहमें एकदिनमें इतने पशु मारे जाते है कि, यदि वे कतार बाधकर खड़े किये जावें, तो उनकी लम्बाई ९० मीलसे कम न होगी !!! संसारके इस घोर पापको देख सुनकर शायद ही कोई ऐसा पाषाणहृदय होगा, जिसका शरीर कंटकित न होजाय और यह न कह उठे कि, इस पापको रोकनेके लिये कुछ प्रयत्न करना चाहिये। यह समय बहुत

ही अनुकूल है, प्राय समस्त देशोंमें शिक्षाका प्रचार हो रहा है और लोगोंमें वस्तुनिर्णय करके तदनुसार वर्तन करनेका भाव बढ़ता जाता है। यदि इस समय दयालु पुरुष उद्योग करेंगे, और अन्य उपायोंके साथ २ ऐसी २ उत्तम पुस्तकोंका प्रचार भी करेंगे, तो इस पुस्तकके लेखके कथनानुसार एक दिन वह स्वर्णमय समय आवेगा, जब पृथ्वीके निवासियोंमें दुष्टता, निर्दयता, दु ख और दरिद्रताका चिह्न भी शेष नहीं रहेगा। इस पुस्तककी दोहजार प्रतिया बमराना (ललितपुर) निवासी श्रीमान् सेठ लक्ष्मीचन्द्रजीके द्रव्यसे प्रकाशित की गई है। पुस्तकके प्रारममें सेठजीका एक हाफटोन चित्र भी है। पुस्तकका मूल्य " जीव मात्रपर दया करना " है। हमें आशा है कि, हमारी जातिके अन्यान्य धर्मात्मा पुरुष भी इस पुस्तककी हजार २ दो २ हजार कापिया छपाकर मासभक्षी लोगोंमें वितरण करनेकी कृपा दिखलावेंगे।

जैननिबन्धरत्नाकर—हिन्दीमें श्वेताम्बरसम्प्रदायका कोई साप्ताहिक पत्र नहीं था। हर्षका विषय है कि, इस कमीको पूरा करनेके लिये लगभग एक वर्षसे 'हिन्दी जैन' नामका सा० पत्र बम्बईसे प्रकाशित होने लगा है। इसके सम्पादक हैं श्रीयुक्त कस्तु-रचन्द जवरचन्दजी गादिया। यह ग्रन्थ 'हिन्दी-जैन' के ग्राहकोंको उपहारस्वरूप दिया गया है। जैनहितैषीके आकारके लगभग २४० पृष्ठोंमें ग्रन्थ समाप्त हुआ है। श्वेताम्बराचार्यों और धनिकोंके कोई ९ चित्र भी हैं। इसमें सत्तत्त्वमीमांसा, केवलचन्द गणिका जीवन-चरित्र, मृत्युके बाद नुक्ता (तेरहीं) तथा रोनेपीटनेका रिवाज, मनोनिग्रह, जैनशब्दका महत्त्व, शिक्षासुधार, ईश्वरभक्ति, देवगुरु-धर्मका स्वरूप, और हरिविजय सूरिका चरित्र इन ९ निबन्धोंका संग्रह है। दो तीन निबन्धोंको छोडकर शेष निबन्धोंकी भाषा हिन्दी नहीं,

किन्तु हिन्दी गुजराती और मारवाड़ीकी खिचड़ी है। उनमें सैकड़ों शब्द ऐसे आये है, जिन्हें हिन्दीवाले शायद ही समझें। वाक्यरचना और मुहाविरे भी कुछ विलक्षण ढंगके है। कुछ नमूना लीजिये— "इस बाबद नीचेकी गुजराती कविता ज्यादा समझमें आवेगा इससे हरेक बान्धवोंको वह वाचनेकी प्रार्थना है।" (पृ० १९८)· "जैन कौमकी जाहोजलाली बिलकुल नष्ट हो गई है।" (१४७.) "वहोत बूमदे वाजारमें रोनेसे मरे हुए प्राणीका चित्त भंग हो जाता है, जरासा ठंडा विचार करके देखा जावे. वरातमें मनुष्य को रीतिसर चलना चाहिये, वैसा न करते हालकी वक्तमें अलग वर्ताव होता है।" (१७४) इत्यादि। प्रूफ सशोधनमें भी बहुत अशुद्धियां रह गई है। सत्तत्त्वमीमांसा आदि दो तीन निबन्धोंको छोड़कर शेष निबन्धोंकी रचना वेसिलसिले, गौरवहीन, और महत्त्वहीन मालूम होती है। 'जैनशब्दका महत्त्व' नामक निबन्ध अपने शीर्षकसे बहुत कम सम्बन्ध रखता है। 'ईश्वरभक्ति'का निबन्ध पढ़कर हमको केवल दुःख ही नहीं आश्चर्य भी हुआ। उसमें डंकेकी चोट 'एकेश्वरवाद' की पुष्टिकी गई है, जो कि जैनधर्मके सिद्धान्तसे सर्वथा विरुद्ध है। उसमें साफ २ कहा गया है कि, सृष्टिकी सारी बातें नियमपूर्वक होनेके लिये एक नेताकी आवश्यकता है और वह ईश्वर है। जो एक ईश्वरको नहीं मानते है, वे ईश्वर माननेवालोंकी अपेक्षा घाटेमें रहते हैं और अपराधी होते है। हम नहीं कह सकते, सम्पादक महाशयने यह लेख आख बन्द करके कैसे प्रकाशित कर दिया। आपको सोचना चाहिये था कि, साधारण बुद्धिके जैनियोंपर इसका कितना बुरा प्रभाव पड़ेगा। कहां तो जैनी यह उद्योग कर रहे हैं कि, दूसरे लोगोंके जीमेंसे कर्त्तावादकी भ्रमवासना निकल जावे, और

कहा एक जैनपत्रके सम्पादकके द्वारा ऐसे लेख प्रकाशित होते हैं, जिससे जैनी भी कर्त्तावादी वन जावें।

भट्टारक-मीमांसा—सूरतके 'दिगम्बरजैन' नामक गुजराती पत्र-का यह नवमा उपहार है। जैनहितैषीमें पिछले वर्ष जो 'भट्टारक' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था, उसका यह गुजराती अनुवाद है। ईडरमें एक भट्टारककी गद्दी है। वह लगभग १९ वर्षसे खाली है। अव ईडरके तथा रायदेशके पंच उक्त गद्दीकी पुन प्रतिष्ठा करना चाहते है। इसके लिये उन्होंने मोतीलालजी ब्रह्मचारीको चुना है और उन्हें युवराजका तिलक भी कर दिया है। इस विषयको लेकर इस पुस्तककी भूमिकामें लिखा है कि, "भट्टारककी स्थापना करते समय इस वातपर ध्यान रखना चाहिये कि, जिसे यह पद दिया जाय, वह विद्वान् हो, ससारसे विरक्त हो और भुक्तभोगी हो। अविवाहित तथा अनुभवहीन वालक वा युवाको यह जोखिम-का कार्य नहीं सोंपना चाहिये। यदि मोतीलालजीमें उक्त प्रकारकी योग्यता हो, तो वडी खुशीकी वात है। पर यदि इस ओर पूरा २ ध्यान न दिया गया हो, तो अव वे कैसे विद्वान् हैं, उनका पूर्व चारित्र कैसा है, उनमें उदासीनता कितनी है, धर्मशास्त्रका उनको कितना ज्ञान है, इत्यादि वातोंका विचार करके यह कार्य सम्पादन करना चाहिये।" पुस्तकका मूल्य दो आना है।

हिन्दी मेघदूत समवृत्त और समश्लोकी हिन्दी अनुवादसहित—अनुवाद प० लक्ष्मीधर वाजपेयी और प्रकाशक इंडियन प्रेस प्रयाग। मूल्य छह आना। छपाई सफाई मनोहारिणी। संस्कृत साहित्यमें महाकवि कालिदासका आसन सवसे ऊचा है। उनके समान प्राकृतिक दृश्यों और मनोगतभावोंकी सुन्दर सरस रचना करनेवाला

शायद ही कोई दूसरा कवि हुआ होगा। उनकी रचनाओंमें 'मेघदूत' यद्यपि एक छोटासा काव्य है, परन्तु उसकी बहुत ही प्रसिद्धि है। एक विद्वानका कथन है कि, यदि कालिदास केवल इसी काव्यके [illegible] होते, तो भी विद्वत्समाजमें उनका उतना ही आदर होता, जितना आज हो रहा है। इस काव्यके हिन्दीमें पहले चार अनुवाद हो चुके हैं। परन्तु एक तो वे सब ब्रजभाषामें है और दूसरे उनके छन्द मूलके छन्दसे जुदे है। खड़ी बोलीमें जो कि भविष्यत्में भारतकी राष्ट्र भाषा बननेवाली है, और सस्कृतके समवृत्तोंमें जिनसे कि, सारे देशवासी परिचित है--एक भी अनुवाद नहीं है। इस कमीको पूरी करनेके लिये प० लक्ष्मीधरजीने यह प्रयत्न किया है। मूल पद्य जिस मन्दाक्रान्ता छन्दमें है, उसीमें यह अनुवाद है और एक पद्यका अनुवाद एक ही पद्यमें किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि, वाजपेयीजीको इस रचनामें अगणित कठिनाइयोंका साम्हना करना पडा होगा, और अपने परिश्रममें उन्होंने बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त की है। परन्तु हमारी समझमें यदि वे समवृत्तके स्थानमें किसी दूसरे बडे छन्दको अपने अनुवादके लिये चुनते, जैसा कि पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीने 'कुमारसभव' के लिये चुना है तो उससे सर्वसाधारणको बहुत लाभ पहुंचता और केवल हिन्दी जाननेवाले भी कालिदासके काव्यरसका स्वाद पा सकते। इस अनुवादको सिवाय विद्वानोंके सो भी कोशकी या टिप्पणीकी सहायतासे—दूसरे बहुत कम समझ सकेंगे और तब हिन्दीमें एक खड़ी बोलीके अनुवादकी आवश्यकता खड़ी ही रहेगी। क्योंकि छन्दकी सकीर्णतासे, उसमें भी लघुगुरुवर्णोंकी क्रमपरिपाटीसे और हिन्दीमें संस्कृतके समान थोड़े अक्षरोंमें बहुत ही आशय प्रगट करनेकी शक्तिकी कमीसे कहीं २ की रचना तो

बहुत क्लिष्ट हो गई है। कहीं २ बलात् ऐसे शब्द लाना पड़े है, जिनका खड़ी हिन्दीमें कहीं भी प्रयोग नहीं होता है और कई ऐसे कठिन शब्द आये है, जिनको सस्कृतज्ञ भी कठिनतासे समझते हैं। बहुतसे पद्य सुगम भी हुए है। जैसे,—

उत्कंठासे घन लख, खड़ा हो रहा यक्ष शोकी।
उसके आगे बहु समयलौं अश्रुकी धार रोकी।
मेघोंको तो लखकर, नहीं धीर धारें सॅयोगी,
दुःखी क्यों न प्रियमिलनकी चाहमें हो वियोगी॥ ३॥
ज्यों सीताने पवन-सुतको त्यों तुझे सो लखेगी,
सन्मानेगी मुदितमनसे, वैन आगे सुनेगी।
कान्ता पाती जब कुशल है कान्तकी मित्रद्वारा;
होती है तो वह सुखित ज्यों संगमें प्राणप्यारा॥ ३७॥

(उत्तरमेघ)

क्लिष्टताके दोषके सिवाय इस ग्रन्थमें अन्य दोष हमें बहुत कम दृष्टिगत हुए। भावोंके प्रगट करनेके लिये कविने खूब परिश्रम किया है। प्रारभमें कथाका सार भी दे दिया है, जिससे पद्योंका अभिप्राय समझनेमें बहुत सुगमता पड़ती है। यदि मूलके नीचे उसका सरल भावार्थ और भी लिख दिया जाता, तो पाठकोंको और भी सहायता मिलती। विद्वान् पाठकोंको यह ग्रन्थ अवश्य ही मंगाना चाहिये।

विविध विषय।

बम्बईसे शीघ्र ही 'सत्यवादी' नामक हिन्दी मासिकपत्र निकलनेवाला है। यह 'खडेलवाल जैन महासभा' का मुखपत्र होगा।

फीरोजपुरकी जीवदया प्रचारक सभा बहुत मुस्तेदीसे कार्य कर रही है। उसके कई अच्छे २ ट्रेक्ट हमारे पास आये हैं, परन्तु स्थानकी कमीसे

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासन जिनशासनम्॥

आठवां भाग] श्रावण श्रीवीर नि० सं० २४३८ [दशवां अंक.

भारतीय इतिहास और जैन शिलालेख।

(फ्रेंच विद्वान् डा० ए० गेरीनोटके अंग्रेजी लेखका अनुवाद.)

अकसर विद्वान् कहा करते है कि, यद्यपि भारतवर्षीय साहित्य विपुल और विस्तीर्ण है, तथापि उसमें ऐतिहासिक ग्रन्थ बहुत थोडे है। और जो है, उनमें इतिहासके साथ दूसरी मनगढ़न्त बातोंकी तथा दन्तकथाओंकी खिचड़ी कर दी गई है। यह कथन यद्यपि ठीक है, तो भी भारतवर्षमें जो अगणित शिलालेख है, उनसे भारतवर्षके साहित्यमें जो इतिहासकी कमी है, वह बहुत अंशोंमें पूर्ण हो सकती है। इसके लिये जी. मेवल डफका The Chronology of India का पहला पृष्ठ और विनसेंट ए. स्मिथ कृत The History of India की पहली आवृत्तिका तेरहवां पृष्ठ पढ़ना चाहिये।

सबसे अधिक शिलालेख दक्षिण-भारतमें हैं। मि० ई० हुलिश मि० जे. एफ. फ्लीट, और मि० लेविस राईस आदि जुदा जुदा विद्वानोंने सौथ इंडिया इन्स्क्रिपशन, इंडियन एन्टिक्केरी, एपिग्राफिआ

कर्णाटिका आदि ग्रन्थोंमें वहां के हजारों लेखोंका संग्रह किया है। ये लेख शिलाओं तथा ताम्रपत्रोंपर संस्कृत और पुरानी कनडी आदि भाषाओंमें खुदे हुए हैं। प्राचीन कनडीके लेखोंमें जैनियों-के लेख बहुत अधिक हैं। क्योंकि उत्तर कर्णाटक, दक्षिण कर्णाटक और मैसूर राज्यमें जैनियोंका निवास प्राचीन कालसे है।

उत्तर भारतमें जो संस्कृत और प्राकृत भाषाके लेख मिले हैं, वे प्राचीनता और उपयोगिताकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वके हैं। इन लेखोंमें जैन-लेखोंकी संख्या बहुत है। सन् १९०८ में जो जैन शिलालेखोंकी रिपोर्ट मेरेद्वारा प्रकाशित हुई है, उसमें मैंने सन् १९०७ के अन्त तक प्रकाशित हुए समस्त जैन लेखोंके संग्रह करनेका प्रयत्न किया था। उक्त रिपोर्टमें ८५० लेखोंका संक्षिप्त पृथक्करण किया गया है। जिनमेंसे ८०९ लेख ऐसे हैं, जिनका समय उनपर लिखा हुआ है। अथवा दूसरे साधनोंसे मालूम करलिया है। ये लेख ईस्वीसन्से २४२ वर्ष पूर्वसे लेकर ईस्वीसन् १८६६ तकके अर्थात् लगभग २२०० वर्षके हैं और जैन इतिहासके बहुत ही उपयोगी साधन हैं।

इन शिलाशासनों तथा ताम्रलेखोंके प्रारंभमें बहुधा जैनाचार्यों तथा धर्मगुरुओंकी विस्तीर्ण पट्टावलियां रहती हैं। उदाहरणके लिये शत्रुंजय तीर्थके आदीश्वर भगवानके मंदिरका शिलालेख लीजिये, जो कि वि० संवत् १६५० (ईस्वीसन् १५९३) का है। इसमें तपागच्छकी पट्टावली इस प्रकार दी हुई है * तपागच्छके स्थापक श्रीजगच्चन्द्र (वि० सं० १२८५) आनन्दविमल (वि० सं० १५८२) विजयदानसूरि, हीरविजयसूरि।

* देखो, एपिग्राफिया इंडिका जिल्द दूसरी पृष्ठ ५०—५९।

(वि० सं १६९०) और विजयसेनसूरि। इसी प्रकारसे दूसरा शिलालेख अणहिल्लपाटण का एपिग्राफिआ इंडिकाकी पहली जिल्दवे ३१९–३२४ पृष्ठोंमें छपा है। उसमें खरतरगच्छके उद्योतनसूरिसे लेकर जिनसिंहसूरि तकके पहले २९ आचार्योंकी पट्टावली दी है।

मथुरामें डा० फुहररने कनिष्क और उसके पश्चाद्वर्ती इंडोसिथियन राजाओंके अनेक शिलालेखोंका पता लगाया था और प्रो० बुल्हरने एफिग्राफिआ इंडियाकी पहली दूसरी जिल्दमें उनका बहुत ही आश्चर्यजनक वृत्तान्त प्रकाशित किया था। इसी विषयपर सन् १९०४में इंडियन एन्टिक्वेरीके ३३ वें भागमें प्रो० लुडरने एक और लेख लिखा था और उक्त लेखोंका संशोधन तथा परिवर्तन प्रगट किया था। मथुराके लेख जैनधर्मके प्राचीन इतिहासके लिये बहुत ही उपयोगी है। क्योंकि वे कल्पसूत्रकी स्थविरावलीका समर्थन करते हैं और प्राचीन कालके भिन्न २ गणोंका, उनके मुख्य २ विभागो, कुलों और शाखाओं सहित परिचय देते हैं। जैसे कोटिक गण स्थानीय कुल और वाज्री शाखा, तथा ब्रह्मदासिक कुल और उच्चनागरी शाखा इत्यादि।

जैन शिलालेखों तथा ताम्रशासनोंसे इस बातका भी पता लगता है कि, एक देशसे जैनी दूसरे देशमें कब फैले तथा वहां उनका अधिकाधिक प्रसार कब हुआ। सन् ईस्वीसे २४२ वर्ष पहले महाराज अशोक अपने आठवें आज्ञापत्रमें जो कि स्तंभपर खुदा हुआ है, उनका (जैनियोंका) 'निर्ग्रन्थ' नामसे उल्लेख करते है, ईस्वीसन्से पहले दूसरी शताब्दिमें उनका उड़ीसाके उदयगिरि नामक गुफाओंमें ' अरहन्त ' के नामसे परिचय मिलता है और मथुरामें भी

(कनिष्क हुविष्कके समयमें) वे खूब समृद्धिशाली थे, जहा कि दोनोंके उल्लेख करनेवाले तथा अमुक इमारत अमुकको दी गई यह बतलानेवाले अनेक लेखोंका पता लगा है।

ईस्वी सन्के प्रारंभके एक शिलालेखमें गिरनारपर्वतका सबसे पहले उल्लेख मिला है। जिससे यह मालूम होता है कि, उस समय जैनी भारतके वायव्यमें भी फैल चुके थे। इसी प्रकार आचार्य श्रीभद्रबाहुके आधिपत्यमें वे दक्षिणमें भी पहुंचे थे और वहा श्रवणबेलगुलमें उन्होंने एक प्रसिद्ध मन्दिरकी स्थापना की थी। मि० लेविस राइसके संग्रह किये हुए सस्कृत तथा कानड़ी भाषाके सैकड़ों शिलालेख श्रवणबेलगुलके पवित्र पर्वतका ऐतिहासिक वृत्तान्त प्रगट करते है। इस टेकरीपर सुप्रसिद्ध मंत्री चांमुडरायने गोमठेश्वरकी विशाल प्रतिमा स्थापित की थी। गोमठस्वामीकी दूसरी प्रतिमा कारकलमें शक सवत् १३९३ (ई० स० १४३२) में और तीसरी वेनूरमें शक संवत् १५२५ (ई० स० १६०४) में प्रतिष्ठित हुई।

दक्षिण भारतके जुदे जुदे शिलालेख बहुतसी ऐतिहासिक बातोंका खुलासा करते हैं। हलीबिडके एक शिलालेखसे मालूम होता है कि, वहा गगराज मत्रीके पुत्र बोपने पार्श्वनाथका मन्दिर बनवाया था और वहा बहुतसे प्रासिद्ध २ आचार्योंका देहोत्सर्ग हुआ था। हनसोज देशीयगणकी एक शाखाका स्थान था। हम्‌चा नामक स्थानमें 'उर्वीतिलक' नामका सुन्दर मन्दिर बनवाया गया था और उसे गंगराज-कुमारी चत्तलदेवीने अर्पण किया था। मलेयारका कनक पर्वत कई शताब्दियों तक बहुत ही पवित्र समझा जाता था। इन सब बातोंका ज्ञान उक्त स्थानोंमें मिले हुए लेखोंसे होता है।

उत्तरभारतके मुख्य शिलालेख आबू, गिरनार और शत्रुंजय पर्वत सम्बन्धी है। आबू पर्वतपर सबसे अधिक प्रसिद्ध मन्दिर दो हैं। एक आदिनाथका और दूसरा नेमिनाथका। पहला अणहिल्लपाटणके भक्तिवंत व्यापारी विमलशाहने वि० सवत् १०८८ (ई० स० १०३१) में बनवाया था और दूसरा चालुक्य (सोलंकी) वंशीय वाघेला राजा वीरधवलके सुप्रसिद्ध मंत्री तेजपालने और उसके भाई वस्तुपालने बनवाया था। इसके एक वर्ष पीछे उक्त दोनों भाइयोंने एक मनोहर मन्दिर गिरनार पर्वतपर और कई मन्दिर शत्रुजयपर बनवाये।

जैनियोंके शिलालेख और ताम्रलेख भारतके सामान्य इतिहासके लिये भी बहुत सहायक हैं। बहुतसे राजाओंका पता केवल जैनियोंके ही लेखोंसे लगता है। जैसे कि, कलिंग (उडीसा)का राजा खारवेल। बहुत करके यह राजा जैनधर्मका अनुयायी था। उसके राज्यकालका एक विशाल शिलालेख स्वर्गीय भगवानलाल इन्द्रजीने प्रसिद्ध किया था और उसके विषयमें उन्होंने बहुत विवेचन किया था। उक्त शिलालेख 'णमो अरहंताणं णमो सव्वसिद्धाणं' इन शब्दोंसे प्रारंभ होता है। उस पर मौर्य संवत् १६५ लिखा हुआ है। अर्थात् वह ईस्वी सन्से लगभग १५६–५७ वर्ष पहलेका है। खारवेलकी पहली रानी जैनियोंपर बहुत कृपा रखती थी। उसने जैनमुनियोंके लिये एक गुफा उदयगिरिमें बनवाई थी।

दक्षिण भारतके राजाओंमें मैसूरके पश्चिम ओरके गंगवंशीय राजा जैनधर्मके जानकार और अनुयायी थे। कई शिलालेखोंके आधारसे प्रगट होनेवाली एक कथासे मालूम होता है कि नन्दिसघके सिंहनन्दि नामक आचार्यने गगवंश निर्माण किया था और

इस वशके वहुतसे राजाओंके गुरु जैनाचार्य थे। जैसे अविनीत (कोंगणीवर्मन), राचमल्ल (ई० स० ९७७), परमर्दिदेव और उसके उत्तराधिकारी (ग्यारहवीं शताब्दिका अन्त और बारहवींका प्रारंभ) इत्यादि। सुप्रसिद्ध चामुंडराय जिसने कि श्रवणबेलगुलमें गोमठस्वामीकी अद्भुत प्रतिमा स्थापन की थी, दूसरे मारसिंहका प्रधान मत्री था। इस मारसिंहने गुरु अजितसेनकी उपस्थितिमें जैन-धर्मकी क्रियानुसार मरण किया था अर्थात् समाधि मरण किया था।

मि० फ्लीटके कथनानुसार कदम्बवशीय राजा भी जैनी थे। काकुत्स्थ वर्गके (सूर्यवशीय) प्राचीन राजा मृगेशवर्मा, रविवर्मा, हरिवर्मा, और देववर्मा आदिने जैनसम्प्रदायके भिन्न २ सघोंको बडी २ भेटें दी थीं।

पश्चिमके सोलकी (चालुक्य) राजा यद्यपि वैष्णव थे, परन्तु वे निरन्तर दान और भेंटोंके द्वारा जैनियोंको सतोषित करते रहते थे। दक्षिणके महाराष्ट्रप्रान्तमें जैनधर्म सामान्य प्रजाका धर्म गिना जाता था। मलखेड़के (मान्यखेट). राष्ट्रकूट (राठौर) राजाओंके आश्रयसे जैनधर्मने—विशेषतासे दिगम्बर सम्प्रदायने वहुत उन्नति की थी। नवमी शताब्दिमें दिगम्बर सम्प्रदायको अनेक राजाओंका आश्रय मिला था। राजा अमोघवर्ष (ई० स०८१४–८७७) ने तो अपनी सहायतासे इस सम्प्रदायकी एक वड़े भारी रक्षकके समान सहायता की थी और संभवत. उसीने प्रश्नोत्तररत्नमालिकाकी रचना की थी।

सौदत्तीके रट्टवंशी राजा पहले राष्ट्रकूटोंके करद थे। परन्तु पीछेसे स्वतत्र हो गये थे। वे जैनधर्मके अनुयायी थे। उनके किये हुए दानोंका उल्लेख ई०स० ८७५ से १२२९ तकके लेखोंमें मि-

लता है। सान्तर नामके अधिकारियोंका एक और वंश मैसूरके अन्तर्गत हुमचामें रहता था। ये भी जैनी थे और उनके धर्मगुरु जैनाचार्य थे।

बारहवीं और तेरहवीं शताब्दिमें हयशाल नामक वशके राजाओंने मैसूर प्रान्तमें अपने अधिकारकी खूब तरक्की की थी। पहले ये कलचुरी वंशके करद राजा थे, परन्तु जब उक्त वंशका पतन हुआ, तब उसके उत्तराधिकारी हो गये। इस वंशके सबसे प्राचीन और प्रमाणभूत राजा **विनयादित्य** और उसका उत्तराधिकारी **ओरियंग** ये दोनों तीर्थंकरोंके भक्त थे। इस वशके प्रख्यात राजा **विट्टिग** अथवा विट्टिदेवको रामानुजाचार्यने विष्णुका भक्त बनाया था और इससे उसका नाम **विष्णुवर्धन** प्रसिद्ध हुआ था। उसकी राजधानी द्वारसमुद्रमें जिसे कि अब हलीबिड कहते हैं, थी। विष्णुवर्धनके राज्यमें रानी सान्तलदेवीसे जिसकी कि जैनधर्मसे बहुत ही प्रीति थी, जैनधर्मको बहुत सहायता मिली थी। इसके सिवाय उस समय जैनियोंको **गंगराज, मरीयन, भरत** आदि मंत्रियोंका भी आश्रय मिला था। उन्होंने उन सब मन्दिरोंका फिरसे उद्धार कराया था, जिन्हें कि चोल नामके आक्रमणकारियोंने नष्ट कर दिये थे और उन्हें बड़ी २ जागीरें लगा दी थीं जैन शिलालेखोंमें १९ वीं शताब्दीके साखवंशीय राजाओंका भी उल्लेख मिलता है, जो कि जैनधर्मके अनुयायी थे।

यह लेख यद्यपि छोटा है, परन्तु मेरी समझमें यह बतलानेके लिये काफी है कि जैन शिलालेखोंमें कितनी अधिक ऐतिहासिक बातोंका उल्लेख है। इन लेखोंका और जैनियोंके व्यावहारिक साहित्यका नियमित अभ्यास भारतवर्षके इतिहासका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये बहुत ही उपयोगी होगा।

सम्पादककी योग्यता
और
रत्नमालाके प्रकाशकका सामयिक संलाप

रत्नमालाके सम्पादक शास्त्रीजीके सामयिक संलापसे तो हमारे पाठकोंके कर्ण तृप्त हो चुके है, परन्तु अभी तक उसके प्रकाशकके संलापकी ध्वनि उन्होंने नहीं सुनी होगी। लीजिये, अबकी बार वह भी उपस्थित है। जैनगजटके २७।२८ वें अंकमें रत्नमालाके प्रकाशक लाला नानगरामजीने असामयिक प्रलाप शीर्षक लेख लिखकर हमारे ऊपर पुष्पवर्षा की है। आपके सारे लेखके हमने तीन भाग किये है, एक तो वह जिसमें लेखक महाशयने हमारे लेखका मनमाना अभिप्राय निकाल कर विना सम्बन्धकी बातें लिखी हैं। दूसरा वह जिसमें हमारे ऊपर गालियोंकी वर्षा की गई है और जिसे हम वर्त्तमान क्रान्ति-युगकी पुष्पवर्षा समझते हैं और तीसरा वह जिसका समाजका भ्रमनिरसन करनेके लिये हम यहां कुछ उत्तर लिखेंगे।

पं० जवाहरलालजी शास्त्रीने लिखा था कि, महासभाको वास्तविक महासभा बनानेकी गरजसे यह कोशिश (फीरोजाबादकी) की गई थी। इसपर हितैषीके आठवें अंकमें हमने लिखा कि, "जिनका पहले कभी नाम भी नहीं सुना था और जिनके एक चार पंक्तियोंके लेखको भी देखनेका समाजको कभी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ ऐसे किसी अपरिचित पुरुषको—जैनगजटका सम्पादक बना देना—इस डरसे कि पूर्व सम्पादक जो एक प्रेस मांग रहा है, उससे कहीं छापेका प्रचार न होने लगे × और जो लोग काम करना नहीं चाहते हैं जिनके कामसे कोई सन्तुष्ट नहीं है—आंख बन्द करके दस्तखत कर देना मात्र ही जो अपना कर्त्तव्य समझते है, उनके गले जबर्दस्ती

बडी २ जबावदारीके काम डाल देना क्या इसीको वास्तविक महा-सभा बनाना कहते है ? " इस लेखखडमें जहां × ऐसा निशान लगा है, वहीं तकके वाक्य· जैनगजटके सम्पादकको लक्ष्य करके लिखे गये थे। आगेके वाक्य महासभाके दूसरे कार्यकर्ताओंके सम्ब-न्धमें थे। जैनगजटके नवीन सम्पादकसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। फीरोजाबादके कन्वेशनमें श्रीमन्तशेठने साफ इकार किया था कि मै अब महामंत्रीका कार्य नहीं करूंगा तो भी धनिक मंडलीने समझा बुझाकर महासभाका जी लुभानेवाला सेहरा उन्हींके सिरपर बाधा था। इसी बातको लक्ष्य करके हमने उक्त पिछले वाक्य लिखे थे। परंतु नानगरामजीने उन्हें अपने ही श्रद्धास्पदके विषयमें समझकर अपने लेखके दूसरे भागकी भरती की है। इस भागके विषयमें हम इससे अधिक और कुछ नहीं कहना चाहते। दूसरे .नके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है। गालियोंका उत्तर ही क्या हो सकता है ? हम तो समाजके एक तुच्छ सेवक हैं। इन गालियोंके प्रसादसे तो बड़े बड़े महापुरुष भी वंचित नहीं रहे। जो अपने समाजकी उन्नति करना चाहते है, उनके लिये इनकी आवश्यकता भी है। इनके विना कार्य करनेमें न तो उत्साह ही बढता है और न सच्चा जोश ही चढ़ता है। इस लिये इनके प्राप्तिसे तो प्रसन्न ही होना चाहिये।

अच्छा, अब तीसरे भागको लीजिये। मेरी छोटीसी समझमें जैन-ग.टका सम्पादक वह होना चाहिये, जिसकी समाजमें इस प्रका-रकी ख्याति हो कि, उसके जीमें जैनजातिकी वर्त्तमान अधोगति-की गहरी चोट लगी है, समाजकी दशा सुधारनेके लिये उसने अपने जीवनका कुछ भाग व्यय किया है और उसके लेखोंमें ऐसी

शक्ति है कि, उनसे सोता हुआ समाज जागृत हो सकता है। और नहीं तो कमसे कम इतना तो अवश्य होना चाहिये कि, उसमें सम्पादककी बौद्धिक योग्यता हो। समाचार पत्र किसे कहते हैं, प्रगतिशील समाजोंके पत्र कैसे निकलते है, उनमें किस प्रकारके लेख रहते हैं, लेख कैसे लिखे जाते है, भाषासे और लेखसे कितना सम्बन्ध है, और हमारे समाजकी इस समय क्या दशा है, इन बातोंका ज्ञान तो उसे अवश्य होना चाहिये। जहांतक हम जानते है जैनगजटके वर्त्तमान सम्पादककी उक्त प्रकारकी ख्याति नहीं है, और फीरोजाबादके मेलेके पहले समाचारपत्र–ससारमें उनका कभी नाम भी नहीं सुना था। यह भी मालूम नहीं है कि, उन्होंने इससे पहले कभी कोई छोटा मोटा लेख भी लिखनेकी कृपा की थी या नहीं। इसी कारण हमने ऊपर उद्धृत किये हुए लेख खडके पहले वाक्य लिखे थे। इसपर लाला नानगरामजी लिखते है कि, "हमारे लाला मिश्रीलालजी सामान्य व्यक्ति नहीं है। लाला श्रीलालजी खजाची रईस आनरेरी माजिष्ट्रेटके आप पुत्ररत्न हैं। आप जमींदार है, लक्षाधिपति हैं आपके लघुभ्राता लाला चन्दालालजी बगाल बैंक अलीगढके सत्र एजेंट हैं। आप अलीगढस्थ पूजा कमेटीके सभापति और सरस्वती भवनके मंत्री है। पूजा स्वाध्याय सामायिक आपका नित्य कर्म है। श्रीमान् प० प्यारेलालजीसे आपने धर्मशास्त्रकी शिक्षा ग्रहण करके अच्छी योग्यता प्राप्त की है। उद्योगपरतामें तो समवयस्क जनतासे आप असाधारणता ही रखते हैं।"

बस कीजिये महाराज, बहुत हुआ। क्या इस गुणानुवादको आप सुनाते ही चले जाइयेगा? हमारा तो सुनते २ जी ऊब गया। भला हम जैसे निर्धन इससे क्या लाभ उठावेंगे? अभी आप न जाने

और कितना कहेंगे। अच्छा यदि आपका जी नहीं मानता तो कृपा करके इतना और कह डालिये और समाप्त कर दीजिये कि, "हम जैसे लेखक आपके गुमास्ता और खुशामदा है, साहित्य-शास्त्री जैर्स विनापैदीके लोटे हमारे (लाला नानगरामजीके) नामसे आपकी विरदमाला प्रकाशित करते है और धनिक मण्डलीके बड़े २ स्थूल काय सज्जन कहते है कि, आपमें सम्पादक बननेकी असाधारण योग्यता है। इत्यादि, इत्यादि।" पर श्रीमान् यह तो बतलाइये कि, इस गुणगाथासे और सम्पादककी योग्यतासे क्या सम्बन्ध है? आप ऐसे है, वैसे है, सब कुछ है, पर यह तो कहिये कि, आप लेख भी लिख सकते है या नहीं? दश बीस पंक्तिया ऐसी भी लिख सकते है या नहीं जिनकी कि भाषा हिन्दी हो अथवा जिनमें समाचारपत्रोंकी हिन्दी भाषाकी दृष्टिसे कोई अशुद्धि न हो? और पहलेकी बात जाने दीजिये—जैनगजटके भी तो अलीगढ़से आठ दश अक निकल चुके है, उन ही में बतला दीजिये कि, कौन कौनसे महत्त्वपूर्ण लेख श्रीमान्के आनरेरी मजिस्ट्रेट रईस जमींदार और विविध उपाधिधारी सेठजीने लिखे है जिनकी आशासे आपके धार्मिक जनोंने मेघमयूरवत् अत्याह्लाद प्रकाशित किया था। एकाध हांमें हा मिलानेवाले क्लर्क या सहायकको रख लेना और उसके द्वारा यहां वहाके कूड़ाकर्कटको एकट्ठा करा देना अथवा एकाध गालीगलौजका लेख लिखा देना, क्या इतना ही सम्पादकका कार्य है? यदि सम्पादकके पदकी आप इतनी ही योग्यता समझते है, तो कहना होगा कि, आपने इस पदका गौरव बढ़ानेके विषयमें बड़ी ही उदारता दिखलाई और महासभाको अब कभी सुयोग्य सम्पादकोंके खोजनेकी चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। जैनियोंमें धनवानोंकी

कमी नहीं है। जिस धनिकको आप देखेंगे, वही पूजाकमेटीका सभापति, पचायत महासभाका प्रेसीडेंट, मन्दिर भंडारका खजांची, रईस, जमींदार, स्वाध्याय पूजादि कर्मनिरत, धर्मात्मा आदि विविध उपाधियोंसे भूषित मिल जायगा। बस, जब जरूरत पड़ी तभी किसी एकको सम्पादककी पगडी बँधवा दी। रही सहायक सम्पादकोंकी बात, सो समाजमें उनकी भी कमी नहीं है। मामूली पढा लिखा मिला कि काम चला। हां, थोड़ासा चलता पुरजा और खुशामदा चाहिये। जिस समाजमें सम्पादकोंकी विपुलता है, वहां सहायक सम्पादकोंकी तो होना ही चाहिये।

सभ्य ससारमें सम्पादकका तथा लेखकका पद बहुत ऊंचा और बहुत बड़ी योग्यताका है। भारतवर्षके प्रसिद्ध लेखक सेंट निहालसिंहको लंदनमें महाराज पंचमजार्जके राज्याभिषेकके समय वहां स्थान मिला था, जहा तक पहुंचना बड़े बडे राजाओंको भी नसीब नहीं था। सुप्रसिद्ध सम्पादक मि० स्टेडकी आकालिक मृत्युसे बडे २ राजाओं और महाराजाओंने शोक मनाया है। बंगालके प्रसिद्ध लेखक और सम्पादक रवीन्द्रबाबूका इस समय विलायतमें सत्कार हो रहा है। गरज यह कि सम्पादकका पद कोई साधारण पद नहीं है। इसकी प्राप्ति हरएकके भाग्यमें नहीं। धन ऐश्वर्य प्रतिष्ठा विद्या बुद्धि आदि कोई भी इसकी प्राप्तिके अवश्यभावी कारण नहीं। बेचारे धनिकोंका तो यहा जिकर ही क्या, हमने बहुतसे बी. ए. एम् ए और शास्त्री पंडित आदि विद्वान् ऐसे देखे हैं, जो सम्पादकीकी तो बात ही क्या मामूली लेख भी नहीं लिख सकते हैं। अपने हृदयके विचारोंको वे लेखद्वारा प्रकाशित करनेमें सर्वथा असमर्थ है। और कई एक सम्पादक ऐसे देखे हैं, जो वास्तवमें

किसी कालेज या विद्यालयमें नहीं पढकरके भी गजबके लेख लिखते है । अच्छे २ विद्वान् उनके लेखोंके लिये तरसते है । यह एक विद्या ही जुदी है । यह उन्हें सिद्ध होती, जो प्रतिभाशाली होते है और जो अपने ज्ञानको निरन्तरके अध्ययन और वाचनसे विशाल वना लेते है । जिनके ज्ञानकी सीमा वहुत ही परिमित है, मध्यमा और शास्त्री आदि परीक्षाओंके वाहर जिन्हें कुछ ज्ञातव्य ही नहीं मालूम होता है, किसी कालेज या विद्यालयके उत्तीर्णपत्रको ही जो वुद्धिकी कसोटी समझते है, अपने कुएसे वाहर भी कुछ होता है, इसका जिन्हें विश्वास ही नहीं है, उन कुपमडूकोंके पास यह विद्या खड़ी भी नहीं हो सकती है ।

एक जातीय पत्रका सम्पादक वह हो सकता है, जिसकी आंखोंके आगे जातिकी भूत और वर्त्तमान अवस्थाका चित्र निरन्तर [illegible] किया करता है, जो अपनी जातिकी रत्ती रत्ती आवश्यकताका ज्ञान रखता है, जिसने उन जातियोंका इतिहास चित्त लगाकर पढ़ा है, जो एकवार पतन करके फिर उठीं है और जो अपनी उन्नतिसे ससारको विस्मित कर रही है, जो रूढ़ियोंको तुच्छ समझता है, सामाजिक नियमोंको मनुष्यकृत और समयादिके परिवर्तनके साथ परिवर्तनीय मानता है, जिसका हृदय विशाल है, जातिके दुःखसुखको जो अपना दुःखसुख जानता है दूसरी जातिके आवश्यक ज्ञानको संग्रह करनेमें जो पाप नहीं समझता है,अपनी जातिके बुरे रीतिरवाजों तथा दुर्गुणोंका जो कट्टर शत्रु है, उद्योगशीलता अनवरत परिश्रम, सत्यपरता, परार्थपरता आदिगुण जिसके प्यारे सखा है और जातिके साथ साथ जिसे अपने देशका कल्याण करना भी अभीष्ट है । इन गुणोंके विना केवल घन ऐश्वर्य और पंडिताई आदिसे कोई इस सिंहासनके वैठनेका अधिकारी नहीं हो सकता है ।

यह ठीक है कि, जिस समाजमें योग्य व्यक्तियोंकी कमी होती है--ऐसे सर्व गुणसम्पन्न पुरुप जहा नहीं मिलते हैं, वहा आवश्यकतानुसार साधारण पुरुपोंको भी यह काम सोंप दिया जाता है और जैनसमाजकी भी अभी लगभग ऐसी ही दशा है। परन्तु यह भी तो सोचना चाहिये कि, क्या सचमुच ही हमारे यहां शिक्षितोंका इतना अभाव है? हमारा पिछले वीस वर्षोका आन्दोलन क्या यों ही व्यर्थ गया? उससे क्या दो चार भी ऐसे शिक्षित पुरुष न निकले जो इस महत्त्वपूर्ण कार्यको सम्पादन करनेकी योग्यता रखते हों? हमारी समझमें यह केवल भ्रम है। यदि महासभाके अधिकार सुयोग्य शिक्षित व्यक्तियोंको दिये जावें, तो उसके मुखपत्रके सम्पादन करनेके लिये एक नहीं दश सुयोग्य सम्पादक मिल सकते हैं।

लाला नानगरामजी समझते है कि, जो सम्पादक होना चाहें, उसीको सम्पादक वना देना चाहिये। कार्य करते २ वही सम्पादक वन जाता है। और इसी विश्वासके कारण आप हमसे प्रश्न करते हैं कि, जैनगजटके अमुक २ सम्पादकोंने सम्पादकी करनेके पहले कव और कौनसे लेख लिखे थे? इस विषयमें हमारा निवेदन है कि, एक तो वावू जुगलकिशोरजी आदि दो एक सम्पादकोंके लेख उनके सम्पादक होनेके पहले यदि आप समाचारपत्र पढ़ा करते है, तो आपने भी पढ़े होंगे और दूसरे यदि आपके श्रीमान् ही जैसे दो एक अपरिचित पुरुषोंको पहले भी सम्पादक वना दिये हों, तो इससे क्या यह सिद्ध हो गया कि, अव भी उसी तरह आख वन्द करके वनाते जाना चाहिये। वह समय तो और भी अधिक अंधकारका था। उस समय तो ऐसा अंधेर होना स्वाभाविक था। उन पिछले उ-

दाहरणोंको देकर क्या आप समाजको और पीछे घसीटना चाहते हैं? इस विषयमें हमें अपनेसे उन्नत समाजोंका अनुकरण करना चाहिये, अन्यान्य उन्नत समाजोंके पत्रोंके सम्पादक वे बनाये जाते हैं, जो पहले अपने लेखोंसे सर्वसाधारणमें प्रसिद्ध हो जाते हैं—जिनकी नामी लेखकोंमें गिनती होने लगती है। धन मान, मर्यादा और पांडित्यके सर्टिफिकटसे वहां काम नहीं चलता है।

आगे हमसे पूछा गया है कि जैनमित्रकी नौकरी करनेके पहले क्या आपने कोई लेखादि लिखकर छपवाये थे? इसका उत्तर यह है कि एक तो मैं किसी संस्थाके प्रतिष्ठित पत्रका सम्पादक नहीं हूं जिसके लिये कोई असाधारण योग्यताकी अवश्यकता हो, और दूसरे जैनहितैषीका सम्पादन करनेके पहले मै जैनमित्रमें छह सात वर्ष तक लेखादि लिखना सीखता रहा हूं जैनमित्रकी नौकरी करनेके पहले भी यदि आप जैनगज़टकी पुरानी फाइलें देखनेका कष्ट उठावेंगे तो उनमें भी मेरे दश पाच टूटे फूटे लेख मिल जावेंगे। यह वात आपको नहीं तो आपके नामसे लेख लिखनेवाले शास्त्रीजीको अवश्य मालूम होगी।

हम इस विषयमें अब और अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं देखते है। जिनबातोंका उत्तर देना आवश्यक और उचित था उनका उत्तर हम दे चुके। अन्तमें हम लाला नानगरामजीसे इतना और कह देना चाहते है कि, आपके श्रद्धास्पद लालाजी गण्य मान्य वदान्य भले ही हों—हम यह नहीं कहते कि, वे ऐसे नहीं होंगे परंतु इससे उनकी सम्पादककी योग्यताका अनुमान नहीं हो सकता है, और उन्हें सम्पादक वनाकर महासभाके विचारशून्य शासकोंने उनके साथ वडा भारी अन्याय किया है। आप भले ही न समझें. पर यह उनका वड़ा भारी अपमान है। एक वात यह भी कह देने

योग्य है कि, आपको अपने लालाजीकी हिमायतमें यह लेख नहीं लिखना चाहिये था क्योंकि हमने सुना है कि, आप लालाजीके गुमास्ते है। आपके इस स्वामी सेवकके सम्बन्धसे आपका लेख चापलूसी व झूठी खुशामदकी स्याहीसे भद्दा होगया है और उसका मूल्य कुछ भी नहीं रहा है।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

विचारपरिषत्।

इटावाकी श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा इस समय जो कार्य कर रही है, प्रत्येक शिक्षित जैनी उससे परिचित है। इस सभाने अन्यधर्मी लोगोंको जैनी बनानेका जो सिलसिला चलाया है, उससे जैन समाजके समक्ष कई महत्त्वके प्रश्न उपस्थित हो गये है और वे प्रश्न ऐसे हैं कि, उनपर जितनी जल्दी विचार किया जाय, उतना अच्छा है। नादणीमठ (कोल्हापुर) के भट्टारक स्वस्ति श्रीजिनसेनस्वामीने इन प्रश्नोंका विचार और समाधान करनेके लिये आगामी अष्टाह्निका पर्वके अन्तमें एक सभा करनेका विचार किया है। स्वामीजीकी आज्ञासे श्रीयुक्त अण्णापा बाबाजी लट्ठे एम. ए. ने इस अभिप्रायसे कि उक्त सभा होनेके पहले समाजके विचार समाचारपत्रों द्वारा प्रकाशित हो जावें, कुछ प्रश्न प्रकाशित करनेके लिये भेजे है। हम उन्हें यहापर प्रकाशित करते है और आशा करते है कि, विद्वान् सज्जन उनपर विचार करके अपने युक्तिसिद्ध मत प्रकाशित करेंगे—

१ अजैनियोंमें जैन धर्मका प्रसार करना चाहिये या नहीं? यदि नहीं तो क्यों?

२ यदि कोई अस्पृश्य शूद्र जैनधर्म धारणकरके जैनी हो जाय, तो उसे स्पृश्य मानना चाहिये या नहीं?

३. उसके साथ सवर्णियोंको रोटीव्यवहार या बेटीव्यवहार करना चाहिये अथवा नहीं ?

४. इधरकी (दक्षिणकी) चतुर्थ, पंचम, कासार, सेतवाल आदि जातियोंको किस वर्णमें गर्भित करना चाहिये ?

५. इस विषयमें यदि इधर कुछ प्रयत्न करना हो, तो किस प्रकार करना चाहिये ?

६. यदि आपको कोई अजैनी ऐसे मालूम हों, जो जैनधर्मका पालन करते है, तो उनका परिचय दीजिये और यह भी बतलाइये कि उनका सामाजिक व्यवहार किस प्रकार चलता है ?

इन प्रश्नोंका समाधान स्वामीजीके पास भी भेजना चाहिये।

---

२ मतपरिवर्तन।

पाठकोंको मालूम होगा कि, आर्यसमाजके उपदेशक पं० दुर्गादत्त शर्माने कुछ समय पहले जैनमित्रमें यह प्रकाशित किया था कि, "यदि आत्माको कहीं शान्ति मिल सकती है, तो जैनधर्ममें ही मिल सकती है। इसलिये मैं आर्यसमाजको छोड़कर जैनधर्म ग्रहण करता हूं।" इसके बाद आप कुछ समय तक जैनी रहे और इस बीचमें आपके इटावा आदि स्थानोंमें कई व्याख्यान हुए। शर्माजी अच्छे विद्वान् है। न्यायकी शास्त्रीय परीक्षाके तृतीय खंडमें आप उत्तीर्ण है और व्यावहारिक बातोंमें भी आपका अच्छा ज्ञान है। ६ वर्षतक आप आर्यसमाजके उपदेशक रहे है। इससे आपके जैनी होनेसे जैनियोंके आनन्दका कुछ ठिकाना नहीं रहा। श्रद्धालु जैनी इस आनन्दका अनुभव कर ही रहे थे कि, अजमेरके शास्त्रार्थके समय जो कि जैनकुमारसभाके वार्षिकोत्सव पर स्याद्वादवारिधि

पं० गोपालदासजी और स्वामी दर्शनानन्दजीके बीचमें हुआ था, आपने उक्त आनन्दको दुःख और ग्लानिमें परिणत कर दिया। आपने पहले तो अजमेरमें जैनियोंकी ओरसे दो एक व्याख्यान दिये और उसमें वैदिक धर्म तथा वेदोंके विरुद्ध बहुत कुछ कहा। परन्तु पीछेसे 'जैनधर्म परित्याग' नामका विज्ञापन छपाकर यह प्रकाशित कर दिया कि, "जैनधर्म निःसार है। वैदिक धर्म ही संसारका कल्याण करनेवाला है इसलिये मै पश्चात्ताप करता हूं और फिर वैदिकधर्मको ग्रहण करता हूं।" बस फिर क्या था, जिस आनन्दका अनुभव पहले जैनी कर रहे थे, उसीका अनुभव समाजीभाई करने लगे। परन्तु समाजियोंके आनन्दको भी शर्माजीने अधिक कालतक स्थायी रखना उचित नहीं समझा। केवल दश ही दिन पीछे आपने एक और विज्ञापन प्रकाशित करा दिया कि, "मुझे इस बातका दुःख है कि, मुझसे आर्यसमाजी भाइयोंने कई प्रकारकी लाचारिया डालकर 'जैनधर्म परित्याग' शीर्षक विज्ञापन निकलवा दिया। परन्तु सोचनेसे मालूम हुआ कि, किसीके दबावमें पड़कर सत्य धर्मका परित्याग करना कल्याणकारी नहीं है। इसलिये मैं पश्चात्ताप करता हूं और भूलसे त्यक्त जैनधर्मको पुनः ग्रहण करता हू।" इस समय शर्माजी जैनी है और जैनियोंको उनके खोये हुए आनन्दका फिर अनुभवन करा रहे हैं। आगेकी सर्वज्ञ जाने।

हमने यह भी सुना है कि, दिगम्बर जैनियोंसे परिचय होनेके पहले आप कुछ समयतक स्थानकवासी (ढूंढिया) भी रहे हैं और यह तो एक प्रकारसे निश्चित ही है कि, आर्यसमाजी होनेके पहले आप सनातन धर्मी रहे होंगे। इस तरह आपने थोड़े ही समयमें

कई बार धर्मपरिवर्तन करके लोगोंको विस्मित कर दिया है। आपके इस श्रद्धान वैलक्षण्यपर मानस-शास्त्रज्ञोंको खूब बारीकीसे विचार करना चाहिये।

---

३. मतपरिवर्तनपर कुछ विचार।

इस समय भारतवर्षमें धर्मपरिवर्तनका बाजार खूब गर्म है। जो लोग आर्यसमाजके और सनातन धर्मियोंके पत्र पढ़ा करते हैं, उन्हें इस बातका अच्छी तरहसे परिचय होगा। जिस तरह शिक्षित लोगोंके लिये एक पोशाक बदल कर दूसरी पहिनना एक मामूली बात है, उसी तरहसे धर्म बदलना भी बहुतोंके लिये एक मामूली बात हो गई है। आज जो सनातनी है, कल वह समाजी होता है, परसों ईसाई होता है और नरसों वही थियोसोफिस्ट हो जाता है। हम यह मानते हैं कि, इस समय अंधविश्वास, गतानुगतिकता, दुराग्रह आदि बातें पहलेकी अपेक्षा बहुत कम हो गई हैं और धार्मिक विषयोंपर लोग बहुत बारीकी और स्वतंत्रतासे विचार करने लगे है। हम यह भी जानते हैं कि, ये देशके भविष्यके कुछ अच्छे लक्षण हैं। क्योंकि जब तक देशमें स्वाधीन चेताओंका जन्म नहीं होता है तबतक उसकी उन्नतिका पथ सुगम नहीं होता है। परन्तु इस स्वाधीन चिन्तनाके मोहमें पड़कर हमें इस बातको नहीं भूल जाना चाहिये कि, धर्मका परिवर्तन करना, विश्वासका बदलना, पोशाक बदलनेके समान दैनिक साप्ताहिक वा मासिक कार्य नहीं है और न इस प्रकारका विश्वास-परिवर्तन किसीके स्वाधीन चेता होनेकी कसोटी है। जो विद्वान् है, विचारशील है और विविध प्रकारके ग्रन्थोंका अध्ययन तथा मनन करते हैं, उनके विचारोंमें या विश्वासोंमें बड़े

२ परिवर्तन हुआ करते हैं। प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता जान स्टुअर्ट मिलके जीवनचरितमें उसके विचार परिवर्तनोंका बडी मार्मिकतासे विचार किया गया है। इस देशके प्राचीन विद्वानोंके चरितोंमें भी इन परिवर्तनोंका पता लगता है। उपमिति भवप्रपंचकथाके रचयिता महात्मा सिद्धर्षि और विद्यानन्दिस्वामी आदिने जो मतपरिवर्तन किये थे, उन्हें प्रायः सब ही जानते है। परन्तु यह कोई बाजारी सौदा नहीं है, जो आज लिया और कल वापिस कर दिया। किसीके दबाने धमकाने या लिहाजसे मतपरिवर्तन नहीं होता है। जबतक पूर्वसिद्धान्तकी निःसारता अच्छी तरहसे न समझ ली जाय और स्वीकार्यमतका अध्ययन मनन और परिशीलन अच्छी तरहसे न कर लिया जाय, तबतक पूर्वका परित्याग और नवीनका ग्रहण करना अपनी हँसी कराना है। वह चित्तकी चचलता और दुर्बलताके सिवाय और कुछ नहीं है। ऐसे मत परिवर्तनको जो लोग महत्त्वकी दृष्टिसे देखते हैं, वे बड़ीभारी भूल करते है और मतपरिवर्तन करनेवालोंकी भूलकी तो कुछ सीमा ही नहीं है। वे तो अपनी विचारशीलताका—जो कि उनके मनुष्यजन्मकी विशेषता है—असह्य अपमान करते हैं।

---

४. सावधान !

अजैनोंको जैनी बनानेका सिलसिला जैनियोंमें अभी हाल शुरू हुआ है। मालूम होता है, यह आगे खूब जोरशोरसे चलेगा। इसलिये इस विषयमें जैनियोंको अभीसे सावधान हो जाना चाहिये। पं० दुर्गादत्तजीसे हमारा साक्षात् परिचय नहीं है। हो सकता है कि, उनमें सत्यशीलता वा सत्यनिष्ठा हो, परंतु उन्होंने जो अभी थोड़े हीं दिनोंमें कई रग बदले है, उनसे उनके विषयमें सन्देह अ-

वश्य होता है। और यह हमें अपने समाजको सचेत करनेके लिये यथेष्ट कारण मिल गया है। यदि हम शर्माजीका यह रंग बदलना उनके चित्तकी चंचलता वा दुर्बलतासे ही मानलें, इसमें उनका कोई स्वार्थ न समझें तो भी जब हम इस ओर अग्रसर हुए है, तब हमें ऐसे लोगोंसे भी काम पड़ेगा, जो अपनी स्वार्थसाधनाके लिये हममें आकर मिलेंगे और ज्योंही उसमें कुछ त्रुटि देखेंगे अथवा दूसरी ओरसे कुछ प्रलोभन दिया जायगा, त्योंही तोते सरीखी आंख बदल जावेंगे। इसलिये हमें अपने जैनी बनानेके मोहको एकाएक उच्छृंखल न होने देना चाहिये। ऐसे मौकोपर चित्तको कुछ संयमित करके पात्रकी प्रवृत्तिका खूब विचार कर लेना चाहिये और तब उसपर भक्ति करनी चाहिये। आशा है कि, हमारे इस प्रस्तावपर तत्त्वप्रकाशिनी सभा ध्यान देगी।

---

९ आधुनिक बौद्ध धर्म।

प्राच्यविद्यामहार्णव श्रीयुत नगेन्द्रनाथ वसुने इस नामका एक ग्रन्थ अंग्रेजी भाषामें लिखा है। यह ग्रन्थ बड़े ही महत्त्वका है। नगेन्द्रबाबूने वर्षों परिश्रम करके और बंगालके ग्राम ग्राममें घूमकरके इस ग्रन्थका सम्पादन किया है। इसमें यह बतलाया गया है कि, वंग और कलिंग (उड़ीसा) देशमें इस समय भी बौद्धधर्म गुप्त रूपसे प्रचलित है और जहां तहां फैलता जाता है। महामहोपाध्याय प० हरप्रसादशास्त्री एम. ए. ने उक्त ग्रन्थकी भूमिका लिखी है। उसमें उन्होंने लिखा है कि, शंकराचार्यने बौद्ध धर्मको भारतवर्षसे निकाल दिया, यह विश्वास भ्रमपूर्ण है। इसमें कोई तथ्य नहीं है। क्योंकि शंकराचार्यके पीछे भी यहां अनेक बौद्ध राजा

हुए है और बौद्धोंका खूब जोरशोर रहा है। ईसाकी नवमी दशवीं शताब्दिमें पाल वंशके बौद्ध राजा बगालका शासन करते रहे है। १२७६ ईस्वीमें श्रावस्तीका एक बौद्धस्तूप बना था। ई० स० १३३१ में ब्रह्मदेशके नरेशने बुद्धगया का संस्कार कराया था। तमलुक नामक स्थानसे सैकडों बौद्ध पण्डित आसाम आदि देशोंमें बौद्ध धर्मका प्रचार करनेके लिये जाते थे। कात्यायन गोत्रके एक बंगाली पडितको सिंहलमें बौद्धागम चक्रवर्तीकी पदवी मिली थी। सोलहवीं शताब्दिके अन्तभागमें तारानाथ नामके लामाने तिब्बतसे एक दूत भेजा था। उसने सारे बगालमें भ्रमण करके लामाको संवाद दिया था कि, पश्चिमबगाल और उड़ीसामें बौद्धधर्म प्रबल है। चीनी यात्री हुएनसंगने लिखा है कि, जब वह भारतमें आया, तब बंगालमें दशहजार मठ और एक लाख बौद्ध भिक्षुक थे। अवश्य ही उस समय इन भिक्षुओंके पालनेवाले एक [illegible] बौद्ध गृहस्थ बंगालमें होंगे। इत्यादि वार्तोंसे साफ जाहिर है कि, शंकराचार्य द्वारा भारतसे बौद्धनिर्यासकी बात कल्पनामात्र है। बौद्धधर्म बगालसे कभी लुप्त नहीं हुआ। इस समय भी वह वहां जीवित है। परन्तु उस पर चैतन्यकृत वैष्णवधर्म, शहजिया धर्म आउले भजा, कर्ताभजा, तान्त्रिक आदि सम्प्रदायोंका आवरण पडा हुआ है। सहजिया मत बौद्धमत ही है इस बातको शास्त्रीजीने बहुत अच्छी तरहसे सिद्ध किया है। जगन्नाथपुरीका मान्दिर बौद्धोंका मन्दिर है। पुरुषोत्तमकी श्रीमूर्ति बौद्धमूर्ति है। चैतन्यदेवका वैष्णव मत महायान और वज्राचारी बौद्ध सम्प्रदायका और पौराणिक वैष्णवमतका मिश्रण है। श्रीकृष्णकी ब्रजलीला और प्रेमसाधना महायानीय साधनाका रूपान्तर है। पुराणोंमें विष्णुको

कहीं भी द्विभुज नहीं बतलाया है—सर्वत्र चतुर्भुज कहा है। परन्तु चैतन्य देवने विष्णुको द्विभुज बतलाया है। यह बौद्धधर्मकी नकल है। इसके कई प्रमाण दिये गये है। गरज यह कि, बौद्धधर्म भले ही रूपान्तरित हो गया हो, परन्तु अब भी वह बंगालमें मौजूद है। बंगाल जैनियोंका भी प्रधान क्षेत्र था। हजारीबागमें पार्श्वनाथ, भागलपुरमें वासुपूज्य, राजमहलमें महावीर, इस तरह बंगालमें जैन तीर्थंकरोंके स्मृतिचिन्ह अब भी है। पश्चिम बंगालके पंचकोट स्थानमें नाथपूजकोंका एक दल है, नेड़ानेड़ियोंमें नाथ-साधना (महावीर-पूजा) होती है, और योगी जातिमें जैनाचार परिलक्षित होते है। बंगालमें जितने धर्मसम्प्रदाय प्रचलित है, उन सबहीमें यदि बारीकीसे देखा जाय, तो जिनपदाक मिलेंगे। सुवर्णवणिक (सुनार) जातिकी भी किसी २ शाखामें जैनाचारोंके लक्षण पाये जाते है। बात बड़ी प्रसन्नताकी है कि, अब हमारे देशवासी विशेष करके बंगाली विद्वान् ऐसे २ पाण्डित्यपूर्णग्रंथ लिखकर देशका मुंह उज्वल करने लगे है। सुना है, यह ग्रन्थ बगला भाषामें भी शीघ्र प्रकाशित होगा।

---

६. ईसाकी जीवनी।

तिब्बतमें हीमिस नामका एक स्थान है। वहा बौद्धोंका एक वडा भारी मठ और पुस्तकालय है। रूसके नोटोविच नामक परिव्राजकको वहाके पुस्तकालयमें ईसाकी हस्तलिखित जीवनी मिली है, जो कि बड़ी २ दो जिल्दोंमें है और पालीभाषामें लिखी हुई है। अभी तक कहा जाता है कि, ईसा एक कुँवारीसे पैदा हुआ था, परन्तु इस जीवनीसे मालूम हुआ है कि, नहीं उसका बाप भी था।

इसराइलमें वह एक गरीब माबापके यहां पैदा हुआ था। १३ वें वर्षकी अवस्थामें वह सिन्ध भाग आया था और १४ वें वर्षमें उसने जगन्नाथ, राजगृह, काशी आदिकी यात्रा की थी और फिर उसने कुछ दिनों वेदोंका अभ्यास किया था। इसके बाद उसने बौद्धोंकी शरण ली, उनसे पाली सीखी और शुद्ध बौद्ध हो गया। इसके पीछे वह पश्चिमकी ओर चला गया और वहां मूर्तिपूजाके विरुद्ध व्याख्यान देने लगा, फिर पारसी धर्मका विरोध करने लगा। २९ वर्षकी अवस्थामें वह थाजूडिया पहुचा और नवीन मतका प्रचार करने लगा। इत्यादि। इससे मालूम होता है कि, अन्यान्य मतोंके समान ईसाई धर्म भी इसी भारतवर्षकी सामग्रीसे तयार किया गया है। ईसाई धर्ममें जो बौद्धधर्मका प्रभाव परिलक्षित होता है, उसका भी कारण यही मालूम होता है। इस जीवनीकी बातसे ईसाईससारमें बड़ी हलचल मची है। बहुतसे पादरी इसे झूठी सिद्ध करनेके प्रयत्नमें लगे हैं।

---

७. श्रावस्तीनगरी

जैनियोंके आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभका जन्म श्रावस्ती नगरीमें हुआ था, इसलिये वह जैनियोंकी तीर्थभूमि है। बौद्ध लोग तो उसे बहुत ही पूज्य मानते हैं। बौद्धोंकी प्रधान नगरियोंमें वह एक है। क्योंकि स्वयं बुद्धदेव वहा बहुत दिनोंतक धर्मोपदेश करते रहे हैं। बौद्ध राजाओंने वहा बड़े २ मठ विहार और स्तूपादि बनवाये थे। अभी तक इस नगरीका पता नहीं लगता था कि, कहा है। ऐतिहासिक शोध करनेवाले विद्वान् जुदा जुदा स्थानोंमें उसकी कल्पना करते थे। परन्तु बीसों वर्षोंके परिश्रमके बाद अब निश्चय हो गया

है कि, सहेटमहेट नामक स्थान ही प्राचीन श्रावस्ती है और इसके विषयमें प्रायः सब ही विद्वानोंका एक मत हो गया है। सहेटमहेट नामके खंडहर रायती नदीके किनारे गोंड़ा और वहरायच जिलोंकी सीमापर है। इन खंडहरोंके खुदवानेमें और वहांके लेखादिकोंके ढूंढ़नेमें बहुत ही परिश्रम किया है। गत अप्रैलकी नागरीप्रचारिणी पत्रिकाकाशीमें इस विषयका एक विस्तृत लेख प्रकाशित हुआ है। ऐतिहासिक विषयोंसे प्रेम रखनेवाले सज्जनोंको उसे अवश्य पढ़ना चाहिये।

ईडरकी गद्दी।

गुजरातमें ईडर नामकी एक रियासत है। वहा मूलसंघके भट्टारकोंकी एक गद्दी है। यह गद्दी बहुत पुरानी है और इसपर अच्छे २ विद्वान् भट्टारक रह चुके है। इस गद्दीके अधिकारमें एक विशाल पुस्तकालय है। जिसमें कई हजार प्राचीन अर्वाचीन जैन और जैनेतर ग्रन्थोंका संग्रह है। और इसीके कारण उक्त गद्दीकी बहुत बड़ी ख्याति है। लगभग १९ वर्षसे यह गद्दी खाली है। भट्टारक कनककीर्तिके बाद उसका कोई अधिकारी नहीं हुआ। कनककीर्तिके शिष्योंमें एक शिष्य बहुत ही दुराचारी और मूर्ख निकला। सुनते है, वह गद्दीकी बहुतसी सम्पत्ति लेकर चला गया है और एक शहरमें रहकर जैनियोंके द्रव्यका सदुपयोग कर रहा है। सांसारिक सुखोंको भोगना ही उसका प्रधान लक्ष्य है। इस गद्दीके प्रबन्धकर्ता तथा उपासक ईडर और रायदेशके पंच है। ईडरके आसपासके ग्रामवाले पच रायदेशके पंच कहलाते हैं। ये सब लोग इस बातके लिये व्याकुल हो रहे हैं कि, किसी तरहसे हमारी गद्दी खाली न

रहें और उसपर कोई भट्टारक विराजमान हो जाय। इसके लिये वे कई वर्षोंसे प्रयत्न कर रहे हैं। कई सुयोग्य पात्र तलाश किये गये और उनके विठानेका प्रयत्न भी किया गया, परन्तु सफलता नहीं हुई। कई महाशय तो ईडर तक पहुंच गये और स्वीकृत भी हो गये, परन्तु पीछे कुछ न कुछ वहाना वनाकर लम्बे हो गये। जहां तक हमें मालूम हुआ है, इसका कारण वर्तमानमें 'भट्टारक'पदकी अपकीर्ति है। पात्र जितने ढूंढे गये, वे प्रायः उत्तरभारतके थे और उत्तरभारतमें तेरहपथके प्रभावसे भट्टारकोंके विषयमें लोगोंके खयाल वहुत ही खराव हो रहे है। इसलिये उक्त अपकीर्तिकी परवा न करके भट्टारक वन जाना हरएकका काम नहीं है। इस तरह पंचोंका कई वारका प्रयत्न निष्फल गया। परन्तु पंचोंको जवतक कोई भट्टारक न वन जावे, तव तक चैन कहा? उन्होंने अपना प्रयत्न वरावर जारी रक्खा और यहा तक निश्चय कर लिया कि, यदि कोई ब्रह्मचारी वा सुपडित न मिलेगा, तो न सही जैसा मिलेगा वैसा ही विराजमान कर देंगे। पर अव और अधिक समय तक गद्दीको खाली न रक्खेंगे।

आखिर पचोंकी इच्छा पूरी हो गई। एक पात्रको तजवीज करके उन्होंने उसे युवराजका तिलक कर दिया। इस वातको तीन चार महीने हो गये। अव सिर्फ भट्टारकका तिलक करना वाकी है। आगामी कार्तिक या अगहन मासमें सुनते हैं कि, यह कार्य भी सम्पादित हो जायगा।

जो महाशय भट्टारक वनाये जानेवाले है उनका नाम ब्रह्मचारी मोतीलालजी है। आप जैसवाल जातीय है। उम्र आपकी लगभग ३० वर्षकी होगी। दो तीन वर्षसे आप ब्रह्मचारी हो गये हैं।

इसके पहले श्रीयुत पन्नालालजी ऐलकके समक्षमें कुछ प्रतिज्ञाएँ की थी। उक्त प्रतिज्ञाएँ पत्रोंमें प्रकाशित हो चुकी है। उन्हें पढनेसे समाजको सन्तोष हो जाना चाहिये था। परन्तु इस समय उनके विषयमें तरह तरहकी बातें सुनाई पड़ने लगी है। यहाके गुजराती समाजमें जिसका कि ईडरकी गद्दीसे सम्बन्ध है इस विषयकी खूब चर्चा हो रही है और बाहरसे भी हमारे पास कई पत्र आये है। साराश इन सब बातोंका यह है कि, समाजका एक बड़ा भाग मोतीलालजी ब्रह्मचारीसे प्रसन्न नहीं है और उनकी योग्यताके विषयमें उन्हें शंका है। कई लोगोंने ईडर और रायदेशके पंचोंसे प्रेरणा की है कि, वे मोतीलालजीको योग्यता विद्वत्ता और सदाचारताका परिचय सर्वसाधारणको देवें और तब उन्हें भट्टारक बनावें। परन्तु पचमहाशय चुप है। अभीतक उन्होंने इस विषयमें कोई सन्तोष जनक उत्तर प्रकाशित नहीं किया है।

मोतीलालजीसे हमारा परिचय है। मोरेनामें हम उनके साथ कई महीने रह चुके है। हमारा उनके साथ मित्रताका सम्बन्ध है, परन्तु **'दोषावाच्यः गुरोरपि'** की नीतिके अनुसार हमको कहना पड़ता है कि, भट्टारक जैसे महत्त्वके पदको धारण करनेकी योग्यता उनमें नहीं है। यद्यपि कुछ दिनोंसे उनमें समाजकी उन्नति करनेका जोश दिखलाई देता है और शायद वह सच्चा भी हो, परन्तु केवल जोश हीसे काम नहीं चल सकता है। एक धर्मके गुरुका कमसे कम उपदेशकका कार्य स्वीकार करनेके लिये और भी किसी बातकी योग्यता आवश्यक है। जिस कमीके कारण हमारा गुजराती समाज घोर अज्ञानकी कीचड़में फँस गया है, वह कमी भी यदि पूरी न हो सकी, तो फिर इस विडम्बनाका फल ही क्या होगा?

इससे तो यही अच्छा है कि, गद्दी खाली पड़ी रहे। हमें आश्चर्य होता है कि, ईडर और रायदेशके पच मोतीलालजीको इस पदके लिये चुननेका साहस कैसे कर बैठे? और सबसे बड़ा आश्चर्य मोतीलालजीकी बुद्धिपर होता है, जो इस प्रकार अनधिकार प्रवेश करनेके लिये तयार हो गये। यदि समाजकी सेवा ही करनी थी, तो क्या उनको और कोई मार्ग नहीं सूझता था? क्या वे समझते हैं कि, हम भट्टारक होनेके योग्य है। यों तो भट्टारककी योग्यता बहुत बड़ी है, परन्तु कमसे कम उसे किसी एकाध भाषाका और धर्मशास्त्रका तो अच्छा ज्ञान होना चाहिये। जब तक यह न हो, तब तक धर्मका उपदेश ही क्या दिया जायगा। हमें इच्छा न होते हुए भी कहना पड़ता है और इसके लिये हम मोतीलालजीसे क्षमा मागते है—कि उन्हें न तो संस्कृतका ज्ञान है, न हिन्दी ही वे जानते हैं—उनकी चिट्ठियोंमें अशुद्धियोंकी भरमार रहती है और न धर्मशास्त्रमें उनकी कुछ गति है। जैनधर्मकी बहुत मोटी मोटी बातोंका भी उन्हें ज्ञान नहीं है। इन बातोंको मैं जरा भी बढाकर नहीं लिख रहा हूं। पचोंकी इच्छा हो, तो वे किसी विद्वान्से उनकी परीक्षा करवा लें।

मोतीलालजी कुछ समय तक मोरेनामें रहे है, इससे शायद उनके भक्तजनोंने समझ लिया है कि, वे जैनसिद्धान्त पाठशालाके विद्यार्थी थे और इस कारण वे बडे भारी विद्वान् होंगे। परन्तु यह उनका भ्रम है। सिद्धान्त पाठशालाके लिये उन्होंने अपना जीवन अर्पण कर दिया था, इस कारण वे उसके छात्राश्रमका तथा सरस्वती भवनका प्रबन्ध करते थे। पढ़ना तो उन्होंने प्रारभ भी नहीं किया था। हा यदि वे वहा वर्ष दो वर्ष रहते और इस विडम्बनामें नहीं पड़ते, तो अवश्य कुछ न कुछ योग्यता प्राप्त कर लेते।

भट्टारकमें पाण्डित्यके सिवाय एक गुण और चाहिये। वह गुण सदाचार और वैराग्य है। आपके आचरणके सम्बन्धमें तो हम कुछ कह नहीं सकते है क्योंकि आपके पूर्वचरितसे तो हम परिचित नहीं और मोरेनामें आपके चरित सम्बन्धी कोई उल्लेख योग्य बात हमने देखी सुनी नहीं। परन्तु इतना हम अवश्य कहेंगे आपके परिणामोंमें विरक्तिकी झलक नहीं मालूम होती है। और मंत्रतंत्र विद्यासे भी आपको प्रेम है, जिससे कि पूर्वके भट्टारकोंने जैनसमाजका सर्वनाश किया था।

इस तरह हमारी समझमें ईडर और रायदेशके पंचोंने जो चुनाव किया है, वह बिलकुल ठीक नहीं हुआ है। इससे जैनधर्मकी बड़ी भारी अप्रभावना होगी। अब वह समय नहीं रहा, जब केवल वेषसे काम चल जाता था, इस उन्नतिके समयमें वेषके साथ पाण्डित्य भी चाहिये। हम यह नहीं चाहते है कि इस विषयमें हमारी जो सम्मति है, वही मान ली जाय। हो सकता है कि, हमारी जाच ठीक न हो, परन्तु इस विषयमें एक वार विचार अवश्य करना चाहिये और यदि सचमुच गलती हुई हो, तो उसे सुधारना चाहिये। बम्बई प्रान्तिक सभाको और गुजरात-प्रान्तके प्रत्येक शिक्षित जैनीको इस ओर ध्यान देना चाहिये और ईडरकी गद्दीका प्रबन्ध करनेवाले पंचोंको इस बातके लिये लाचार करना चाहिये कि वे इस महत्त्वके कार्यको विना सर्व साधारणकी सम्मति पाये कदापि न करें। यह विषय किसी तीर्थक्षेत्रकी रक्षा और प्रबन्धसे कम महत्त्वका नहीं है। बल्कि बुराई भलाईकी जबाबदारी सामान्य तीर्थोंकी अपेक्षा इस धर्मोपदेश तीर्थपर बहुत अधिक है।

अन्तमे हम एक बात और कह देना चाहते है। वह यह कि ईडर और रायदेशके पंचोंमें भोले श्रद्धालु भाइयोंकी संख्या अधिक

है। इसलिये एक तो वे योग्यता और अयोग्यताका विचार यों ही नहीं कर सकते है और दूसरे यदि दूसरे लोगोंकी प्रेरणासे या चिट्ठी पत्रीसे उन्हें कुछ विचार होता है, तो वे लोग जिनका कि इस गद्दीके हो जानेसे स्वार्थ है, उलटी सीधी पट्टिया पढ़ाकर फिर ठंडे कर देते हैं। इस विषयकी जो शिकायतें पंचोंके पास जाती हैं, उनमेंसे किसीके विषयमें तो उक्त महात्मा समझा देते है कि, यह तेरह पथी है यह तो चाहता ही है कि, वीसपंथी भट्टारकोंका मार्ग न चले। किसीके विषयमें कह देते हैं कि, इसकी मोतीलालजीसे पुरानी शत्रुता है और उसका कारण यह है कि किसीके विषयमें समझा देते हैं कि इस पर गद्दीका कुछ रुपया निकलता है, इसलिये चाहता है कि कोई गद्दीका अधिकारी नहीं होने पावे। इस तरह स्वार्थसाधु लोग किसीके आक्षेपको पचोंके सामने नहीं टिकने देते हैं। इसलिये जो भाई इस विषयमें कुछ उद्योग करें, वे इन सब पं- चोंका विचार करके करें।

आशा है कि, हमारी यह प्रार्थना व्यर्थ न जावेगी। गुजराती सज्जन वहुत जल्दी इस ओर लक्ष्य देंगे।

पुस्तक–समालोचन।

वर्णविचार, अर्थात् सार्वभौमिक वर्णमालाकी आलोचनापर प्रवन्ध–वाबू अयोध्याप्रसाद वर्मा कर्तृक विरचित २३।११ वाराणसी घोष सेकेण्ड लैन, जोड़ासाकू कलकत्ता। संसारमें सैकड़ों प्रकारकी लिपियां प्रचलित हैं। उनमें सवसे परिपूर्ण सुगम और सुन्दर देवनागरी लिपि है। ज्यों ज्यों जुदा २ देशोंका पारस्परिक सम्वन्ध वढ़ता जाता है त्यों त्यों विद्वानोंका ध्यान इस ओर आकर्षित

होता जाता है कि, समस्त पृथ्वीपर एक ही प्रकारकी लिपिका प्रचार होना चाहिये—अर्थात् भाषाएँ चाहे भिन्न २ रहें परन्तु वे सब एक ही लिपिमें लिखीं जावें। इससे एक भाषाके जाननेवालोंको दूसरी भाषाओंका ज्ञान बहुत सुगमतासे हो सकता है और दूसरे व्यावहारिक कार्योंमें भी बहुत सुविधाएं हो सकती है। कुछ समय पहले यूरोपके विद्वानोंने अंग्रेजीको सार्वभौमिक लिपि बनानेका प्रयत्न किया था। और इसके लिये उन्होंने कई समितियां स्थापित की थीं, इस देशमें भी एक समिति स्थापित हुई थी, परन्तु अंग्रेजी लिपि इतनी अपूर्ण है कि, प्रयत्न करने पर भी इस विषयमें सफलता नहीं हुई। अब कुछ समयसे विद्वानोंकी दृष्टि देवनागरी लिपिपर पी है। और वे इसका विस्तार करनेका प्रयत्न करने लगे है। इसके उद्योगके लिये कलकत्तेमें 'एक लिपि विस्तार परिषत्' नामकी सभा कई वर्षसे स्थापित है इस सभाका उद्देश यह है कि, भारतवर्षमें जो अनेक प्रान्तीय भाषाएं है वे सब एक ही लिपि अर्थात् देवनागरीमें लिखी जाना चाहिये। परन्तु इस निवन्धके लेखक महाशय चाहते हैं कि देवनागरीको अकेले भारतवर्षकी ही नहीं बल्कि समस्त भूमण्डलकी लिपि बनानेका उद्योग करना चाहिये। यद्यपि और लिपियोंसे देवनागरी बहुत अंशोंमें परिपूर्ण है, परन्तु उसमें भी फारसी अरबी अंग्रेजी आदि वैदेशिक भाषाओंके बहुतसे उच्चारणोंको प्रकाशित करनेके संकेत नहीं हैं और इसका कारण यह है कि इस लिपिका निर्माण इसी देशके प्राकृतिक उच्चारणोंके अनुसार किया गया था। परन्तु लेखक महाशयको विश्वास है कि, यदि इसमें कुछ नवीन संकेतोंकी सृष्टि और कर ली जाय तथा वर्णशैलीके कुछ नियमोंका परिवर्तन कर दिया जाय, तो यह लिपि

सर्वशक्तिशालिनी हो सकती है। सारे भूमडलकी भाषाएँ इसमें सुगमतासे लिखी जा सकती है। इस निवन्धमें इसी विषयका विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है और नये २ संकेतों तथा परिवर्तनोंका स्वरूप दिखलाया गया है। निवन्धकी भाषामें अशुद्धियोंकी भरमार है। परन्तु विषयकी उपयोगिता पर दृष्टि देनेसे वे सब क्षम्य मालूम होती है। प्रत्येक विचारशील पुरुषको यह निवन्ध पढ़ना चाहिये। आधा आनेका टिकट भेजनेसे निवन्ध मुफ्तमें प्राप्त हो सकता है।

भट्टारक—दक्षिणमहाराष्ट्र जैनसभाने एक ट्रैक्ट कमेटी वनाई है। इस कमेटीके द्वारा जैनधर्म सम्बधी छोटे २ ट्रैक्ट छपाये जावेंगे और लागतके दामोंपर वेचे जावेंगे। उक्त कमेटीका यह तीसरा ट्रैक्ट है। जैनहितैषीमें प्रकाशित हुए 'भट्टारक' शीर्षक लेखका यह मराठी अनुवाद हैं। छपाई सुन्दर है। मूल्य एक प्रतिका एक आना। १०० का पाच रु०।

प्राचीन दिगम्बर अर्वाचीन श्वेताम्बर—लेखक, तात्या नेमिनाथ पागल, प्रकाशक सम्पादक दिगम्बरजैन, सूरत। मूल्य दो आना। जैनशासनके दिवालीके अंकमें 'श्वेताम्बर प्राचीनके दिगम्बर' नामका एक लेख मुनि विद्याविजयजी लिखित प्रकाशित हुआ था और उसमें यह सिद्ध किया गया था कि, श्वेताम्बर प्राचीन है। इस गुजराती पुस्तकमें उसी लेखका खडन किया गया है और दिगम्बर सम्प्रदायको प्राचीन वतलाया है।

नरमेध यज्ञ मीमांसाकी समालोचना और जैनास्तिकत्वमीमांसा—लेखक प० हंसराज शर्मा। पृष्ठसख्या ४८ और २०। मूल्य तीन पाई और छह पाई। मिलनेका पता लिखा नहीं। इन

दो पुस्तकोंमें इटावा निवासी पं० भीमसेन शर्माके लिखे हुए दो लेखोंका प्रतिवाद किया गया है। पं० भीमसेन शर्माने लिखा था कि, वेदोंमें नरमेध अर्थात् पशुका वलिदान करना कहीं भी नहीं लिखा। जहां नरमेध कहा गया है, वहां मेधावी मनुष्यका संस्कार समझना चाहिये। पहली पुस्तकमें इसके विरुद्ध व्यासजी, वाल्मीकि, नीलकंठ आदि विद्वानोंके प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि नहीं, वैदिक कालमें पशुओंके समान मनुष्य भी यज्ञमें होमे जाते थे। यदि ऐसा न होता तो स्मृतिकार कलिकालमें नरमेध करनेका निषेध क्यों लिखते? स्मृतिकारोंके समय अहिंसाका प्रभाव पड़ चुका था, इसलिये उन्होंने नरमेधको वैदिक कर्म स्वीकार करके भी कलिमें निषेध किया था। दूसरी पुस्तकमें व्याकरण, कोषादिके प्रमाणोंसे जैनियोंको आस्तिक सिद्ध करके जैनधर्मका संक्षिप्त स्वरूप वतलाया है और अफसोसके साथ कहा है कि, जिनके धर्ममें पशु और मनुष्यों तकका हवन तथा मांस भक्षण अच्छा वतलाया है, वे तो आस्तिक कहलावें और जिनके यहां पदपदपर अहिंसाका उपदेश है, वे नास्तिक कहलावें।

प्रद्युम्न चरित्र—मराठी रूपान्तरकार विष्णु यशवन्त मोकाशी और प्रकाशक गुलावसाव वकारामजी रोड़े, वर्धा (सी. पी.)। पृष्ठ-संख्या ३७४, मूल्य ढाई रुपया। हिन्दी प्रद्युम्नचरित्रका यह मराठी अनुवाद है। इसकी रचना अच्छी पद्धतिसे हुई है और भाषा भी अच्छी मालूम होती है। परन्तु जान पड़ता है कि, इसके अनुवादक न तो हिन्दीको ही अच्छी तरहसे समझ सकते है और न जैनधर्मसे ही कुछ परिचय रखते है। समयाभावसे हम इसके थोड़ेसे पृष्ठ वांच सके, परन्तु उतनेमें ही इससे जैनधर्मसे विरुद्ध अनेक वातें

मिलीं। वे बातें इतनी साधारण है कि, जैनधर्मका थोड़ा भी ज्ञान रखनेवाला उनमें नहीं भूलता। यथाः—"ह्या भूमंडलाच्या ठायीं जम्बु वृक्षाच्या आकारासारखें जम्बु नांवाचें द्वीप होतें. ज्या ठिकाणीं वाहिनीनाथ नांवाचा एक सुवृत्त पुरुष सेवा करित असे." वास्तवमें जम्बू द्वीपको जम्बू वृक्षसे चिन्हित बतलाया है और उसको वाहिनीनाथ अर्थात् समुद्र सुवृत्त रूपसे (गोलाईरूपमें) सेवा करता है। परन्तु आप लिखते है कि, जम्बू द्वीप जम्बू (जामुन) वृक्षके आकारका है। और उसकी कोई वाहिनीनाथ नामका पुरुष सेवा करता है। पृष्ठ ८९ में लिखा है–"भरतक्षेत्रांत उत्सर्पिणीकाल ज्यांस अवसर्पणीकाल असेंहि सज्ञितात, त्याचें परिवर्तन होत आहे असें दिसतें।" हिन्दीमें उत्सर्पिणीकाल और अवसर्पिणीकाल लिखा है। पर आप 'और' का अर्थ अथवा समझे है, इसलिये उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीको एक ही बतलाते हैं। "असें दिसतें" का क्या मतलब? क्या वास्तवमें नहीं है, पर ऐसा दिखता है, यह? इसके कुछ ही आगे आदिनाथकी आयु 'चौरासी लाख' लिखी है। 'पूर्व'-को आपने न जाने क्यों उड़ा दिया? ग्रन्थके अन्तमें ग्रन्थकारका परिचय देते समय आप लिखते हैं कि "नदीतट नावाच्या सुगच्छ क्षेत्रात श्रीरामसेन नांवाचे आचार्य होऊन गेले।" नदीतट काष्ठासंघके एक गच्छका नाम है, पर आप उसको क्षेत्र या देश समझ बैठे। यदि आप हिन्दी ही अच्छी जानते होते, तो ऐसी भद्दी गलतिया न होतीं। हिन्दी अनुवादमें ये बातें बहुत ही खुलासा तौरपर लिखी हुई है। श्रीयुक्त गुलाबसावजीका ग्रन्थ प्रकाशित करनेका उद्योग प्रशंसनीय है, परन्तु हम आपसे प्रार्थना करते है कि, यह कार्य बहुत ही सावधानीसे करावें।

सबल-सम्बोधन।

(१)

बल आपको मिला है किस वास्ते? बिचारो।
क्या इसलिये मिला है, तुम दुर्बलोंको मारो? ॥
जो बोल भी न सक्के, उनपर छुरी चलाओ?।
सीधे, परोपकारी, जो हों, उन्हें मिटाओ? ॥

(२)

या साधु-सज्जनोंपर डालो दबाव, ऐंठो?।
पीकर नशा, बुरे ही लोगोंमें नित्य बैठो? ॥
हरदम हरामकारी, मक्कारियाँ सुझाना।
लड़ भिड़ बिगड़ झगड़ कर उत्पात ही मचाना ॥

(३)

औरोंका दिल दुखाकर आनन्द-मग्न रहना।
क्या आपका यही है कर्तव्य? सत्य कहना! ॥
क्या शक्तिका यही है उपयोग ठीक भाई?।
क्या सृष्टि निर्बलोंकी उसने नहीं बनाई? ॥

(४)

यों सर्वदा बलफते शेखी बघारते हो।
पर जो चुभे सुई तो तुम चीख मारते हो! ॥
तुमसे जो इस तरह है पीड़ा सही न जाती।
तो औरको सताते फटती है क्यों न छाती? ॥

(५)

जो है भुजा फड़कती, ताकत अगर भरी है।
कुछ जोश खूनमें है कुछ भी बहादरी है ॥

तो दीन बन्धुओंको दुखसिन्धुसे उबारो ।
या चोर डाकुओंको दो दण्ड मेरे यारो ॥

(६)

रक्षा करो निबलकी, बलवान जो सतावें ।
बलकी यही सफलता, सब शास्त्र ही बतावें ॥
छोडो ये व्यर्थ हत्या, उत्पात औ बुराई ।
इससे कभी तुम्हारी होनी नहीं भलाई ॥

(७)

रावणने कर उपद्रव, पाया है उसका फल क्या ।
दुर्योधनादिकोंकी इच्छा हुई सफल क्या ?
निजबन्धु-बान्धवोंको सब अन्तमें सताकर ।
यमलोकको सिधारे बदनाम होके भूपर ॥

(८)

जिसके लिये करो तुम हत्त्या हराम हरदम ।
जिसके सँवारनेमें इतना करो परिश्रम ॥
छुट जायगा तुम्हारा वह देह यक-न-यक दिन
हो प्राणहीन प्यारे करने लगेगा भिन भिन ॥

(९)

चटपट उसे उठानेकी फिक्र होगी सबको ।
कोई न माननेका तब आपके अदबको ॥
गाड़ेसे कृमि पड़ेंगे, बहनेसे होगी विष्ठा ।
जलनेसे, राख होगी, बस तीन ही है निष्ठा ॥

(१०)

उस देहके लिये यों दिन-रात पाप करना ।
औरोंकी जान जावे, पर अपना पेट भरना ।

क्या काम बुद्धिमानोंका है? जरा विचारो।
कुछ भी असर पड़े, तो चींटीको भी न मारो॥

रूपनारायण पाण्डेय।

(कमलाकर.)

जयमाला।

चित्रकारका नाम छविनाथ है। चित्र खींचना ही उसके जीवनका व्रत है। कवि जिस तरह काव्यका आलाप करके, स्वरमें छन्दको मिला कर, कविताद्वारा अपने मनका भाव प्रकाशित करता है। उसी तरह छविनाथ अपनी निपुण कलमसे रंगको फैलाकर, तथा रेखाओंको खींचकर अपने मनका भाव चित्रमें स्पष्ट रूपसे झलका देता है। उसके अंकित चित्र ऐसे सुन्दर तथा प्राकृतिक-भावयुक्त होते हैं कि उन्हें देखकर यथार्थ वस्तुका भ्रम होता है। आकाशमें पक्षी उड़ता है—उसका खींचा हुआ चित्र देखकर उसे लोग सहसा नहीं कह सकते कि, यह सचमुच पक्षी है या उसका चित्र। चित्रकलामें उसकी ऐसी निपुणता देखकर प्रायः देशके समस्त चित्रकार मन ही मन उससे द्वेष रखते है। परंतु छविनाथके मनमें ईर्षा-द्वेषका लेश भी नहीं है। उसका मन दूधके समान स्वच्छ है, वह बालकोंके समान सदैव प्रसन्न रहता है।

छविनाथ एक उच्च श्रेणीका चित्रकार है, उसकी इस निपुणताको सर्वसाधारण लोग नहीं जान सकते। केवल समस्त चित्रकार ही उसके गुणसे परिचित है। परन्तु वे इस बातको प्रकट न करके अपने २ नामके बढ़ानेहीमें प्राणपनसे चेष्टा करते है। छविनाथ चित्र खींचनेहीमें तन्मय रहता है, उसे प्रशंसापानेकी तिलमात्र भी इच्छा नहीं है।

एकवार राजसभामें प्रश्न उठा कि देशभरमें सर्व श्रेष्ठ चित्रकार कौन है। इसका निर्णय करनेके लिये राजाने देशके समस्त चित्रकारोंको निर्दिष्ट समयपर एकत्रित होनेके लिये आज्ञा दी।

चित्रकारोंने परस्पर विचार करके निश्चय कर लिया कि देहातके रहनेवाले छविनाथको यह राजाज्ञा किसी तरह विदित न होने पावे। वे लोग यह भली भाति जानते थे कि यदि चित्रप्रदर्शनमें छविनाथका चित्र आया तो हम लोगोंका आशा–कुसुम मुरझाकर गिर जावेगा–और उसको ही विजय प्राप्त होगी।

धीरे २ निर्दिष्ट समय भी आ पहुचा। सब लोग राजसभामें उपस्थित हुए। केवल छविनाथ ही इस सभामें नहीं आया।

राजाने सबको सम्बोधन करके कहा कि "तुम लोगोंमें सर्वश्रेष्ठ चित्रकार कौन है मैं इसकी परीक्षा करना चाहता हू। इस लिये नववर्षके प्रथम दिन तुम सब लोग एक २ उत्तम चित्र तैयार करके राजसभामें उपस्थित होओ। उन चित्रोंपरसे ही यह निर्णय किया जावेगा"।

राजाज्ञा सुनकर चित्रकार लोग प्रसन्नता पूर्वक अपने २ घर लौटे। उन्होंने मन ही मनमें संकल्प किया कि, छविनाथको इस बातकी गंध भी न मिलना चाहिये।

[२]

एक पाच वर्षका बालक नदीके किनारे खेल रहा है। खेलते २ जब वह आगे पीछे दौडता है, तो उसके काले काले केश वायुके हिल्लोलसे उड़ उडकर अपूर्व सौन्दर्य दरशाते है। उसके सुदीर्घनेत्र दो फुले हुए नीलकमलके समान सुन्दर और भावपूर्ण दिखाई देते है।

छविनाथ देखते २ नदीपर आ पहुंचा। वह एक सुन्दर तसवीर खींचना चाहता था, किन्तु उसे मनके अनुसार आदर्श नहीं मिलता था। बालकको देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ—उसे अपने मनके अनुसार आदर्श मिल गया। वह धीरे धीरे उसके पास जाकर पूछने लगा—

छवि०—तुम्हारा क्या नाम है?

बालक—(हँसके) मनोहर।

छविनाथ मन ही मन बडा प्रसन्न हुआ कि नाम भी ठीक है—मनोहर यथार्थमें मनोहर ही है। अनेक यत्न और प्रलोभनसे उस बालकको उसने एक पत्थरपर बिठाया। बालक हंसते २ कहने लगा, "भाई? यह तसवीर मुझे देओगे?

छवि०—चित्र तैयार होनेपर यही तसवीर मै तुम्हें दूगा, परन्तु इसे तैयार करनेमें दो तीन दिन लगेंगे, तुम रोज ठीक समयपर यहां आ जाया करो।

बालक—(प्रसन्न होकर) बहुत अच्छा।

छविनाथने पाकटसे कलम और रंग निकाल कर चित्र खींचना प्रारंभ किया। तीसरे दिन चित्र तैयार हो गया। बालक उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ, और चित्रकारका हाथ पकड़के बड़े आग्रहसे उसे अपने घर ले गया। मनोहरका पिता इस मनोहर चित्रको देखकर मुग्ध हो गया—मन ही मन कहने लगा अहा! मेरे लड़केका चित्र इतना सुन्दर! चित्रकी ओर देखकर फिर अपने लड़केका मुँह निरीक्षण करके चकित हो रहा। वह आनदमें इतना मग्न हो गया कि, छविनाथकी अभ्यर्थना करना भी भूल गया।

[३]

आज नववर्षका प्रथम दिन है। राजसभा लतापुष्पोंसे सुसज्जित हो रही है। सुन्दर चन्द्रातपमण्डित सभास्थलके मध्यमें राजसिंहासन सुशोभित है। दहिनी ओर एक सुन्दर गलीचेपर न्यायार्थी-चित्र-कार गण अपने २ चित्र लिये हुए बैठे है साम्हनेकी ओर दर्शकों-के बैठनेकी जगह है।

देशके समस्त चित्रकार राजसभामें उपस्थित है। छविनाथको इसकी खबर पहिले ही मिल चुकी थी। परन्तु वह जानकर भी आज इस सभामें नहीं आया।

चित्र-परीक्षा प्रारंभ होनेमें अब अधिक विलम्ब नहीं है। ऐसे समयमें एक आदमी हापते २ राजसभामें उपस्थित हुआ। उसके हाथमें छविनाथका अंकित किया हुआ मनोहरका चित्र है। सब लोग इस आगन्तुक पुरुषकी ओर देखने लगे। राजाके इशारेसे पहरेवालोंने रास्ता छोड दिया, उसने आकर चित्र रखके प्रार्थना की, कि "महाराज। मै भी विचारप्रार्थी हू, यह चित्र परीक्षाके लिये लाया हू।"

चित्र-परीक्षा प्रारंभ हो गई। राजाने एक २ करके सब चित्रोंकी परीक्षा की और अन्तमें मनोहरके चित्रको दहिने हाथसे उठाया। उन्होंने बहुत समय तक उसका निरीक्षण करके उच्च स्वरसे कहा कि "यह चित्र जिसका खींचा है, वही तुम सब चित्रकारोंमें श्रेष्ठ चित्रकार है।"

सब लोग उस चित्रकी ओर देखने लगे। एक ही साथ सभामें उपस्थित समस्त लोगोंकी दृष्टि उस चित्रपर जा पड़ी सब ही आश्चर्य-से देखने लगे कि—नदीके तीरपर एक पत्थरपर बैठी हुई सुन्दर सुकुमार—बालककी अपूर्व मूर्ति है। उसमें कृत्रिमताका लेश भी

नहीं है। उस मूर्तिको देखकर चित्रसे बालकको गोदमें लेनेके लिये दर्शकोंके दोनों हाथ स्वतः ही आगेको बढ़ते हैं।

राजा—(मनोहरके पितासे) इस चित्रके बनानेवालेका क्या नाम है और वह कहां है ?

राजन्! इसके बनानेवालेका नाम मै नहीं जानता और यह भी नहीं जानता कि वह कहां रहता है। परन्तु यह चित्र मेरे बालककी जीवन्त प्रतिमूर्ति है। ऐसा मनोहर चित्र मैने आजतक नहीं देखा, इसी लिये महाराजकी सेवामें इसे विचारके लिये उपस्थित किया था।

अनेक अनुसन्धान होनेपर भी चित्रकारका पता नहीं लगा। राजाने मनोहरके पिताको प्रचुर पुरष्कार देकर उस चित्रको अपने पास रख लिया। उस दिन कुछ भी विचार स्थिर नहीं हो सका। राजाने विचारप्रार्थी चित्रकारोंको बुलाकर कहा "तुम लोगोंमें कौन श्रेष्ठ चित्रकार है, इसका निर्णय कुछ भी नहीं होसका। इस लिये तुम लोग फिरसे चित्र तैयार करके लाओ, मैं तुम्हारा विचार करूंगा।

(४)

आज पुनर्वार चित्र-परीक्षाका दिन है। राजा राजवेश धारण करके रानीकी स्वहस्तग्रथित–पुष्पमालाको कंठमें धारणकर सिंहासनपर विराजमान है। पीछे चिककी ओटमें राजवंशीय–महिलाओंके बैठनेकी जगह है।

इसबार न मालूम क्या सोचकर छविनाथ चित्र-परीक्षा देखने आया है। राजसभामें एक ओर दर्शकोंके बैठनेका स्थान है, वहांपर ही वह बैठा है। परन्तु किसीने उसे पहचाना नहीं।

राजाके सन्मुख चित्र रक्खे गये। सब लोग आजके फैसलेको जाननेके लिये उत्सुक हो रहे है। विचार आरंभ होगया। ऐसे समयमें छविनाथकी दृष्टि राजमहलके कक्षमें लटकी हुई एक तसवीरके ऊपर पडी। वह धीरेसे उठा और तसवीरकी ओर अग्रसर हुआ। किसीने भी उस ओर लक्ष्य नहीं किया। सब लोग चित्रपरीक्षा देखनेमें व्यस्त हो रहे है। राजाने एक एक करके सब चित्र देखे। अतमें एक चित्रको उठाकर अपने हाथमें लिया ही था, कि इतनेमें चोर! चोर! इस शब्दसे सभामडप गूज उठा। राजाने देखा कि, दो पहरेवाले एक आदमीको बॉधे हुए लिये आते है। पहरेवालोंने राजासे निवेदन किया कि "महाराज! यह मनोहरका चित्र चुरानेको गया था।"

राजाने स्थिर दृष्टिसे छविनाथके आपत्तिग्रसित मुखका निरीक्षण किया। वह सिर झुकाये स्थिर भावसे खडा है। उसके चेहरेमें भयका नाम भी नहीं है। दर्शक लोगोंके कोलाहलसे सभामंडप विकम्पित हो उठा। राजाके कटाक्षपातसे कुछ देरमें शान्ति स्थापित हुई।

राजा–(बदीसे) तुमने महलमें क्यों प्रवेश किया ?

बंदी–(निर्भय मनसे) चित्र देखनेके लिये।

राजा कुछ कहा ही चाहते थे कि, इतनेमें मनोहरके पिताने आकर कहा–महाराज! यह वही चित्रकार है, जिसने मेरे लड़के मनोहरका चित्र अंकित किया था।

दर्शकोंमें सन्नाटा छागया–सभास्थल निस्तब्ध हो गया। लोग उत्कंठित होकर फैसला देखनेकी प्रतीक्षा करने लगे।

राजाज्ञासे बंदी बंधन मुक्त कर दिया गया। राजाने सिंहासनसे उठकर रानीकी हाथकी गुंथी हुई पुष्पमालाको अपने कंठसे उतारकर छविनाथके गलेमें पहना दी।

जयका बाजा बज उठा। चिकके अन्तरालसे विजय गीत सुनाई देने लगे। राजाके विचारसे सब लोग सतुष्ट हुए। केवल जिन लोगोंने विचार कराना चाहा था, वे ही गर्दन झुकाये बैठे रहे। *

शिवसहाय चतुर्वेदी,
देवरी (सागर.)

विविध विषय।

भारतीय वायुवैमानिक।

आजकल पाश्चात्य देशोंमें नये २ आविष्कार हो रहे है। कोई तारहीन टेलीग्राफके द्वारा समाचार भेजनेका आविष्कार कर रहा है। कोई दक्षिण और उत्तरीय मेरुकी खोजमें व्यस्त हो रहा है। कोई २ समुद्रके समान तथा उससे भी सुगमता पूर्वक आकाशमें विचरण करनेके लिये नये २ आविष्कारोंके द्वारा वायुयानोंमें सुधारणा कर रहे है। इस आविष्कारके युगमें भारतवर्षकी ओर निगाह करनेसे मनको बड़ा परिताप होता है। जहा देखते हैं वहा गंभीर सन्नाटा, लज्जाकर विश्राम और शोकावह शान्ति दिखाई देती है। परन्तु कुछ समयसे हिन्दुस्थानका भविष्य भी प्रकाशमय दिखाई देने लगा है। क्योंकि भारतवासी भी समयके साथ चलनेकी चेष्टा करने लगे है। अभी हालमें एक भारतवर्षीय वायुवैमानिकका प्रादुर्भाव हुआ है। श्रीयुक्त स. भ. सेट्ठी, बी. ए., एम. आई. ई. ई. महीपुरके सहकारी इञ्जीनियर है, आपने एक नया वायु-

---

* बंगला साहित्य मासिक पत्रसे अनुवादित

-यान निर्माण किया है । उस यानपर आरोहण करके सेट्टी महा-शय स्वयं आकाशमें उड़े थे । यह बात हम लोगोंके लिये कुछ कम आनंदकी नहीं है। इस वायुयानको आस्ट्रेलियाके एक वैमानिकने श्रीयुक्त सेटी महाशयको यान-निर्माणके लिये धन्यवाद देकर खरीद लिया है । इसका वेग एक घंटेमें ४०-४५ मीलका है । यह वायु-यान उच्चश्रेणीके विमानोंमेंसे एक होकर एक भारत वासीका बनाया हुआ है और उसके चलानेके चक्रादि भी इन्हींके कल्पना-प्रसूत है यह बात भारतीय धीशक्तिके लिये कुछ कम गौरवकी बात नहीं है । सुनते हैं कि सेट्टी महाशय अब एक नये प्रकारके वायु-यानकी कल्पना कर रहे है । यदि भारतवासी शिक्षित युवक श्रीयुक्त सेट्टी महाशयका अनुकरण करके विज्ञान-पथके पथिक बनें तो भविष्यमें उनसे बहुत कुछ आशा की जा सकती है ।

अंग्रेजीमें जैनग्रन्थ—जैनहितैषीके पाठकोंको मालूम है कि, लंडनमें 'जैनलिटरेचर सुसाइटी' नामकी एक सस्था स्थापित हो चुकी है । खुशीकी बात है कि, अब इस सुसाइटीने अपनी नियमावली प्रकाशित की है और अपना काम भी शुरू कर दिया है । सुसाइटी अंग्रेजीमें जैनफिलासोफी, साहित्य और इतिहासके अनुवादित वा स्वतंत्र ग्रन्थ प्रकाशित करेगी । उसने श्रीमल्लिषेण सूरिकृत स्याद्वादमंजरी और हरिभद्रसूरिकृत षट्दर्शनसमुच्चय इन दो ग्रन्थोंका अनुवाद कराना शुरू कर दिया है और तत्वार्थाधिगमसूत्र, अष्टसहस्री, आत्मख्यातिसमयसार तथा सम्मतितर्कके अनुवादोंका वह प्रबन्ध कर रही है । सुसाईटीके भारतीय और यूरोपीय दो विभाग है । भारतीयविभागमें २६ और यूरोपीयविभागमें १२ मेम्बर हो चुके

हैं। यूरोपके विद्वानोंने विना कुछ लिये मुफ्तमें जैनग्रन्थोंका अनुवाद करना स्वीकार किया है। इससे पाठक जान सकते है कि, उन्हें जैनसाहित्यसे कितना प्रेम है। अब सुसाइटीको केवल ग्रन्थ प्रकाशित करनेके लिये धनकी आवश्यकता है। आशा है कि, हमारे यहांके धनिक इस धर्मप्रभावनाके कार्यमें अवश्य ही सहायता करेंगे। सुसाइटीके सेक्रेटरीका पता यह है—मि० एच. वारन, नं० ८४ शेलगेट रोड, वैटरसी, लदन (S W.)

जैनप्रचारक बन्द—देवबन्दका उर्दू जैनप्रचारकका बन्द होना सुनकर समझा था कि, रत्नमालाके मार्गका एक गहरा घाव करनेवाला कटक अलग हो जायगा। परन्तु देखते है कि, श्रीमतीको चैन नसीव नहीं। उनके साथ पहले ही जैसी छेड़छाड़ करनेके लिये जैनप्रदीपकी तयारी हो रही है। लाला ज्योतीप्रसादजीने प्रकाशित [illegible]या है कि, यदि कोई विघ्न उपस्थित न हुआ, तो जैनप्रदीप सितम्बर महीनेमें ही प्रकाशित हो जायगा।

साधु और अर्जिकाका ब्याह—अमृतसरमें एक श्वेताम्बर साधु और अर्जिकाने आर्यसमाजकी पद्धतिके अनुसार परस्पर विवाह कर लिया है। विना इच्छाके छुटपनमें मुँडे हुए मूर्ख त्यागी और क्या करेंगे? श्वेताम्बरसमाजके साधुओंमें ऐसे चेले मूड मूंडकर अपना परिवार वढ़ानेकी इच्छा वहुत प्रबल हो रही है। इस इच्छाका कुछ संयम न होजाय, तो अच्छा है।

विज्ञानशिक्षाके लिये दान—श्रीयुक्त तारकनाथ पालित महाशयने कलकत्ता विश्वविद्यालयके लिये साड़ेसात लाख रुपयाकी सम्पत्ति दान की है। इस सम्पत्तिके द्वारा विश्वविद्यालय एक विज्ञान कालेज स्थापित करेगा। पालित महाशयके इस दानसे देशका वड़ा उपकार होगा।

गुप्तदान—एक मनुष्यने गुप्तरूपसे श्रीमान् बड़े लाटके पास पच्चीस हजार रुपये भेजे है। इस लिये कि इन रुपयोंका व्यय क्षयी रोगकी हास्पिटलमें किया जाय।

प्रशंसनीय दान—डेरागाजीखांके लाला टेकचन्दजीने स्त्रियोंके लिये अस्पताल बनानेके लिये ६९०००) और एङ्गलो-संस्कृत स्कूलके लिये ११००) रु. दान दिया है।

हिन्दूविश्वविद्यालय—हिन्दूविश्वविद्यालयके लिये कलकत्तेके शीतलप्रसाद खड्गप्रसादकी कोठीके मालिक श्रीयुक्त बाबू मोतीचंद और बाबू गोकलचन्दने एक लाख रुपया, सेठ ताराचंद घनश्यामदासने २५०००, रु. बाबू बल्देवदास जुगल किशोरने ११००० रु., बाबू नारायणदास बैजनाथने ९०१, और बाबू गोपालदास चौधरीने ९००) रु. बंगाल बैंकमें जमा करा दिये है।

स्त्रियोंके लिये वैद्यकीय कालेज—गतवर्षके महारानी जी दिल्लीदरबारके लिये भारतमें आई थी उस समय वे कोटा रियासतमें गई थी। महारानीसाहबकी भेटके स्मरणार्थ कोटा संस्थानकी ओरसे १ लाख रुपयाकी लागतसे दिल्लीमें स्त्रियोंके लिये एक वैद्यकीय कालेज खोला जानेवाला है। श्रीमान् बडे लाट इस कालेजके लिये फंड स्थापित करनेका उपक्रम कर रहे है। कई भारतीय नरेशोंने इस कामके लिये द्रव्यद्वारा सहायता देनेका आश्वासन दिया है। तबसे आजतक १९ लाख रुपया जमा हुए हैं। वैद्यकीय कालेजकी इमारत और शिक्षणसम्बन्धी आवश्यक सामानके खरीदनेमें यह रुपया खर्च होगा। हिन्दुस्थानी नर्स वा मिडवाइफ (धात्री विद्या जाननेवाली) तैयार करनेके लिये कालेजके साथमें एक वैद्यकीयशाला खोलनेका विचार हो रहा है।

मद्रास गवर्नमेण्टने बालिकाओंको छात्रवृत्तियां प्रदान करनेके अभिप्रायसे प्रतिवर्ष १० हजार रुपये देनेका प्रबन्ध किया है। देखा गया है कि जितनी बालिकाएं प्रथम कक्षामें आती हैं उनका केवल छठवां भाग तीसरी, चौथी कक्षा तक पहुंचता है। छात्रवृत्तिके मिलनेसे संभव है कि अधिक बालिकाएं आगे तक पढ़ेंगी।

अन्धोंके लिये नये ढंगकी पुस्तकें—अंधोंके लिये पुस्तकें पहले उमड़े हुए अक्षरोंमें छपती थीं, फिर बिन्दुओंमें छपने लगीं, बिन्दुओंका छपना विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ। ये बिन्दु-मय पुस्तकें टाइपमें नहीं छपती। इनका मजमून प्लेटोंपर ढाल लिया जाता है। इस छपाईमें एक दोष है। वह यह कि, प्लेटका मजमून कागजके एक ही तरफ छप सकता है। दूसरी तरफ नहीं। परन्तु हालहीमें न्यूयार्कके एक बड़े भारी छापाखानेने जिसमें केवल अन्धों ही के लिये पुस्तकें छपती है, एक नई युक्ति ढूंढ निकाली है जिससे २९ हजार पन्ने दोनों तरफ केवल एक घंटेमें छप सकते हैं।

अमेरिकाके एक ग्वालेने यह अनुभव किया है कि जिन गायोंका दूध निकालते समय गाना सुनाया जाता है उनका दूध एक तिहाई बढ़ता जाता है किन्तु संगीत अच्छा होना चाहिये। कोई धीमा मधुर राग गाना चाहिये।

बबूलके छोटे २ वृक्षोंकी जड़ोंके समीप कितने कांटे होते है पर वृक्षके बढ़ जानेपर वे नहीं रहते। यदि छोटे २ वृक्षोंमें इस प्रकार कांटे न होते तो पशु उन्हें खा डालते और वे कभी बढ़ने न पाते प्रकृति देवी अपनी रचना की रक्षा स्वय करती है।

अमर्याद आमदनी—अमेरिकामें मि० जॉन डी. रॉकफेलर्स नामक एक व्यवसायी हैं। उनकी वार्षिक आमदनी १८ करोड़

रु. है। इसके अनुमानसे आपकी प्रति मिनटकी आमदनी ३७९ रुपया होती है।

रंगीन फोटो—आजकल फोटोग्राफर लोग केमराके द्वारा जो तसवीर निकालते है उसका रंग सफेद और काला ही रहता है। और कोई दूसरा रग उसमें नहीं आता। अभी तक तसवीरोंमें जो रग दिया जाता था वह ऊपरसे दिया जाता था। परन्तु अब रगीन तसवीरें भी निकलने लगीं है। कपडोंका लाल पीला आदि रंग आप हीं आप काले वा सफेद् रंगके समान फोटोमें आजाता है। हालमें अर्नेष्ट और जूलियस रेनवर्ग नामक दो भाइयोंने काचोंके प्रबधसे ऐसा उपाय निकाला है कि किसी भी चीजका स्वाभाविक रग उसकी तसवीरमें भी आ जाता है। इन लोगोंने रायल फोटो सोसाइटीके सभ्योंके समक्ष तसबीरें निकालकर यह नयी प्रक्रिया साबित कर दी है। परन्तु इसका केमरा तैयार करनेमें बहुत खर्चा पडता है इस लिये इस नये ढगसे रंगीन तसबीर उतारनेमें बहुत दाम लगते हैं। पर धीरे २ कोई ऐसी युक्ति निकलेगी कि ये तसबीरें भी सस्ते दरसे निकाली जा सकेंगीं।

महँगाई—आजकल सारे संसारमें सब चीजोंका भाव महंगा होता जाता है। अर्थशास्त्र जाननेवालोंका कहना है कि थोडे ही दिनोंके भीतर पदार्थोंका मूल्य प्रतिशत २० से ३० तक और बढ़ जावेगा। इसका कारण यही बतलाया जाता है कि कई स्थानोंमें सोनेकी नयी २ खानि निकलती जाती है, जिससे सोना अधिक मिलनेसे सस्ता हो रहा है। भारतमें भी खाद्यपदार्थ आदि हालमें बहुत महँगे हो चले है और उनके सस्ते होनेकी कोई आशा भी नहीं है। सरकार भावकी तेजीका कारण दरयाफ्त कर रही है।

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

आठवां भाग] भाद्रपद, श्रीवीर नि० सं० २४३८ [ग्यारहवां अंक.

कञ्चुका।

(१)

राजनीति।

दशमी शताब्दीके प्रारंभमें यहा इतने छोटे २ स्वाधीन राज्य स्थापित हुए थे कि उनकी गिनती करना कठिन होगया था। स्वार्थी बल-हीन और विलासप्रिय राजालोग अपने २ राज्यमें सब चिन्ताओंसे मुक्त होकर समय बिताया करते थे, और मुसलमान लोग मौका पाकर धीरे २ पंजाबकी सीमामें प्रबल होते जाते थे। हम जिस समयका उल्लेख करते है, उस समय चदेलवशीय राहल राजाका पुत्र हर्ष-देव बुन्देलखंडका राजा था। वह बड़ा स्वदेशानुरागी था और सदैव इसी चिन्तामें मग्न रहता था कि भारतवर्ष विदेशी आक्रम-णोंसे किस तरह बच सकता है। सीमान्त प्रदेशोंको सुरक्षित रखनेके लिये समस्त देशके राज्यबलको एकत्र करना आवश्यक और उचित

समझकर उसने एक बार भिन्न २ प्रदेशोंकी राजसभामें दूत भेजे; परन्तु किसीने भी उसकी बातपर ध्यान नहीं दिया।

उस समय भारतवर्ष पुण्यहीन था, मनुष्यकी चेष्टासे उसका उद्धार होना असंभवसा हो गया था। एक दिवस संध्याके समय हर्ष-देव योद्धा और पंडितोंके साथ राजसभामें बैठे थे, इतनेमें भाटोंने आकर उनका यशोगान करना प्रारंभ किया। राजाने उन्हें रोककर कहा कि—"मै सिर्फ इस छोटेसे बुन्देलखण्डका शासनकर्त्ता हूं, समस्त सागरोंसहित पृथ्वीका अधीश्वर कहके मेरा अपमान मत करो।"

भिन्न भिन्न देशोंकी राजसभाओंसे लौटे हुए दूतगण एक एक करके राजालोगोंकी सम्मति प्रगट करने लगे। कन्नौजसे लौटे हुए दूतने कहा—"महाराज कन्नौजपति महेन्द्रपालदेव और उनके सभा-पण्डितोंने कवि राजशेखरप्रणीत 'विद्धशालभंजिका' भेजी है और उसके शिरोभागपर अपने हाथसे आपके प्रस्तावका उत्तर लिख दिया है।" राजाने ग्रन्थको लेकर देखा। उसपर लिखा था—"काव्य-शास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।" राजाने विरक्ति प्रकट करके सिर झुका लिया। दूसरे दूतने आकर राजाकी शरणमें एक पत्र रक्खा। उसे राजाने स्वयं पढ़ा। चेदिकुलके कलचूरिवंशीय मुग्ध-तुङ्ग-प्रसिद्धधवल राजाने लिखा था कि—"मै स्वयं पराक्रमी और बाहुबल सम्पन्न हूं। यवन लोगोंको सहज ही दूर करनेकी शक्ति रखता हूं। अन्य राजाओंसे मिलकर मै अपने आत्मगौरव-को घटाना नहीं चाहता।" हर्षदेवने मन्त्रीसे कहा—इसीको विपत्ति कालकी विपरीत बुद्धि कहते हैं। छोटेसे कौशलराजको हराकर तथा समुद्रतटके दुर्बल राजाओंको जीतकर कलचूरि राजा बहुत अभि-मानी होगया है।

इस समय चोलराज्यमें वीरनारायण वा परान्तकदेव राज्य करते थे। उन्होंने केरल-राजकुमारीसे विवाह करके, विशेषकर केरलपतिकी सहायतासे पाण्ड्यराजको पराजित किया था तथा एक बार लकामें विजय यात्रा करके वहांके राजा पंचम कश्यपको हराया था। हर्षदेवको विश्वास था कि वीरनारायण समस्त दक्षिण प्रदेशका सार्वभौम राजा हो सकता है। इसलिये उसने उसकी विजय-यात्रापर आनन्द प्रकाश करके अपनी सहानुभूति प्रकट की थी। परन्तु वीरनारायणके पत्रमें केवल यही उत्तर लिखा था,—" उत्तर भारत बहुत दूर है।" ...हर्षदेवने विचारा कि मै एक बार समीपवर्त्ती राजाओंसे स्वयं मिलूं और उनकी इच्छा देखूं, पीछे जो हो, कुछ न कुछ विचार स्थिर करूंगा।

२

प्रगल्भा।

लूनीर नदीका जल बहुत निर्मल और शीतल है। अजमेर प्रान्तमें इस समय जहापर तारगढ़ है उसकी दक्षिण दिशासे होकर एक समय लूनीर नदीकी धारा बहती थी। बड़े प्रात काल कुमारी कन्छुकाने नदीके शीतल जलमें स्नान करके देवमंदिरमें प्रवेश किया। इस समयके पाठकोंको कन्छुका नाम अच्छा न लगेगा, परन्तु क्या किया जाय, कवित्वप्रिय पाठकोंके लिये ऐतिहासिक नामका परिवर्तन नहीं हो सकता। नाम कैसा ही हो पर कुमारी थी बहुत सुन्दरी। क्योंकि उसके देवमन्दिरमें प्रवेश करते ही, एक सौम्यमूर्ति सन्यासी युवक उसे देखकर देवपूजाका मंत्र भूलके मन ही मन यह पाठ पढ़ने लगा था,—

कनककमलकान्तैः सद्य एवाम्बुधौतैः
श्रवणतटनिषक्तैः पाटलोपान्तनेत्रैः।
उपसि वदनविम्बैरंससंसक्तकेशैः
श्रिय इव गृहमध्ये संस्थिता योषितोऽद्य॥

इस समय अजमेरमें नये चौहान वंशका राज्य था। राजा गोवकके पुत्र चन्दन उस समय सिंहासनारूढ़ थे। कुमारी कन्दुका राजा चन्दनकी बहिन थी।

सुन्दरीने ईश्वरके चरणोंमें अंजली प्रदान करके सन्यासीके चरणोंपर अपना मस्तक नवाया। सन्यासी चकित हो उठकर कहने लगा-"मैं आपका प्रणाम ग्रहण करनेके अयोग्य हूं विशेषकर इस देवमन्दिरमें ईश्वरके सिवाय दूसरा कोई वंदनीय हो सकता।" कुमारीने मदहास्यसे कहा—"जब स्वयं चौहाननरेश आपके भक्त हैं, तब यदि उनकी छोटी बहिनने आपको प्रणाम किया तो इसमें हानि क्या हुई?" सन्यासी यह परिचय पाकर मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ।

राजकुमारी यद्यपि प्रगल्भा मालूम होती है परन्तु उसके दोनों नेत्र मुग्धाके नेत्रोंके समान हैं। सन्यासीकी ओर देखकर बातचीत करनेके समय उसके दोनों पलक ज्यों ही कुछ ऊपर उठकर और सुकोमल दृष्टिको ढककर अवनत हुए त्यों ही सन्यासीका मस्तक घूम गया। सन्यासीने देखा कि उसके प्राणोंने प्राचीन वक्षोगृह छोड़कर युवतीकी कुछ खुली हुई दृष्टिके मार्गसे सौन्दर्य्यके नवमन्दिरमें प्रवेश किया है। वह चिन्ता करने लगा कि अब यदि यह मनोमोहिनी नेत्रोंके पलक खोल करके फिर देखेगी भी, तो भी, इसमें सन्देह ही है कि गये हुए प्राण फिर लौटेंगे या नहीं।

इसके बाद ही कुमारीकी देवभक्ति बढ़ उठी। वह दोनों समय मंदिरको आने लगी और कभी २ तो वह अपनी दासियोंको भी साथ लाना भूल जाने लगी।

एक दिन सन्यासी मन्दिरकी सीढ़ियोंपर बैठकर बायें हाथसे नेत्रोंको बंदकर मानस-पूजामें मग्न हो रहा था। उसी समय कुमारी धीरे २ उसके पास आई। अब तक सायंकालकी आरतीके लिये मंदिरका द्वार नहीं खुला था। सन्यासीका ध्यान भंग हो गया। उसने नम्रस्वरसे कुमारीसे कुशल प्रश्न किया। कुमारीने कहा- "मै सन्यास धर्मग्रहण करूंगी और आपकी शिष्या होऊंगी।" कुमारी सचमुच बडी प्रगल्भा है। इसके पीछे उन दोनोंकी क्या बातचीत हुई यह कहना कठिन है; परन्तु इतना हम कह सकते है कि देवमंदिरका द्वार मुक्त होनेके पहले ही उन दोनोंके हृदय-द्वार मुक्त हो चुके थे।

इसके दूसरे दिन सन्यासी युवकने राजसभामें प्रस्ताव पेश किया कि मै पुरोहित होकर कुमारी कन्छुकाका विवाह बुन्देलखंडके राजा हर्षदेवके साथ कराना चाहता हूं। राजाने इसे स्वीकार कर लिया। सन्यासी लूनीरके जलमें स्नानादि नित्यकर्म समाप्त करके अजमेरसे यद्यपि प्रस्थानित हो गया; परन्तु यह बात उसके मनमें घूमती ही रही कि लूनीरका जल बहुत निर्मल और शीतल है।

३

युद्धक्षेत्रमें।

यह चिरकालकी रीति है कि सन्धि न होनेसे युद्ध करना पड़ता है। चन्देलपति हर्षदेवने बुन्देलखंडको भारतवर्षका केन्द्र बना-

नेका निश्चय करके छोटे छोटे राजाओंके साथ अनेक युद्ध किये। कई स्थानोंमें विजय प्राप्त करनेके पश्चात् चेदिवंशीय—कलचुरि राजाओंके साथ युद्ध प्रारंभ हुआ। उस समय गर्वोन्मत्त मुग्धतुङ्ग प्रसिद्ध-धवलका स्वर्गवास हो चुका था। उसका पुत्र बालहर्ष वर्तमानमें राजा था। मध्यप्रदेशका वर्तमान सागर जिला चेदिराज्यका प्रधान स्थान था। बुन्देलखंडकी दक्षिण सीमापर सागर जिलेके उत्तरीय भागमें शाहगढ़ नामक नगरमें उभय पक्षका संग्राम हुआ। एक दिन युद्ध-यात्रा होनेके पहले रानी कल्लुकाने स्वप्नमें देखा कि एक प्रकाशमय मेघके टुकड़ेपर राजा विराजमान हैं और रानी जितनी ही बार राजाके चरणोंका स्पर्श करनेके लिये हाथ फैलाती है, उतनी ही बार सिंहासन उससे दूर हट जाता है। जागृत होनेपर रानीने प्रतिज्ञा की कि मैं युद्धक्षेत्रमें भी स्वामीके पास सदैव उपस्थित रहूंगी। राजाने बहुत निषेध किया, परन्तु रानीने एक भी न सुनी और हंसकर कहा—"सन्यासीमहाराज, चौहानवंशकी लड़कियां युद्धको देखकर भयभीत नहीं होतीं। रानी राजासे 'संन्यासी महाराज' कहा करती थी।

शाहगढ़में सेनाका कोलाहल सुनाई देने लगा। फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशीके मध्यान्ह समयसे युद्ध प्रारंभ हुआ। संध्या हो गई तो भी दोनों दलोंमेंसे कोई भी निरस्त नहीं हुआ। सहसा रानीके मनमें एक उत्साहकी तरंग उठी। किसी तरहसे वह डेरेमें न रह सकी। वह व्यग्र होकर युद्धवेश धारण करके घोड़ेपर सवार हो गई और डेरेपर जो पचास पैदल सिपाही मौजूद थे, उनको साथ लेकर 'जय चंदेलपतिकी जय' कह कहके एक ओरसे शत्रुसेनापर टूट पड़ी। रात्रिके समयमें नयी सेनाके आजानेसे थकी हुई सेनाने

उत्साहहीन होकर युद्धस्थलसे भागना शुरू कर दिया। 'मार' 'मार' शब्द कहती हुई बुन्देलखडकी सेना उसका पीछा करने लगी।

वि-ज्य प्राप्त करनेके पश्चात् राजा और रानी दोनों एक साथ अपने शिविरको लौटे। रानीकी आज्ञासे तत्काल ही खुली हुई चाद-नीमें शय्या बिछाई गई। युद्धवेशका परित्याग किये विना ही महा-राज उसपर लेट गये। रानी उनके पास ही बैठ गई। वैद्य बुलाया गया, परन्तु महाराजने स्थिर भावसे कह दिया, "चिकित्साका कुछ फल नहीं होगा, अब उपाय करना व्यर्थ है।" तो भी रानीके अनु-रोधसे वैद्यने महाराजके वक्ष स्थलके घावपर औषधका लेप किया और रानीने अपने हाथसे औषध पिलाकर पतिका मुखचुम्बन किया।

हर्षदेवने रानीका हाथ अपने हाथमें लेकर कहा—"मेरा एक अनु-रोध मानना पड़ेगा। तुम प्रतिज्ञा करो कि, मेरी चितापर अपना प्राण विसर्जन नहीं करोगी।" महारानीका कठ शोकके आवेगसे रुद्ध हो गया। उन्होंने बडी कठिनाईसे कहा—"देव, रमणीजन्मका जो यथार्थ सुख है, उससे आप मुझे किस अपराधके कारण वचित करते हैं?" महाराजने रानीको अपनी भुजाओंसे वेष्टित करके कहा—"देवी, दैवदत्त जीवनको आत्महत्या करके नाश करनेका किसीको अधिकार नहीं है। सुखकी आशा छोड़कर दु ख वहन करो, यही जीवनका यथार्थ गौरव है। जिस मन्त्रसे हम और तुम दोनों लूनीरके तीरपर दीक्षित हुए थे, उसी मंत्रसे बालक यशोवर्माको दीक्षित करो। पुत्रकी जननी बनकर हमारी इच्छा पूर्ण करनेके लिये अपने जीवनकी रक्षा करो।" रानीकी आज्ञासे पुत्र यशोवर्माके लानेके लिये उसी समय सवार दौड़ाये गये।

परिशिष्ट ।

एपिग्राफिया इण्डिकामें सग्रह किये हुए शिलालेखोंसे पाठक जान सकेंगे कि, महाराज हर्षदेवकी इच्छा और उनकी रानीकी साधना वहुत अशोंमें पूर्ण और सफल हुई । यशोवर्माने अपनी मातासे युद्ध दीक्षा लेकर गौड़, खस, कौशल, काश्मीर, मिथिला, मालव, चेदि, कुरु और गुर्जर देशका विजय किया ।

तिव्वत नरेशके यहासे कन्नौजपतिने एक सुन्दर देवमूर्ति प्राप्त की थी । ईस्वी सन् ९४८ में यशोवर्मा उक्त देवमूर्तिको कन्नौजसे ले आये और एक विशाल मन्दिर वनवा कर उसमें उसको प्रतिष्ठित की । यह मन्दिर उन्होंने अपने मातापिताकी वैकुठ-कामनासे बनवाया था । *

जनरल बूथ ।

इस विचित्र व्यापारमय विश्वमें जिस समय कोई अमगल प्रवल हो उठता है, उसी समय—उसके साथ ही साथ उस अमगल निवारणके लिये भी किसी न किसी साधनका उत्पन्न होना देखा जाता है । मानव-जातिका इतिहास इस वातका साक्षी है। सत्रहवीं शताब्दीमें इग्लैंड जव राजशक्तिके दुर्व्यवहारसे पीड़ित था, उस समय वीर-शिरोमणि क्रामवेलके उद्योग और पराक्रमने वहापर प्रजाशक्तिके अधिकार और आधिपत्यको प्रतिष्ठित किया था । फिर अठारहवीं शताब्दीके अतमें जव कि फ्रास विलासप्रिय वूर्वोवंशके अत्याचार और धनिक जमीदारोंकी स्वार्थपरताके कारण अध पत-

* बगला साहित्यमें प्रकाशित एक गल्पका अनुवाद ।

नकी अंतिम सीमापर जा पहुंचा था, उस समय फरासीसी विप्लवके ताण्डवनृत्यने उन लोगोंकी मृतप्राय देहमें चेतनाका संचार किया था। प्राचीन कालमें हमारे भारतवर्षमें भी जिस समय वैदिक धर्म 'क्रियाकाण्डकी बहुलताके कारण जीव-बलि-युक्त यज्ञकर्ममें परिणित हुआ, उस समय नई उठी हुई बौद्धधर्मकी प्रबल लहर उसे बहा ले गई। वर्तमान समयमें भी जब हमारे देशमें एक ओर अगणित प्राणहीन संस्कार और अर्थहीन आचार-पद्धतियां, समाजके प्राणको अत्यन्त सीमाबद्ध और संकीर्ण कर रही थीं, तब पश्चिमसे आई हुई सभ्यताका एक ऐसा धक्का लगा कि उसने सोते हुए जातीयजीवनको चंचल करके समाजमें नवजीवनका सूत्रपात कर दिया। इस तरह प्रत्येक जातिका इतिहास देखनेसे विदित होता है कि जब, पृथ्वीके किसी देश या अंशविशेषमें कोई अमंगल सिर उठाता है, तो उसी समय उसके दमनके लिये कोई न कोई साधन उत्पन्न हो जाता है।

एक समय जब कि इंग्लैंडके दरिद्र और निम्नश्रेणीके लोग धर्म, प्रेम, करुणा आदि मनुष्यत्वके समस्त गुणोंसे अज्ञ रहकर पापरूपी कीचड़में फँस रहे थे; उस समय जिस उदार और निर्मल चरित्र महात्माने उन लोगोंके अंधकारमय प्राणोंमें धर्मरूपी ज्योतिका संचार करके हीन अवस्थासे उनका उद्धार करनेके लिये अपने जीवनका उत्सर्ग कर दिया और जिसके आत्मोत्सर्गके फलसे पापकी अंतिम सीमापर पहुंचे हुए लाखों नरनारी नवीन जीवन धारण करनेको समर्थ हुए, उसका संक्षिप्त वृत्तान्त हम अपने पाठकोंको सुनाना चाहते है।

पाठकोंने सुना होगा कि ईसाइयोंकी एक 'मुक्तिफौज' (साल्वेशन आर्मी) नामकी संस्था है जिसकी इस देशमें भी बीसों शाखाएं है।

इस जगत्प्रसिद्ध मुक्तिफौजके प्रतिष्ठाता और नेता कर्मवीर जनरल बूथका जन्म सन् १८२९ ई०की १० वीं अप्रेलको इंग्लैंडके नेटीहम नगरमें एक दरिद्र परिवारमें हुआ था। पारिवारिक दरिद्रताके कारण उनका बाल्यकाल दुरवस्थामें ही व्यतीत हुआ। कालेजोंमें उच्च-कोटिकी शिक्षा पानेका सौभाग्य उन्हें प्राप्त नहीं हुआ। कुछ धर्म-याजकोंकी कृपासे सामान्य शिक्षा ही उन्हें नसीब हुई। ये बाल्य-कालसे ही धर्मानुरागी थे। शैशव अवस्थामें ये चर्च आफ लदन आदि धार्मिक सस्थाओंमें योगदान करके लोगोंको व्याख्यान आदि-के द्वारा धर्मोपदेश दिया करते थे। परन्तु धार्मिक सम्प्रदायोंकी सकुचित छायामें रहकर अपनी उन्नति करना कठिन समझ कर अतमें इन्होंने Hallelujat Band (हेललागबेंड) नामक धर्म-प्रसारक-दलका सगठन किया। यह दल गावगावमें जाकर वहाके जहलसे छूटे हुए अपराधियोंके घरोंपर और थियेटरोंमें जाकर तथा शराब-खानोंके दरवाजोंपर घूम २ कर धर्मोपदेश तथा 'पातकी शरण' और 'दीनबन्धु' नामक उपदेशपूर्ण और हृदयग्राही गीतोंको गागाकर सुनाने लगा। कुछ समयके बाद देखते ही देखते—जिन लोगोंका अधिक समय प्राय चोरी, मद्यपान, जुआ आदिमें व्यतीत होता था, जो भूलकर भी ईश्वरका नाम नहीं लेते थे, वे मि. बूथके उपदेशसे इस सम्प्रदायके अनुयायी होकर धर्मज्ञ बन गये। इस तरह मि बूथने धर्मप्रचारका यह एक अभिनव पन्थ खोल दिया। परन्तु वे यह बात बहुत जल्द समझ गये कि, इस ससारमें ऐसे अभागे, आश्रयहीन और रोगशोकसे जर्जरित लाखों ही पापी हैं, जिनके रोनेका शब्द आकाशमें रातदिन गूजता रहता है। उस विशाल-हृदय कर्मवीरको दु खकातर, भूखों और पापमार्गपर चलनेवाले नरनारियोंकी आर्तध्वनिने स्थिर नहीं बैठने दिया।

मि. बूथने यह भलीभांति समझ लिया कि दरिद्रता ही सब देशोंके अधिवासियोंकी शोचनीय दुरवस्थाका एक मात्र कारण है। मनुष्य भूखकी ज्वालासे दग्ध होकर चोरी, नरहत्या, ठगाई और मिथ्या भाषण करता है। भूखसे ही स्त्रिया अपनी कुलीनतापर पानी फेर देती है। राक्षसी भूखकी ताड़नासे ही माताए पिशाचिनीके समान आचरण करके अपने भूखे बालकके मुखका ग्रास छीन लेती हैं। और अपने पेटकी कन्याओंको पाप-पथ पर चलाती है, परन्तु इस नैतिक दुरवस्थाके मूल कारण दारिद्यको दूर करना थोडे दिनोंका और सहज काम नहीं है। यह सोचकर मि. बूथने उत्साही लोगोंका एक दल संगठन करके पूर्व-लंदनके कई स्थानोंमें सभा-संकीर्तन, धर्मोपदेश व्याख्यानादि देकर तथा पुष्टिकर पदार्थोंका वितरण करके धर्मप्रचारका कार्य बडे उत्साहके साथ प्रारंभ किया। मि. बूथके आडम्बररहित, सरल और सुन्दर उपदेशोंको सुनकर कुछ वर्षोंके भीतर ही अनेक दरिद्र, समाजच्युत, तथा पापी नर-नारियोंने इस दलमें सम्मिलित होकर अपने निम्न जीवनको क्रम क्रमसे उन्नत करके इस दलको बढ़ाकर महामंडलका रूप प्रदान कर दिया।

सन् १८७९ ई० में इस विराट् मंडलीको मि. बूथने एक नवीन रूपमें परिणित कर दिया। उन्होंने ब्रिटिश सेना—विभागके आदर्श-पर इस मंडलीके नियम गठन करके उसके कार्यको नाना विभागोंमें विभक्त कर एक एक विभागके ऊपर एक एक कार्यका भार सोंपा। मडलीके सभ्योंको सैनिकवेशमें सुसज्जित कर उन्हें सेना—विभागके समान ‘ कप्तान ’ ‘ मेजर ’ ‘ कर्नल ’ इत्यादि उपाधिया दीं। सभ्योंके रहनेके लिये लंदनके कई स्थानोंमें

बारकें बनवाई और इस सैन्यदलका नाम The Salvation Army अर्थात् ' मुक्तिफौज ' रक्खा। इस फौजका काम पापोंके विरुद्ध चढाई करना ठहरा। मि० बूथने इस सेनाके नायक बनकर ' जनरल ' उपाधि धारण की। जनरल बूथके परिचालनसे इस मुक्तिफौजने पापियोंको पापसे मुक्त करनेके लिये खुले तौरसे सभा सोसाईटियोंमें सरल भाषामें व्याख्यानों तथा धर्मोपदेशोंका देना, शराबकी दूकानों तथा जहलखानोंपर जाकर लोगोंको समझाना, छोटे २ ग्रामोंमें परिभ्रमण करके लोगोंको पापसे बचने और सुचालपर चलनेका उपदेश देना, रोगियोंकी औषध और परिचर्या करना, नाइट स्कूलोंको स्थापित करके उसमें उन लोगोंकी शिक्षाका प्रबन्ध करना आदि लोकोपकारी कामोंकी प्रतिष्ठा की। परन्तु सब देशोंमें सर्वदा जैसी घटनाएँ हुआ करती हैं, वैसा ही हाल यहाका हुआ। जनरल बूथकी इस धर्मप्रचारक मडलीके विरुद्ध देशमें एक तुमुल आन्दोलन उठ खडा हुआ। कितने एक समाचारपत्रोंने इस आन्दोलनकी पुष्टि करके मुक्तिफौजके विरुद्ध अनेक मिथ्या अपवाद फैलाने शुरू किये। गवर्नमेण्ट तक इस फौजके नामसे भयभीत होकर मुक्तिफौजकी सभाओं और उसकी व्यापक कार्रवाईयोंको आईन–विरुद्ध कहके उसका निषेध करने लगी। मुक्तिफौजके कर्मचारियोंको सर्वसाधारणकी शान्तिभंग करनेके अपराधमें अभियुक्त करके उन्हें दडित करने लगी; परन्तु जनरल बूथ इस आपत्तिसे डरनेवाले नहीं थे। क्यों कि वे जानते थे कि शक्तिके मदसे मतवाले लोगोंने अपने गुरु यीशू खीष्ट तकको जब अपमान करके अतमें उनका प्राण तक ले लिया था, तब मै और मेरी मुक्तिफौज तो क्या चीज है? जनरल बूथ हतोत्साहित नहीं हुए।

इस उपद्रवको कुछ भी न गिनकर वे और भी उत्साह और तेजीके साथ अपने काममें लग गये ।

जनरल बूथको स्वदेशवासियोंकी अवज्ञा अधिक दिन सहन न करनी पड़ी । थोडे ही समयके भीतर देशवासीगण विस्मित नेत्रोंसे देखने लगे कि, दरिद्र, निरक्षर, शराबी, प्रवञ्चक और दुर्दशाकी चरमसीमापर पहुंचे हुए हजारों लोगोंने मुक्तिफौजके योगसे अपनी अवस्थामें आश्चर्यजनक परिवर्तन किया है ।

इस तरह धीरे २ जनरल बूथके इस कामकी प्रशंसा सारे सभ्य जगतमें फैल गई और इसका परिणाम यह हुआ कि यूरोपके अन्यान्य देशोंमें भी इस मुक्तिफौजकी शाखाएं स्थापित हो गईं । इसके कुछ दिन बाद इसकी शाखा भारतवर्ष और लंकामें भी प्रतिष्ठित हो गई । वर्तमान समयमें पृथ्वीके ५६ देशोंमें इस मुक्तिफौजके कार्य्यक्षेत्र है और उनमें इक्कीस हजारसे अधिक कर्मचारी काम करते हैं । अनाथालय, औषधालय, उद्योगालय आदि स्थापित करके आज पृथ्वीके प्राय: समस्त देशोंमें यह संस्था मनुष्यसेवाका पुण्यकार्य कर रही है ।

सन् १८९० ई० में जनरल बूथकी पत्नीका स्वर्गवास होगया । बूथकी पत्नी मुक्तिफौजके स्त्रीविभागकी प्राय. १० वर्ष तक परिचालिका रहकर अपने स्वामीके काममें पूर्ण सहायता देती रही थी । इंग्लेंडमें पतित नारियोंके उद्धारके लिये इस दयावती स्त्रीने जो २ काम किये है, वे इंग्लेंडके सामाजिक इतिहासमें उसके नामको सदैव गौरवान्वित करते रहेंगे । पत्नीवियोगके पीछे जनरल बूथने एक पुस्तक प्रकाशित की थी । उस पुस्तकमें निम्नश्रेणीके लोगोंकी अवनति और दुःख दारिद्र्यका चित्र पूर्णरूपसे अङ्कित

किया गया है और उसके निवारणके लिये भी अनेक मार्ग तथा युक्तिया दिखाई गई हैं।

मुक्तिफौज सगठनके समय उसके प्रति लोगोंका जो विरोधभाव जागृत हुआ था, वह इतने दिनोंके पश्चात् पूर्णरूपसे विलुप्त होगया। जनरल बूथ सन् १९०३ में सम्पूर्ण पृथ्वीका परिभ्रमण करके जब स्वदेश लौटे, तब उस समय एडवर्ड महलमें उनके सन्मानार्थ एक भारी सभा हुई। उस सभाके १० हजार दर्शकोंने जनरल बूथकी हृदयसे भक्तिपूर्ण अभ्यर्थना की।

जनरल बूथ अश्रान्तपरिश्रमी, सदा प्रसन्नचित्त और मधुर प्रकृतिके पुरुष थे। किसी तरहका गर्व या अहकार उनके चरित्रको स्पर्श तक न कर सका था। उनके समान सन्मान भी बहुत ही कम धर्मनेताओंको मिल सका है।

धर्मप्रचारके कार्यमें जनरल बूथने मार्किन युक्तराज्यमें पाँच बार, आस्ट्रेलियामें तीन बार, भारतवर्षमें दो बार तथा यूरोपके समस्त प्रदेशोंमें अनेक बार भ्रमण किया था। वर्तमान कालके जड़वाद और नास्तिकताके समयमें जनरल बूथने अपनी मुक्तिफौजको लेकर जो अद्भुत कार्य किया है उसकी तुलना केवल मध्ययुगके मठप्रतिष्ठापक बौद्धोंके साथ ही हो सकती है। आज समस्त यूरोप सिर नवाकर यह बात स्वीकार करता है कि जनरल बूथ वर्तमान युगके सर्वश्रेष्ठ धर्मनेता थे। परन्तु बूथ केवल धर्मनेता ही न थे। उन्होंने असख्य आशाहीन और लक्ष्यहीन नरनारियोंके अंधकारमय हृदयको आनंद उल्लासके प्रकाशसे उज्ज्वल किया है, पतित लोगोंके चिर दुःखी जीवनको अपने प्रेमद्वारा नव-जीवन प्रदान किया है और भूखोंको अपने हाथसे भोजन खिलाकर उन्हें संतुष्ट किया है।

इस विश्वहितैषी महात्माका गत २७ अगस्तको ९३ वर्षकी अवस्थामें स्वर्गवास हो गया। उक्त महात्माका नश्वर शरीर भले ही नष्ट हो जाय, परन्तु उसने संसारके मंगलके लिये जो जो उज्ज्वल कृत्य किये है वे सहस्रों वर्ष वीतनेपर भी मलीन नहीं हो सकते।*

शिवसहाय चतुर्वेदी।

नोट—जनरल बूथका जीवनचरित प्रत्येक देशहितैषी और धर्म-प्रेमी पुरुषके पढ़ने और मनन करने योग्य है। इस समय हमारे देशमें एक नहीं सैकड़ों बूथ जैसे कर्मवीरोकी आवश्यकता है। इसमें सन्देह नहीं कि, प्राय' समस्त पापोंकी जड़ दरिद्रता है। ससारमें जितने पाप होते है, उनका बहुत बड़ा भाग पेटके कारण ही होता है। यदि जनरल बूथके समान हमारे यहाके धर्मप्रचारकगण उप-देशके साथ २ दरिद्र लोगोंके पेट भरनेका भी कुछ यत्न करें—उन्हें पेट भरनेके उद्योगोंमें लगानेकी व्यवस्था करें, तो लाखों अभागे अपने खोये हुए मनुष्यत्वको प्राप्त कर सकते हैं। इस समय देशके निम्न-श्रेणीके लोगोंकी अवस्था बहुत ही शोचनीय है। दयालु धर्मात्मा-ओंका कर्तव्य है कि, उन्हें अपनी उदारताका सहारा देकर ऊंचे उठावें और साथ ही शान्तिप्रद धर्मका अमृत पिलाकर उन्हें स्वस्थ करें। केवल धर्म धर्म पुकारनेसे धर्म नहीं होता है—धर्मके लिये कुछ करके दिखलाना चाहिये। सम्पादक।

* प्रवासीसे एक लेखके आधारसे।

जैनसमाजका ध्येय।

(श्रीयुक्त ए. बी. लढ़े, एम् ए के मराठी लेखका अनुवाद ।)

वास्तवमें देखा जाय तो 'समाजके ध्येय' और 'जैनसमाजके ध्येय'में कुछ भी भेद नहीं है। क्योंकि 'जैन' विशेषण मनुष्यत्व-का ही निदर्शक है—मनुष्यत्वसे भिन्न किसी दूसरी बातका उससे बोध नहीं होता। अतएव जो मनुष्यमात्रका ध्येय है वही जैन-समाजका ध्येय है। वह ध्येय कौनसा है? इस प्रश्नका उत्तर एक ही है—वह एकसे अधिक प्रकारका हो भी नहीं सकता। यदि उसमें भी विभिन्नता होगी, तो कहना होगा कि हमने जैनधर्मकी नीवको ही नष्ट कर दी। वह ध्येय और कोई नहीं एक मोक्ष है।

मोक्ष क्या? यह सब ही जानते है कि सम्पूर्ण कर्मोंसे छुटकारा पानेको मोक्ष कहते हैं। इस सम्पूर्णमें सुख देनेवाले कर्म पुण्य और दुख देनेवाले कर्म पाप, ये दोनों ही आ जाते है। अच्छा तो अब यह बतलाईये कि पुण्य भी नहीं और पाप भी नहीं, तब मनुष्य इन सबको छोड़कर और क्या करे? समाज व्यवस्थाकी भी फिर क्या जरूरत है? फिर तो जगलोंमें जाकर रहना ही मनुष्यकी मुक्तिका अद्वितीय साधन कहलाया? सासारिक अथवा ऐहिक सुधार सम्बन्धी प्रपंचोंमें भी उलझनेकी हमें क्या आवश्यकता है?

इन सब प्रश्नोंका सक्षेप उतर यह है कि यद्यपि मनुष्यका सर्वोच्च साध्य ससारसे छुटकारा पाना है, तथापि छुटकारेका अर्थ भाग जाना नहीं है और न भाग जानेवालेको यह ससार छोडता ही है। चाहे जगलमें जाओ, चाहे किसी गिरिकन्दरमें जाकर प्रवेश करो, पर मोक्ष नहीं मिलनेका। उसकी प्राप्तिके लिये मनुष्यको

चाहिये कि वासनाओंको जीते—इच्छाओंका निरोध करे। पर ये वासनाए ऐसा कहनेसे नहीं छूटती है कि हम इन्हें छोडतें है बल्कि उनको छोड़नेकी इच्छा भी एक प्रकारकी वासना ही है। यह वासना भी जिसके प्रबल होती है, उसका छुटकारा होना असभव है। इसीलिये अकंलक स्वामीने एक जगह कहा है कि मनुष्यको मोक्षकी भी इच्छा नहीं करनी चाहिये। देवगतिकी अपेक्षा मनुष्यगति—जिसमें कि मनोविकारोंकी इतनी प्रबलता है—श्रेष्ठ है, ऐसा जो कुदन्कुन्दस्वामीने कहा है उसका कारण भी यही है। यद्यपि यह वस्तुत ठीक है कि सर्व मनोवृत्तियोंका दमन करना चाहिये तथापि इसका यह अर्थ नहीं है कि मनुष्यको मुक्त होकर पत्थर बन जाना चाहिए। मोक्षावस्थामें भी आत्मा अनन्त सुखमय रहता है, इस सिद्धान्तका भी यही अभिप्राय है कि मनुष्यका वास्तविक ध्येय शून्यावस्था नहीं है। आत्मानुशासनमें जो आचार्य महाराजने प्रतिज्ञा की है कि—"प्रत्येक मनुष्य सुखकी आशा करता है और सुख धर्मसे प्राप्त होता है, इसलिये मै उसीका स्वरूप कहता हू—" उसका भी उद्देश यही है।

तो फिर मोक्ष और मनोविकारोंका सम्बन्ध कैसे मिलाया जाय? निवत्ति और प्रवृत्तिकी एकता कैसे की जाय? इस प्रश्नका पारमार्थिक उत्तर देनेका यह स्थान नहीं ह, परन्तु परमार्थकी अविरुद्धतासे यदि देखा जाय तो सुख और दुःखका अनुभव करते हुए भी समताभाव रखना मनुष्यका श्रेष्ठतम साध्य है। इसी समतातत्त्वकी प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। सोचिये कि यह ध्येय कितना उच्च और गभीर है? मोक्षका यही एक साधन है और मेरी समझमें यह कहनेमें भी कुछ अत्युक्ति नहीं होगी कि यह समतातत्त्व

ससार अथवा प्रवृत्ति और मोक्ष अथवा निवृत्ति इन दोनोंका सयोग करनेका स्थान है। यह इतना बहुमूल्य है कि ऐहिक व्यवस्थामें भी यह चरितार्थ होता है और परमार्थकी प्राप्ति भी इसीसे होती है।

समाजव्यवस्थाकी दृष्टिसे यदि विचार किया जाय तो यह ध्येय —इस समताभावनाकी प्रतिष्ठा करना—मनुष्यमात्रके सुखका बड़ा भारी कारण हो सकता है। सुखमें उन्मत्त नहीं होना और दुःखसे निराश नहीं होना; अत्यन्त प्रभावशाली महात्माओंके जीवनमें भी इससे श्रेष्ठ तत्त्व और क्या मिल सकता है? इस भावनाका वर्णन करते हुए अमितगतिसूरि कहते हैः—

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदः
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ।
सदा ममात्मा विदधातु देव॥

बतलाइये, इस उदारवृत्तिके आगे समाजका कौनसा दोष टिक सकता है? सुधारकोंकी ऐसा कौनसी मनोवृत्ति है जिसका इसमें समावेश नहीं होता? इस भावनाके जागृत होनेपर क्या समाजके किसी अगविशेषपर कोई अन्यायाचरण कर सकता है? निग्रो, रेडइंडियन, चमार, ढेड़, भगी, पतित, अपराधी, बल्कि इनसे भी अधिक कोई दुखी हो तो उसके भी दुख इस समता भावनासे समूल नष्ट हो जावेंगे।

आफ्रिकाकी गुलामगीरीकी बेडी तोडनेवाले वुइल्बर फोर्सकी न्यायबुद्धि, वाशिंगटनका स्वातंत्र्यप्रेम, लेडी नायटिंगेलकी जीवदया, निकलकभट्टकी स्वधर्मभक्ति और विद्यानन्दिकी सत्यनिष्ठा

ये सब इसी भावनाके फल है। इस भावनाकी प्रेरणा, पोषण और उदय यही जैनसमाजका ध्येय है।

'जैनवाग्विलास.'

—०—

श्रीवादिराजसूरि।

जैनियोंमे ऐसे बहुत कम लोग होंगे जिन्होंने सुप्रसिद्ध एकीभावस्तोत्रके कर्ता वादिराजसूरिका नाम न सुना हो। परन्तु ऐसे लोग शायद दो चार ही कठिनाईसे मिलेंगे जिन्हें यह मालूम हो कि वादिराज कौन थे, कब हुए हैं और उनकी कौन कौन सी रचनाओंसे जैनसमाज उपकृत हुआ है। हम अपने पाठकोंको इस लेखके द्वारा आज इसी महानुभावका थोडासा परिचय देना चाहते है।

वादिराजसूरि नन्दिसंघके अचार्य थे। उनकी शाखा या अन्वयका नाम अरुङ्गल था। परन्तु यह नन्दिसंघ वह नन्दिसंघ नहीं है जिसकी गणना चार संघोंमें की जाती है, किन्तु द्रमिल या द्राविड सघका एक गच्छ या भेद है। पाठकोंको मालूम होगा कि इस द्रमिलसघके स्थापक पूज्यपादस्वामीके शिष्य वज्रनन्दी हैं। इसकी गणना पाच जैनाभासोंमें की जाती है। द्रविड देशमें होनेके कारण इसका नाम द्राविड संघ पड़ा है। अस्तु। वे संभवत· दाक्षिणात्य थे। षट्तर्कषण्मुख, स्याद्वादविद्यापति, जगदेकमल्लवादी आदि उन-

---

१—श्रीमद्द्रमिलसघेऽस्मिन्नन्दिसघेऽस्त्यरुङ्गल।
अन्वयो भाति योऽशेषशास्त्रवाराशिपारग॥
(Vide Ins No 39, Nagar Talup, Mr Rice)

२—षट्तर्कषण्मुखरु स्याद्वादविद्यापतिगळु जगदेकमल्लवादीगळु एनिसिद श्रीवादिराजदेवरुम्। (Vide No 36. Idid)

की उपाधियां थीं। वे सिंहपुरनिवासी त्रैविद्यविद्येश्वर श्रीपालदेवके प्रशिष्य, मतिसागरमुनिके शिष्य और सुप्रसिद्ध रूपसिद्धि ग्रन्थके कर्त्ता दयापालमुनिके सब्रह्मचारी या सतीर्थ थे। शक संवत् ९४८ के लगभग उनके अस्तित्वका पता लगता है जब कि उन्होंने पार्श्वनाथचरितकी रचना की थी। पार्श्वनाथचरितकी निम्नलिखित प्रशस्तिसे इन सब बातोंका पता लगता है—

श्रीजैनसारस्वतपुण्यतीर्थनित्यावगाहामलबुद्धिसत्वै ॥
प्रसिद्धभागी मुनिपुङ्गवेन्द्रैः श्रीनन्दिसंघोऽस्ति निबर्हितांहः ॥१॥
तस्मिन्नभूदद्भुतसयमश्रीस्त्रैविद्याधरगीतिकीर्तिः।
सूरि. स्वयं सिंहपुरैकमुख्यः श्रीपालदेवो नयवर्त्मशाली ॥ २ ॥

तस्याभवद्भव्यमहोत्पलाना तमोपहो नित्यमहोदयश्रीः।
निषेधदुर्मार्गनयप्रभाव. शिष्योत्तमः श्रीमतिसागराख्यः॥ ३ ॥
तत्पादपद्मभ्रमरणे भूम्ना नि.श्रेयसश्रीरतिलोलुपेन।
श्रीवादिराजेन कथा निबद्धा जैनी स्वबुद्धेयमनिर्दयापि ॥ ४ ॥

शाकाब्दे नगवार्धिरन्ध्रगणने संवत्सरे क्रोधने
मासे कार्तिकनाम्नि बुद्धिमहिते शुद्धे तृतीयादिने।
सिंहे पाति जयादिके वसुमती जैनी कथेयं मया
निष्पत्तिं गमिता सती भवतु वः कल्याण निष्पत्तये ॥ ५ ॥

१—हितैषिणो यस्य नृणामुदात्तवाचा निबद्धा हितरूपसिद्धि।
वन्द्यो दयापालमुनि स वाचा सिद्ध सता मूर्धनि य प्रभावै ॥
यह रूपसिद्धिव्याकरण मैसूरकी ओरियटल लायब्रेरीमें मौजूद है।

२—यस्य श्रीमतिसागरो गुरुरसौ चञ्चद्यशश्चन्द्रसू.
श्रीमान्यस्य स वादिराजगणभृत्सब्रह्मचारी विभो ।
एकोऽतीव कृती स एव हि दयापालव्रती यन्मन-
स्यास्तामन्यपरिग्रहग्रहकथा स्वे विग्रहे विग्रह ॥ ४ ॥

(मल्लिषेणप्रशस्ति)

लक्ष्मीवासे वसति कटके कट्टगातीरभूमौ
कामावाप्तिप्रमदसुलभे सिंहचक्रेश्वरस्य ।
निष्पन्नोऽयं नवरससुधास्यन्दसिन्धुप्रबन्धो
जीयादुच्चैर्जिनपतिभवप्रक्रमैकान्तपुण्यः॥ ६ ॥

पिछले दो पद्योंसे यह भी मालूम होता है कि पार्श्वनाथचरित-की रचना जयसिंह महाराजके राज्य कालमें उनकी राजधानीमें हुई थी। यह सुन्दर राजधानी कट्टगा नामक नदीके किनारे थी।

इतिहासका पर्यवेक्षण करनेसे जाना जाता है कि ये जयसिंह महाराज चौलक्यवशमें हुए है। पृथिवीवल्लभ, महाराजाधिराज, परमेश्वर, चालुक्यचक्रेश्वर, परमभट्टारक और जगदेकमल्ल आदि इन-की उपाधिया थीं। इनके वशमें जयसिंह नामके एक और राजा हो गये हैं, इसलिये इन्हें द्वितीय जयसिंह कहते है। इनके राज्य समयके ३०से अधिक शिलालेख और ताम्रपत्र मिलते हैं, परन्तु उनसे इस बातका पता नहीं लगता कि इनका राज्याभिषेक कब हुआ था। उक्त लेखोंमे सबसे पहला लेख शक सवंत् ९३८ का और सबसे पिछला शक सवत् ९६४ का है, जिस से इतना तो निर्विवाद सिद्ध होता है कि उन्होंने कमसे कम शक संवत् ९३८से ९६४ तक राज्य किया है। इसके बाद उनका पुत्र सोमेश्वर (आहवमल्ल) उनके राज्यका स्वामी हुआ था।

यह राजा बडा वीर और प्रतापी था। उसके एक लेखमें जो कि शक सवत् ९४१ पौष कृष्ण २ का लिखा हुआ है—लिखा

---

१ यह कट्टगानदी कहा है और जयसिंहकी राजधानी कहा थी यह मालूम नहीं। जयसिंहके पुत्र सोमेश्वर प्रथमने तो अपनी राजधानी कल्याणनगर (निजामराज्यके अन्तर्गत कल्याणीमें) स्थापित की थी।

है कि राजाओंके राजा जयसिंहने—जो भोजरूप कमलके लिये चन्द्र और राजेन्द्रचोल (परकेसरीवर्मा) रूप हाथीके लिये सिंहके समान था—मालवावालोंके सम्मिलित सैन्यका पराजय किया और चेर तथा चोलवालोंको सजा दी।

आगे जो मल्लिषेणप्रशस्तिका कुछ अंश उद्धृत किया गया है उसके तीसरे पद्यमें जो जयसिंहकी राजधानीको 'वाग्वधूजन्म-भूमौ' विशेषण दिया है और दूसरे पद्यमें वादिराजको 'सिंहसमर्च्य-पीठविभव' विशेषण दिया है उससे मालूम होता है कि जयसिंह महाराजकी राजधानीमे विद्याकी बहुत चर्चा थी—बडे बडे वादी कवि तथा नैयायिक पण्डितोंका वहा निवास था और जयसिंह महाराज वादिराजसूरिके भक्त थे—उनकी सेवा करते थे। यद्यपि इस प्रकारका कोई प्रमाण नहीं मिला है कि जयसिंहनरेश जैनी थे या जैनधर्ममें श्रद्धा रखते थे, परन्तु यह बात दृढतापूर्वक कही जा सकती है कि जैनधर्मपर और जैनधर्मके अनुयायियोंपर उनकी कृपा होगी। यही कारण है कि वादिराजसूरिपर उनकी भक्ति थी।

हमारे यहा एक कथा प्रसिद्ध है—और उसका एकीभावकी संस्कृत टीकामें तथा और भी कई ग्रन्थोंमें उल्लेख मिलता है कि वादिराजसूरिको एक बार कुष्टरोग हो गया था। महाराज जय-सिंहके दरबारमें जब इस बातका जिकर छिडा तब वहा बैठे हुए किसी श्रावकने—जो कि वादिराजका भक्त था—पूछनेपर गुरुनिन्दाके भयसे यह कह दिया कि—नहीं मेरे गुरु वादिराज कोढी नहीं हैं।

---

१ कई विद्वानोंको इस विषयमे सन्देह है कि जयसिंहने भोजको हराया था।

२ देखो, काव्यमाला सप्तमगुच्छक, पृष्ठ १२ की टिप्पणी।

३ देखो, वृन्दावनविलास पृष्ठ ३१ का ३४ वा पद्य।

इसपर बड़ी जिद् हुई। आखिर यह ठहरा कि महाराज कल स्वयं चलकर वादिराजको देखेंगे। श्रावक महाशय उस समय कहते तो कह गये पर पीछे बड़ी चिन्तामे पड़े। और कोई उपाय न देख गुरुके पास जाकर उन्होंने अपनी भूल निवेदन की और कहा अब लज्जा रखना आपके हाथ है। कहते है कि उसी समय वादिराज-सूरिने एकीभावस्तोत्रकी रचना की और उसके प्रभावसे उनका कुष्ट-रोग दूर होगया। एकीभावका चौथा श्लोक यह है—

> प्रागेवेह त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्या-
> त्पृथ्वीचक्रं कनकमयतां देव निन्ये त्वयेदम्।
> ध्यानद्वारं मम रुचिकरं स्वान्तगेहं प्रविष्ट-
> स्तत्किं चित्रं जिन वपुरिदं यत्सुवर्णीकरोषि॥ ४॥

अर्थात्—हे भगवन्, स्वर्ग लोकसे माताके गर्भमे आनेके छह महीने पहलेहीसे जब आपने पृथ्वीको सुवर्णमयी कर दी, तब ध्यानके द्वारसे मेरे सुन्दर अन्तर्गृहमें प्रवेश कर चुकनेपर यदि आप मेरे इस शरीरको सुवर्णमय कर दे तो क्या आश्चर्य है?

वादिराजसूरिकी इस प्रार्थनासे अनुमान किया जाता है कि अवश्य ही उनके शरीरमें कुछ विकार हो गया था और वे उसको दूर करना चाहते थे और वह विकार जैसा कि उक्त कथामें कहा गया है—कुष्टरोग था।

दूसरे दिन महाराजने जाकर देखा तो वादिराजसूरिका दिव्य शरीर था—उनके शरीरमें किसी व्याधिका कोई चिह्न नहीं दिखलाई देता था। यह देखकर उन्होंने उस पुरुषकी ओर कोपभरी दृष्टिसे

---

१ एकीभावके तीसरे पांचवें और सातवें श्लोकका भी इसीसे मिलता जुलता भाव है।

देखा जिसने कि दरबारमें इस बातका जिकर किया था । मुनिराज राजाकी दृष्टिका अभिप्राय समझकर बोले—राजन्, इस पुरुषपर कोप करनेकी आवश्यकता नहीं है । वास्तवमें उसने सच कहा था—मैं सचमुच ही कोढी था और उसका चिह्न अभी तक मेरी इस कनिष्ठिका अंगुलीमें मौजूद है । धर्मके प्रभावसे मेरा कुष्ट आज ही दूर हुआ है । इत्यादि । यह सुनकर महाराजको बडा आश्चर्य हुआ । मुनिराजपर उनकी बडी भक्ति हो गई । मल्लिषेणप्रशस्तिका ' सिंहसमर्च्यपीठविभव ' विशेषण इसी बातको पुष्ट करता है । ऐसे प्रभावशाली महात्माकी जयसिंहनरेश अवश्य ही भक्ति करते होंगे ।

वादिराजसूरि कैसे दिग्गज विद्वान् थे, इस बातका अनुमान पाठक नीचे लिखे हुए पद्योंसे करेंगे । ये पद्य श्रवणबेल्गुलके 'मल्लिषेणप्रशस्ति '[1] नामक शिलालेखमें खुदे हुए हैं —

त्रैलोक्यदीपिका वाणी द्वाभ्यामेवोदगादिह ।
जिनराजत एकस्मादेकस्माद्वादिराजतः ॥ १ ॥
आरूढाम्बरमिन्दुबिम्बरचितौत्सुक्यं सदा यद्यश-
श्छत्रं वाक्चमरीज–राजिरुचयोऽभ्यर्णं च यत्कर्णयो ।
सेव्यः सिंहसमर्च्यपीठविभवः सर्वप्रवादिप्रजा-
दत्तोच्चैर्जयकारसारमहिमा श्रीवादिराजो विदाम् ॥ २ ॥

यदीय गुणगोचरोऽयं वचनविलासप्रसर कवीनाम् —

श्रीमच्चौलुक्यचक्रेश्वरजयकटके वाग्वधूजन्मभूमौ
निष्काण्डं डिण्डिमः पर्यटति पटुरटो वादिराजस्य जिष्णोः ।
जह्युद्यद्वाददर्पो जहिहि गमकता गर्वभूमा जहारि
व्याहारेर्ष्यो जहारि स्फुटमृदुमधुरश्रव्यकाव्यावलेपः ॥ ३ ॥

---

१ यह प्रशस्ति शक सवत् १०५० की लिखी हुई है ।

पाताले व्यालराजो वसति सुविदितं यस्य जिह्वासहस्रं
निर्गन्ता स्वर्गतोऽसौ न भवति धिषणो वज्रभृद्यस्य शिष्यः।
जीवेतां तावदेतौ निलयबलवशाद्वादिनः केऽत्रनान्ये
गर्वं निर्मुच्य सर्वं जयिनमिनसभे वादिराजं नमन्ति ॥ ४ ॥

वाग्देवीसुचिरप्रयोगसुदृढप्रेमाणमप्यादरा—
दादत्ते मम पार्श्वतोऽयमधुना श्रीवादिराजो मुनिः।
भोः भोः पश्यत पश्यतैष यमिनां किं धर्म इत्युच्चकै-
रब्रह्मण्यपराः पुरातनमुनेर्वाग्वृत्तयः पान्तु वः ॥ ५ ॥

भावार्थ—त्रैलोक्यदीपिका (त्रैलोक्यको प्रकाशित करनेवाली) वाणी या तो जिनराजके मुखसे निर्गत हुई या वादिराजसूरिसे। वादिराजकी महत्त्वसामग्री राजाओंके समान थी। चन्द्रमाके समान उज्ज्वल यशका छत्र था, वाणीरूपी चँवर उनके कानोंके समीप ढुरते थे, सब उनकी सेवा करते थे, उनका सिंहासन जयसिंहनरेश-के पुरुषसिंहोंसे अर्चित था और सारी प्रवादी प्रजा उच्चस्वरसे उनका जयजयकार करती थी। उनके गुणोंकी प्रशसा कवियों-ने इस प्रकार की है—चालुक्यचक्रवर्ती जयसिंहकी राजधानीमें जो कि सरस्वतीरूपी स्त्रीकी जन्मभूमि थी—विजेता वादिराजसूरि-की इस प्रकार डुगडुगी पिटती थी कि हे वादियो, वादका घमड छोड़ दो, हे काव्यमर्मज्ञो, तुम अपनी गमकताका गर्व त्याग दो, हे वाचालो, वाचालता छोड़ दो और हे कवियो, कोमल मधुर और स्फुट काव्यरचनाका अभिमान त्याग दो। जिसकी हजार जिह्वाएँ है वह नागराज पातालमें रहता है और इन्द्रका गुरु जो बृहस्पति है वह स्वर्गलोकमें चला गया है। ये दोनों वादी उक्त स्थानोंमें जीते रहें तो अच्छा हो। क्योंकि इन्हें छोडकर यहा तो और कोई वादी ही नहीं रहा है। बतलाइये, यहा और कौन है? जो थे

वे तो सब व्लक्षीण हो जानेसे गर्व छोड़कर राजसभामें इस विनयी वादिराजको नमस्कार करते हैं। इत्यादि।

एकीभावस्तोत्रके अन्तमें किसी कविका बनाया हुआ जो यह श्लोक है उसे तो पाठकोंने सुना ही होगा—

वादिराजमनु शाब्दिकलोको वादिराजमनु तार्किकसिंहः।
वादिराजमनु काव्यकृतस्ते वादिराजमनु भव्यसहायः॥

अर्थात् जितने वैयाकरण हैं, जितने नैयायिक हैं, जितने कवि है और जितने भव्यसहायक हैं वे सब वादिराजसूरिसे पीछे हैं। भाव यह कि वादिराजके समान कोई वैयाकरण नैयायिक भव्यसहायक और कवि नहीं है।

एक प्रशंसात्मक श्लोक और भी सुनिए—

सदसि यदकलङ्कः कीर्तने धर्मकीर्ति-
र्वचसि सुरपुरोधा न्यायवादेऽक्षपादः
इति समयगुरूणामेकतः संगतानां
प्रतिनिधिरिव देवो राजते वादिराजः॥

(Vide Ins No 39 Nagar Taluq, by Mr rice)

अर्थात् वादिराजसूरि सभामें बोलनेके लिये अकलंकभट्टके समान हैं, कीर्तिमें धर्मकीर्तिके (न्यायबिन्दुके कर्त्ता प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिकके) समान हैं, वचनोंमें बृहस्पति (चार्वाक) के समान हैं और न्यायवादमें अक्षपाद अर्थात् गौतमके समान हैं। इस तरह वे (श्रीवादिराजदेव), इन जुदा जुदा धर्मगुरुओंके एकीभूत प्रतिनिधिके समान शोभित होते हैं।

श्रीवादिराजसूरिकी प्रशंसामें ऊपरके श्लोकोंमें जो कुछ कहा गया है उससे अधिक और क्या कहा जा सकता है? वह समय

सचमुच ही धन्य था जब जैनसाहित्य और जैनधर्मका मस्तक उन्नत करनेवाले ऐसे २ महात्मा जन्म लेते थे।

वादिराज स्वामीके बनाये हुए केवल चार ग्रन्थोंका पता लगता है—१ एकीभावस्तोत्र, २ यशोधरचरित, ३ पार्श्वनाथचरित और ४ काकुत्स्थचरित। इनमेंसे एकीभावस्तोत्र केवल २९ श्लोकोंकी छोटीसी स्तुति है। उसका सर्वत्र बहुलतासे प्रचार है। इस स्तोत्रकी कविता बड़ी ही कोमल सरस मधुर और हृदयद्रावक है। दूसरा यशोधरचरित छोटासा चतुःसर्गात्मक काव्य है। इसमें केवल २९६ पद्य है और उनमें यशोधर महाराजकी संक्षिप्त कथा कही गई है। इस काव्यको तंजौरके श्रीयुत टी. एस. कुप्पूस्वामी शास्त्रीने अभी हाल ही छपाकर प्रकाशित किया है। वादिराजसूरिकी रचनामें यह खूबी है कि, वह सरल होनेपर भी कोमल मधुर और मनोहारिणी है। हमारी इच्छा थी कि उनके ग्रन्थोंके कुछ पद्य यहा उद्धृत करके पाठकोंको उनकी खूबी दिखलाते, परन्तु स्थानाभावसे हम ऐसा न कर सके। अस्तु। तीसरा ग्रथ पार्श्वनाथचरित है। उक्त ग्रन्थके हमने दर्शनमात्र किये हैं, पर उसे पढ नहीं सके। हमारे मित्र पं० उदयलालजी काशलीवालके पास वह है। उन्होंने हमसे उसके कवित्वकी बहुत ही प्रशंसा की है। श्रीयुत टी. एस कुप्पूस्वामी शास्त्री उक्त काव्यको छपाना चाहते है—उन्होंने उसे बहुत ही पसन्द किया है; परन्तु खेद है कि अभीतक उन्हें कहींपर उसकी दूसरी प्रति नहीं मिली। चौथा ग्रन्थ काकुत्स्थचरित है। यशोधरचरितमें उक्त ग्रन्थका उल्लेख तो मिलता है; परन्तु तलाश करनेपर भी उसका कहीं पता नहीं लगा।

श्रीपार्श्वनाथ-काकुत्स्थचरितं येन कीर्तितम् ।
नेन श्रीवादिराजेन दृब्धा याशोधरी कथा ॥ ५ ॥ सर्ग २

इन चार ग्रन्थोंके सिवा मल्लिषेणप्रशस्तिका जो 'त्रैलोक्यदीपिका वाणी' आदि श्लोक है उससे मालूम होता है कि वादिराजसूरिका कोई 'त्रैलोक्यदीपिका' नामका ग्रन्थ भी है ।

वादिराजसूरि केवल कवि नहीं थे । वे न्यायादि शास्त्रोंके भी असाधरण विद्वान् थे । तब अवश्य ही उनके बनाये हुए न्याय व्याकरणादि विषयक ग्रन्थ भी होंगे परन्तु कालके कुटिलचक्रमें पडकर आज उनका दर्शन दुर्लभ होगया है । एक सूचीपत्रमे वादिराजके रुक्मिणि-यशोविजय, वादमजरी, धर्मरत्नाकर, और अलकाष्टकटीका इन चार ग्रन्थोंके नाम और भी मिलते है, परन्तु वादिराजनामके और भी कई विद्वान् होगये है इस लिये निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे इन्हीं वादिराजके हैं अथवा किसी अन्यके ।[२]

वादिराजसूरिका पार्श्वनाथचरित शक सवत् ९४८ में बना है, यह पूर्वमें कहा जाचुका है, परन्तु शेप ग्रन्थ कब बने-प्रशस्तियोंके अभावसे इस बातका पता नहीं लगता । यशोधरचरितके विपयमें इतना कहा जा सकता है कि वह जयसिंह महाराजके ही राज्यकालमें बना है । क्योंकि उसके तीसरे सर्गके अन्त्य श्लोकमें और चौथे सर्गके उपान्त्य श्लोकमें कविने चतुराईसे जयसिंहका नाम योजित कर दिया है—

---

१ अर्थात् जिसने पार्श्वनाथचरित और काकुत्स्थचरितकी रचना की, उसी वादिराजने यह यशोधरचरित बनाया । काकुत्स्थ नाम रामचन्द्रका है, अतएव इस ग्रन्थमें बहुत करके उन्हींका चरित होगा ।

२ यह ग्रन्थ मैसूरकी ओरिएटल लायब्रेरीमें मौजूद है ।

"व्यातन्वञ्जयसिंहतां रणमुखे दीर्घं दधौ धारिणीम् ॥८५॥"
"रणमुखजयसिंहो राज्यलक्ष्मी बभार ॥ ७२ ॥"

श्रीवादिराजसूरिका निवासस्थान कहा था, उन्होंने कब दीक्षा ली थी और कबतक इस धराधामको अपनी पुण्यमूर्तिसे सुशोभित किया था यह जाननेका कोई साधन प्राप्त नहीं होनेसे खेद है कि इस विषयमें हम कुछ नहीं लिख सके ।

श्रीवादिराजसूरिके समकालीन कई बड़े २ विद्वान होगये है । श्रीविजयभट्टारककी—जिनका कि दूसरा नाम पण्डितपारिजात था—स्वय वादिराजसूरिने एक पद्यमें स्तुति की है । वह पद्य यह है—

यद्विद्यातपसोः प्रशस्तमुभयं श्रीहेमसेने मुनौ
प्रागासीत्सुचिराभियोगबलतो नीतं परामुन्नतिम् ।
प्राय श्रीविजये तदेतदखिलं तत्पीठिकाया स्थिते
संक्रान्तं कथमन्यथानतिचिराद्विद्येदृगीदृक्तपः ॥

ये विजयभट्टारक हेमसेन मुनिके पदपर बैठे थे । इनकी प्रशंसाका एक श्लोक मल्लिषेणप्रशस्तिमे भी मिलता है । इस श्लोकसे यह भी मालूम होता है कि उस समयके कोई गगवशी नरेश उनके भक्त थे:—

गगावनीश्वरशिरोमणिबन्धसन्ध्या-
रागोल्लसच्चरणचारुनखेन्दुलक्ष्मीः ।
श्रीशब्दपूर्वविजयान्तविनूतनामा
धीमानमानुषगुणोऽस्ततमःप्रमांशुः ॥

बहुत करके ये गगवशीनरेश चामुडराय महाराज होंगे । क्योंकि चामुंडरायका समय शककी दशवीं शताब्दी ही है । उनका जन्म शक संवत् ९०० में हुआ था । यद्यपि वे महाराज राजमल्लके मत्री या सेनापति थे तो भी राजा कहलाते थे । और यह तो प्रसिद्ध ही है कि वे जैनधर्मके परम भक्त थे ।

गद्यचिन्तामणि और क्षत्रचूडामणि काव्यके कर्ता वादीभसिंहके विद्यागुरु पुष्पसेन भी वादिराजके समकालीन थे।

महाकवि मल्लिषेण (उभयभाषाकविचक्रवर्ती) जिन्होंने कि शक संवत् ९६९ में महापुराणकी रचना की है लगभग इसी समयके ग्रन्थकर्ता हैं।

दयापाल मुनि जो कि वादिराजके सतीर्थ थे बडे भारी विद्वान् थे। मल्लिषेणप्रशस्तिमें उनकी प्रशंसाके कई पद्य हैं। स्थानाभावसे हम उन्हें उद्धृत नहीं कर सके। नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती और कनड़ीके रत्न, अभिनव पम्प, नयसेन आदि प्रसिद्ध कवि भी लगभग इसी समय हुए हैं। शककी इस दशवीं शताब्दीने जैनियोंमें बीसों विद्वद्रत्न उत्पन्न किये थे।

नोट—इस लेखके लिखनेमें हमें यशोधरचरितकी संस्कृत भूमिकासे और सोलंकियोंके इतिहाससे बहुत कुछ सहायता मिली है अतएव हम दोनों ग्रन्थोंके लेखकोंका हृदयसे उपकार मानते हैं।

---

१ श्रीयुक्त टी एस कुप्पूस्वामी शास्त्रीने यशोधरचरितकी भूमिकामें लिखा है कि वादीभसिंहका वास्तविक नाम अजितसेन मुनि था। वादीभसिंह उनका एक विशेषण या पदवी थी। यथा मल्लिषेणप्रशस्तौ—

सकलभुवनपालानम्रमूर्धावबद्धस्फुरितमुकुटचूडालीढपादारविन्द ।
मदवदखिलवादीभेन्द्रकुम्भप्रभेदी गणभृदजितसेनो भाति वादीभसिंह ॥

२ पुष्पसेनमुनि वादिराजके समकालीन होनेसे वादीभसिंहका समय भी एक प्रकारसे निश्चित हो जाता है जो कि पहले अनुमानोंसे सिद्ध किया जाता था।

सम्पादकीय टिप्पणियां ।

१. जैनसिद्धान्तभास्कर ।

पाठकोंको मालूम होगा कि आरा—जैनसिद्धान्तभवनकी ओरसे एक ऐतिहासिक पत्र (त्रैमासिक) के निकलनेका प्रबन्ध हो रहा था । हर्षका विषय है कि, आज वह हमारे समक्ष उपस्थित है और हम उसका प्रसन्नतापूर्वक दर्शन कर रहे हैं। हमको जैसी आशा नहीं थी सहयोगी वैसी सजधजसे निकला है । उसका आकार प्रकार कागज चित्र आदि सब ही कुछ संतोष योग्य है। जैनियोंमें वह बिलकुल नई चीज है। इस प्रथम अकमे छह चित्र कई कविताएं और कई ऐतिहासिक लेख है। हमको आशा है कि—हमारा समाज अपने इस इकलौते ऐतिहासिक पत्रको प्रीतिपूर्वक अपनायगा । इसके सम्पादक और प्रकाशक कलकत्तेके सेठ पदमराजजी रानीवाले हुए हैं । वार्षिक मूल्य तीन रुपया रक्खा गया है।

---

२. जैनियोंकी मृत्युसंख्या ।

बाम्बे गवर्नमेंटने सन् १९११ की जन्ममरणसम्बन्धी रिपोर्ट हाल ही प्रकाशित की है। इस रिपोर्टसे मालूम होता है कि इस प्रेसीडेन्सीके प्रत्येक जिलेके हिन्दू जैन और मुसलमानोंकी औसत मृत्युसंख्या प्रतिसहस्र २९, १५, और २७ निकली है अर्थात् जहा हजार हिन्दुओंमे और हजार मुसलमानोंमे २९ और २७ आदमी मरते है, वहां जैनियोंमें केवल १५ मरते है। इस हिसाबसे औरोंकी अपेक्षा जैनियोंकी मृत्युसख्या आधेके लगभग है। जहा तक हमारा खयाल है दूसरे प्रान्तोंमें भी जैनियोंकी मृत्युसंख्याका

परिमाण बम्बईके ही समान होगा। और नहीं तो इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि हिन्दू मुसलमानोंमे वह कम ही होगा—अधिक नहीं। क्योंकि सर्व साधारण हिन्दू और मुसलमानोंकी अपेक्षा जैनियोंकी स्थिति अच्छी है और इसके कारण वे औरोंकी अपेक्षा आरोग्यरक्षा विशेषताके साथ कर सकते है। इसके सिवा उनके भोजनपानादिके भी धार्मिक नियम ऐसे है कि अनेक रोगोंसे उनकी सहज ही रक्षा हुआ करती है।

---

३. जैनियोंकी जनसंख्या क्यों घट रही है ?

अब प्रश्न यह है कि जब जैनियोंकी मृत्युसंख्या औरोंसे बहुत कम है, तब उनकी जनसंख्या दिनपर दिन घट क्यों रही है? पिछली मनुष्यगणनाके अनुसार १० वर्षमें जब अन्य सब धर्मवालोंकी जनसंख्या कुछ न कुछ बढ़ी है तब जैनियोंकी लगभग ८६००० घट गई है। अवश्य ही इसका कारण इसके सिवा और कुछ नहीं होसकता कि जैनियोंमे पैदायश बहुत कम होती है। अर्थात् यद्यपि उनमें मौतें थोड़ी होती है, परन्तु पैदायश उन मौतोंकी अपेक्षा भी थोड़ी होती है—जितने मरते है उतने पैदा नहीं होते और इस तरह उनकी संख्या दिनपर दिन कम होती जाती है। अब दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जैनियोंमें पैदायश कम क्यों होती है? हमारी समझमें इसका एक कारण तो यह है कि जैनियोंमें अविवाहित पुरुष बहुत रहते है। क्योंकि एक तो जैनसमाजका विस्तार ही बहुत थोडा है और जो है उसमें भी सैकड़ों जातिया तथा उपजातियां है। साथ ही व्याहकी फिजूलखर्चिया इतनी बढ़ गई हैं और लड़कियोंकी दर इतनी चढ़ गई है कि विवाह करना

कोई साधारण कार्य नहीं रहा है। हर एक पुरुषकी शक्ति नहीं कि वह इस वृहदनुष्ठानका भार वहन कर सके। बहुतसी जातिया तो ऐसी हैं जिनमें निर्धन पुरुष युवावस्थासे कमाई करते करते वृद्ध भी हो जाते है तो भी ब्याहके योग्य धनसंचय नहीं कर सकते है। कई जातिया ऐसी भी है जिनकी सख्या इतनी थोडी है कि उनमें ब्याहका सयोग मिलना ही दुस्तर हो गया है और इस कारण उन जातियोंका क्षय बहुत ही शीघ्रताके साथ हो रहा है। यह अविवाहितोंकी संख्या कई जातियोंमें तो इतनी अधिक है कि सुनकर उनके भविष्यकी बड़ी भारी चिन्ता हो जाती है। इन अविवाहित पुरुषोंकी अधिकतासे जनसख्याकी वृद्धि नहीं होती है, यह तो स्पष्ट ही है, साथ ही इनसे समाजमें व्यभिचारकी प्रवृत्ति और नैतिक चरित्रकी हानि भी बडी भारी होती है। दूसरा कारण यह है कि जैनियोंमें बाल्यविवाह और वृद्धविवाह बहुत होते है और इससे उनमें विधवाओंकी सख्या बहुत बढ़ती जाती है और इस कारण जो स्त्रिया सुहागिन रहकर सन्तानोत्पादन करके प्रजाकी वृद्धि करतीं, वे विधवा होकर समाजको प्रायः उसके नैतिक चरित्रकी हानि करनेके सिवा और कोई लाभ नहीं पहुचा सकती है। तीसरा कारण यह मालूम होता है कि जैनसमाजमें धनिकोंकी संख्या अधिक है और शिक्षाके अभावसे उनमें विलासप्रियता बहुत बढ़ गई है जो कि प्रजोत्पादनमें बहुत बड़ी हानि पहुचाती है। हम देखते है कि जहा साधारण श्रेणीके लोगोंके चार चार छह छह सन्तानें होती है, वहा धनिकोंके यहा एक भी नहीं होती है—बेचारे दूसरोंके लडकोंको गोद लेकर अपना वश चलानेकी चिन्तामें रहते है।

---

४. दूसरी समान जातियोंकी संख्या क्यों नहीं घटती ?

यहा हमसे यह प्रश्न किया जा सकता है कि हिन्दुओंमें भी तो बहुतसी उच्च श्रेणीकी जातिया ऐसी है जिनमें वे सब कारण मौजूद है जो जैनियोंमें बतलाये गये है फिर उनकी वृद्धि क्यों होती है ? उनकी जनसख्या कम क्यों नहीं होती ? इसका उत्तर यदि विचार करके देखा जाय तो बहुत ही सहज है। जिन जातियोंके रीति रवाज जैनियोंके ही समान हैं, वास्तवमें उनकी सख्याका भी न्हास जैनियोंके समान हो रहा है, परन्तु उनकी गणना जुदा न होकर हिन्दुओंमें होती है और हिन्दुओंमें ब्राह्मणसे लेकर चमार तक गिने जाते हैं। इसलिये उक्त जातियोंमें जो कमी होती है उसकी पूर्ति शूद्रोंकी तथा दूसरी ऐसी ही जातियोंकी बड़ी भारी वृद्धिसे हो जाती है जिनमें विवाहके प्रपच अधिक नहीं हैं और इस कारण जिनमें कुँवारे बहुत ही कम रहते है, जिनमें पुनर्विवाहकी प्रथा जारी है इस कारण स्त्रिया विधवा न होकर बराबर प्रजोत्पादन करती रहती है, और जिनमें विलासताका लेश भी नहीं है इस कारण खूब सन्तानोत्पत्ति होती है। गरज यह कि उनका भी—जिनकी कि समाजिक स्थिति जैनियोंके समान है— जैनियोंके जैसा ही क्षय हो रहा है, परन्तु वह मालूम नहीं पडता है— दूसरी वृद्धिगत जातियोंकी गणनामें सम्मिलित होनेसे छुप जाता है।

---

५ रक्षाका उपाय।

जैनसमाजको इस बड़े भारी अनिष्टसे बचानेका जिससे कि उसका भविष्य बहुत ही शोचनीय दिखलाई दे रहा है उपाय क्या है ? जिस अनिष्टसे प्रत्येक दश वर्षमें लगभग साठ हजार मनुष्य कम हो

जाते हैं और इस कारण जिससे इस सिर्फ तेरह लाख जनसंख्या-व्यापी समाजका केवल एक ही शताब्दीमें नामशेष हो सकता है उससे रक्षा पानेका उपाय सोचना प्रत्येक जैनीके लिये आवश्यक है। य८ जीवन मरणका प्रश्न है। यदि इसका विचार न किया जायगा तो और किसका किया जायगा? हमारी समझमें ऊपर जो थोड़ेसे कारण बतलाये गये है यदि वे सही है, तो सबसे पहले उनके दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिए। अविवाहितोंकी संख्या तब घट सकती है जब ब्याहकी कठिन समस्या हल हो जाय और यह समस्या तब हल हो सकती है, जब जैनियोंकी जितनी जातिया है वे सब परस्पर बेटीव्यवहार करने लगें। यह हम जानते है कि जैनसमाजमें जो कि बहुत ही अप्रगतिशील है और जिसमें शिक्षाकी बहुत कमी है—अभी यह कार्य होना कठिन है, तो भी इसकी ..भी होनी चाहिए और शिक्षित पुरुषोंको साहस करके इसपथपर अग्रसर होना चाहिए। इसके विना न तो कन्याओंका मिलना सुलभ हो सकता है और न उनकी दर ही घट सकती है। बऱ्हाड आदि प्रान्तोंमें कई जातिया तो ऐसी हैं—उनकी जनसंख्या इतनी थोड़ी है कि यदि उन्हें सहारा न दिया जायगा—दूसरी जैन जातिया उनके साथ सम्बन्ध करना स्वीकार न करेंगी, तो पचास साठ ही वर्षमें उनकी समाप्ति हो जावेगी। उनमें अविवाहितोंकी संख्या देखकर बड़ी ही दया आती है। ब्याहकी फिजूल खर्चिया घटानेकी भी कोशिश होना चाहिये और इसके लिये समाजके शिक्षित पुरुषोंको कटिबद्ध होना चाहिए। क्योंकि बहुतसे लोग इन ब्याहोंके बढे हुए खर्चके कारण ही अविवाहित रहते है। पचा-यतियोंको इस खर्चकी इयत्ता इतनी कर देना चाहिए जिससे गरी-

बसे गरीब पुरुष भी इसके कारण विवाहसे वंचित न रहने पावे। बाल्यविवाह और वृद्धविवाहके रोकनेके लिये समाजमें आन्दोलन हो रहा है, परन्तु उसकी गतिको अब और बढाना चाहिए। उपदेशों, लेखों, ट्रेक्टों और पंचायतियोंके नियमोंसे इसकी गति बढ सकती है। विलासप्रियताको कम करनेका उपाय एक शिक्षा है। धनिक-समाजमें जब तक शिक्षाका प्रचार न बढेगा तब तक वह कम नहीं हो सकती।

---

६. बेटी–व्यवहारकी आवश्यकताका विरोध।

श्रीमती रत्नमालाकी १६ वीं लतिकामें किसी गुमनाम महाशयने ' सुधारकोंकी शुभचिन्तना ' शीर्षक एक लेख लिखा है और हमारे कुछ सुधारसम्बन्धी विचारोंपर प्रहार किया है। एक आक्षेप तो हमारे ऊपर यह किया है कि हम जैनियोंकी समस्त जातियोंमें परस्पर बेटीव्यवहारका प्रतिपादन करते हैं। यदि लेखक महाशय दो चार युक्तियां देकर यह बतला देते कि परस्पर बेटी व्यवहार होना क्यों अच्छा नहीं है? उसमें क्या दोष है? शास्त्रकारोंका इस विषयमें क्या मत है? तो अच्छा होता, उनपर कुछ विचार करनेका अवसर मिलता। परन्तु उन्हें तो केवल हितैषीको सुधारक बतलाकर बदनाम करना है। युक्तियां देनेके प्रपंचमें क्यों पडें? आप केवल बालविवाह वृद्धविवाह और कन्याविक्रयको जैनियोंकी संख्या घटनेके कारण समझते हैं–परस्पर बेटीव्यवहार होनेके प्रतिबन्धको नहीं। आप यदि थोडासा कष्ट उठाकर जैनियोंकी १०-२० जातियोंकी जनसंख्या जाननेका यत्न करते और फिर उनमें जो अविवाहित हैं उनकी गणना करते तो आपको मालूम हो जाता

कि परस्पर बेटीव्यवहार होनेके विना जैन जातियोंका कैसी शीघ्रतासे क्षय हो रहा है। अभी पिछली साल आकोलाके वकील श्रीयुक्त चवरेने वऱ्हाड़ प्रान्तके जैनियोंकी जो गणना की थी, उससे मालूम हुआ था कि उक्त प्रान्तमें १७ जातिया हैं, जिनमेंसे सेतवाल और परवारोंको छोड़कर किसीके भी तीन सौसे अधिक घर नहीं हैं। बदनोरे आदि एक दो जातिया तो ऐसी है कि उनके सौसे भी कम घर है और वे भी थोडी ही वर्षोंमें समाप्त हो जानेवाले है। क्योंकि जातिके थोड़ेसे घरोंमें विवाहसम्बन्ध मिलता नहीं और दूसरी जातिके जैनियोंको दया आती नहीं कि उनसे सम्बन्ध करके उनके वंशकी रक्षा करें। यह दशा केवल वऱ्हाड प्रान्तकी ही नहीं है, दूसरे प्रान्तोंमें भी ऐसी बीसों जातिया है जो अपनी अल्प संख्याके कारण समाप्तिके सम्मुख जा रही है। अविवाहितोंकी संख्या बढ़नेका कारण विवाहका खर्च भी है; परन्तु ऐसे अविवाहित पुरुष खडेलवाल, अग्रवाल, परवार आदि ऐसी ही जातियोंमें अधिक हैं, जिनकी संख्या अच्छी है। जैनियोंकी जितनी जातिया है, उनमें परस्पर विवाहसम्बन्ध होने लगे, इसका प्रयत्न प्रत्येक जातिहितैषीको करना चाहिए। जैनशास्त्र इसके अविरोधी है। वे तो द्विजवर्णोंमें भी परस्पर बेटीव्यवहारके विरोधी नहीं हैं। इस विषयमें लोकविरुद्धताके सिवा और किसी भी बातकी दुहाई नहीं दी जा सकती। परन्तु जो विचारशील हैं हमको विश्वास है कि वे इस लोकविरुद्धताकी अपेक्षा जैनजातिकी रक्षाकी ओर ही विशेष ध्यान देंगे।

---

७. दूसरे आक्षेप।

दूसरा आक्षेप यह किया गया है कि हम दस्सों बीसों परवारों विनैकयोंको मिलाना चाहते है। परन्तु इस विषयकी चर्चा

पहले बहुत कुछ हो चुकी है, इसलिये हम यहापर उसका फिर पिष्टपेषण नहीं करना चाहते। हमारे शुभचिंतक महाशय और उनके अनुयायी आज तक इस विषयका कोई प्रमाण नहीं दे सके कि दस्से हमेशा दस्से ही बने रहेंगे—वे कभी शुद्ध नहीं होंगे। उनके पास एक लोकाचाररूपी जीर्ण शीर्ण जग खाये हुए खड्गके सिवा अपने पक्षकी रक्षा करनेका और साधन नहीं है। परन्तु स्मरण रखिए इस खड्गका कितना ही डर दिखाया जाय, समयका असाधारण परिवर्तन और हमारी आवश्यकताएँ अपना काम करके छोड़ेंगीं। परवारोंमें चार साकोंके सम्बन्धको प्रचलित करनेकी बहुत बडी आवश्यकता है। इसके विना सम्बन्ध मिलानेमें बडा ही कष्ट होता है और कष्ट सहकर भी लोग इच्छित वर और कन्याएँ नहीं पा सकते है। फल यह होता है कि अनमेल विवाह बहुलतासे होते हैं और हजारों पुरुष और स्त्री जीवन भरके लिये सुखसे हाथ धो बैठते है। शुभचिन्तक महाशयने इस प्रथाके जारी करनेमें भी क्या हानि होगी यह बतलानेकी कृपा नहीं की। मालूम नहीं इस पद्धतिको जारी करके परवार जाति किस महापापकी भागिनी होगी।

---

८. हमारा काम प्रयत्न करना है।

शुभचिन्तक महाशयने अपने लेखमें इस बातकी हँसी उडाई है—हमपर यह कटाक्ष किया है कि हमें उक्त तीनों प्रयत्नोंमें सफलता नहीं हुई—हमारे तीनों प्रस्ताव समाजने स्वीकार नहीं किये। आपने पहले शायद यह समझ रक्खा होगा कि जैनहितैषीमें कोई लेख प्रकाशित हुआ कि समाज उसे तत्काल ही मस्तक नवाकर स्वीकार कर लेगा। खैर, अच्छा हुआ कि आपका यह भ्रम और भय दूर

होगया । आप लोगोंके सौभाग्यसे इस समय हमारे देशमें–विशेष करके जैनसमाजमें अशिक्षितोंकी संख्या इतनी है–आंखें बन्द करके लोकरूढीकी पूंछ पकड़कर चलनेवाले इतने हैं और उनके मुखिया या पञ्चायतियोंके शासक ऐसे महाशय हैं जिनको न देशकालका ज्ञान है और न जिनकी संकीर्ण बुद्धिमें सम्मिलित समाजके हितकी वासनाका कभी उदय होता है। अतएव अभी इस प्रकारके भयकी आवश्यकता नहीं । इस समय तो साक्षात् सर्वज्ञ भी आकार यदि उपदेश दें तो उनकी भी कोई न सुनेगा फिर एक छोटेसे नगण्य पत्रकी तो बात ही क्या है ? पर समाजकी इस स्थितिसे हम लोग निराश होनेवाले अथवा अपना प्रयत्न छोड़ देनेवाले नहीं है । आजतक जिन जिन महात्माओंने समाजसशोधनके कार्य किये हैं उन्होंने हमको सिखलाया है कि तुम काम किये जाओ–प्रयत्नसे मुह मत मोड़ो । कुछ फल होता है या नहीं इस बातका विचार करनेकी तुम्हें आवश्यकता नहीं। यदि तुम सच्चे जीसे प्रयत्न करोगे, तुम्हारा प्रयत्न दूसरोंके हितके लिये होगा, तो उसमें अवश्य सफलता होगी । ये समाजसंशोधनके कार्य हैं भी ऐसे ही कि उनमें सफलता प्राप्त करनेके लिये पचासों वर्ष चाहिए । ये ऐसे कार्य नहीं कि वर्ष छह महीनेमें हो जावें । आज तक संसारमें जितने सुधार हुए हैं वे सब बहुकालव्यापी आन्दोलनके फल है। कोई २ सुधारोंमें तो हजारों वर्ष लग गये है । पर इससे सुधार करनेवाले कभी निराश नहीं हुए । अब भी आप मत समझ लें कि हमने अभीतक जो कुछ लिखा है, वह सब निष्फल गया। नहीं, यदि हम अपने कई लेखोंसे किसी एक भी पुरुषके विचार अपने अनुकूल कर सके तो हम अपने उन सब लेखोंको सफल समझते है। हमारे चार साकोंके प्रस्तावको आपके मुखियोंने

पहले बहुत कुछ हो चुकी है, इसलिये हम यहापर उसका फिर पिष्टपेषण नहीं करना चाहते। हमारे शुभचिंतक महाशय और उनके अनुयायी आज तक इस विषयका कोई प्रमाण नहीं दे सके कि दस्से हमेशा दस्से ही बने रहेंगे—वे कभी शुद्ध नहीं होंगे। उनके पास एक लोकाचाररूपी जीर्ण शीर्ण जग खाये हुए खड्गके सिवा अपने पक्षकी रक्षा करनेका और साधन नहीं है। परन्तु स्मरण रखिए इस खड्गका कितना ही डर दिखाया जाय, समयका असाधारण परिवर्तन और हमारी आवश्यकताएँ अपना काम करके छोड़ेंगीं। परवारोंमें चार साकोंके सम्बन्धको प्रचलित करनेकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। इसके बिना सम्बन्ध मिलानेमें बडा ही कष्ट होता है और कष्ट सहकर भी लोग इच्छित वर और कन्याएँ नहीं पा सकते हैं। फल यह होता है कि अनमेल विवाह बहुलतासे होते हैं और हजारों पुरुष और स्त्री जीवन भरके लिये सुखसे हाथ धो बैठते हैं। शुभचिन्तक महाशयने इस प्रथाके जारी करनेमें भी क्या हानि होगी यह बतलानेकी कृपा नहीं की। मालूम नहीं इस पद्धतिको जारी करके परवार जाति किस महापापकी भागिनी होगी।

---

८. हमारा काम प्रयत्न करना है।

शुभचिन्तक महाशयने अपने लेखमें इस बातकी हँसी उडाई है—हमपर यह कटाक्ष किया है कि हमें उक्त तीनों प्रयत्नोंमें सफलता नहीं हुई—हमारे तीनों प्रस्ताव समाजने स्वीकार नहीं किये। आपने पहले शायद यह समझ रक्खा होगा कि जैनहितैषीमें कोई लेख प्रकाशित हुआ कि समाज उसे तत्काल ही मस्तक नवाकर स्वीकार कर लेगा। खैर, अच्छा हुआ कि आपका यह भ्रम और भय दूर

होगया। आप लोगोंके सौभाग्यसे इस समय हमारे देशमें—विशेष करके जैनसमाजमें अशिक्षितोंकी संख्या इतनी है—आंखें बन्द करके लोकरूढीकी पूंछ पकडकर चलनेवाले इतने हैं और उनके मुखिया या पंचायतियोंके शासक ऐसे महाशय हैं जिनको न देशकालका ज्ञान है और न जिनकी संकीर्ण बुद्धिमें सम्मिलित समाजके हितकी वासनाका कभी उदय होता है। अतएव अभी इस प्रकारके भयकी आवश्यकता नहीं। इस समय तो साक्षात् सर्वज्ञ भी आकार यदि उपदेश दें तो उनकी भी कोई न सुनेगा फिर एक छोटेसे नगण्य पत्रकी तो बात ही क्या है? पर समाजकी इस स्थितिसे हम लोग निराश होनेवाले अथवा अपना प्रयत्न छोड़ देनेवाले नहीं है। आजतक जिन जिन महात्माओंने समाजसंशोधनके कार्य किये हैं उन्होंने हमको सिखलाया है कि तुम काम किये जाओ—प्रयत्नसे मुह मत मोडो। कुछ फल होता है या नहीं इस बातका विचार करनेकी तुम्हें आवश्यकता नहीं। यदि तुम सच्चे जीसे प्रयत्न करोगे, तुम्हारा प्रयत्न दूसरोंके हितके लिये होगा, तो उसमें अवश्य सफलता होगी। ये समाजसंशोधनके कार्य हैं भी ऐसे ही कि उनमें सफलता प्राप्त करनेके लिये पचासों वर्ष चाहिए। ये ऐसे कार्य नहीं कि वर्ष छह महीनेमें हो जावें। आज तक संसारमें जितने सुधार हुए है वे सब बहुकालव्यापी आन्दोलनके फल हैं। कोई २ सुधारोंमें तो हजारों वर्ष लग गये है। पर इससे सुधार करनेवाले कभी निराश नहीं हुए। आप भी आप मत समझ लें कि हमने अभीतक जो कुछ लिखा है, वह सब निष्फल गया। नहीं, यदि हम अपने कई लेखोंसे किसी एक भी पुरुषके विचार अपने अनुकूल कर सके तो हम अपने उन सब लेखोंको सफल समझते हैं। हमारे चार साकोंके प्रस्तावको आपके मुखियोंने

भले ही रहीकी टोकरीमें डाल दिया हो; और द्रोणागिरिमें जिन्होंने उसका अनुमोदन किया था उन्हें आप भले ही उठमिल्ला बतलावें. पर यह निश्चय रखिए कि उसे परवारसमाज बहुत जल्दी अपनायगी। इसे अपनाए बिना अब उसका निर्वाह भी नहीं होसकता। झांसी और पन्नाकी ओर तो इस प्रकारके विवाह होने भी लगे हैं। दूसरे प्रान्तवालोंको भी कभी न कभी यह सुबुद्धि सूझेगी।

---

९ अशान्तिके मिटानेका उपाय।

जैनगजटका सम्पादन आजकल इस खूबीसे हो रहा है जैसा पहले कभी नहीं हुआ था और शायद आगे भी नहीं होगा। यद्यपि उसके आनरेरी सम्पादक 'सही' करदेनेके सिवा कभी एक अक्षर भी नहीं लिखते हैं तथापि सहकारी सम्पादक स्वनामधन्य बाबू अमोलकचन्दजी अपने अपूर्व सम्पादनकौशलसे उसे सेठ महासभाका मुखोज्ज्वलकारी पत्र बना रहे हैं। उसके २८-२९ वें अंकमें एक वाचनीय लेख प्रकाशित हुआ है। उसके लेखक कलकत्तेनिवासी कोई एक जैन सज्जन हैं। सहकारी सम्पादक महाशय पहले कलकत्तेमें ही रहते थे। हो सकता है कि किसी कारणसे आपने ही अपना नाम छुपाकर उक्त लेख लिखनेकी कृपा की हो। यद्यपि इस लगभग ढाई पृष्ठव्यापी लेखमें यह समझना बहुत कठिन है कि एक पैरेका दूसरेसे क्या सम्बन्ध है और उसके लिखनेका उद्देश्य क्या है. तथापि बांचनेवाला यह अच्छी तरहसे समझ सकता है कि लेखकने उसमें अपने श्रद्धास्पद और जीवनसर्वस्व सेठ महात्माओंके विचारोंके जो अनुयायी नहीं है उन सबहीका खूब सत्कार किया है और उन्हें कषायग्रसित पुरुषोंके एक दलमें शामिल किया

है। लिखा है कि यह दल समाजकी हरप्रकारकी उन्नतिके साधक कारणोंमें बाधक हो रहा है और समाजमें अशान्ति फैलाकर उसे रसातलमें पहुचा रहा है। इस सारे लेखका निष्कर्ष यह है कि जैनियोंमें जो अशान्ति फैल रही है उसका प्रधान कारण पं० गोपालदासजीको दी हुई स्याद्वादवारिधि वादिगजकेसरी आदि पदवियां है। यह भी बडा अन्याय है कि लोग उनके नामके साथ प्रात स्मरणीय पण्डितवर्य्य विद्वच्छिरोमणि आदि विशेषण जोड़ने लगे हैं। क्योंकि वे कहींकी परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं हैं। अष्टसहस्री, श्लोकवार्तिकादि कोई ग्रन्थ उन्होने पढे नहीं है। लोगोंने छोटी छोटी सभाओंमें सिद्ध साधक बनकर उनके पीछे यह पुछल्ले जोड़ दिये है और इन पुंछल्लेरूपी शस्त्रोंका प्रयोजन दक्षिणके भोले सेठोंके समान उत्तरके पंडित सेठोंको जालमें फँसाना है। इत्यादि।
...री इच्छा उक्त लेखका उत्तर देनेकी नहीं है—हमारे पास इतना स्थान और अवकाश भी नहीं है कि ऐसे लेखोंका उत्तर दिया करें। हम सिर्फ यह कहना चाहते हैं कि जब अशान्तिका यह कारण है, तब क्यों न प्रान्तिकसभावम्बई और जैनतत्वप्रकाशिनी सभाके प्रस्ताव रद्द कर दिये जावें और महासभा—जो कि सब सभाओंपर स्वामित्वका दावा करती है—क्यों न उक्त पुछल्लोंको छीन कर यह डुगडुगी पिटवा दे कि आयन्दा कोई भी पुरुष गोपालदासजीके पीछे उक्त पुंछल्ले न लगाया करे, बल्कि उन्हें पण्डितजी भी न लिखा करे। यह तो एक बहुत छोटीसी बात है। यदि इस छोटेसे उपायहीसे सेठोंके कषायरहित दलकी शान्ति हो जाय—उनकी आत्मा शीतल हो जाय—समाज रसातलसे जाता हुआ बच जाय और कषायवान् दल शस्त्ररहित होकर उत्तरके सेठोंको जालमें न फंसा सके

तो फिर इसका अनुमोदन कौन न करेगा? मेरी समझमें पं०गोपालदासजी भी (कुसूर माफ हो, केवल गोपालदास) इस प्रस्तावको स्वीकार करनेसे इंकार नहीं करेंगे। इंकार करनेका उन्हें कोई हक भी नहीं है। दर असलमें यह उन्हींकी भूल है जो विना कोई परीक्षा दिये पदविया स्वीकार कर बैठे और कषायरहित दलके इस नवाविष्कृत नियमको तोड बैठे कि विना परीक्षा दिये किसीकी बुद्धि या प्रतिभाका विकाश हो ही नहीं सकता है। आजतक जितने विद्वान् हुए हैं वे सब परीक्षाए देकर ही हुए हैं। पंडितजीको पहले परीक्षा देकर पीछे पदविया लेनी थीं। जैसा कि सुनते हैं महासभाके मुनीम लाला किरोड़ीमलने प०पन्नालालजीकी परीक्षा लेकर उन्हें न्यायदिवाकरकी पदवी दी थी। रही उत्तरके सेठोंको अपने वशमें करनेकी बात। सो यदि पंडितजीको यह अभीष्ट हो, तो इन पदवियोंके झगडेमें न फँसकर उत्तरके सेठ लोगोंके विशेष करके सबके अगुए सेठ मेवारामजीके, अनुयायी--उपासक-सेवक--खुशामदी--चापलूस बन जावें। क्योंकि इस अभीष्टके सिद्ध करनेका इससे अच्छा कोई उपाय नहीं। इसी उपायके बलसे आज समाजके अनेक पंडितोंके गहरे हो रहे हैं। पण्डितजी, अब उच्चाटन प्रयोगको छोडकर वशीकरण मंत्रको काममें लाइए।

पुस्तक-समालोचन।

जैनवाग्विलास, सचित्र मासिकपत्र—प्रकाशक, गुलाबसाव तुकारामजी रोडे, वर्धा और सम्पादक, दत्तात्रय भीमाजी रणदिवे। वार्षिक मूल्य दो रुपया। मराठीमें एक अच्छे मासिकपत्रकी बहुत

आवश्यकता थी। हम देखते है कि इस आवश्यकताको नवोदित वाग्विलास पूर्ण कर देगा। इसके सम्पादक मराठीके एक अच्छे मार्मिक कवि और लेखक है। आपकी इच्छा इसे एक उच्च श्रेणीका साहित्यपत्र बनानेकी है। सहयोगीके इस प्रथम अंकमें प्रसिद्ध चित्र-कार धुरंधरका बनाया हुआ राजा श्रेणिक और रानीका चित्र और तद्विषयक प्रियाराधन नामकी कविता है। विवाह हो जानेके उप-रान्त जब रानी चेलनाको यह ज्ञान हुआ कि राजा श्रेणिक जैन नहीं किन्तु बौद्ध है, तब उसे बहुत दुःख और संताप हुआ। जब यह बात श्रेणिकको मालूम हुई, तब वह रानीका संताप दूर करनेके लिये उसके समीप गया और नानाप्रकारके चाटु-कार वचन कहकर तथा अपना आन्तरिक प्रेम प्रगट करके उसे मनाने लगा। चित्रमें रानी उदास अवस्थामें खड़ी है और राजा उसे प्रसन्न करनेका प्रयत्न कर रहा है। कविता बहुत ही सरस और सुन्दर हुई है। दूसरा लेख 'जैनसमाजाचे ध्येय' शीर्षक है जिसका हिन्दी अनुवाद अन्यत्र प्रकाशित किया जाता है। तीसरे ले-खमें आचार्य पूज्यपादका संक्षिप्त परिचय दिया गया है, जिसमें कई बातें नई और जानने योग्य हैं। इसके सिवा मनुष्य जन्माचें सार्थक, चुटकिले तथा भक्तामरस्तोत्रकथाहार आदि और भी कई साधारण श्रेणीके लेख है। जैनसमाजको चाहिए कि वह इस पत्रको आश्रय देकर प्रकाशक महाशयका उत्साह बढावे। पत्रका मूल्य दो रुपया कुछ अधिक मालूम होता है।

सार्वधर्म—स्या० वा० प० गोपालदासजीके हिन्दी सार्वधर्मका यह मराठी अनुवाद है। अनुवादक हैं सेठ जीवराज गोतमचन्दजी दोसी शोलापुर और प्रकाशक है दक्षिणमहाराष्ट्र जैनसभा। अनुवाद

अच्छा हुआ है। मूल्य ५६ पृष्ठकी पुस्तकका एक आना। विना मूल्य बाटनेके लिये पाच रुपया सैकडा।

सामायिक पाठ—अनुवादक, रावजी नेमिचन्द शहा शोलापुर और प्रकाशक श्रीयुत सखाराम फूलचन्द। मूल्य दो आना। इस पुस्तकमें दो सस्कृत सामायिक पाठ जिनमें एक अमितगतिसूरिका और दूसरा किसी अज्ञातनामा विद्वानका है तथा एक भाषा सामायिक पाठ प० महाचन्द्रजीका इस तरह तीन पाठोंका सग्रह और उनका मराठी अर्थ भी दिया है। प्रारभमें सामायिककी विधि भी दी है।

समाधिशतक—भाषान्तरकार रावजी नेमिचन्द शहा, शोलापुर और प्रकाशक दलूचन्द प्रभुचद फडिया, आकलूज। मूल्य छह आना। इसमें पहले पूज्यपादस्वामीकृत समाधिशतक मूल, फिर पंडित प्रभाचन्द्रकृत सस्कृत टीका और अन्तमें मराठी टीका दी गई है। मराठी टीका सुपाठ्य और सरलतासे समझने योग्य हुई है। जितने श्लोकोंकी टीका हमने पढी उसमें कोई दोष नजर नहीं आया। प्रारंभमें पूज्यपादस्वामीका ऐतिहासिक परिचय दिया गया है। यह ग्रन्थ बडे महत्त्वका है। प्रत्येक जैनीको इसका स्वाध्याय करके शान्तिलाभ करना चाहिए। ग्रन्थकी छपाई बहुत अच्छी हुई है।

जैनगद्यावली—प्रथम द्वितीय और तृतीय चतुर्थखड—प्रकाशक और लेखक वाडीलाल मोतीलाल शाह अहमदावाद। मूल्य चारों भागका एक रुपया। अहमदावादसे जो जैन समाचार नामका गुजराती साप्ताहिक पत्र निकलता था, यह गद्यावली उसीके चुने हुए गद्यलेखोंका सग्रह है। इसके लेखक बडे ही उदारचरित और निष्पक्ष निर्भीक लेखक हैं। हम इन लेखोंको वाचकर बहुत ही प्रसन्न हुए। जैनियोंकी गिरी हुई धार्मिक और सामाजिक दशाका इन

लेखोंमे बडा ही हृदयग्राही और वास्तविक चित्र खींचा गया है। सीमन्धरस्वामीके नामके जो ग्यारह खुले पत्र लिखे गये है, उन्हें पढ़कर तो चित्त गद्गद हो जाता है। जैनसाहित्यमें वह बिलकुल नये ढग... रचना है। यद्यपि गद्यावलीके लेख प्राय ढूंढिया सम्प्रदायको लक्ष्य करके लिखे गये है, क्योंकि इसके लेखक ढूढिया है तो भी वे तीनों सम्प्रदायवालोंके लिये उपकारी है। हम सिफारिश करते है कि, जो भाई गुजराती जानते हों, वे गद्यावलीको मॅगाकर अवश्य ही पढ़ें।

नयकर्णिका—श्वेताम्बर सम्प्रदायमें विक्रमकी अठारहवीं सदीके प्रारम्भमें विनयविजय उपाध्याय नामके एक विद्वान् हुए है। उन्होंने संस्कृत और गुजरातीमे अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है। यह नयकर्णिका उन्हींकी कृति है। इसमें कुल २३ श्लोक है जिनमें स... भी नयका बहुत ही सक्षेप स्वरूप बतलाया गया है। इस पुस्तकका सम्पादन प्रसिद्ध वक्ता प० लालन और श्रीयुत मोहनलाल दलीचन्द देसाई बी ए. एल. एल. बी. इन दो विद्वानोंने बहुत बडे परिश्रमसे किया है। यह सम्पादन बिलकुल उसी ढगका हुआ है जैसा कि यूरोपियन विद्वान् किसी महत्वपूर्ण ग्रन्थका करते है। प्रारभके ३१ पृष्ठोंमें अनेकान्त फिलासोफीका अभिप्राय और उसका स्वरूप बतलाया गया है। आगे लगभग ३२ पृष्ठोंमें विनयविजयजीका चरित और उनके ग्रन्थका परिचय दिया है। इसके पश्चात् २१ पृष्ठोंमें मूल ग्रन्थके प्रत्येक श्लोकका स्वतंत्र रीतिसे स्फुट विवेचन किया है। और अन्तके आठ पृष्ठोंमें मूल ग्रन्थ गुजराती अनुवादसहित दिया है। सबके पीछे विस्तृत विषयानुक्रमणिका दी है। पुस्तक अच्छी बनी है इसमें सन्देह नहीं, किन्तु हमारी

समझमें यदि सम्पादक महाशय इसकी अपेक्षा नयोंका स्वरूप समझानेके लिये एक स्वतंत्र ग्रन्थ लिखते तो अच्छा होता। पुस्तक मिलनेका पता—मेघजी हीरजी एन्ड कम्पनी पायधूनी, बम्बई। मूल्य छह आना।

प्रश्नपत्र—जैनशिक्षाप्रचारकसमिति जयपुरकी जनवरी सन् १९१२ की वालिका, वाल, मध्यम और प्रवेशिकापरीक्षाके ये प्रश्नपत्र है। इनके अवलोकनसे समितिके शिक्षाक्रमकी उत्तमताका ज्ञान होता है। प्रश्नप्रत्र बहुत ही योग्यतापूर्वक लिखे गये हैं। उन्हें पढ़कर दूसरे लोग भी लाभ उठा सकते है। मूल्य तीन आना है। जिन्हें चाहिए समितिके परीक्षाविभागके मंत्री बाबू उजागरमलजीसे मगा लेवें।

नोटः—शेष पुस्तकोंकी समालोचना अगामी अंकोंमें क्रमश की जायगी। भेजनेवाले सज्जन आकुलित न होवें।

विविधसमाचार.

विद्याप्रेम—अमेरिकाके एक विश्वविद्यालयमें एक ८० वर्षकी बुढिया पढती है। सन् १९१८ में वह उपाधिपरीक्षा देगी।

नवीन जैन वोर्डिंग—वर्धा (सी पी) में २ अक्टूवर को दिगम्बर जैन वोर्डिंग स्कूल खुल गया। लगभग पच्चीस हजार रुपया चन्दा हुआ है। प्रारंभिक उत्सव खूब धूमधामसे हुआ। मध्यप्रदेशमें जैनियोंका यह दूसरा वोर्डिंग स्कूल है।

सम्पादकका महत्त्व—दूसरे देशोंमें पत्रोंका सम्पादन करना बड़े ही महत्त्वका काम समझा जाता है। इसके लिये वडे ही योग्य पुरुष रक्खे जाते हैं। लन्दन टाइम्सके सम्पादकका वेतन उतना ही है जितना अगरेजी साम्राज्यके प्रधान मंत्रीका है। अभी हाल ही लार्ड मिलनरने कहा था–पत्रसम्पादन दुनियाका एक बहुत वडा काम है। इससे वडा यदि कोई काम हो तो शायद केबिनट मिनिस्टरका ही हो।

विज्ञानसे जलवर्षा—लीजिए, विज्ञानसे वर्षा भी होने लगी। अमेरिकाके मिचगान शहरमें थोडे दिन पहले कृत्रिम वर्षा करनेकी परीक्षा की गई। जिस समय कोई एक लाख वर्गमील आकाशमें बादलोंका नामोनिशान नहीं था उस समय कोई साढे चार हजार टन डिनामाइट उडाई गई। बस तत्काल ही चारों ओर घन घटा घिर आई और फिर खासी वर्षा हो गई! विज्ञान न जाने क्या २ आश्चर्य दिखलाएगा।

विचित्र स्त्री—मिल हेलेन केलेन नामकी एक अमेरिकन स्त्री गूगी बहिरी और अंधी है, तो भी वह बडी भारी बुद्धिमती है। अपने दृढ निश्चय और परिश्रमसे उसने इतना पाण्डित्य सम्पादन किया है कि वह वहांकी एक अच्छी लेखिका और ग्रन्थकर्त्री समझी जाती है। इस समय वह एक बडी भारी सस्थामें सलाह देनेके कार्यपर नियुक्त की गई है।

पारसी औषधालय—बम्बईके पारसियोंने अपने लिये एक स्वतत्र हास्पिटल खोला है। इसके लिये उन्होंने लगभग २४ लाख रुपयेका चन्दा किया है।

विमानयात्रा—विलायतमें एक कम्पनी खुली है जो मनुष्योंको वहांसे हिन्दुस्थान तक केवल १२ दिनमें विमानोंके द्वारा पहुचानेका प्रयत्न कर रही है।

पुरातत्त्वोद्धारके लिये दान—बम्बईके सुप्रसिद्ध धनी रतनजी टाटाने ... र्ष २० हजार रुपयेका दान इसलिए देना स्वीकार किया है कि उससे भारतवर्षके पुरातत्त्वकी मौलिक खोज की जाय। इस दानसे पहले पहल मगध देशकी राजधानी पाटलीपुत्र जिस स्थानपर थी, वह स्थान खोदा जायगा और वहासे प्राचीन भारतीय सभ्यताके कीर्तिचिन्होंका पता लगाया जायगा। पाटलीपुत्र (पटना) सुप्रसिद्ध महाराज चन्द्रगुप्त, अशोकादि चक्रवर्तियोंके समय उन्नतिके शिखरपर पहुच रहा था। एक समय वहां दशलाखसे ऊपर मनुष्य रहते थे। टाटा महाशय इस दानके लिये भारतवासीमात्रके कृतज्ञताभाजन हैं।

विदेशयात्राका विरोध—कलकत्तेके मारवाडी युवक बाबू कालीप्रसाद खेतानने उच्चश्रेणीकी शिक्षा पाई है। वे अब वैरिस्टरीकी शिक्षा पानेके लिये विलायतको रवाना हो रहे हैं। मारवाडी समाज इसका घोर विरोध कर रहा है। हमारी समझमें तो मारवाडी भाइयोंको चाहिए था कि उक्त युवकको पहले हीं अंगरेजी न पढने देते!

नये कालिज—बीकानेर नरेशने अपनी जुबिलीके उत्सवपर बीकानेरके हाईस्कूलको 'डूगरमेमोरियल कालेज' बना देनेकी आज्ञा दी है। एक कालिज

अमरावतीमें खुलनेवाला है। यह स्वर्गीय सम्राट् एडवर्डकी स्मृतिमें खोला जायगा। काशीमें हिवेट क्षत्रिय कालेजकी स्थापना हुई है और उसमें भिनगा नरेशने एक लाख रुपयेकी सहायता दी है। उधर कलकत्तेके मारवाडियोंने मारवाडीकालेज खोलनेके लिये ८ लाखका चन्दा किया है। देखते हैं, भारतवासियोंको उच्चश्रेणीकी शिक्षाकी आवश्यकताका बोध होने लगा है।

प्रदीपके प्रकाशमें बाधा—देवबन्दसे ज्योतीप्रसादजीके द्वारा जो 'जैनप्रदीप' निकलनेवाला है, उससे ५००) की जमानत मागी गई थी। सुनते हैं, इस वाधाको खडी करनेमें रत्नमालाके पृष्ठपोषक और सेवकोंने जीजानसे कोशिश की थी। परन्तु प्रदीप शीघ्र निकलेगा। जमानतके रुपये जमा करा दिये गये हैं।

मारवाड़ी विद्यालय—बम्बईमें जो मारवाडी विद्यालय खुलनेवाला था, वह खुल गया। लगभग दो लाखके चन्दा हुआ है।

महाविद्यालयका स्थानपरिवर्तन—जैनगजटमें एक महाशय लिखते हैं–महाविद्यालयको या तो खुर्जा भेज देना चाहिए या फीरोजावाद! अच्छा है, हमारी समझमें तो जैनियोंकी जितनी सस्थाए है उन सबके लिये खुर्जा और फीरोजावादसे कोई अच्छा स्थान नहीं हो सकता। लगे हाथों मथुराके अधिवेशनमें इस विषयका भी प्रस्ताव पास कर डालना चाहिए।

सेठोंकी महासभा—सेठोंकी जैन महासभाका वार्षिक अधिवेशन मथुरामें जम्बूस्वामीके मेलेपर ता० ३० अक्टूबरसे २ नवम्बरतक होनेवाला है।

विद्यार्थियोंकी आवश्यकता—वर्धाके दिगम्बर जैन बोर्डिंगमें भरती करनेके लिये १५ विद्यार्थियोंकी आवश्यकता है। पहली अग्रेजीसे म्याट्रिक तकमें पढनेवाले विद्यार्थियोंको बोर्डिंगके सैक्रेटरी श्रीयुक्त जयचन्द्र श्रावणे, वर्धा (सी पी) के पतेसे दरख्वास्त भेजना चाहिये।

आश्रमका वार्षिकोत्सव—श्री ऋषभब्रह्मचार्याश्रम हस्तिनापुरका वार्षिकोत्सव कार्तिक शुक्ला ८ से १४ तक बडे भारी समारोहके साथ होगा। इसी अवसरपर हस्तिनापुर तीर्थका वार्षिक मेला और वहसूमामें जो कि वहासे २॥ मील है वेदी प्रतिष्ठाका उत्सव भी होगा।

एक और नया पत्र—इटावाकी जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाकी ओरसे 'जैनतत्त्वप्रकाश' नामका मासिकपत्र आगामी जनवरीसे निकलनेवाला है। उसका डिक्लेरेशन हो चुका है।

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासन जिनशासनम्॥

आठवां भाग] आश्विन, श्रीवीर नि० सं० २४३८ [वारहवां अंक.

जैन लाजिक (न्याय)।

(२)

भद्रबाहु (ईस्वी सन्के ४३३ वर्ष पूर्वसे ३५७ तक)

९. तर्कशास्त्रके कुछ सिद्धान्तोंका दशवैकालिक सूत्रकी जो दशवैकोलिकनिरूक्तिके नामसे प्रसिद्ध प्राकृत टीका है उसमें विशद्रूपसे विवेचन किया गया है। यह टीका प्राचीन गोत्रके भद्रबाहुकी बनाई हुई है। ४५ वर्ष तक इस महात्माने सांसारिक जीवन व्यतीत किया, १८ वर्ष व्रतपालन करनेमें बिताए और १४ वर्ष तक जैनियोंने उनको युगप्रधान माना। ये श्रुतकेवली थे अर्थात् दृष्टिवादके १४ पूर्वोंके पारंगत थे।

१ विशेषके लिए देखो डाक्टर जे क्लाटकी 'खरतरगच्छ पट्टावली' सितम्वर सन् १८८२ की इंडियन एटिकुवेरी जिल्द ११ के पृष्ठ २४७ में, वेवरसाहवकी दूसरी किताबके पृष्ठ ८८८ में, पिटरसन साहवकी हस्तलिखित संस्कृत ग्रथोंकी चौथी रिपोर्टके पृष्ठ १३४ में और डा० हरमन जेकोवी द्वारा सम्पादित कल्पसूत्रकी भूमिका पृष्ठ ११–१५ में।

२. जयसोमसूरिके विचाररत्नसग्रहमें जिसका पिटरसन साहवने अपनी संस्कृत हस्तलिखित ग्रथोंकी तीसरी रिपोर्टके पृष्ठ ३०७–३०८ में उल्लेख

१०. उपर्युक्त घटनाए उक्त टीकाकारके जीवनमें प्रायः सर्वमान्य है। हा समयके बारेमें कि वे कब हुए कुछ सन्देह जरूर मालूम होता है। श्वेताम्बरियोंके ग्रन्थोंके अनुसार वे ईस्वी सन्से ४३३ वर्षपूर्वमें पैदा हुए और ३५० वर्षपूर्वमें उनका देहान्त हुआ। किन्तु दिगम्बरियोंका मत है कि दो भद्रबाहु थे। प्रथम तो महावीरस्वामीके निर्वाणसे १६२ वर्ष पीछे तक अर्थात् ईस्वी सन्से ३६५ वर्ष पूर्वतक रहे और द्वितीय[१] भद्रबाहु महावीरस्वामीके निर्वाणसे ५१५वर्ष पीछे तक अर्थात् ईस्वी सन्से १२ वर्ष पूर्वतक रहे। वे स्पष्टतया नही कहते कि इन दोमेंसे कौनसे भद्रबाहु दशवैकालिक निरुक्तिके कर्त्ता थे परन्तु इस बातको मानते है कि दूसरे भद्रबाहु वर्तमानके कई जैन-ग्रन्थोंके कर्त्ता थे। श्वेताम्बरशास्त्र दूसरे भद्रबाहुका कोई भी जिकर नहीं करते है, परन्तु ऋषिमंडल[४]प्रकरणवृत्तिमें जो श्वेताम्बरियोंका

किया है, भद्रबाहु युगप्रवार या युगप्रधानोंमें गिने गए है। ३. इस पद्यके सम्बन्धमें विशेष जाननेके लिए आर जी भाडारकरकी १८८३–१८८४ की रिपोर्टके पृष्ठ १२२ को देखो।

१ वेबर साहबकी दूसरी किताबके पृष्ठ १८८ में जिसमें महामहोपध्याय धर्मसागर गणिका गुर्वावली सूत्र दिया है हम सम्भूतिविजय और भद्रबाहुके विषयमें 'उभावपि श्रुतपदधरौ' देखते हैं।

२ अपश्चिम पूर्वभृता द्वितीय श्रीभद्रबाहुश्च गुरु शिवाय ॥
कृत्वोपसर्गादिहरस्तव यो ररक्ष सङ्घ धरणार्च्चिताङ्घ्रि ॥ १२ ॥
निर्यूढसिद्धान्तपयोधिराप स्वरयश्चवीरात् खनगेन्दुवर्षे ॥ १३ ॥
तयोर्विनेय कृतविश्वभद्र श्रीस्थूलभद्रश्च ददातु शर्म्मं ॥ १४ ॥
(यशोविजयग्रंथमालामें प्रकाशित मुनिसुन्दरसूरिकी गुर्वावली पृष्ठ ५)

३ अक्टूबर १८९१ और मार्च १८९२ की इडियन एटिक्वेरीमें सरस्वतीगच्छकी पट्टावली देखो।

४ सन् १८८३–८४ की डाक्टर आर जी भांडारकरकी सस्कृत हस्तलिखित ग्रथोंकी रिपोर्ट पृष्ठ १३८। यदि भद्रबाहु वास्तवमें उस वराहमिहरके भाई

एक टीका ग्रन्थ है, तथा चतुर्विंशति प्रबन्धमें यह लिखा है कि भद्रबाहु दक्षिणके प्रतिष्ठान नगरमें रहते थे और वराहमिहरके भाई थे। वराहमिहरका होना प्रायः ईस्वी सन्से एक शताब्दीपूर्वमें माना जाता है। अतएव श्वेताम्बरियोंके कथनानुसार भी यह सम्भव है कि दशवैकालिकनिरुक्ति उन भद्रबाहुकी रची हुई है जो जन साधारणके विचारानुसार ईस्वी सन्के प्रारम्भ समयमें हुए।

११ अस्तु, दशवैकालिक निरुक्तिके कर्त्ता कभी हुए हों; परन्तु उन्होंने निम्नलिखित शास्त्रोंकी टीकाएँ (निरुक्तियां) भी लिखी हैं— आवश्यकसूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र, आचारागसूत्र, सूत्रकृतांगसूत्र, दशाश्रुतस्कंधसूत्र, कहासूत्र, व्यवहारसूत्र, सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र, ऋषिभाषितसूत्र।

१२ भद्रबाहुने तर्कशास्त्रकी रचनाके अभिप्रायसे अपने ज्ञानको विस्तरित नहीं किया था, किन्तु उनका अभिप्राय जैनधर्मके कुछ सिद्धान्तोंकी सत्यता प्रगट करनेका था। इसके लिए उन्होंने अपनी दशवैकालिक निरुक्तिमें दश अन्यय वाक्योंकी रचना की और इससे यह दिखलाया कि जैनमतके धार्मिक सिद्धान्त इसकी कसोटीपर कैसे ठीक ठीक उतरते हैं।

थे जो विक्रमादित्यके दरबारके ९ रत्नोंमेंसे थे, तो वे, जरूर छठी शताब्दीमें हुए होंगे। परन्तु मुनि धर्मविजय व इन्द्रविजयका मत है कि भद्रबाहुके भाई वे वराहमिहर नहीं थे जो विक्रमादित्यके दरबारके ९ रत्नोंमेंसे थे।

१ ते उ पइण्ण विभत्ती हेउ विभत्ती विवक्ख पडिसेहो।
दिट्ठंतो आसंका तप्पडिसेहो निगमणं च ॥ १४२ ॥

(दशवैकालिक निरुक्ति पृष्ठ ७४ धनपतसिंहके संरक्षणमें निर्णयसागर प्रेस बम्बई द्वारा प्रकाशित, तथा दशवैकालिक निरुक्तिकी डाक्टर ल्यूमनकी आवृत्ति पृष्ठ ६४९)

१३ इसका दृष्टान्त इस प्रकार है:—

(१) प्रतिज्ञा—अहिंसा परमोधर्मः अर्थात् अहिंसा परम-धर्म है।

(२) प्रतिज्ञा विभक्ति—जैन शास्त्रोंके अनुसार अहिंसा परम धर्म है।

(३) हेतु—अहिंसा परमधर्म है कारण कि जो हिंसा नहीं करते, वे देवोंके प्रिय होते हैं और उनका आदर सत्कार करना मनुष्योंका धर्म है।

(४) हेतु विभक्ति—जो लोग हिंसा नहीं करते, उनके अतिरिक्त अन्य कोई स्वर्गादि उत्तम स्थानोंमें नहीं रह सकते।

(५) विपक्ष—किन्तु जो लोग जैनशास्त्रोंकी निन्दा करते हैं और हिंसक हैं, वे भी देवताओंके प्रिय कहे जाते हैं और उनका आदर सत्कार करना लोग धर्म समझते है और जो वलिदानमें हिंसा करते है वे सर्वोत्तम स्थानोंमें निवास करनेवाले कहे जाते है। दृष्टान्तके तौरपर मनुष्य अपने ससुरको धर्म समझकर नमस्कार करते हैं चाहे वह जैन शास्त्रोंका निन्दक हो और हिंसक भी हो। इसके अतिरिक्त जो यज्ञादि करते हैं वे देवोंके प्रिय कहे जाते है।

(६) विपक्षप्रतिषेध—जो लोग हिंसा करते है जो जैन शास्त्रोंमें वर्जनीय है, वे आदर सत्कार पानेके योग्य नहीं है और कदापि देवोंके प्रिय नहीं होसकते। जैसे अग्नि

शीतल नहा हो सकती वैसे ही वे भी देवोंके प्रिय नहीं हो सकते और उनका आदर विनय करना धर्म नहीं हो सकता। बुद्ध, कंपिल और दूसरे जो वास्तवमें पूजे जानेके योग्य नहीं है उन्होंने अपने आश्चर्यजनक उपदेशों द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त की, किन्तु जैन तीर्थकरोंकी उनके सत्यार्थ-वक्ता होनेके कारण पूजा की जाती है।

(७) दृष्टान्त—अरहंत और साधु लोग भोजन भी अपने हाथोंसे नहीं बनाते हैं। क्योंकि उसके बनानेमें हिंसा होती है। वे गृहस्थोंके यहां आहार लेते है।

(८) आशका—जो भोजन गृहस्थ बनाते है वह साधु तथा गृहस्थ दोनोंके लिए ही होता है। इस लिये यदि आग वगैरहमें जीव मर जाएँ तो उस हिंसा और पापके भागी गृहस्थी और मुनि दोनों ही होते हैं अतएव दृष्टान्त ठीक नहीं है।

(९) आशंकाप्रतिषेध—भोजनके लिए मुनि गृहस्थोंके यहां विना किसी प्रकारकी सूचनाके अनियत समयपर जाते है। अतएव यह कैसे कहा जासकता है कि गृहस्थोंने साधु मुनियोंके लिये भोजन बनाया था। इस लिए यदि कुछ हिंसा होती है तो साधु उसके भागी नहीं होते।

(१०) निगमन—अतएव अहिंसा परम धर्म है क्योंकि जो हिंसा नहीं करते वे देवोंके प्रिय होते हैं और उनका आदर विनय करना मनुष्योंका धर्म है।

(१४) स्याद्वाद—भद्रबाहु अपनी 'सूत्रकृतांग निरुक्ति' में जैन न्यायके एक दूसरे सिद्धान्त 'स्याद्वाद' अथवा सप्तभंगीनय-का कथन करते हैं।

(१५) स्याद्वादको वे इस तरहसे कहते हैः--

१ स्यादस्ति, २ स्यान्नास्ति, ३ स्यादस्ति नास्ति, ४ स्यादवक्तव्य, ५ स्यादस्ति अवक्तव्य, ६ स्यान्नास्ति अवक्तव्य, ७. स्यादस्तिनास्ति अवक्तव्य। (क्रमशः)

दयाचन्द्र गोयलीय, बी. ए.

विनोद-विवेकलहरी

(४)

मेरा मन।

मेरा मन कहा गया? उसे किसने चुरा लिया? जहां वह था वहां तो नहीं है। जहा रक्खा था जब वहा नहीं है, तब अवश्य ही किसीने चोरी की है। सातों पृथिवी खोज डालीं, परन्तु कहीं भी मेरे 'मनचोर' का पता नहीं लगा। ऐसा कौन जबर्दस्त चोर है, जिसने उसको चुराया?

एक मित्र महाशय बोले, जरा रसोईघरमें तो जाकर तलाश करो, शायद वहा तुम्हारा मन पडा हो। मैंने सोचा, रसोईघरमें

---

१ असियसय किरियाण अक्किरियाण च होइ चुलसीति।
अण्णाणिय सत्तट्ठी वेणइयाण च बत्तीसा ॥ २१ ॥
(सूत्र कृतागनिरुक्ति, स्कंध १, अध्याय १२, पृष्ठ ४४८, भीमसी माणिकद्वारा सम्पादित तथा निर्णयसागर,प्रेस बम्बई द्वारा मुद्रित)
धनपतसिंह द्वारा बनारसमें प्रकाशित स्थानागसूत्रके पृष्ठ २१६ से मिलान करो।

२ कावेल तथा गफ साहब द्वारा अनुवादित सर्वदर्शनसग्रह पृष्ठ ५५ से मिलान करो। स्याद्वाद अथवा सप्तभगीनयके पूर्ण विवरणके लिए देखो विमलदासकी बम्बईमें मुद्रित 'सप्तभगी तरगिणी'।

मेरे मनका पड़ा रहना कोई आश्चर्यकी बात नहीं। जहां पायसान्न (खीर), पुलाव और हलुवाकी सुगन्धि, क्षुधित पुरुषोंको उन्मत्त करती है और जहांपर बटलोई—समारूढा अन्नपूर्णाकी अवक्तव्य ध्वनि हुआ करती है, अवश्य ही वहांपर मेरा मन पड़ा होगा। जहां शाकराज आलू घृताभिषेक हो चुकनेपर झोलगंगामें स्नान करके मृत्तिकामय, कांस्यमय, काचमय अथवा रजतमय सिंहासनपर विराजमान होते हैं, वहां यदि मेरा मन प्रणत होकर पड़ा हो—भक्तिरसमें सराबोर होकर उस तीर्थस्थानको न छोड़ना चाहता हो, तो कुछ विचित्रताकी बात नहीं। जिस स्थानपर पाचकरूपी विष्णुके द्वारा पूड़ीरूप सुदर्शन चक्र छोड़े जाते हैं, वहा मेरा मन विष्णुभक्त बनकर जा पहुंचता है, अथवा जिस आकाशमें पूड़ी-चन्द्रका उदय होता है, वहां मेरा मन राहु बनकर उसे ग्रास करना चाहता है—और लोग चाहे जिसको कहें, पर मैं तो पूड़ीको ही अखंडमंडलाकार कहता हूं—और जहा मिठाईरूप शालिग्राम विराजमान रहते है, मेरा मन वहीं पूजक बनकर उपस्थित हो जाता है। पं० द्वारकादत्तके घरमें जो रामदेई नामकी रसोई करनेवाली थी, देखनेमें यद्यपि वह बहुत ही बदसूरत थी और उमर भी उसकी पचाससे कम नहीं थी तथापि वह भोजन अच्छा बनाती थी और परोसनेमें भी मुक्तहस्ता थी इसलिए मेरा मन उससे प्रेम करनेको तैयार हुआ था। परन्तु रामदेईने अपना सफर जल्दी तय कर डाला इसलिए यह शुभकार्य सम्पादित न हो सका।

मैं मित्र महाशयकी सम्मतिके अनुसार रसोईघरमें मनकी बहुत खोज की, परन्तु वहां कुछ भी पता नहीं चला। मिष्टान्न हलुवा आदि अधिष्ठाता देवताओंसे पूछनेपर उन्होंने भी साफ जवाब दे दिया कि हममेंसे किसीने भी तुम्हारा मन नहीं चुराया।

मित्रने कहा—अच्छा अब एकबार प्रसन्न ग्वालिनीके यहां जाकरके तो तलाश करो। प्रसन्नके साथ मेरा कुछ प्रणय अवश्य है, परन्तु वह प्रणय केवल गव्यरसात्मक है। प्रसन्न देखनेमें मोटी ताजी है। उसके गालोंपर यद्यपि ललाई झलकती है, परन्तु उमर उसकी चालीससे कम नहीं। उसके दांतोंमें मिस्सी, मुखमें हँसी और मस्तकपर एक चमकती हुई छोटीसी टिकली शोभा देती है। जब वह चलती है, तब रसकी हँसीको रास्तेमे बखेरती जाती है, और उससे मै अपनी झोली भरता जाता हूं। बस इसीसे लोग मेरी निन्दा करते है। जिस तरह पुजारी ब्राह्मणोंके उपद्रवसे बगीचेमें फूल नहीं फूल पाते है, उसी तरह निन्दकोंके उपद्रवसे मेरा मुख भी प्रसन्नके सामने विकसित नहीं हो पाता है। नहीं तो गव्यरसका और काव्यरसका खूब ही देनलेन चलता। इससे मैं अपने लिये चाहे दुखी होऊं चाहे नहीं, परन्तु प्रसन्नके लिये अवश्य ही दुखी रहता हू। क्योंकि प्रसन्न सती साध्वी और पतिव्रता है। परन्तु कठिनाई ऐसी आपड़ी है कि यह बात भी मै किसीसे मुँह खोलकर नहीं कह सकता हू। साहस करके एक बार मैंने यह बात कही थी, तो मुहल्लेके एक नष्टबुद्धि लड़केने इसका उलटा ही अर्थ कर डाला था। वह बोला था—प्रसन्न 'है' इसलिए उसे 'सत्' वा 'सती' कहते है, वह साधु ग्वालेकी स्त्री है, इसलिये 'साध्वी' है, और विधवावस्थामें भी वह पतिरहित नहीं है इसलिए महती पतिव्रता हैं। इस विषयमें और अधिक क्या कहूं? जिस अशिष्ट बालकने यह घृणित अर्थ किया था, उसके गालोंपर मैने चपेटाघात भी किया, किन्तु उससे मेरा कलंक नहीं धुला।

जब लिखनेको बैठा हूं, तब साफ साफ ही क्यों न लिख डालूं?

मालूम होता है, मेरा प्रसन्नपर कुछ अनुराग है। इसके कई कारण है—एक तो प्रसन्न जो दूध देती है, वह विना पानीका होता है और दाम भी उसका कम होता है, दूसरे वह कभी कभी मुझे दूध मलाई और मक्खन यों ही विना मूल्य दे जाती है, तीसरे एक दिन उसने मुझसे पूछा था क्योंजी, तुम्हारे यहां ये कागज पत्तरसे क्या रक्खे है? मैने कहा इनमें बहुत अच्छी अच्छी बातें लिखी है,—क्या तुम सुनोगी? वह बोली—अच्छा पढ़ो, सुनूगी। मैने अपने दफ्तरके कई एक निबन्ध पढ़कर सुनाये। उसने बैठकर सुन लिये। यह गुण क्या छोटा मोटा है? इतने गुणसे कौन लिपि-व्यवसायी व्यक्ति वशीभूत न होगा? प्रसन्नके गुणोंका मै और कहां-तक वर्णन करूं, उसने मेरा कहनेसे अफीम देवीकी भक्ति करना भी पारम्भ कर दी है।

इन्हीं सब गुणोंसे मेरा मन कभी कभी प्रसन्नके घरके चारों ओर चक्कर लगाता है। उसके आसपास ही नहीं, वह उसकी गोशालाके द्वारपर जाकर भी ढूकता है। क्योंकि मेरा जिस प्रकारका अनुराग प्रसन्नके साथ है, उसकी मंगला नामका गायपर भी उसी प्रकारका है। एक दूध मलाई और मक्खनकी आकर है और दूसरी उसकी दान-कर्त्री है। गंगाने विष्णुपदसे जन्म ग्रहण किया था, यह ठीक है, परन्तु लाये थे उसको भगीरथ। मंगला मेरे लिये विष्णुपद और प्रसन्न भगीरथ है, इसलिए मै दोनोंहीपर बराबर प्रेम करता हूं। प्रसन्न और उसकी गाय दोनों हीं सुन्दरी, दोनों ही स्थूलांगी, दोनों ही लावण्यमयी और दोनों ही घटोध्नी है। उनमेंसे एक गन्धरस सृजन करती है और दूसरी हास्यरस, और मैं दोनोंहीके निकट विना मूल्य विक चुका हूं।

किन्तु इस समय तलाश करके देखा, प्रसन्नके घरके आसपास अथवा उसकी गोशालामें भी मेरे मनका पता न चला। तब मेरा मन कहा गया?

रोते रोते घरसे बाहर निकला। रास्तेमें देखा कि, एक युवती पानीके घड़ेको कांखमें दबाये हुए आ रही है। उसकी वायुके झोकोंसे दोलायमान अलकावली, काली भौंहें और नेत्रोंके अतिशय कृष्णवर्ण चंचल तारे देखकर ऐसा भास हुआ कि, कमलोंके वनमें बहुतसे भ्रमर उड़ रहे हैं। गमन करते समय उसके हिलते हुए अंगोंको देखकर ऐसा बोध हुआ, मानो लावण्यकी नदीमें छोटी २ लहरें उठ रही हैं। वह एक एक पद क्या रखती थी, हृदय पजरकी हड्डियोंको तोड़ती हुई जाती थी। उसे देखकर मैंने समझा, इसीने मेरा मन चुराया है। इस भावनासे मै उसके पीछे पीछे हो लिया। उसने फिरकर देखा और कुछ रुष्ट होकर पूछा—यह क्या जी? तुम मेरे साथ क्यों आ रहे हो?

मैंने कहा—तुमने मेरा मन चुराया है।

युवतीने तत्काल ही मुझे कटूक्तिमें गाली सुनाई। बोली—मैंने तुम्हारे मनकी चोरी तो नहीं की। अलबतह तुम्हारी बहिनने तुम्हारा मन मुझे जॉच करनेके लिये दिया था। परन्तु मैंने तो उसे उसी समय कीमत बतलाकर वापिस कर दिया था। तुम उसीके पास जाकर तलाश करो।

उस दिनसे मैं सीख गया। मनकी खोजमें ऐसी रासलीला करनेका मैंने फिर कभी यत्न नहीं किया और मन ही मन यह समझ लिया कि, इस ससारमें मेरा मन कहीं भी नहीं है। हँसीकी बात नहीं, मैं सच कहता हू कि

किसी भी वस्तुमें मेरा मन नहीं। शारीरिक सुख स्वच्छन्दतामें मेरा मन नहीं, जो हँसी दिल्लगी मुझे प्यारी थी, उसमें मेरा मन नहीं, मेरी कुछ फटी पुरानी पुस्तकें थीं, उनमें रहा करता था, पर अब उनमें भी मेरा मन नहीं। रहा धनसंग्रह, सो उसमें न कभी पहले था और न अब है। इस तरह किसी भी वस्तुमें मेरा मन नहीं है। तब मेरा मन कहा गया ?

जो लघुचेता है अर्थात् जिनका चित्त छोटा है, उनके मनके लिए बन्धन अवश्य चाहिए। नहीं तो उनका मन स्वच्छन्द होकर उड़ जाता है। मैने आज तक अपने मनको कहीं भी नहीं बाँधा, इसीलिए मैं देखता हूं कि अब मेरा मन किसी भी वस्तुमें नहीं है— न जाने कहां उड़ गया है। मै ठीक ठीक तो नहीं कह सकता कि इस संसारमें मैं किस लिए आया हूं तो भी ऐसा मालूम होता है कि मैं केवल मनको बँधवानेके लिए आया हूं। मै जबसे उत्पन्न हुआ हूं तबसे अबतक अपना ही रहा—दूसरेका नहीं हुआ, इसीलिए पृथिवीमें मुझे सुख नहीं। जो लोग स्वभावसे ही सर्वथा आत्मप्रिय है, वे भी विवाह करके और ससारी बन करके अपने स्त्रीपुत्रोंको आत्मसमर्पण कर देते हैं और इस कारण सुखी हो जाते है। यदि वे ऐसा न करते तो किसी भी प्रकारसे सुखी न हो सकते। मैने अच्छी तरहसे अनुसन्धान करके देखा है कि दूसरोंके लिए आत्मविसर्जन करनेके सिवा और कोई ऐसा उपाय नहीं जिससे स्थायी सुख मिल सके। धन यश और इंद्रियोंके विषयोंका सुख है सही, परन्तु वह स्थायी नहीं। ये सब वस्तुयें पहली बार जितनी सुखदायक होती है, दूसरी बार उतनी नहीं होतीं। तीसरी बार और भी अल्प सुखदायक होती हैं और धीरे धीरे अभ्यास

होजानेसे उनमें कुछ भी सुख नहीं रहता। साथ ही दो दुःखके कारण और भी उत्पन्न हो जाते है—एक तो अभ्यस्त वस्तुके सद्भावमें सुख न होकर अभावमें बहुत ही दुःख होता है और दूसरे अपरितोषणी-या आकाक्षाकी वृद्धिसे वेदना होती है। अतएव पृथिवीमें जितनी विपयवस्तुयें हैं, वे सब ही अतृप्तिकर और दुःखमूल है। यशकी अनुगामिनी निन्दा है, इन्द्रियसुखोंके अनुगामी रोग है, और धनकी अनुगामिनी हानि तथा चिन्ता है। सुन्दर शरीर जरा—ग्रसित हो जाता है, सुनाममें मिथ्या कलंक लग जाता है, धनको स्त्रीका जार भोगता है, और मान तथा प्रतिष्ठा मेघमालाके समान शरत्का-लके पीछे अदृश्य हो जाती है। विद्या तृप्ति नहीं देती, उलटी अन्धकारसे और भी गहरे अन्धकारमें पटक देती है। इस संसार-की तत्त्वजिज्ञासाको वह कभी निवारण नहीं कर सकती। क्या आपने कभी किसीसे सुना है कि मै धन कमाके सुखी या यशस्वी हुआ हू ? मै शपथ खाके कह सकता हू कि ऐसी बात आपसे कभी किसीने नहीं कही होगी। धन मानादिकी अकार्यकारिताका—निरर्थक-ताका इससे अच्छा प्रमाण और क्या हो सकता है ? बडे भारी आश्चर्यकी बात तो यह है कि ऐसे अकाट्य प्रमाणके होते हुए भी धन मानादिके लिए लोग प्राण देते फिरते है। इस बातका विश्वास कि ससारमें धनमानादि ही सारभूत है माताके दूधके साथ ही बच्चोंके हृदयमें प्रवेश कर जाता है। बच्चा देखता है कि पिता माता, भाई बहिन, अडौसी पड़ौसी, नौकर चाकर, शत्रु मित्र, आदि सब ही रातदिन हाय धन, हाय यश, हाय मान किया करते है। इस लिए वह भी मुंह बोलना सीखनेके पहले ही उसी मार्गपर चलना सीख लेता है। न जाने यह मनुष्यसमाज शास्वत

सुखके उपायका अनुसन्धान कब करेगा ? जितने विद्वान्, बुद्धिमान दार्शनिक, और संसारतत्त्वज्ञताकी डीग हाकनेवाले हैं वे सब मिल करके देखें कि पराए सुखोंकी बढ़वारी करनेके सिवा मनुष्यके सुखका और कोई उपाय है या नहीं ? मै मरकर भस्म हो जाऊगा मेरा नामतक लुप्त हो जायगा; परन्तु मै मुक्तकंठसे कहता हूं कि एक न एक दिन लोग मेरी बातको अवश्य समझेंगे कि मनुष्यके स्थायी सुखका इसके सिवा और कोई उपाय नहीं। इस समय जिस तरह लोग पागल होकर धनमानादिके पीछे दौड़ रहे है, एक दिन उसी तरह दूसरोंके सुखके लिए भी दौड़ेंगे। मै मरकर धूलमें भले ही मिल जाऊं, परन्तु मेरी यह आशा एक दिन सफल अवश्य होगी। वह कब सफल होगी? अफसोस कि आज इसका कोई निश्चित उत्तर देनेवाला नहीं।

बात बहुत पुरानी है। लगभग ढाई हजार वर्ष पहले महात्मा महावीर और शाक्यसिंह इस बातको बीसों प्रकारसे समझा गए है। उनके पीछे और भी सैकडों हजारों महात्माओंने सैकड़ों हजार बार यह शिक्षा दी है। परन्तु लोग किसीसे भी न सीखे—किसी भी तरहसे वे अपने सामनेसे इस धन अभिमानके इन्द्रजालको न हटा सके। अब हमारे देशमें अगरेजी शासन प्रतिष्ठित हुआ है। इसके प्रारंभहीसे इस विषयमें बड़ा भारी गोलमाल मच गया है। अंगरेजी शासन, अंगरेजी सभ्यता, और अंगरेजी शिक्षाके साथ साथ बाह्यसम्पत्तिके अनुरागका भी हमारे यहां शुभागमन हुआ है। अंगरेज जातिको बाह्यसम्पत्तिसे बहुत ही प्रेम है। यह प्रेम ही अंगरेजी सभ्यताका प्रधान चिह्न है। जबसे यह जाति यहां आई तबहीसे इस देशकी बाह्यसम्पत्तिने महत्त्वका रूप धारण कर लिया है। हम भी उसका (अंगरेज जातिका) अनुसरण करके और सब कुछ भूलते

जाते हैं। अब भारतवर्षमें सिन्धुसे ब्रह्मपुत्र तक केवल वाह्यसम्पत्तिकी पूजाकी धूम मच रही है। देखो, वाणिज्य—विस्तार कितनी तेजीसे हो रहा है? देखते नहीं हो, रेलके जालसे आर्यभूमि कैसी उलझाई जा रही है? जानते हो, टेलीग्राम टेलीफोन बेतारके तार आदि कैसी अनोखी वस्तुयें हैं? परन्तु कमलाकान्त पूछता है कि तुम्हारे इस रेलजालसे और टेलीग्राम आदिसे क्या मेरा मानसिक सुख बढ़ जायगा? ये चीजें क्या मेरे खोये हुए मनको खोजकरके ला देंगीं? किसीके मनकी आगको बुझा देंगीं? जो कृपण धनकी प्याससे मर रहा है उसकी प्यास बुझा देंगीं? अपमानितका अपमान लौटा देंगीं? रूपोन्मत्तकी गोदमें रूपवती ललनाको लाकर बिठा सकेंगीं? यदि नहीं, तो तुम अपने रेलजाल टेलीग्राफ आदिको उखाडकर पानीमें फेंक दो—कमलाकान्त शर्माकी समझमें ऐसा करनेसे कोई हानि नहीं होगी।

अंगरेजी या हिन्दीके संवादपत्र, सामयिकपत्र, लेक्चर, डिबेट आदि जो कुछ हम पढ़ते या सुनते हैं, उनमें इस वाह्यसम्पत्तिके सिवा और किसी भी विषयकी कोई चर्चा ही नहीं रहती। हर हर बम् बम्। वाह्यसम्पत्तिकी पूजा करो। हर हर बम् बम्। रुपयोंकी राशिपर रुपये चढ़ाओ। टका भक्ति, टका मुक्ति, टका नुति, टका गति, टका धर्म, टका अर्थ, टका काम और टका मोक्ष। खबरदार उस मार्गपर मत चलना जिससे देशका धन कम हो, परन्तु देशका धन बढानेके मार्गपर आख बन्द करके चले जाओ। हर हर बम् बम्। धनको बढ़ाओ, धनको बढाओ। रेल औरताररूपी मन्दिरके धन-महादेवको प्रणाम करो। वही काम करो, जिससे धन बढे। आकाशसे धनकी वर्षा होने दो। रुपयोंकी झनझनाटसे भारतवर्षको पूर दो। रुपयोंके सिवा मन और क्या वस्तु है? रुपयोंके सिवा

हमारा कोई मन नहीं। हमारा मन तो टकसालमें ढाला जाता है। रुपया ही बाह्यसम्पत्ति है। हर हर बम् बम्। इसी बाह्यसम्पत्तिकी पूजा करो। इस पूजा या यज्ञके ताम्रश्मश्रुधारी अंगरेज पुरोहित है, एडमस्मिथ पुराण और मिल तन्त्रमेंसे इस पूजाके मन्त्र पढ़े जाते है। इस महोत्सवमें अंगरेजी संवादपत्र ढोल और हिन्दी संवादपत्र झल्लरी बजाते है, शिक्षा और उत्साहका नैवेद्य चढ़ाया जाता है और हृदयरूपी बकरेका बलि दिया जाता है। इस पूजाका फल जानते हो क्या है? इस लोक और परलोकमें अनन्त नरक! तब आओ, हम सब मिलकर बाह्यसम्पत्तिकी पूजा करें। आओ, वंचनारूपी बिल्वदलको यशोगंगाके जलसे धोकर, और उसपर मिष्टवाणीरूपी चन्दन छिड़ककर इस महादेवकी पूजा करें। बोलो भाई, हर हर बम् बम्! हम बाह्यसम्पत्तिकी पूजा करते हैं। बजाओ भाई ढोल, ढम ढम ढम! बजाओ झल्लरी, टन् टन् टन्! आइए पुरोहित महाशय, पढ़िए मन्त्र और डालिए हमारे इस बहुत कालके पुराने घृतको स्वाहा स्वधा बोलकर अग्निमें। कहां गये यूटीलिटेरियन महाशय! बकरा उछलकूद मचा रहा है, एक बार बाबा पंचानन्दका नाम लेकर इसे एक ही हाथमें क्यों साफ नहीं कर डालते? हर हर बम् बम्! कमलाकान्त खडा है, इसे थोड़ासा प्रसाद देकर तुम स्वच्छन्दतासे पूजा करो।

पूजा करनेमें कोई हानि नहीं, शौकसे करो, परन्तु मैं जो दो चार बातें जानना चाहता हूं उन्हें तो समझा दो। तुम्हारी इस बाह्यसम्पत्तिसे कितने पुरुष बुरेसे भले हुए है? कितने अशिष्ट शिष्ट हुए है? कितने अधर्मी धर्मात्मा बने है? और कितने अपवित्र पवित्र हुए है? मेरी समझमें तो एक भी नहीं। और यदि ऐसा है, तो तुम्हारी यह सम्पात्ति मुझे नही चाहिए। मैं हुक्म देता हूं कि इसे भारतवर्षसे उठाकर फेंक दो।

तुम्हारा मतलब मै समझे बैठा हूं। तुम चाहते हो कि उदर नामका जो बड़ा भारी गड्ढा है, वह प्रतिदिन खूब भरा जावे। मै कहता हू, यह अच्छी बात है, परन्तु इसके लिए इतनी धूम धामकी जरूरत नहीं। इस गड्ढेको भरनेके लिए तुम सब इतने व्यस्त रहते हो कि उसके आगे और सब बातोंको भूल गये हो। मेरी समझमें यदि इस गड्ढेका एक कोना खाली भी रहे तो हर्ज नहीं, परन्तु चित्तको इसके सिवा दूसरी ओर अवश्य लगाना चाहिए। गड्ढेको भरना दूसरी बात है और मनका सुख दूसरी बात है। मानसिक सुख उससे कुछ भिन्न ही वस्तु है। उसकी वृद्धिका क्या कोई उपाय नहीं हो सकता ? जब तुम इतना प्रयत्न करते हो तब क्या मनुष्य मनुष्यमें प्रेम बढ़ानेके लिए कोई प्रयत्न नहीं कर सकते ? थोड़ीसी अकल लड़ाकर देखो, नहीं तो याद रक्खो सब कुछ धूलमें मिल जाएगा।

मै हमेशासे केवल अपने गड्ढेहीको भर रहा हू। दूसरोंके लिए मैंने एक दिन भी कभी चिन्ता नहीं की। इसी लिए मै सब कुछ खोके बैठा हू। ससारमें मुझे सुख नहीं और पृथिवीमें मेरे रहनेका कोई प्रयोजन नहीं। दूसरेका बोझा अपने सिरपर क्यों लू, यह सोचकर मैं संसारी नहीं बना था। उसका फल यह हुआ कि अब कहीं भी मेरा मन नहीं है—मेरा मन लापता है। हाय। मै सुखी नहीं हुआ। होता कैसे ? जब मैं दूसरोंके किसी काममें ही नहीं आया, तब सुखपर मेरा अधिकार ही क्या है ?

परन्तु इससे तुम यह न समझ लेना कि हमने विवाह कर लिया है, इसलिए हम सुखी हो गए हैं और हम सुखके अधिकारी हैं। यदि

पारिवारिक स्नेहके प्रभावसे तुम्हारी आत्मप्रियता लुप्त नहीं हुई, यदि विवाह बन्धनसे तुम्हारा चित्त मार्जित नहीं हुआ और यदि अपने परिवारपर प्रेम करके तुम मनुष्यजातिपर प्रेम करना नहीं सीखे तो तुमने व्यर्थ ही विवाह किया; केवल एक झगड़ा मोल ले लिया। इन्द्रियोंकी परितृप्ति अथवा पुत्रमुख निरीक्षणके लिए विवाह नहीं है। यदि विवाह-संस्कारसे मनुष्यचरित्रका उत्कर्ष नहीं हो सकता, तो उसे निरर्थक ही समझना चाहिए। इन्द्रिया अभ्यासकी वशवर्तिनी है। अभ्याससे वे सब शान्त रह सकती है। बल्कि मैं तो यहां तक कहता हूं कि मनुष्यजाति अपनी इन्द्रियोंको वशीभूत करके पृथिवीसे लुप्त भले ही हो जाय, परन्तु जिस विवाहसे प्रेमशिक्षा नहीं हो, उस विवाहकी अवश्यकता नहीं।

अन्तमें सब लोगोंसे कमलाकान्त हाथ जोड़कर पूछता है कि क्या आपमेंसे कोई सज्जन कमलाकान्तका विवाह कर देनेका प्रयत्न कर सकते है ?

श्रीकमलाकान्त शर्मा।
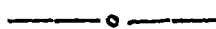
जीवदया।

प्रिय दयाशय महोदयवर, यह सभा प्रार्थना करती है कि सब सज्जन महाशय निम्नलिखित उद्देश्योंको याद रक्खें, और इनको वर्तावमे लावें—

(१) किसी जीवकी छोटा हो, या बड़ा हो हिंसा न करो, क्यों कि सबको हमारी तुम्हारी तरह अपने अपने प्राण प्यारे है और सर्व जीवों (मनुष्यों व जानवरों) पर दयाभाव रक्खो।

(२) सर्व जीवोंको अपने प्यारे समझो। यदि तुम किसीको प्यार नहीं कर सकते हो, तो उससे घृणा भी मत करो। यदि घृणा करोगे तो तुम्हारा अत्यन्त शुद्ध चित्त भी गंदला हो जायगा।

(३) सर्व दुखी दरिद्री मनुष्योंको दयाभावसे भोजन, वस्त्र औषधी आदिका बराबर दान दो, और ऐसे ही बेजबान जानवरोंको भी यथायोग्य दान देकरसंतोषित करो। क्योंकि ये भी हमारे तुम्हारे समान जीवधारी हैं।

(४) गरीब बेजबान जानवरोंकी तरफ दयाभावके साथ अपना व्यवहार करो। क्योंकि वे अपना दुःख वचनसे स्वयं नहीं कह सकते है।

(५) जगतके महान् और सर्व हितकारी, पवित्र आत्माओंका विनीत भावसे सम्मान करो।

(६) दिनके उजालेमें भोजन करो। क्योंकि रात्रिमें भोजन करनेसे बहुतसे छोटे २ जीव भोजनमें आजाते है, जिससे हिंसा होती हैं और फिर उस भोजनके करनेसे बहुतसे रोग भी पैदा हो जाते हैं।

(७) हमेशा साफ और शुद्ध मोटे कपड़ेसे छानकर पानी पियो। क्योंकि जलमें बहुतसे छोटे छोटे जीव होते हैं। उनपर भी दया करना चाहिए।

(८) मास, मछली, परन्द, और अण्डे, आदि सब प्रकारके मासाहारका त्याग करो। क्योंकि इससे जीवहिंसा होनेके साथ साथ सैकडों रोग भी शरीरमें उत्पन्न हो जाते हैं, और तन्दुरुस्ती बिगड़ जाती है। इस बातको बड़े २ डाक्टर विद्वानोंने स्वीकार किया है।

(९) दूध, घृत, मिष्टान्न, मेवा, फलादिक फलाहारको ग्रहण करो, इससे शरीर नीरोग रहता है, और ताकत बढ़ती है।

(१०) शराब, अफीम, तम्बाकू, सिगरेट, और अन्य नशीली चीजोंको बिलकुल वर्तावमें न लाओ। क्योंकि इससे शरीर बिगड़ जाता है और फिजूल-खर्ची होती है।

जीवदयाप्रचारक- } अमोलकचन्द्र,
जैनसभा, फिरोजपुर केम्प। } असि० सैक्रेटरी।

तारन-पन्थ

(२)

[सातवें अङ्कसे आगे.]

अब हम इस बातका विचार करना चाहते हैं कि तारनपन्थके स्थापित होनेकी क्या अवश्यकता थी? तारनस्वामीने उसे क्यों स्थापित किया?

हम अपने 'भट्टारकमीमांसा' नामक लेखमें बतला चुके हैं कि प्रायः प्रत्येक धर्म और पन्थको समयकी परिस्थिति उत्पन्न करती है। जिस समय जिस बातकी आवश्यकता होती है, यदि उस समय उस आवश्यकताका अनुभवन करनेवाले थोड़े बहुत पुरुष उत्पन्न हो जाते है और प्रत्येक देश तथा प्रत्येक युगमें ऐसे पुरुष बहुधा उत्पन्न हुआ ही करते हैं, तो उनमेंसे कोई न कोई महात्मा उस आवश्यकताकी पूर्ति करनेका उद्योग करता है और यदि वह उद्योग पूरी शक्ति तथा पूरे अध्यवसायके साथ किया जाता है, तो उसके फलस्वरूप नये विचार सिद्धान्त या मतका प्रादुर्भाव होता है। भगवान् महावीर, बुद्धदेव, कबीर, नानक आदि जितने मतप्रवर्तक या मतोंके पुनरुज्जीवक हुए हैं विचार करनेसे मालूम होता है कि प्रायः वे सब ही अपने अपने समयकी आवश्यकता

ओंकी पूर्ति करनेके लिए हुए हैं। इतिहासका अध्ययन हमको बतलाता है कि उनके और और विचार चाहे जैसे रहे हों, परन्तु अपने समयकी किसी न किसी एक आवश्यकताकी पूर्ति उन्होंने जरूर ही की है।

तारनस्वामीके समयके इतिहासपर दृष्टि डालनेसे मालूम होता है कि अन्य पन्थप्रवर्तकोंके समान उन्होंने भी अपने पंथकी स्थापना एक विशेष आवश्यकताकी पूर्तिके लिए की थी। जैनियोंका वह समय–जब कि तारनस्वामी हुए है–कहता था कि हमको तारनस्वामीकी आवश्यकता है। समयकी यह माग जैनियोंके दोनों सम्प्रदायोंसे थी। आश्चर्यका विषय है–कि इस मागको दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंने लगभग एक ही साथ पूरी कर दी। उधर गुजरातमें तो लोंकाशाह नामके पुरुषने जन्म लिया और उसके थोड़े ही समय पीछे इधर दिगम्बरियोंमें तारनस्वामीका प्रादुर्भाव हुआ। लोंकाशाहने अपने समयकी आवश्यताको ढूंढिया पन्थकी नीव डालकर पूरी की और तारनस्वामीने तारनपन्थका उपदेश देकर पूरी की। इसी समय एक और महात्माका भी जन्म हुआ जिसने कि श्वेताम्बरियोंके सवेगी सम्प्रदायकी जड़ जमाई और इसने भी उक्त आवश्यकताकी ही पूर्ति की, परन्तु उक्त दोनों पुरुषोंसे इसके उद्योगका मार्ग भिन्न प्रकारका था। जब हम देखते है कि इन तीनों ही पुरुषोंका अविर्भाव लगभग एक ही समयमें हुआ, तब इतिहासके इस अपूर्व समयैक्यपर हमें आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता और इस

---

१ ढूंढिया पन्थकी स्थापना विक्रम सवत् १५०८ में मानी जाती है। तारनस्वामीका जन्म सवत् १५०५ में हुआ था, और छदमस्तवाणी नामक पुस्तकके लेखानुसार ५८ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने अपने मतका उपदेश देना प्रारभ किया था, इस लिए १५६३ के लगभग तारनपथकी स्थापना हुई होगी

चातका एक प्रकारसे निश्चय करना पडता है कि इन तीनों ही पन्थोंको प्रायः एक ही प्रकारकी आवश्यकताने उत्पन्न किया है।

वीतराग मार्गके प्रवर्तक जैनमुनियोंमें शिथिलाचार और प्रवृत्ति-प्रेमका प्रवेश कबसे हुआ, इस बातकी आलोचना हम 'भट्टारक मीमांसा' नामक लेखमें विस्तारके साथ कर चुके है, इसलिए उसे यहा फिरसे दोहराना नहीं चाहते, केवल इतना ही कह देना यथेष्ट समझते है कि यद्यपि विक्रमके सोलहवें शतकसे कई सौ वर्ष पहलेसे दिगम्बर-साधुओंमें शिथिलाचारकी मात्रा बढ़ रही थी, तथापि तब तक उसकी ओर लक्ष्य देनेवाले किसी समर्थ पुरुषका जन्म नहीं हुआ था। परन्तु सोलहवीं शताब्दीके प्रारंभमें जब यह शिथिलाचारता सीमाका भी उल्लघन कर गई—भट्टारक रूपधारी जैनमुनि जब जैनधर्मकी प्राणभूता वीतरागताका ही मूलोच्छेदन करनेमें तत्पर दिखलाई देने लगे, तब दिगम्बर सम्प्रदायमें ऐसे अनेक पुरुषोंका जन्म हुआ जिन्हें वीतरागमार्गकी यह दुर्दशा सहन न हुई और जिन्होने उक्त दुर्दशाको दूर करनेकी आवश्यकताका अनुभवन किया। तारनस्वामी उन्हीं पुरुषोंमेंसे एक थे।

उक्त अनेक पुरुषोंमें तारनस्वामीके सिवा और कौन कौन थे? इस प्रश्नके उत्तरमें यद्यपि हम उन पुरुषोंके नाम नहीं बतला सकते हैं, तो भी इतना कह सकते हैं कि ये वे ही पुरुष थे जिनके अमित उद्योगसे तेरहपन्थका प्रादुर्भाव हुआ था। यद्यपि ज्ञानप्रबोध नामके ग्रन्थके आधारसे जो कि एक साधारण श्रावकका लिखा हुआ है तेरहपन्थकी उत्पत्ति वि०संवत् १६८३ में बतलाई जाती है, और इस समय हम उसे अमान्य ठहरानेके लिए कोई प्रमाण भी नहीं दे सकते है तो भी

और सवेगी सम्प्रदाय भी विक्रमकी सोलहवीं शताब्दीमें प्रचलित हुआ है। इस तरह ये तीनों ही पन्थ सोलहवीं शताब्दीमें स्थापित हुए हैं।

जब हम सोलहवीं शताब्दीके दिगम्बर सम्प्रदायकी अवस्था, भट्टारकोंकी स्वेच्छाचारिताको रोकनेकी आवश्यकता और श्वेताम्बर धर्ममें तत्सदृश संवेगीपन्थके उदयका विचार करते हैं, तब हमें ऐसा भास होता है कि तेरहपन्थका उदय भी विक्रमकी सोलहवीं शताब्दीके भीतर ही हो चुका होगा और इसीलिए हमने लिखा है कि तारनस्वामीके साथ साथ पूर्वकथित आवश्यकताकी पूर्तिका उद्योग करनेवाले और भी अनेक पुरुषोंका प्रादुर्भाव हुआ था। यह बात दूसरी है कि उनके उद्योगका मार्ग तारनस्वामीके मार्गसे बिलकुल भिन्न था।

उस समय जो दशा दिगम्बर सम्प्रदायके गुरुओंकी थी, वही दशा श्वेताम्बर सम्प्रदायके यतियों या साधुओंकी भी थी। दोनों ही एक दूसरेसे बढ़कर थे। दोनों ही वीतरागमार्गके उद्देश्योंको भूलकर प्रवृत्तिमार्गके गहरे कीचड़में फँसते जाते थे, दोनों ही आत्मकल्याणके साधनभूत जिनमन्दिरों और मठोंको मन्त्र तन्त्र ज्योतिष वैद्यक आदि करामातें दिखलानेवाले अद्भुत–स्थान बनाते जाते थे और दोनों ही अपने उपासकोंको शुभमार्गमें प्रवृत्त करानेकी अपेक्षा अपने वैभव, प्रभाव और सुखकी वृद्धि करनेमें अधिक ध्यान देते दिखलाई देते थे। उस समयके अधिकाश श्रावकोंकी अवस्था भी बहुत ही शोचनीय थी। पापपुण्यके काल्पनिक भय और लोभने उनके हृदयोंको बिलकुल निकम्मा कर दिया था। स्वय सोचने विचारने या शका आदि करनेकी शक्ति उनमें प्राय. रही ही नहीं थी। जो गुरुमहाराजने कह दिया उनकी समझमें वही पुण्य और वही पाप था। गुरुओंके चरित्र या विचारोंमें तर्क करनेकी वे आवश्यकता ही नहीं समझते थे। गुरु और शिष्योंकी इस अवस्थाको देखकर उस

समयके विचारशील पुरुषोंके मनमें इस प्रकारकी चिन्ता उठना स्वाभाविक ही है कि यदि कुछ समय तक और भी यही दशा रही तो जैनधर्मके वास्तविक स्वरूपका लोप हो जायगा और सौ दो सौ वर्ष पीछे इन स्वांगधारी साधुओं और श्रावकोंको देखकर इस बातका अनुमान करना भी कठिन हो जायगा कि ये उन्हीं महावीर भगवानके अनुयायी है जिनके अमूल्य उपदेश प्राचीन जैनसाहित्यमें शुद्ध स्फटिकके समान चमक रहे है ।

इस चिन्तामें मग्न होकर लोंकाशाहने सोचा होगा कि इस स्थितिके बदलनेके प्रयत्नमें तब तक सफलता न हो सकेगी जब तक कि उपासकवर्ग इन शिथिलाचारी यतियोंके पजेसे न छूट जायगा और वह छूटना तब तक कठिन है जबतक जिन मन्दिरोंमें लोग आते जाते है । क्यों कि जितने धर्मस्थान है, प्राय वे सब ही यतियोंके अधिकारमें है। यदि लोग उनमें आते जाते रहेंगे तो मेरे विरुद्ध प्रयत्नमें सफलता न होगी—भोले लोग यतियोंके ही अनुयायी बने रहेंगे । इसलिए इन जिनमन्दिरोंका और उनमें होनेवाली प्रतिमापूजनका निषेध किये विना मेरे उद्देश्यकी सिद्धि नहीं हो सकेगी। ऐसा मालूम होता है कि जिस तरह आजकल उन प्रान्तोंमे जहा कि भट्टारकोंके शासनकी प्रबलता है क्रियाकाण्डहीकी मुख्यता हो रही है—अभिषेक, पूजन, प्रतिष्ठा, गुरुसेवा आदिहीको लोगोंने मुख्य धर्म मान रक्खा है, इसी प्रकार बल्कि इससे भी अधिक उस समय गुजरात प्रान्तमें बाह्य क्रियाकाण्डकी प्रधानता होगी और शास्त्र-चर्चा पठनपाठनादिके अभावसे लोग जैनधर्मके असली तत्त्वोंको भूलने लगे होंगे, इसलिए भी लोंकाशाहने प्रतिमापूजाको अपने उद्देशकी सिद्धिका अन्तराय समझा होगा ।

और यही सब सोच विचार कर उसने प्रतिमापूजाको नहीं मानने-वाले ढूंढिया सम्प्रदायका उपदेश करना प्रारभ किया होगा।

इसमें सन्देह नहीं कि सैकड़ों वर्षोंकी प्रचलित प्रतिमापूजनका निषेध करके लोगोंको अपने अनुयायी बनाना और सो भी उस समयमें जब कि लोगोंमें गतानुगतिकता और अन्धश्रद्धाकी बहुत प्रबलता थी--बहुत ही बडे पुरुषार्थ और साहसका काम है। तो भी जब हम उस समयके यतिसम्प्रदायकी बढी हुई शिथिलाचारता और स्वार्थपरताका विचार करते है, तब हमें लोंकाशाहके उद्देश्यके सहज ही सिद्ध हो जानेमें कुछ आश्चर्य नहीं मालूम होता। जब उन्होंने इस बातका आन्दोलन किया होगा कि तुम्हारे धर्मस्थान प्रपञ्चस्थल बन गए है, गुरु कुगुरु बन गए है, तुम्हारी धर्मकी ओटमें प्रवञ्चना की जा रही है, और तुम धर्मके असली स्वरूपको भूल गये हो, तब लोग सहज ही भडक गये होंगे और उनके अनुयायी बन गये होंगे। क्योंकि उस समय एक तो लोगोंमें धर्मप्रीति बनी थी और दूसरे उनके सामने यतियोंकी असत्प्रवृत्तिके प्रत्यक्ष उदाहरण मौजूद थे।

श्वेताम्बर सम्प्रदायके इतिहाससे मालूम होता है कि लोंकाशाह एक साधारण श्रावक थे। वे शायद ग्रन्थ लिखनेका काम करते थे, इस कारण जैनधर्मके तत्त्वोंसे परिचित हो गये थे और उनका धार्मिक अनुभव भी बढ़ गया था। परन्तु यह कहा जा सकता है कि वे जैनधर्मके पण्डित या मर्मज्ञ नहीं थे। इसमें सन्देह नहीं कि उनका उद्देश्य अच्छा था, परन्तु हमारी समझमें अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए उन्होंने जो मन्दिर और प्रतिमापूजाका निषेध किया वह अच्छा नहीं किया। क्योंकि मन्दिर और प्रतिमाका निषेध

करनेसे द्रव्यक्रियाका प्रायः अभाव ही हो जाता है--केवल भाव-क्रिया रह जाती है और केवल भावक्रियाके आधारसे कोई भी सम्प्रदाय चिरस्थायी नहीं रह सकता। यदि वे इस विषयमें संवेगी सम्प्रदायके स्थापकका अथवा तेरहपन्थका अनुकरण करके यतियोंकी शिथिलताका और श्रावकोंकी अन्धश्रद्धाका प्रतिबन्ध करते तो अच्छा होता। परन्तु जो हो गया सो हो गया, अब उसकी चिन्ता करनेसे क्या लाभ?

जब हम देखते है कि तारनस्वामीका पन्थ ढूंढियापन्थसे ५०-६० वर्ष पीछे स्थापित हुआ, और दोनोमें प्रतिमापूजाका निषेध किया गया है तब यह अनुमान करना बिलकुल निराधार न होगा कि तारनस्वामीने लोंकाशाहका ही अनुकरण करके अपने पन्थकी स्थापना की होगी। श्वेताम्बरी यतियोंके समान दिगम्बरी भट्टारकोंकी शिथिलाचारतासे वे भी दुखी हो रहे होंगे और इस चिन्तामें होंगे कि इनके पजेसे श्रावकोंको किस तरह छुटावें। उसी समय उन्होंने लोंकाशाहके नये सम्प्रदायकी सफलताका सम्वाद पाया होगा और उससे उन्हें अपने उद्देश्यकी सिद्धि उसी मार्गसे करनेका उत्साह हुआ होगा।

ढूंढक और तारनपन्थकी बहुतसी बातें एकसी हैं। जैसे प्रतिमापूजाको न मानना, अपने मूल सम्प्रदायके केवल उन्हीं ग्रन्थोंको मानना जिनमें प्रतिमापूजनका विधान न हो, प्रधान ग्रन्थोंके प्रतिमापूजन सम्बन्धी वाक्योंको प्रतिमापूजकोंके मिलाये हुए बतलाना, मन्दिरोंके बदले उपाश्रय या शास्त्रालय बनवाना, आदि। इन सब बातोंसे हमें अपना यह अनुमान बहुत कुछ सही जाना पड़ता है कि तारनपन्थ ढूंढकपन्थका अनुकरण है।

यह अनुकरण उस दशामें और भी अच्छी तरहसे दिखलाई देता, जब तारनपन्थ ढूढकपन्थके ही समान विस्तार, प्रगति और पुष्टि लाभ करता। इसमें सन्देह नहीं कि उस अवस्थामें हम उसके साधुओंमें, उनकी चर्यामें, उसके नवीन साहित्यमें और श्रावकोंके आचारोंविचारमें बहुत कुछ समानता या अनुकरणता देख सकते, परन्तु न तो इस पन्थका विस्तार हुआ, न इसमें साधुओंका सम्प्रदाय चला, न साहित्यकी रचना हुई और न इसके उपासकोंमें ही कोई विद्वान् पुरुप हुए। इसके अनुयायियोंने केवल श्रद्धा, आग्रह या गतानुगतिकाके वशवर्ती होकर किसी तरह इसका अस्तित्व बना रक्खा है, नहीं तो अब इसमें कुछ भी नहीं रहा है।

तारनपन्थने ढूढकपन्थके समान विस्तारलाभ क्यों नहीं किया? इसके हमको कई कारण मालूम होते है। १ एक तो तारनस्वामी विद्वान् नहीं थे। उनके ग्रन्थोंकी रचना देखनेसे जान पडता है कि उन्हें सस्कृत प्राकृतका ज्ञान नहीं था और शायद देशभापामें रचना करनेको वे एक पन्थके प्रवर्तककी योग्यताको कम करनेवाला समझते थे, इसलिए उनकी सारी रचना एक विलक्षण ही प्रकारकी भापामें हुई है जिसे कोई समझ ही नहीं सकता है। इससे थोडेसे भोले लोगोंके सिवाय कोई विद्वान् न तो उनके समक्षमें ही अनुयायी हुए और न पीछे उनकी रचनाको देखकर हुए। और यह निश्चय है कि विना विद्वानोंके अनुयायी हुए किसी भी सम्प्रदायका उत्कर्प नहीं हो सकता। २ दूसरे ऐसा जान पडता है कि तारनस्वामी अपने पन्थका पूरा ढाचा तैयार किये विना ही शायद परलोकवासी हो गये थे, इसलिए उनका पन्थ जैसा उनके सामने अधूरा था वैसाका वैसा अब तक भी बना है। उनके पीछे भी उनका कोई अनुयायी ऐसा

न हुआ जो उसे पूरा कर जाता। लोंकाशाह भी कोई बड़े भारी विद्वान् न थे; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वे अच्छे अनुभवी होंगे। ऐसा मालूम होता है कि अपने अभिप्राय प्रगट करके उन्होंन बहुतसे विद्वानोंको अपने अनुयायी कर लिये थे और उनकी सहायतासे वे अपने समक्ष ही ढूंढकपन्थका पूरा ढांचा तैयार कर गये थे। इसलिए उनका पन्थ व्यवस्थित रीतिसे चल निकला। पर तारनस्वामी यह कुछ न कर सके। उनके पन्थमे वे सब बातें नियमित और व्यवस्थित न होने पाईं जिनकी कि प्रत्येक पन्थकी अवस्थितिके लिए आवश्यकता होती है और इस कारण उसकी उन्नति न होसकी। ३ तीसरे उस समय दिगम्बरियोंमें मुनिमार्ग एक प्रकारसे बन्द हो चुका था। गृहस्थाश्रमको छोड़कर यतिमार्गमें प्रवेश करनेकी पद्धति ही नहीं रही थी। इसलिए तारनस्वामीका मार्ग केवल श्रावकोंहीमें रहा—अपने अनुयायियोंको वे गृहत्यागी साधु नहीं बना सके। इस कारण उनके पीछे कोई उनके मन्तव्योंके अनुसार उपदेश देनेवाले न रहे और उपदेशकोंके अभावसे उनका पन्थ पुष्ट न होसका। इसके विरुद्ध श्वेताम्बर सम्प्रदायमें मुनिमार्ग जारी था, इसलिए लोंकाशाहको यतियों वा मुनियोंमें भी अपने अनुयायी बनानेका मौका मिल गया और फिर उन यति मुनियोंने उपदेशादिकें द्वारा ढूंढकपन्थके विचारोंका खूब ही प्रचार किया जिससे उसकी आशातीत उन्नति हो गई।

(क्रमशः)

नोट—जबतक यह लेख पूरा प्रकाशित न हो जाय तबतक कोई महाशय इसपर आक्षेपादि करनेकी कृपा न करें। इसके पहले अंशको पढकर जो कि गत सातवें अङ्कमें प्रकाशित हुआ था, बहुतसे तारनपन्थी भाई हमपर बेतरह बिगडे हैं। कई सज्जनोंने तो हमको धमकिया तक बतलाई हैं। परन्तु हम

इस तरह डरनेवाले नहीं । हमारा अभिप्राय, किसी सम्प्रदाय या समाज विशेषकी निन्दा करनेका नहीं हैं । हम केवल तारनपन्थका स्वरूप और उसका ऐतिहासिक तथ्य दिखला रहे हैं। यदि हमारे विचारोंमें कुछ भ्रम हो, तो उसे निवारण करनेका प्रत्येक व्यक्तिको अधिकार है।परन्तु अभी नहीं, जब पूरा लेख प्रकाशित हो जाय तब ।

सम्पादक ।

जैनसमाजके शिक्षित ।

जैनसमाजमें लगभग वीस वर्षसे शिक्षितोंके तैयार करनेका प्रयत्न किया जा रहा है। एक ओरसे सरकारी यूनीवर्सिटियां और दूसरी ओरसे धार्मिक पाठशालायें अगरेजी और संस्कृतके विद्वान् बना रही हैं। पाश्चात्य शिक्षाके अनुयायी अगरेजीके और संस्कृत शिक्षाके अनुयायी सस्कृतके पढनेवालोंको सहायता और उत्साह दे रहे है। अब तक सैकडों अंगरेजीके और पचासों संस्कृतके पण्डित तैयार हो चुके है और हो रहे है। यद्यपि दूसरे समाजोंकी अपेक्षा हमारे समाजके इन विद्वानोंकी सख्या कम है, परन्तु इतनी कम नहीं है कि हमको निराश होना पडे । वकील, बैरिस्टर, सोलीसिटर, प्रोफेसर, कलेक्टर, तहसीलदार, डाक्टर, इंजीनियर और क्लार्क तथा नैयायिक, वैयाकरण, साहित्यशास्त्री और धर्मशास्त्री आदि सब ही प्रकारके विद्वान् हमारे समाजमें है। शिक्षित पुरुषोंहीपर प्रत्येक समाजकी उन्नति और अवनति अवलम्बित है । अतएव इन शिक्षितोंकी ओर हमारा समाज प्रारमहीसे आशाकी दृष्टिसे देख रहा है। उसे विश्वास है कि इन लोगोंसे हमारे सारे कष्ट दूर हो जावेंगे और हम बहुत जल्दी उन्नतिके शिखरपर पहुच जावेंगे ।

वास्तवमें देखा जाय तो उनका यह विश्वास असंगत नहीं। एक गिरे पड़े समाजमें इतने शिक्षित तैयार हो जाना कोई मामूली बात नहीं। अनेक देशों और समाजोंके भाग्य केवल एक एक दो दो ही शिक्षितोंने पलट दिये है। इस प्रकारके उदाहरणोंकी इतिहासमें कमी नहीं। ऐसी अवस्थामें जैनसमाजका अपने शिक्षितोंकी ओर आशाकी दृष्टिसे देखना स्वाभाविक है। परन्तु हम देखते है कि उसकी यह आशा निराशामें परिणत हो रही है। इस समय उसकी वही दशा हो रही है जो अनेक समर्थ पुत्रोंके होते हुए भी खानेके लिए मुहताज अभागी पिताकी होती है। जैनसमाजके ये शिक्षित पुत्र उसकी ओर आख उठाकर भी नहीं देखते है। अपनी अपनी स्वार्थ साधनाके मारे उन्हें इतना अवकाश ही नहीं कि उसकी कुछ चिन्ता करें। जिससे पूछिए वही कहता है क्या किया जाय मुझे तो अपने कामके मारे दम लेनेकी भी पुरसत नहीं। जैनसमाजकी यह दशा सचमुच ही बड़ी करुणाजनक है।

हम लोग अकसर धनवानोंको दोष दिया करते है कि वे समाजकी समयोपयोगी संस्थाओंको सहायता नहीं देते है अथवा नई नई संस्थायें खोलनेका प्रयत्न नहीं करते है, और हमारा यह कहना वहुत अंशोंमें यथार्थ भी है, परन्तु विचार करके देखा जाय तो इस विषयमें जितना दोष शिक्षितोंका है उतना धनिकोंका नहीं। क्योंकि धनिकोंमें प्रायः शिक्षाका अभाव है। उन्होंने अब तक जो कुछ सहायता संस्थाओंको दी है, उनकी अज्ञताके विचारसे वही वहुत है, परन्तु शिक्षितोंकी ओर तो देखिए कि वे क्या कर रहे है। उन्होंने संस्थाओंको क्या सहायता दी है? जानकारके गलती करने और अजानके गलती करनेमें जमीन आसमानका फर्क है। इस समय

हमारी जितनी सस्थायें हैं उन्हें जाकर देखिए तो आपको मालूम होगा कि उन सबकी इस कारण दुर्दशा हो रही है और वे इस कारण उन्नति नहीं कर सकती है कि उन्हें योग्य काम करनेवाले नहीं मिलते। मिलें कहासे? सस्थाओंके पास अभी इतना धन नहीं कि वे इन उच्चश्रेणीके शिक्षितोंको पूरा वेतन देकर रख सकें और शिक्षितोंमें उस शिक्षाका संस्कार नहीं जो विना वेतन लिए अथवा उदरनिर्वाह योग्य वेतन लेकर समाजसेवाके लिए उत्साहित करती है, जो जीवनको अपने गृह—प्राचीरकी सीमाका उल्लङ्घन करके समाज देश या विश्वव्यापी बनाती है और जो हजारों विघ्नोंके उपस्थित होनेपर भी जीवनको दूसरोंके लिए न्योछावर करा देता है। दूसरे शिक्षित देशोंकी वात जाने दीजिए, वहा तो ऐसे हजारों लाखों पुरुषरत्न मौजूद हैं; परन्तु हमारे इस भारतवर्षके ही दूसरे समाजोंको देखिए उनमें कितने परार्थतत्पर पुरुप दिखलाई देते है। उनकी सस्थाओंके लिए कितने महात्माओंने अपने जीवनोंको सर्वथा अर्पण कर दिया है। गुरुकुलके स्थापक महात्मा मुशीलाल, पूना विधवाश्रमके स्थापक प्रो० कर्वे, सर्वेंट सुसाइटी आफ इण्डियाके स्थापक आनरेबिल मि० गोखले और उनकी सुसाइटीके बीसों सभ्य, हिन्दू कालेज बनारस दयानन्द कालेज लाहौर और गुरुकुल कागडीके कई प्रोफेसर आदि सब इन्हीं महात्माओंमें हैं। इन महात्माओंका ही यह प्रसाद है जो उक्त सस्थाएँ दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रही हैं।

समाजसेवाके लिए अपना जीवन दे देना अथवा अर्धवेतन या निर्वाह योग्य वेतन लेकर समाजका काम करना तो बहुत बड़ी बात है, हमारे समाजके शिक्षितोंमें इतनी भी उदारता नहीं—इतना भी

उत्साह नहीं कि अपने स्वार्थसाधनके दूसरे काम करते हुए ही थोड़ा बहुत समय समाजसेवाके लिए खर्च किया करें। दूसरे निरर्थक कामोंमें या हँसीमजाकमें भले ही वे अपना बहुमूल्य समय बरबाद कर दें, परन्तु समाजके कामके लिए उन्हें जरा भी अवकाश नहीं। यदि वे चाहें और उन्हें परोपकारके कामोंसे थोडा बहुत प्रेम हो, तो अपने अवकाशके समयमें ही वे बहुत कुछ कर सकते है—समाज की बहुत बड़ी जरूरतें उनके द्वारा रफा हो सकती हैं। माननीय पं० मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतरायजी, आदि महाशय अपने अवकाशके वक्तमें ही कितनी देशसेवाका कार्य करते हैं यह किसीसे छुपा नहीं है। यदि उचित रीतिसे व्यय किया जाय तो मनुष्यके जीवनका समय थोडा नहीं है। दूसरे सब प्रपंच करके भी वह अपना बहुतसा समय बचा सकता है और उसे चाहे जिस कार्यमें लगा सकता है केवल उसके हृदयमें शुभकार्य करनेका उत्साह होना चाहिए।

क्या पण्डित और क्या बाबू हमारे यहा जितने शिक्षित हैं उनमें-से एक एक दो दो अपवादोंको छोडकर सब ही रुपया ढालनेकी मशीनें है। रुपया बनानेके सिवा वे अपने जीवनका और कुछ कर्तव्य ही नहीं समझते। अपनी प्राप्त की हुई शिक्षाका भी वे शायद इसके सिवा और कोई उपयोग नहीं समझते। बाबू लोग तो अपनी वैरिस्टरी वकीली इंजीनियरी आदिसे चादी बना रहे है और पण्डित रथप्रतिष्ठाओंसे, दक्षिणाओंसे, लक्ष्मीपुत्रोंकी सेवासे और अध्यापकी आदिसे अपनी तृष्णाको शमन कर रहे हैं। बाबू तो ठीक ही हैं, पर इन पण्डितोंकी लीला और भी दूरूह है। इधर तो शास्त्रसभामें निरूपण किया जाता है कि अध्यापन क्रियाकाण्ड आदिसे द्रव्यो-

पार्जन करना शूद्रवृत्ति है और उधर कहते है कि प्रतिष्ठा करानेकी दक्षिणा हजार रुपयेसे एक कौडी भी कम नहीं ली जायगी, या पाच सौ रुपये लिए विना मै शास्त्रार्थ करनेको नहीं जाऊगा । एक शिक्षा-सस्थाके प्रबन्धकर्त्ताने कहा, पण्डितजी, हमारी संस्था निर्धन है हमारे विद्यार्थियोंपर दया करके आप ४०) मासिक स्वीकार कर लीजिए । पण्डितजीने उत्तर दिया, अमुक पाठशालावाले जब मुझे ६०) देनेको तैयार है, तब मै तुम्हारे यहा ४०) पर क्यों जाऊ ? साठ रुपयेसे ज्यादाका विचार हो तो मुझसे बात करो । याद रखिए कि इन पण्डितजीने समाजकी स्कालर्शिपसे ही सारी विद्या प्राप्त की है । समाजके श्रद्धास्पद पण्डितोंके विषयमें ऐसी छोटी छोटी बातोंका उल्लेख करना हम उचित नहीं समझते, परन्तु क्या किया जाय समाजको यह समझाए विना जी नहीं मानता कि हमारी वर्तमान धार्मिक शिक्षा भी ऐसी निकम्मी दी जा रही है जिससे केवल स्वार्थसाधु ही उत्पन्न होते है । हम पूछते हैं कि क्या हमारे धर्म ग्रन्थोंमें परोपकार या समाजकी निःस्वार्थसेवा करनेमें कोई पुण्य नहीं बतलाया है ?

जिस अगरेजी शिक्षाने भारतवासियोंके कानोंमें चिरविस्मृत जातीयता एकता देशसेवा जातिसेवाका अचिन्त्य शक्तिशाली महामन्त्र फूंका है और जिसके प्रसादसे देशमें हजारों परोपकारिणी और अज्ञाननाशिनी, संस्थायें उत्पन्न हुई हैं, उसको प्राप्त करके भी जब हमारे समाजके शिक्षित युवक समाजकी दशासे दुखी नहीं होते हैं और जिस धर्मशिक्षाने महात्मा अकंलक निकलक जैसे परोपकारसर्वस्व पुरुषोंकी सृष्टि की थी, उसको पाकर भी जब हमारे पण्डित महाशयोंमें परार्थपरताका लेश नहीं दिखता है, तब इसके सिवा और

क्या कहा जा सकता है कि हमारे समाजका भाग्य ही अच्छा नहीं। सच कहा है—**भाग्यं फलति सर्वत्र न च विद्या न च पौरुषम्।**

समाजकी दृष्टिमें शिक्षितका अर्थ रुपये ढालनेकी मशीन नहीं है। यद्यपि वह इस बातका विरोधी नहीं कि शिक्षित पुरुष रुपये न कमावें अथवा धनवान न बनें, बल्कि वह तो इसे भी अपनी उन्नतिका एक बड़ा भारी कारण समझता है; परन्तु केवल रुपये कमानेवालोंको वह शिक्षित नहीं समझता। वह प्रत्येक शिक्षितमें परार्थपरताका भाव देखना चाहता है। जिस शिक्षितमें यह भाव नहीं, जिसे अपने और अपने कुटुम्बके पोषणके सिवा दूसरोंके कार्योंके लिए अवकाश नहीं, उसे वह अशिक्षितसे बढ़कर समझता है। उसका होना न होना बराबर है। एक विद्वानके कथनानुसार वास्तविक शिक्षा वह है जिससे मनुष्यकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों प्रकारकी शक्तियोंका विकाश होता है। श्रद्धा, दया, परार्थपरता, प्रेम, दृढनिश्चय, उत्साह, अध्यवसाय आदि मनुष्योचित गुण इन्हीं शक्तियोंके विकाससे उत्पन्न होते हैं। जिस शिक्षासे मनुष्यमें ये गुण नहीं होते, वह शिक्षा नहीं विटम्बना है। केवल पुस्तकोंके रट लेनेसे या परीक्षालयोंकी पदविया प्राप्त कर लेनेसे कोई शिक्षित नहीं हो सकता।

जैनसमाज, तू अपने हृदयसे इस विश्वासको निकाल दे कि हमारे यहा बहुतसे शिक्षित हो गये है और फिर नये सिरेसे शिक्षित बनानेका यत्न कर। अभीतक तूने जो प्रयत्न किया है, वह प्रायः निष्फल ही गया है। पर अब उसकी चिन्ता करनेसे लाभ नहीं। अबकी बार तुझे इस बातका विचार करके उद्योगमें लगना चाहिए कि कैसी शिक्षासे मेरी सेवा करनेवाले उत्पन्न होंगे। तेरी वर्तमान

शिक्षाप्रणाली ठीक न.ीं है। सबसे पहले उसीके सुधारनेका प्रयत्न करना हितकारी होगा।

समाजके शिक्षित नामधारी महाशयो, तुम्हारी शिक्षाको इस प्रकार लाञ्छित होते देखकर हमारे हृदयमें बड़ी गहरी चोट लगती है और यह चोट उस समय तो और भी अधिक असह्य हो जाती है जब हम यह विचार करते हैं कि तुम्हारी यथेष्ट संख्या होनपर भी अभागा जैन समाज दुखी है। क्या तुम्हें यह देखकर दया नहीं आती कि तुम्हारे इस पिताके शरीरको बाल्यविवाह, वृद्धविवाह, अपव्यय, जातिभेद आदि भयकर कुरीतिया चारों ओरसे नोंच नोंच कर मृत्युशय्यापर ले जारही है, घोर अज्ञान अन्धकारके कारण उसे कुछ भी नहीं सूझता है, गतानुगतिकता और अन्धश्रद्धाने उसकी इधर उधर हलन चलन करनेकी शक्ति भी नष्ट कर दी है, विचार पारतन्त्र्यने उसकी जबान बन्द कर रक्खी है, और मिथ्यात्वके तीव्र वातरोगने उसके कानोंके परदे बन्द कर रक्खे हैं। हाय! क्या ऐसे कष्टके समयमें भी उसकी सेवा करनेकी ओर तुम्हारी प्रवृत्ति नहीं होती है? यदि एकान्तमें बैठकर जैनसमाजकी अन्तर्दशाका निरीक्षण किया जाय तो हम तुम तो मनुष्य हैं पाषाणको भी दया आसकती है। भाइयो, यह मानव शरीर और विद्याकी प्राप्ति बारबार नहीं होती है। जीवन पानीके बुदबुदेके समान है। आज है कल नहीं रहेगा। इससे कुछ कर जाओ और ससारमें सदाकेलिए अपना नाम छोड जाओ। तुम्हारे लिए कार्यक्षेत्रकी कमी नहीं। दृष्टि पसार कर देखोगे तो काम ही काम दिखलाई देंगे। बच्चोंको पढ़ाओ, पढ़े लिखोंको उपदेश दो, स्त्रीशिक्षाका प्रचार करो, विधवाओंकी शिक्षाका प्रबन्ध करो, अनाथोंके भोजन वस्त्रकी

व्यवस्था करो, उत्साही युवकोंको उच्च प्रकारकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए विदेशोंको भेजो. पाठशाला स्कूल कालेज आश्रम खोलनेका यत्न करो, समाचारपत्रोंका सम्पादन करो, उनमें समाजको ऊपर उठानेवाले लेख लिखो, धार्मिक ज्ञानकी वृद्धि करो, बाल्यविवाहादि कुरीतियोंको समाजसे हठानेका उद्योग करो, दूसरे देशोंके साहित्यका अध्ययन करके अपने साहित्यको पुष्ट करो, प्राचीन ग्रन्थोंका सम्पादन मुद्रण करके उनका प्रचार करो, पारस्परिक प्रेमको बढ़ाओ, इत्यादि जितने चाहो उतने काम तुम्हारे करनेके लिए मौजूद हैं। बन सके तो इन कार्योंके लिए अपने जीवनको सर्वथा उत्सर्ग कर दो, नहीं तो तुम्हारी जैसी स्थिति हो उसके अनुकूल अपने प्रतिदिनके घंटे दो घंटे ही इन कामोंके लिए दे दो। यह मत सोचो कि हमारे अकेलेके करनेसे क्या होगा? नहीं, एक एक बूंदसे ही तालाब भरता है। एक एकके करनेसे ही बहुत कुछ हो जायगा। स्मरण रक्खो विना इन कामोंके किये तुम्हारी शिक्षापर जो कलक लगाया जाता है, वह नहीं धुलेगा और वास्तविक शिक्षितोंमें तुम्हारी गणना नहीं हो सकेगी।

समाज-सेवक

पुस्तकसमालोचन।

पुस्तकत्रय—काशीका बंगीय सार्वधर्म परिषत् काम कर रहा है। इसने अपने प्रकाशित किये हुए तीन बंगभाषाके ट्रैक्ट हमारे पास समालोचनार्थ भेजे है—१ सार्वधर्म, २ जैनधर्म, और ३ जैनतत्त्वज्ञान एव चारित्र। पहला ट्रैक्ट स्या० वा० पं० गोपालदासजी बरैयाके हिन्दी लेखका बंगला अनुवाद है। प्रारंभमें श्रीयुक्त बाबू

जुगमन्दरलालजी एम्. ए. वैरिस्टर एट लाकी लिखी हुई एक महत्त्व-पूर्ण अंगरेजी भूमिका है। अच्छा होता यदि यह भूमिका बंगानुवाद करके प्रकाशित की जाती। दूसरा ट्रेक्ट लोक मान्य तिलकके व्याख्यानका और तीसरा एच. जैकोबीके अंगरेजी लेखका बंगानुवाद है। इन तीनों ही लेखोंको हमारे पाठक हिन्दीमें पढ़ चुके हैं, इसलिए इनके विषयमें विशेष कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं दिखती। परिषत्का उद्योग प्रशंसनीय है।

जैनविवाहकी नियमावली—झांसी जिलेके नारहट, महरोनी, मड़ावरा, बमराना आदि स्थानाक जैनी भाइयोंकी सम्मतिसे यह नियमावली बनाई गई है और बमरानेके सेठ लक्ष्मीचन्दजीने इसे छपाकार प्रकाशित की है। इसमें विवाहसम्बन्धी फिजूलखर्चियों और दूसरी कई कुरीतियोंका नियमन करनेवाले इक्कीस नियम हैं पहला नियम यह है कि लड़कीवाला लडकेवालेसे बिलकुल रुपया न ले। यदि उसकी शक्ति न हो, तो पंचलोग विना कुछ खर्च कराये उसका विवाह करवा दें। जो रुपया लेकर लड़की व्याहे, उसके यहां पंचोंको न जाना चाहिए। जो जावेंगे वे दण्डित होंगे। ग्यारहवां नियम है कि आतिशबाजी और वेश्यानृत्य बिलकुल बन्द किये जावें। इक्कीसवें नियममें जैनविवाहविधिके प्रचार करनेकी प्रेरणा की गई है। इसी प्रकारके और भी १८ नियम हैं जिनमें अधिकतर फिजूलखर्ची कम करनेके हैं। अठारहवा नियम चौक वन्द करनेके विषयमें हैं। बुन्देलखंडमें द्विरागमनको चौक कहते हैं। वहां परवारादि जातियोंमें विवाह होते ही बहूको घर ले आनेकी रीति नहीं है। विवाह होनेके कमसे कम छह महीने या वर्ष दो वर्षके बाद जब चौक होता है, तब बहू घर लाई जाती है। जब तक हम

बाल्यविवाहकी रीतिको नहीं उठा सकते है, तब तक हमें चाहिए कि इस चौककी पद्धतिको जारी रक्खें। इससे, अधिक नहीं तो वर्ष छह महीना तक तो अपरिपक्व बालक बालिकाओंके समागमका प्रतिबन्ध होता है। जो लोग इसे बन्द करना चाहते है वे मानो बालक बालिकाओंके विवाहके समयकी अवस्थामें और भी वर्ष छह महीनाकी कमी करना चाहते है। चाहिए तो यह कि यदि प्रौढविवाह जारी नहीं हो सकता है, तो चौक होनेके समयकी मर्यादा और भी बढ़ा दी जाय, अर्थात् ऐसा नियम कर दिया जाय कि दो या तीन वर्षके पहले कोई चौक न करे, परन्तु इसके विरुद्ध मूलमें ही घाटा देनेका प्रयत्न हो रहा है। इस नियमसे सिवा उनके जो कि अपनी क्षणिक वासनाके वशीभूत होकर बुढापेमें विवाह करते है—समाजको कोई लाभ नहीं हो सकता। नियम बनानेवालोंको इस बातपर विचार करना चाहिए।

वैद्य—मुरादाबादसे इस नामका मासिकपत्र हाल ही निकला है। इसके सम्पादक बाबू शकरलालजी जैन वैद्य और प्रकाशक प० हरिशंकर वैद्य है। वार्षिक मूल्य केवल एक रुपया है। अक्टूबर और नवम्बरके दो अंक हमारे सामने है। इनमें शरीरकी उत्पत्ति, दिनचर्या, आहारसम्बन्धी नियम, आमवात, गिलोय, बालरक्षा, आनुभविक प्रयोग, तक्र, आदि अनेक विषय निकले है जो छोटे छोटे होनेपर भी कामके है। पत्र होनहार मालूम होता है।

संक्षिप्त विवरण—ललितपुरमें अभिनन्द दिगम्बर–जैनपाठशाला नामकी एक पाठशाला स्थापित हुई है। इसी पाठशालाके पहले वर्षका यह विवरण है। पाठशालाके साथमें एक छात्राश्रम भी है। उसमें इस समय २२ विद्यार्थी निवास करते हैं। पाठशालाने अपना

पठनक्रम स्वतन्त्र बनाया है। उसमें हिन्दी संस्कृत और अंगरेजी इन तीनों ही भाषाओंका ज्ञान बढ़ानेकी ओर लक्ष्य रक्खा गया है। इस वर्ष पाठशाला और छात्राश्रममें १२९) मासिकके लगभग खर्च हुआ है और आगामी वर्षके लिए २००) मासिकका बजट पास किया गया है। बुन्देलखण्डकी इस सुव्यवस्थित संस्थाकी हम हृदयसे उन्नति चाहते हैं।

जैनकाव्यप्रवेश—संयोजक और प्रकाशक मि० मोहनलाल दलीचन्द देसाई बी. ए. एल, एल, बी. प्रिन्सेस स्ट्रीट बम्बई। मूल्य छह आना। पुस्तक गुजराती भाषामें है। इसमें जुदा जुदा कवियोंके ८९ पदोंका संग्रह किया गया है और उनकी सरलतासे समझमें आने योग्य विस्तृत टीका की गई है। बड़ी भारी खूबी इसमें यह है कि पदोंका संग्रह उनके विषयकी सरलता कठिनताके अनुसार क्रमपूर्वक किया गया है और श्वेताम्बर कान्फरेंसके पठनक्रमके अनुसार पहली कक्षासे लेकर अन्तिम कक्षातकके विद्यार्थियोंके लिए उपयोगी बना दिया है। अर्थात् प्रारभमें जो पद संग्रहीत है वे पहली कक्षाके विद्यार्थियोंकी समझमें आने योग्य है और उनके बाद दूसरी तीसरी आदि कक्षाओंके विद्यार्थियोंकी बुद्धिमें प्रवेश होने योग्य हैं। देसाई महाशयका यह प्रयत्न बिलकुल नये ढंगका है। उन्होंने ग्रन्थसम्पादनमें बहुत ही परिश्रम किया है। गुजराती जाननेवाले भाइयोंको उनके इस परिश्रमका आदर करना चाहिए। ग्रन्थके परिमाणसे मूल्य बहुत ही कम है।

विविध–विषय ।

दयानन्दकृत वेदभाष्यपर सम्मति–आर्यसमाजके संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वतीने वेदोंपर एक भाष्य लिखा है । आर्यसमाजका उसपर बड़ा विश्वास है । परन्तु जो लोग वैदिक संस्कृतके मर्मज्ञ और प्राचीन इतिहासके ज्ञाता है उनका कथन है कि स्वामीजीने वैदिक मंत्रोंको खीच खाचकर वही अर्थ किया है जो उनको अभीष्ट था । आर्यसमाजकी प्रतिष्ठा वे जिस ढाचेपर करना चाहते थे उसी ढाचेको उन्होंने वेदोंमेंसे निकालनेका प्रयत्न किया है। क्योंकि इस देशमें वेद ईश्वरीय ग्रन्थ समझे जाते है । विना उनकी दुहाई दिये यहा किसी भी धर्मकी दाल नहीं गलती । यद्यपि स्वामीजीका अभीष्ट ढाचा वैदिक साहित्यसे तैयार न हो सकता था, तो भी उन्होंने जैसे बना तैसे उसीसे तैयार किया । इग्लेंडमें प्रोफेसर मेक्समूलर वैदिक साहित्यके बडे नामी विद्वान् हुए है । उन्होंने वेदोंपर एक अगरेजी टीका भी लिखी है । दयानन्दके भाष्यके विषयमें उनसे और देवसमाजके अधिष्ठाता अग्निहोत्रीजीसे कुछ पत्रव्यवहार हुआ था । यह पत्रव्यवहार विज्ञानमूलक धर्म नामके अंगरेजी पत्रमें अभी हाल ही प्रकाशित हुआ है । प्रो० मोक्षमूलरने अपने उक्त पत्रोंमें लिखा है—" मै सायनकी विद्वत्ताका अवश्य कायल हू, परन्तु मैं उनकी सम्मति और निष्कर्षोंसे सहमत नहीं, दयानन्द सरस्वतीसे सहमत होना तो दूरकी बात है ।
मुझे यह जानकर बड़ा ही दुःख हुआ कि वे (दयानन्द) अपने धार्मिक जोशकी आड़में कोई चाल भी चलते थे । बड़े ही दुःखकी बात है कि उनके बनाये हुए ऋग्वेद और यजुर्वेदके भाष्योंपर इतना अधिक धन व्यय किया गया । ये दोनों भाष्य

उनकी वहकी हुई बुद्धिकी निपुणताके नमूने और सौगात है। मुझे इस वातपर आश्चर्य नहीं जो केशवचन्द्रसेन, दयानन्दसरस्वतीसे सहमत नहीं हो सके।" इससे पाठक समझ सकते हैं कि विद्वानोंकी दृष्टिमें दयानन्दकृत वेदभाष्यका मूल्य कितना है।

चीनमें स्त्रीशिक्षा—चीनमें स्त्रीशिक्षाका प्रचार बड़ी तेजीसे बढ रहा है। दश वर्ष पहले वहा एक भी कन्यापाठशाला नहीं थी, परन्तु इस समय वहाके छोटे छोटे कस्वो तकमें पाठशालायें और स्त्रीविद्यालय खुल गये है। सैकड़ों स्त्रिया दूसरे देशोंमें विद्याध्ययन करनेको जा रही हैं। कई वड़े वड़े नगरोंमें स्त्रियों द्वारा सम्पादित स्त्रियोपयोगी पत्र भी निकलने लगे है। यदि यही हाल रहा तो चीन भी स्त्रीशिक्षामें पाश्चात्य देशोंकी कक्षामें जा पहुचेगा।

प्राचीन भारतमें वर्णपरिवर्तन—सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ डा० भाण्डारकरने कुछ नोट लिखे हैं उनसे मालूम होता है कि प्राचीन भारतमें वर्णपरिवर्तनकी प्रथा जारी थी। गुणकर्म और स्वभावके अनुसार वर्णव्यवस्था मानी जाती थी। लोग व्राह्मणसे क्षत्रिय, क्षत्रियसे व्राह्मण, क्षत्रियसे वैश्य, शूद्रसे व्राह्मण आदि वन जाते थे। इसके उन्होंने वहुतसे ऐतिहासिक और पौराणिक उदाहरण दिये हैं। पाठकोंके जाननेके लिए हम थोडेसे यहा उद्धृत कर देते हैं.—

मालवाकी राजधानी उज्जयिनीपर जो यूनानी शासक नियुक्त था उसका नाम चष्टन था। परन्तु उसके पुत्र पौत्रादि सव ही हिन्दू वन गये थे और उनके नाम जयदमन रुद्रदमन आदि रक्खे गये थे। इस कुलके राजाओंने लगभग सातसौ वर्षतक राज्य किया। उनमेंसे एक राज़ाने षटह्वनके सुप्रसिद्ध क्षत्रिय राजा सतकरणके यहां

विवाह किया था अर्थात् पीछेसे उक्त यूनानी वंशकी क्षत्रियोंमें गणना होने लगी थी। शाक नामक देशान्तरके लोग भारतमें आकर शाकद्वीपी ब्राह्मण बन गये। यथार्थमें ये भारतवासी नहीं, विदेशी हैं। छठी शताब्दीमें गुर्जर हूण मैत्रिक आदि अनेक विदेशी जातियोंने भारतपर आक्रमण किया था। हूण सम्राटोंमेंसे तुरमान और मिहिरकुल दोके नाम शिलालेखोंमें मिलते है। मिहिरकुलने हिन्दू धर्मको स्वीकार कर लिया था। उसके पीछे ग्यारहवीं शताब्दीमें हूणकुलके राजा क्षत्रिय माने जाने लगे थे और चँदेरीके राजा यशकरणने हूण वंशकी राजकुमारी अहल्यादेवीसे विवाह किया था। इसी प्रकार छट्ठी शताब्दीमें गूजर या गुर्जर यहा आये। ये लोग पंजाबमें तो गूजर जमीन्दार ही रहे, परन्तु जोधपुरमें आकर क्षत्रिय बन गये। क्षत्रिय भी कैसे, ३६ प्रसिद्ध कुलोंमेंसे एक कुल उनका भी बन गया। सातवीं सदीमें जब चीनी यात्री यूआन चुआग आया था, तब गुर्जर क्षत्रिय कहलाने लगे थे। खानदेशके गुर्जर ब्राह्मण कहलाने लगे। रत्नागिरिक ब्राह्मण भी इन्हीं गुर्जरोंकी सन्तान है। जैन कवि राजशेखरने अपने नाटकमें गुर्जरनरेश महेन्द्र-पालको रघुकुलतिलक कहकर सम्बोधन किया है। गहलोट राज-पूत पहले नागर ब्राह्मण थे, यह बात अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध हो चुकी है। क्षत्रियोंके कदम्बवंशका चलानेवाला मयूरशर्मन् था, परन्तु उसके पुत्रका नाम कङ्गवर्मन् था। शर्मन् शब्द ब्राह्मणत्वका और वर्मन् क्षत्रियत्वका बोधक है। मयूरशर्मन् एक क्षत्रियासे विवाह करके क्षत्रिय कुलका संचालक बन गया। वेसनगरके २२००वर्ष पहलेके एक शिलालेखमें लिखा है कि महाराज भागभद्रके दरबारमें हेलोदोरा नामका एक यूनानी एलची रहता था। उसने भगवान

वासुदेवके लिए गरुडध्वजा बनवाई थी। अर्थात् वह हिन्दू हो गया था और संभवतः उसकी सन्तान हिन्दुओंके प्रतिष्ठित कुलोंमें गिनी जाने लगी थी। ब्राह्मणोंके हरिवंशपुराणमें लिखा है कि नाभागरिष्ट सेठके दो पुत्र गुण कर्म और स्वभावसे ब्राह्मण बन गये। महाभारतमें लिखा है कि, वसिष्ठमुनि गणिकाके, व्यास धीवरीके और पराशर चाण्डालके पुत्र थे, परन्तु ये तीनों तपस्या तथा गुणोंके कारण ब्राह्मण बन गये। मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृतिमें इस बातका भी विधान मिलता है कि पांचवीं अथवा सातवीं पीढ़ीमें जातिका उत्कर्ष हो जाता है।

मुक्तिफौजका कार्यविस्तार—पिछले अंकमें 'जनरल बूथ' शीर्षक लेखमें मुक्तिफौजका थोड़ासा परिचय दिया जा चुका है। जनरल बूथकी इस दीनदरिद्रोपकारिणी संस्थाका विस्तार बड़ी ही शीघ्रता और सफलताके साथ हुआ है। सन् १८८३ में इंग्लेण्डके पूर्वभागमें मुक्तिफौजकी १४२ शाखाएँ काम करती थीं जिनमें कुल मिलाकर १०६७ काम करनेवाले थे। उस समय उसकी दूसरे देशोंमें भी १२–१३ शाखाएँ थीं। सन् १८९० में जनरल बूथने एक बड़ी भारी पुस्तक लिखकर अपनी संस्थाका पूरा पूरा परिचय दिया और सर्वसाधारणसे उसकी सहायताके लिए अपील की। अपीलने गजबका काम किया। बहुत ही थोड़े वक्तमें लगभग दश-लाख रुपये संस्थाको मिल गये! फिर क्या था संस्थाकी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होने लगी। इस समय उसकी ८९७२ शाखाएँ ५९ देशोंमें काम कर रही है। इन शाखाओंमें २९२०३ पुरुष और स्त्रियां काम करनेवाली हैं। विपत्ति और दुराचारमें फँसे हुए, भूखों मरनेवाले, और पापकर्मोंमें डूबे हुए लोगोंको सुधारनेके लिए मुक्ति

फौजने ९०० के लगभग स्वतंत्र शाखाएँ खोल रक्खी हैं। इन शाखाओंकी मार्फत गत १२ महीनोंमें ६३२७२४९ मनुष्योंको सोनेके लिए त्रिछौने बाटे गये थे और ११८३९४३७ भूखोंको अन्न दिया गया था। संस्थाकी पुस्तकें ३३ भाषाओंमें छपकर प्रकाशित होती है और इतनी ही भाषाओंमें संस्थाके संचालक व्याख्यान देते है। हिंदुस्थानमें मुक्तिफौजके २९००से अधिक कार्यकर्त्ता है। यहां उसने प्राथमिक शिक्षा देनेके लिए पाठशालाएँ भी खोल रक्खी हैं, जिनमें दशहजारके करीव लड़के शिक्षा पाते है। हस्तकलाकौशल्यकी शिक्षाका विस्तार करनेके लिए फौजने लोगोंको दो हजार नई तर्जके करघे बॉटे है। कपड़ा बुनना सिखलानेके लिए भी बहुतसे स्कूल खोले है। लगभग एक लाख कैदियोंको और इससे तिगुने चौगुने दूसरे असत्कर्म करनेवालोंको सुधारनेका भी फौज प्रयत्न कर रही है। कुष्टादि भयंकर रोगग्रसित मनुष्योंकी रक्षाके लिए बहुतसे औ-षधालय भी मुक्तिफौजके स्थापित किये हुए हैं। क्या कभी हमारे देशके लोगोंको भी ऐसी दयाप्राण संस्थाके खोलनेकी सूझेगी?

मैसूरमें बलात् शिक्षा—मैसूर सरकार बहुत जल्दी बलात् शिक्षाका कानून पास करनेवाली है। इस कानूनके अनुसार ७ वर्ष से ११ वर्षतककी उमरके प्रत्येक लड़केको पढ़ना आवश्यक होगा। जिन लड़कोंके मा बाप इस कानूनका उल्लंघन करेंगे, उनका पहली बार दो रुपया और आगे प्रत्येक बार दश रुपया जुर्माना किया जायगा। यदि कोई उक्त अवस्थाके लड़कोंको नौकर रक्खेगा तो उसका २०) जुर्माना किया जायगा। मुख्य मुख्य शहरोंकी लड़कियोंके लिए भी यह कानून लागू होगा। जगह जगह नये स्कूल खोले जावेंगे। इस काममें मैसूर सरकार बहुत

सा धन खर्च करनेवाली है। देशी राज्योंकी यह जागृति देखकर वड़ी प्रसन्नता होती है। प्रजाकी उन्नतिके लिए शिक्षाप्रचारके समान और कोई साधन नहीं।

लातूरकी गद्दीके लिए उम्मेदवार—निजाम स्टेटमें लातूर नामका एक स्थान है। वहा भट्टारककी एक गद्दी है। यह गद्दी लग-भग २० वर्षसे खाली है। गादीकी मुख्य उपासक सेतवाल जाति है। दक्षिण और वरारमें सेतवालोंकी जनसख्या वीस हजारके लग-भग सुनी जाती है। इस जातिके कुछ अगुए लातूरकी गद्दीपर एक अच्छे विद्वानको विठानेका प्रयत्न कर रहे हैं। इसके लिए उन्होंने वालकृष्ण राहाकर नामके एक विद्यार्थीको—जो इसी वर्ष मैट्रिकुले-शन परीक्षामें उत्तीर्ण हुआ है—चुना है। विद्यार्थीको वे इस समय शोलापुरमें व्याकरण न्याय और धर्मशास्त्रकी शिक्षा दे रहे हैं। इसके वाद उनका विचार है कि उसे जैनसिद्धान्तपाठशाला मोरेनामें दो वर्ष उच्च श्रेणीकी शिक्षा दिलाकर फिर गद्दीपर विठावें। चाहे जैसे पठित अपठित पुरुषको गद्दीका स्वामी वना देनेकी अपेक्षा यद्यपि यह प्रयत्न वहुत ही अच्छा है—इस समय इस प्रकारके प्रयत्नकी भी वहुत कम आशा थी, परन्तु 'प्रगति और जिनविजय' के सम्पादक महाशय कहते है कि "जिसके जितेन्द्रियत्वके विषयमें अभीतक सन्देह है, उस नवीन युवकको भट्टारक वनाना उचित नहीं। सभव है कि वह विषयी होजाय और गद्दीके तथा समाजके अपमानका कारण वन जाय। केवल गद्दीके सम्मानके लिए अज्ञानी अथवा दुराचारी भट्टारकोंको नमस्कार करते करते तो अव हमारी जी ऊव उठा है। इसलिए जवतक कोई अपनी योग्यता और सदा-चारताका समाजको अच्छी तरह परिचय न दे दे, तवतक उसे भट्टा-

रक बना देनेकी हम कदापि सम्मति नहीं दे सकते। प्रयत्न करनेसे भट्टारकीका उम्मेदवार विद्वान् बनाया जा सकता है; परन्तु उसे सदाचारी बनाना किसीके हाथकी बात नहीं है। इसलिए जवान लड़केको भट्टारकीकी छाप नहीं लगानी चाहिए।" हमारी समझमें प्रगतिके सम्पादककी सम्मतिपर सेतवाल पचोंको विचार करना चाहिए। क्योंकि धर्मके सिंहासनपर बैठनेका अधिकारी केवल विद्वान् नहीं हो सकता, उसे विद्वान और जितेन्द्रिय दोनों होना चाहिए।

एक होनहार युवकका शरीरान्त—छिन्दवाड़ेके सेठ सुखलालजी पाटनीके पुत्र मांगीलालजी पाटनीका गत अक्टूबरकी दूसरी तारीखको देहान्त हो गया। मांगीलालजी बड़े ही होनहार युवक थे। धनवानोंके घरमें ऐसे बहुत कम लड़के जन्म लेते है। उनके विचार बहुत ही ऊंचे उदार और जातिधर्म तथा देशसेवासे परिप्लुत थे। हिन्दीसे उन्हें हार्दिक प्रेम था। उसे राष्ट्रभाषा बनानेका उन्हें निरन्तर ही ध्यान रहता था। मोक्षकी कुंजी, प्राचीन भारत (मेगास्थनीजकी भारतयात्रा), जैनधर्म और हिन्दूधर्म, जैनधर्मकी शान्तमूर्तियां, आदि कई उत्तमोत्तम पुस्तकें भी उन्होंने हिन्दीमें लिखी थीं, परन्तु वे अभी तक प्रकाशित नहीं हो पाई हैं। महाभारतसे लेकर पृथ्वीराज चौहानके समय तकका वे एक शृङ्खलाबद्ध इतिहास लिखना चाहते थे; परन्तु उनका यह विचार उनके साथ ही चला गया। यदि वे जीते तो उनके द्वारा हिन्दी साहित्यका बहुत उपकार होता। उनके जातीयताके विचार भी बहुत ही प्रशंसनीय थे। Jain law को Hindu Law से अलग करनेके लिए जैन समाजके नेताओंको प्रयत्न करते देख वे कहा करते थे— "हिन्दुओंमें कितने टुकड़े हो चुके हैं? इस तेरह लाख संख्यक

धनिक समाजके अलग हो जानेसे दोनों समाजोंकी बड़ी भारी हानि होगी।" जैनधर्मसे आपको अतिशय अनुराग था। आपके कारण छिन्दवाडेका युवकमण्डल बहुत ही सुधर रहा था। आपका विवाह शीघ्र ही होनेवाला था। आपने पितासे स्वीकार करा लिया था कि पढी लिखी कन्याके साथ विवाह होगा, विवाहमें वेश्या-नृत्य न होगा, धार्मिक गायनमण्डली और उपदेशक बुलाये जावेंगे इत्यादि। परन्तु अफसोस! यह कुछ न हुआ। जाति धर्म और देशका एक बहुमूल्य रत्न देखते देखते उठ गया।

जैनप्रदीप प्रकाशित हो गया—देवबन्द (सहारणपुर) से जो जैनप्रदीप नामका उर्दू मासिकपत्र निकलनेवाला था वह निकल गया। इसके सम्पादक जैनसमाजके सुपरिचित लाला ज्योतीप्रसादजी ए जे है। जो भाई उर्दू जानते है उन्हें चाहिए कि ग्राहक बनकर जैनप्रदीपके लेखोंसे लाभ उठावें।

बाल्यविवाह और विधवाओंकी संख्या—मनुष्यगणनाकी रिपोर्टसे मालूम हुआ कि, भारतवर्षमें छह वर्षसे कम उमरकी विवाहिता लड़कियोंकी संख्या २०३४२९ है और उनमें १७७०० विधवायें है। ६ से १९ वर्ष तक अवस्थाकी विवाहित लड़कियोंकी संख्या २०९००००० है और उनमें ९४०००० विधवायें है। न जाने भारतके सिरसे यह अनिष्ट कब टलेगा। बाल्यविवाहके प्रेमी अपनी भूल कब समझेंगे।

जैन सिविलियन—लाहौरके लाला रामचन्द्र एम. ए. इस वर्ष विलायतकी सिविल सर्विसकी परीक्षामें उत्तीर्ण हुए है। आप दिगम्बर जैन है। पहले कुछ दिनों लाहौरमें प्रोफेसरी कर चुके हैं। जैनियोंमें आप सबसे पहले सिविलियन है।

मुसलमान हाईस्कूल—बम्बईके प्रसिद्ध धनिक सर करीम भाई और उनकी लड़कीने पौने दो लाख रुपयाका विद्यादान किया है। इस दान द्रव्यसे पूना शहरमें 'सर करीमभाई हाईस्कूल' इसी महीनेमें खोला जायगा। मुसलमान भाइयोंका लक्ष्य अब विद्योन्नतिकी ओर खूब आकर्षित हो रहा है।

हिन्दू यूनीवार्सिटीमें जैनधर्म—हाल ही प्रकाशित हुआ है कि बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटीमें जैनधर्म और सिक्ख धर्मके पढ़ानेकी व्यवस्था की जायगी और उक्त दोनों धर्मके प्रतिनिधि भी कार्यकारिणी सभामें रक्खे जावेंगे। जैनियोंके लिए बड़ी ही खुशखबर है।

महाराजकी कृपा—कोल्हापुर महाराजने 'प्रगति आणि जिनविजय' को जो कि दक्षिण महाराष्ट्र जैनसभाका मुखपत्र है अपना एक कीमती छापखाना दे देनेकी कृपा दिखलाई है। जैन संस्थाओंको महाराजसे बहुत सहायता मिला करती है।

पढे लिखे—भारतमें प्रति हजारमें १०६ पुरुष और ९९ स्त्रियाँ पढ़ी लिखी है।

शिक्षाके लिये सहायता—तलपुर (सिंध) के हिज हाईनेस सर इमामबख्शने स्वर्गीय सम्राट सातवें एडवर्डके स्मरणार्थ मुसलमानोंमें शिक्षा प्रचारके लिये ७५ हजार रुपया दान दिया है। इस रकमके व्याजसे स्कालर्शिप दिये जायगे।

थोड़ी पूंजीमें बड़ी कमाई—अमेरिकामें मि. लेविस नामक एक करोडपति अंग्रेज है। उन्होंने साढे चार रुपयेकी पूंजीसे तीन करोड़ रुपये उपार्जित किये है। वे समाचारपत्रका व्यवसाय करते है। यहाके समाचारपत्राध्यक्ष एक दो लाख रुपये भी तक उक्त व्यवसायसे नहीं इकट्ठा कर सके।

निवेदन ।

आपको मालूम होगा कि अभी हालमें हमने एक मनुष्याहार नामक पुस्तक की २००० प्रतिया वमराना निवासी सेठ लक्ष्मीचन्द्रजीकी आर्थिक सहायतासे प्रकाशित की थीं, जिसकी जैनमित्र, जैनहितैषी, वेंकटेश्वर आदि जैसे प्रसिद्ध समाचार पत्रोंने मुक्त कण्ठसे प्रशसनीय समालोचना की है, परन्तु वे तमाम एक मासके अदर अंदर वितरण होगईं और हरजगहसे उनकी माग आ रही है । दयालु पुरुषो । ऐसी पुस्तककी २००० प्रतियोंसे ऐसे देशमें जिसमें २४–२९ करोड़ मनुष्य मांसभक्षी हैं क्या हो सकता है ? जबतक लाखों करोडों बिना मूल्य प्रकाशित न होंगी, दयाधर्मका यथोचित प्रचार कदापि नहीं होसकता ।

अत एव हमने इस बार इस पुस्तककी कमसे कम एक लाख प्रतिया छपानेका विचार किया है, परन्तु यह सब आपकी उदारतापर निर्भर है ।

यदि प्रत्येक दयाप्रेमी कमसे कम ९) की भी पुस्तक प्रकाशनमें सहायता दें तो यह कार्य्य अति सरलतासे हो सकता है ।

ऐसे महाशयोंके नाम धन्यवादसहित पुस्तकमें प्रकाशित कराये जायँगे और पुस्तककी १०० प्रति अपने ग्राममें मांसभक्षी भाइयोंमें विना मूल्य वितरणकरनेके लिये उनकी भेट की जायंगीं । आशा है कि धर्मात्मा दयाप्रेमी बाधव ९) की रकम हमारे पास शीघ्र भेजकर इस दयाधर्म प्रचारमें भाग लेवेंगे और अगणित हाहाकार करते प्राणियोंकी रक्षाका असीम पुण्य संचय करेंगे ।

दयाचन्द्र गोयलीय जैन, बी. ए.

ललितपुर ।

जैनहितैषी

मासिकपत्र ।

आठवाँ भाग ।

सम्पादक—

श्रीनाथूराम प्रेमी ।

प्रकाशक—

श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय

हीराबाग, पोष्ट गिरगांव-बम्बई

२४३८.

Printed by G N Kulkarni at his Karnatak Press, No. 7 Girgaon Back Road, Bombay and Published by Nathuram Premi, Proprietor

विषयानुक्रमणिका।

१ आख्यायिकायें।

२ ऐतिहासिक विषय।

३ कविता।

४ जीवनचरित।

५ फुटकर विषय।

६ मनोरंजक।

७ वैज्ञानिक और धार्मिक।

८ साहित्य-विषय।

९ सामाजिक विषय।

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः।

श्रीजैनग्रंथरत्नाकरकार्यालय बम्बईमें मिलनेवाले
शुद्ध छपे हुए जैनग्रन्थोंका

सूचीपत्र

जैनधर्मकी उन्नति एक मात्र जैनग्रंथोंके
घर घर विराजमान होनेसे होगी
और
जैनग्रंथ घर घरमें विराजमान तब होंगे, जब वे
शुद्धतापूर्वक छपकर थोड़ी न्योछावरमें
सरलतासे सब स्थानोंमें मिल सकेंगे।
अत एव
श्रीजैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय बम्बईद्वारा प्रकाशित
हुए शुद्ध जैन ग्रंथोंको मंगाकर पढ़िये
क्योंकि
"न स्वाध्यायात्परं तपः"
अर्थात्
स्वाध्यायके समान कोई तप नहीं है।

अगस्त सन् १९११

रा. चिं. स. देवळे यानीं मुंबईवैभव स्टीम प्रेसमध्यें छापिलें.

नहीं होंगी, उन्हें छोडकर बाकी जितनीं होंगी, भेज दी जावेगीं । गैरमौजूदा पुस्तकोंके लिये बाकी पुस्तकें भेजना नहीं रुकेंगी ।

७ डाकखानेमें आधा आना पाव आनाका वी. पी नहीं होता है पूरे आनोंका होता है । इसलिये यदि किसी वी. पी. की रकम पूरे आनोंकी नहीं होती हैं, आनाके किसी हिस्सेकी होती है तो उसमें आधाआना पाव आनाकी कोई पुस्तक रखकर रकम पूरे आनोंकी कर दी जाती है । ऐसी पुस्तकको विना मगाई हुई भेजी समझकर ग्राहकोंको हमसे नाराज नहीं होना चाहिये ।

८ पत्र लिखते समय प्रत्येक पत्रमें अपना **नाम, ग्राम, डांकखाना** और **जिला** साफ २ अक्षरोंमें सही २ लिखना न भूलना चाहिये । कई लोग रियासत, तहसील, परगना आदि फिजूल बातें तो लिखे देते हैं और डांकखाना वगैरह लिखते ही नहीं है । ऐसा न करके ठिकाना ख्यालसे सही लिखना चाहिये ।

तीर्थोंके बढ़ियाँ नकशे ।

१-श्रीसम्मेदशिखरजी, पावापुरीजी, चम्पापुरीजीके नकशे जुदे जुदे रगीन ग्लेज मोटा कागज. दर फी नक्शा आठ आना.

२-ऊपरके तीनों नकशे रंगीन ग्लेज कागजपर फी नकशा चार आना.

५-सोलह सुपनेके नकशे—आठ आना, चार आना.

क्षमावणीके कार्ड—जिन भाइयोंको चाहिये, हमसे भादोंसे पहले मंगा लिया करें, अबकी बार हमने ऐसे कार्ड छपाये हैं; जो कई वर्षोंतक काम दे सकेंगे, अर्थात् उनमें मिती वगैरहकी जगह छोड़ देवेंगे, इसलिये ग्राहकोंको एक साथ बहुतसे कार्ड मंगा लेना चाहिये । सैकड़ेकी दर चार रु. डांकखर्च अलग । एक सैकड़ा तक कार्ड मंगानेवालोंको पहलेसे टिकेट भेज देना चाहिये ।

सर्वसाधारणकी पुस्तकें ।

बम्बईमें मिलनेवाली, व्यंकटेश्वर, ज्ञानसागर, लक्ष्मीव्यंकटेश्वर, निर्णयसागर, गुजरातीप्रेस, भीमसी माणिक, मेघजी हीरजी कम्पनी आदिकी हिन्दी, मराठी, गुजराती सस्कृतकी सब प्रकारकी पुस्तकें भी हमारे द्वारा वाजिब सूचीपत्रके मूल्यपर मिल सकती हैं । जिन ग्राहकोंको जरूरत हो, हमसे मंगा लिया करें ।

जैनहितैषी मासिकपत्र ।

हमारे पुस्तकालयसे इस नामका बढिया मासिकपत्र भी निकलता है, जिसमे सामाजिक, धार्मिक तथा ऐतिहासिक उत्तमोत्तम लेख कविता मनोरंजक चुटकुले, शिक्षाप्रद हृदयग्राही उपन्यास, जीवनचरित्र, आदि अनेक विषय हर महीने छपा करते हैं । बडी भारी खूबी यह है कि इसके ग्राहकोंको प्रतिवर्ष उपहारमें (भेटमें) बढिया २ ग्रन्थ दिये जाते हैं, जिनका मूल्य अलग लेनेसे वार्षिक मूल्यके ही बराबर होता है । अर्थात् मासिकपत्रके मूल्यमें उपहार मिल जाया करता है और जैनहितैषी सालभर मुफतमें आया करता है ।

जैनसाहित्यकी सर्वोत्तम सेवा करनेके लिये इस पत्रका जन्म हुआ है। अबतक इसमें ऐसे अनेक ऐतिहासिक वा धार्मिक लेख निकल चुके हैं जैसे किसीभी जैनपत्रमें नहीं निकले हैं । सरस्वती, भारतमित्र, शिक्षा, नागरीप्रचारक, विहारबन्धु, जैनगजट, जैनमित्र, वंदेजिनवर आदि सब ही समाचारपत्रोंने जैनहितैषीकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है । प्रत्येक धर्मात्माको इस पत्रके ग्राहक बनना चाहिये । वार्षिक मूल्य उपहार डांकखर्च वगैरह सहित १।।) डेढ़ रु है ।

इसपत्रकी साल दिवालीसे शुरू होती है । पहिले अंकसे सबको ग्राहक बनना पड़ता है । आगेकी साल लगभग ५०० पृष्ठका एक विराट ग्रन्थ उपहारमें दिया जायगा ।

हमारा पता—

मैनेजर श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग पो० गिरगांव. बम्बई ।

श्रीवीतरागाय नमः ।

श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय–बम्बईका

सूचीपत्र ।

खासकी छपाई हुई पुस्तकें ।

रत्नकरंडश्रावकाचार वचनिका बड़ा—यह महान् ग्रन्थ दूसरी बार बम्बईके जगत्प्रसिद्ध निर्णयसागर छापखानेमें चिकने और पुष्ट कागजपर छपकर तयार हुआ है । दो तीन मूल प्रतियोंपरसे इसका संशोधन किया गया है । पं० सदासुखजीने जिस भाषावचनिकामें लिखा था, वैसाका वैसा ही है, एक अक्षरमात्रमें भी फेरफार नहीं करके छपाया है। न्योछावर ...ले वेष्टनसहित ४) चार रुपया ।

शाकटायन प्रक्रियासंग्रह—संसारमें जितने व्याकरण अबतक मिले हैं उनमें **श्रीश्रुतकेवलिदेशीयाचार्यशाकटायन**का शब्दानुशासन व्याकरण सबसे प्राचीन है । पाणिनीय व्याकरण इसके पीछे बना है । शाकटायन-व्याकरण केवल प्राचीन ही नहीं है, किन्तु समस्त व्याकरणोंसे उत्तम, अल्प-परिश्रमसाध्य, बहुफलद, सुगम, स्वल्प, और सर्वांगपरिपूर्ण है । इसके मूलकर्त्ता महर्षि **शाकटायन** और प्रक्रियाके कर्ता **श्रीअभयचन्द्रसूरि** परम दिगम्बर जैनी थे । मूल्य केवल ३।) सवातीन रुपये ।

प्रद्युम्नचरित्र भाषा वचनिका—इस ग्रन्थमें श्रीकृष्ण नारायणके पुत्र प्रद्युम्नकुमारकी मनोहर कथा बड़ी ही सरल और सुन्दर भाषामें वर्णन की गई है। एक बार पढना शुरू करके फिर छोड़नेको जी नहीं चाहता है। शृंगारादि सभी रसोंसे यह ग्रन्थ परिपूर्ण है । इसके आगे उपन्यास झक मारते हैं । मूल्य २॥।) पौने तीन रुपया ।

पार्श्वपुराण चौपाईबद्ध—कविवर भूधरदासजीका बनाया हुआ यह ग्रंथ सर्वत्र प्रसिद्ध है। कविता बडी ही सुहावनी है। इस ग्रन्थमें कथा-भाग तो थोड़ा है परन्तु जैनधर्मके तत्वोंका बडे विस्तारमें वर्णन है। न्योछावर १।) सवा रुपया।

बनारसीविलास—इसमें आगरानिवासी स्वर्गीय कविवर बनारसी-दासजीके ज्ञानबावनी, सूक्ष्मुक्तावली आदि अनेक ग्रंथरत्नोंका सग्रह है। इसके प्रारंभमें ११३ पृष्ठोंमें ग्रथकर्त्ता कविवर बनारसीदासजीका सविस्तर जीवनचरित्र भी दिया गया है। हिन्दीमें इतना सच्चा और बड़ा जीवनचरित्र आजतक किसी भी कविका प्रकाशित नही हुआ है। न्योछावर १॥) रुपया।

कविवरवृन्दावनकृत चौबीसीपाठ—खास कविवर वृन्दावनजीके हाथकी लिखी हुई प्रथम पुस्तकपरसे जो हमें काशीमें उन्हींके भंडारसे प्राप्त हुई थी, इसे छपवाया है। कागज पुष्ट और छपाई निर्णयसागरकी है। इसमें भी प्रत्येक अष्टकमें जगह २ आंचली और प्रत्येक पदमें ॐ ह्रीं आदि शुद्ध मंत्र लगाये गये हैं, जिससे पूजा करनेवालोंको यथेष्ट फलकी प्राप्ति हो न्योछावर १) रु०।

प्रवचनसार परमागम—श्रीकुन्दाकुन्दाचार्यके नाटकसमयसारकी कविता करके जिस तरह कविवर बनारसदासजीने यश प्राप्त किया है, उसी प्रकारसे काशीनिवासी कविवर वृंदावनजीने प्रवचनसार परमामागम [कुन्द-कुन्दकृत] की कविता करके नाम कमाया है। इसमें कवित्त सवैया आदि छन्दोंमें अध्यात्मके गूढ तत्वोंका बडी सुन्दरतासे वर्णन किया है। कविवरकी खास हाथकी लिखी हुई प्रतिसे सशोधन करके यह ग्रथ छपाया गया है। मूल्य सिर्फ १।) रु०।

वृंदावनविलास—इस ग्रन्थमें काशीनिवासी कविवर बाबू वृन्दावनजीके सकटमोचन कल्याणकल्पद्रुम आदि मनोहर स्तोत्रों, अनेक प्रकारके [illegible], फुटकर कविताओं, जयपुरके पडित जयचन्द्रजी दीवान अमरचंद्रजी आदि महाशयोंके साथ किये हुए प्रश्नोत्तरों और गद्यपद्यबद्ध चिट्ठियोंका सग्रह है। साथ ही हिन्दीके एक अद्वितीय पिंगल ग्रन्थका संग्रह है, जो कि छन्द-

शतकके नामसे प्रसिद्ध है । ग्रन्थके प्रारंभमें कोई ३२ पृष्ठोंमें कविवरका जीवनचरित्र और उनके ग्रन्थोंका परिचय दिया है । न्योछावर ॥।) आने ।

धर्मपरीक्षा वचनिका—यह एक बड़ा ही विचित्र ग्रन्थ है । इसमें बडी ही म‍धुर हृदयग्राही भाषामें एक विलक्षण कथाके द्वारा सम्पूर्ण धर्मोंकी परीक्षा करके जैनधर्मकी उपादेयता सिद्ध की गई है । पुराणोंकी पोलोंपर सभ्यताके साथ बडे ही बढिया कटाक्ष किये हैं । एक वार पढ़ना प्रारंभ करके फिर छोड़नेको जी नहीं चाहता है । यों तो यह नवोंरसोंका भंडार है, परन्तु हास्य और शृगारकी प्रधानता है । मूल्य १) रु० ।

मनोरमा उपन्यास—हिंदीके प्रसिद्ध लेखक आरानिवासी वाबू जैनेन्द्रकिशोरजीन शीलकथाके आधारसे उपन्यासकी सुन्दर रसीली भाषामें यह पुस्तक लिखी है । प्रत्येक स्त्री पुरुष, और बालकके पढ़ने योग्य है । पतिव्रता स्त्रीका सुन्दर चरित्र है । मू० ॥)

नित्यनियमपूजा संस्कृत तथा भाषा—इसमें नीचे लिखे पाठ छपे हैं-लघु अभिषेकपाठ सस्कृत, नित्यपूजा संस्कृत प्राकृत, देवगुरुशास्त्रकी भाषापूजा, बीसतीर्थंकर पूजा, अकृत्रिमचैत्यालयोंके अर्घ सस्कृत प्राकृत, सिद्धपूजा संस्कृत, सिद्धपूजाका भावाष्टक, सोलहकारणादिक अर्घ, पचपरमेष्ठीको जयमाला प्राकृत, शान्तिपाठ संस्कृत, विसर्जन संस्कृत और भाषास्तुतिपाठ। प्रायः बहुतसे लोग इनके उलटे सीधे पाठ वा द्रव्य चढानेके मत्र अशुद्धतासे पढते थे । इस कारण हमने बहुत शुद्धतासे- अनेक प्राचीन प्रतियोंसे शुधवाकर इसे दूसरीवार छपवाया है । न्योछावर चार आना ।

भाषापूजासंग्रह—अबकी वार इसमें जितनी पूजाएं और शान्ति विसर्जन अभिषेक आदि पाठ हैं, वे केवल भाषामें रक्खे हैं। संस्कृत प्राकृतका कोई भी पाठ नहीं है । विशेष खूबी यह है कि, प्रत्येक स्थानमें स्थापना आव्हानादिके मत्र शुद्धतापूर्वक लिख दिये गये हैं । क्योंकि पूजाका सच्चा फल तबही मिलता है, जब वह शुद्ध मंत्रोच्चारण सहित की जावे । नीचे लिखे भाषापाठ हैं-अभिषेक पाठ, पंचामृताभिषेकपाठ, देवशास्त्रगुरुपूजा समुच्चय, बीस

विहरमानपूजा, जिनेन्द्रपूजा, सरस्वतीपूजा, गुरुपूजा, अकृत्रिमचैत्यालयपूजा, सिद्धचक्रपूजा, पचमेरुपूजा, नन्दीश्वर, सोलहकारण, दशलक्षण, रत्नत्रय और निर्वाणक्षेत्रपूजा, समुच्चयचौवीसीपूजा, स्वयंभूस्तोत्र, सप्तर्षिपूजा, शान्तिपाठ विसर्जनपाठ, स्तुतिपाठ आदि सब भाषाके पाठ हे। न्यो॰ ॥ु.

ज्ञानसूर्योदयनाटक—श्रीवादिचन्द्रिसूरिके संस्कृत ग्रन्थका सुन्दर सरल हिन्दीअनुवाद जैनहितैपीके सम्पादक श्रीनाथूराम प्रेमीने गद्यका गद्यमें और पद्यका पद्यमें किया है। यह अध्यात्मका नाटक है। इसमें पुरुपके सुमति और कुमति स्त्रियोंसे उत्पन्न हुए प्रवोध, विवेक, सतोप, तथा मोह, क्रोध, लोभ आदि पुत्रोंकी लडाई हुई है और अन्तमें प्रवोधकी विजय होकर आत्मा मुक्त हो गया है। न्यो॰ ॥ु आठ आना।

तत्त्वार्थसूत्रकी वालवोधिनी भाषाटीका—यह टीका जैनधर्मके विद्यार्थियोंके लिये वनवाई गई है। यह भादोंमें वाचनेके लिये भी बड़े कामकी है। साधारण भाई भी इससे सूत्रोंके अर्थ वाचकर समझ सकते है। रत्नकरडके समान इसमें भी पद पदके अर्थ किये है। तीसरी वार छपी है। न्योछावर मात्र ॥ु आणे।

जैनपदसंग्रह प्रथमभाग—कविवर दौलतरामजीके पदोंकी प्रशंसा करनेकी जरूरत नहीं है। सब ही वाल गोपाल उनके भजनोंके प्यासे रहते हैं। उनके एक ही पदके पाठसे चित्त सब दु ख भूलकर आनन्दसागरमें गोता लगाने लगता है। तीसरी वार मोटे टाइपमें पुष्ट कागजपर छपाया है और बहुतसे नवीनपद भी संग्रह किये गये हैं। मूल्य सिर्फ छह आने।

जैनपदसंग्रह दूसराभाग—इस दूसरे भागमें स्वर्गीय कविवर भागचंदजी कृत जितने पद हमको मिले वे सब छपे हैं। इस दूसरी आवृत्तिमें टाइप वडा कर दिया है। मू॰ चार आना।

जैनपदसग्रह तीसराभाग—इसमें कविवर भूधरदासजीके पद जकड़ी और विनतियोंका सग्रह है। सब मिलाकर ८० पद हैं। ये पद वडी कठिनाईसे सग्रह किये गये हैं। मूल्य पाच आना।

जैनपदसंग्रह चौथा भाग—इस भागमें कविवर द्यानतरायजीके ३३३ भजनोंका सग्रह है। पदोंका इतना बडा सग्रह आजतक और कोई नहीं छपा है मूल्य ॥=)

जैनपदसंग्रह पांचवां भाग—इस भागमें कविवर बुधजनजीके २५० के करीब पदोंका संग्रह है। बहुत शुद्धता पूर्वक छपाया है। मूल्य छह आना.

संस्कृत दशलक्षणपूजा प्राकृतजयमाला सार्थ—दशलक्षण पर्वके समय सूत्रजीके पहले यह बांची जाती है और एक २ धर्मका वर्णन प्रतिदिन सुनाया जाता है। दशलक्षणव्रत करनेवाले इसकी एक एक जयमाला रोज बाचते हैं। प्रत्येक मदिरजीमें इसकी एक एक प्रति अवश्य रहनी चाहिये। मूल्य चार आना।

रत्नकरंडश्रावकाचार सान्वयार्थ—प्रत्येक जैनी विद्यार्थीको सबसे पहले यही धर्मशास्त्र पढाया जाता है। इस ग्रन्थके सिर्फ १५० मूल श्लोक हैं। पहले मूल श्लोक, पीछे अन्वयपूर्वक सस्कृत पदोंको कोष्टकमें रखकर भाषामें अर्थ किया है। कठिन श्लोकोंका भावार्थ भी दिया है। न्योछावर चार आना।

द्रव्यसंग्रह—मूलगाथा, सस्कृतछाया, हिन्दी अन्वयार्थ और कविवर द्यानतरायजीकृत भाषाकवितासहित चौथी वार छपाया गया है। पहली वार प्रत्येक गाथाकी सस्कृत छाया नही थी, वह अबकी वार लगा दी गई है। चतुर विद्यार्थी इसे विना गुरुके भी पढ़ सकता है। इस ग्रन्थमें जैनधर्मके मूलभूत छह द्रव्य नवपदार्थोंका बड़ी उत्तमतासे वर्णन किया है। मूल्य चार आना।

भक्तामरस्तोत्र—अन्वय, हिन्दी अर्थ, भावार्थ और नवीन भाषापद्यानुवाद सहित। इसमें रत्नकरंडके समान पहिले प्रत्येक श्लोकका अन्वयानुगत पदार्थ लिखकर फिर प्रत्येकका भावार्थ लिखा है। पश्चात् हरिगीतिका और नरेन्द्रछन्दमें उसकी सुन्दर कविता बनाई गई है। अभीतक ऐसी कोई भी टीका नहीं छपी थी। भूमिकामें श्रीमानतुगसूरिका १०-१२ पेजका जीवनचरित्र है। दूसरी वार फिर सशोधित और परिवर्धित करके छपवाया है। न्योछा० सिर्फ चार आना।

अकलंकचरित्र—अकलंकस्त्रोत्र और अकलंकदेवका जीवनचरित्र दूसरी वार निर्णयसागरमें छपकर तयार हुआ है । अवकी वार अकलकस्तोत्रका हिंदी पद्यानुवाद भी करवाके साथमें लगवा दिया है जो कि खडी बोलीकी कवितामें हरएकके समझमें आने योग्य और सुन्दर है । मूल्य तीन आना ।

श्रुतावतारकथा—श्रुतपचमी पर्व किसतरह चला, इसकी विस्तारपूर्वक कथा इस पुस्तकमें लिखी गई है । साथ ही महावीर भगवानके पश्चात् जो २ प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं, उनका सक्षिप्त इतिहास भी लिखा है। इसके सिवाय सस्कृत श्रुतस्कधपूजा और भाषासरस्वतीपूजा तथा सरस्वतीजीकी स्तुतियां भी इसमें सग्रह कर दी गई हैं । जेठसुदी पचमीको श्रुतपंचमीका उत्सव करके इस पुस्तकके अनुसार पूजन विधानादि करना चाहिये और अपने पूर्वाचार्योंके अनन्त उपकारोंका स्मरण करना चाहिये । मूल्य तीन आना ।

भूधरजैनशतक—कविवर भूधरदासजीके यों तो सव ही ग्रन्थ उत्तम हैं, परन्तु इस जैनशतकमें तो उन्होंने कमाल कर दिया है । इसका एक एक कवित्त सवैया अमूल्य और प्रत्येक पुरुषके कंठ करने योग्य है । टीकाके स्थानमें कठिन २ शब्दोंकी टिप्पणी दी है । मूल्य मात्र अढाई आने ।

क्षत्रचूडामणि काव्य—क्षत्रचूडामणि सरीखा वालकोंके पढने योग्य, सुपाठ्य, नानाप्रकारकी नीतिशिक्षाओंसे भरा हुआ, और व्युत्पन्न करनेवाला काव्य सस्कृतमें और दूसरा नहीं है । उसीका हिन्दी अनुवाद अंग्रेजी सस्कृत और हिन्दीके प्रसिद्ध विद्वान् लाला सुशीलालजी एम्. ए. गवर्नमेंट पेन्शनर लाहोरसे कराके हमने प्रकाशित किया है । साथमें मूल श्लोक भी लगा दिये हैं । इस ग्रन्थमें जीवधरस्वामीका चरित्र वहुत सुन्दरतासे वर्णन किया है । भाषा इतनी सरल है कि, हर कोई समझ सकता है । मूल्य ॥।)

उपमितिभवप्रपंचाकथा—महात्मा सिद्धर्षिके अद्वितीय मूल ग्रन्थका शुद्धहिन्दी अनुवाद छप करके तयार है । अनुवाद वहुत ही अच्छा हुआ है । कठिनसे कठिन विषयोंका सरलतासे समझानेवाला गूढ अपूर्व ग्रन्थ है । काव्यका काव्य है सिद्धान्तका सिद्धान्त है और संसारका एक कथारूप चित्रका चित्र है । मूल्य एक रुपया ।

जैनविवाहपद्धति—अवकी वार यह पुस्तक इस ढंगसे छपाई गई

कि मामूली पढा लिखा आदमी इसके जरियेसे जैनविधिके अनुसार विवाह करा सकता है। प्रत्येक गृहस्थको यह पुस्तक मगाकर रखना चाहिये। मूल्य पहिलेकी अपेक्षा चौथाई अर्थात् सिर्फ तीन आना रक्खा है ।

...अणुवेक्खा—कुन्दकुन्दाचार्यका वनाया हुआ यह ग्रन्थ अभी तक अप्राप्य था। एक प्राचीन जीर्ण शीर्ण पुस्तक परसे उद्धारकरके और भाषाटीका सहित तयार करके इसको छपाया है। इसमें वारह अनुप्रेक्षाओंका वर्णन है। मूल्य लागत मात्र सवा आना।

दि० जैनग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ—इसमें सस्कृत और भाषाके लगभग ६२० आचार्यों कवियों भट्टारकों और पंडितोंके नाम तथा उन्होंने कौन २ ग्रन्थ वनाए हैं, इसका वर्णन दिया है। वडे परिश्रमसे यह पुस्तक तयार हुई है। मूल्य तीन आना।

बुधजनसतसई—कविवर बुधजनजीके ७०० दोहे प्रत्येक पुरुष स्त्रीके कंठ करने लायक इस पुस्तकमें हैं। मूल्य तीन आना।

भाषानित्यपाठसंग्रह—इसमें नाथूरामप्रेमीकृत भक्तामर और विषापहार-स्तोत्र भाषा, हेमराजजीकृत भक्तामर भाषा, भूधरदासजीकृत एकीभाव और भूपाल चौवीसी, और वनारसीदासजीकृत कल्याणमंदिर स्तोत्र इस तरह छह स्तोत्र और आलोचनापाठ, सामायिकपाठ, जोगीरासा, वारहभावना जकडीपद आदि हररोजपाठ करनेलायक वहुतसे विषयोंका संग्रह किया है। संस्कृतके नित्यपाठसग्रह सरीखा रेशमी गुटका वनवाया है। मूल्य आठ आनाके लगभग होगा। एक महीनेमें तयार हो जायग।

हमारी छोटी २ पुस्तकें।

१	जैनवालवोधकप्रथमभाग—	।)
२	शीलकथा—भारामलजीकृत	।-)
३	दानकथा—वखतावरमलजीकृत	=)
४	दर्शनकथा—	।-)
५	निशिभोजनकथा—दोतरहकी	=)
६	दियातले अंधेरा—स्त्रीशिक्षाकी मनोहर कहानी ...	-)॥
७	सदाचारीवालक—एक वालककी दुखभरी कहानी ...	-)॥

नोट—हमारी छपाई सब पुस्तकें एक ही किस्मकी एक साथ पाच मगानेसे पांचकी न्योछावरमें छह भेजी जाती हैं।

दूसरोंकी छपाई हुई पुस्तकें।

सप्तभंगीतरंगिणी—जैनधर्मके मूलभूत सप्तभंगीनयका इसमें नव्यन्यायकी रीतिसे विवेचन किया गया है। प्रत्येक भंगको ऐसी विस्तृत रीतिसे और चमत्का... युक्तियोंसे सिद्ध किया है, कि प्रशंसा करते नहीं बनता। जैनधर्मका स्याद्वाद क्या है, यह जाननेके लिये यह ग्रंथ अवश्य पढ़ना चाहिये। न्योछावर १) एक रुपया।

बृहद्द्रव्यसंग्रह—सरल हिन्दीभाषाटीका तथा संस्कृतटीका सहित। छोटा द्रव्यसंग्रह जो छप चुका है, उसीकी यह संस्कृत और बडी भाषाटीका है। मूलगाथाके नीचे उसकी संस्कृतच्छाया, और फिर श्रीब्रह्मदेवसूरिकृत संस्कृत टीका, तत्पश्चात् पं० जवाहरलालजीकृत भाषाटीका इस क्रमसे यह ग्रन्थ छपा है। मूल्य दो रुपया।

पंचास्तिकायसमयसार—मूल गाथा संस्कृतच्छाया संस्कृतटीका और सरल भाषाटीकासहित। इसमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, और आकाश इन पाच अस्तिकायोंका सामान्य तथा विस्तारपूर्वक निश्चयनयसे वर्णन किया गया है, जिसे पढ़कर हृदयके कपाट खुल जाते हैं। बड़े २ फिलॉसफर इस ग्रन्थको देखकर जैनियोंके तत्वनिरूपणपर दांतोंमें अंगुली दबाते हैं। आचार्यवर्य श्रीअमृतचन्द्रजीका संकृत व्याख्यान (टीका) भी देखने ही योग्य है। न्यो १॥) डेढ़ रुपया।

आत्मख्यातिसमयसार—प्रसिद्ध अध्यात्मका ग्रन्थ पं० जयचन्द्रजकृत वचनिकासहित। इसमें शुद्ध निश्चय नयका वर्णन है। न्यो० चार रुपया।

भगवतीआराधनासार—यह ग्रन्थ पं० सदासुखदासजीकृत वचनिका सहित ज्योंका त्यों खुले पत्रोंपर छपा है। इसमें अन्तिम सल्लेखनाका अपूर्व शान्तिदायक वर्णन है। न्यो० चार रुपया।

पुण्यास्त्रवकथाकोश—इसमें छोटी बडी सब मिलाकर छप्पनकथाओंका स...ह है। कोई २ कथायें तो इतनी बड़ी हैं कि उनके जुदे २ कई ग्रन्थ बन सकते हैं, जैसे सुकमालचरित्र, नागकुमारचरित्र, भविष्यदत्तचरित्र, चारुदत्तचरित्र, अभयकुमारचरित्र आदि। न्यो० ३) तीन रुपया।

The Jain Philosophy:—श्रीयुत गांधी वीरचन्द राघव जी. बी.ए. बॉरिष्टर ॲट लॉ के अमेरिकामें दिये हुए जैनधर्म सम्बन्धी अंग्रेजी व्याख्यानोंका संग्रह । प्रत्येक अंग्रेजीपढ़े हुए जैनीको मगाना चाहिये। मूल्य १॥)

जैनसिद्धांतदर्पण—जैनसिद्धांतके रहस्योंके ज्ञाता पं० गोपालदासजीने इस ग्रन्थको नई शैलीसे लिखा है और बडी खूबीसे लिखा है। इस एक ही ग्रन्थके पढनेसे जो रहस्य मालूम होत है, वे दूसरे अनेक ग्रन्थोंके अवलोकन करनेसे भी नही मालूम हो सकते हें । न्यो० ॥) वारह आना ।

सुशीला उपन्यास—जैनियोंके साहित्यमें यह विलकुल ही नई चीज है । एकवार पढना शुरू करनेसे फिर भूखप्यास भूल जाती है । विशेष खूवी यह है कि, यह केवल उपन्यास ही नहीं है किन्तु इसमें जैन सिद्धान्तका रहस्य भी कहा है । मूल्य १) एक रुपया ।

सर्वार्थसिद्धि भाषावचनिका—तत्त्वार्थसूत्रकी पूज्यपादस्वामीकृत सर्वार्थसिद्धिका वहुत प्राचीन और प्रामाणिक टीका है । यह उसीकी प० जयचन्द्रजी कृत भाषावचनिका है । प्रत्येक सूत्रका खूव विस्तारके साथ अर्थ किया है । वडे टाइपमें खुले पत्रोंपर छपी है । सव पृष्ठ ९०० के लगभग हैं, तौ भी मूल्य ४) रु० ।

षट्पाहुड—श्रीकुन्दकुन्दाचार्यके वनाये हुए दर्शन, सूत्र, चारित्र, बोध, भाव और भावलिंग इन छह पाहुडोंकी मूल गाथा और सस्कृतछायासहित भाषाटीका छपके तयार है । मूल्य १) रु० ।

जैनसम्प्रदायशिक्षा—इसे श्रीपालचन्द्रजी नामके एक अनुभवी यतिने बनाई है । यों तो इसमें ज्योतिष, सामुद्रिक, सस्कार, नीति, आचार विचार आदि सबही विषय हैं परन्तु मुख्यतः इसका वैद्यक प्रकरण वहुत बडा और अच्छा है । प्रत्येक गृहस्थके घरमें यह पुस्तक रहना चाहिये । जिल्द बहुत बढियां कपडेकी वधी है । मूल्य ३॥) रु०

जैनसिद्धान्तप्रवेशिका—यह अपूर्व पुस्तक मान्यवर प० गोपालदा-

सजीने रची है। जैनियोंको न्याय तथा सिद्धान्तोंमें प्रवेश करनेके लिये यह पुस्तक विद्यार्थियोंके लिये वहुत ही उपयोगी होगी। सरलतासे समझमें आनेके लिये सारी पुस्तक प्रश्नोत्तररूपमें लिखी गई है। धर्मविद्याका प्रचार करनेकी गरजसे यह पुस्तक केवल लागतके दामोंपर वेचीं जाती है। १९६ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य ≈) तीन आना।

हितोपदेश भाषाटीकासहित—यद्यपि इसमें कव्वे कबूतरों व सियाल वगैरह जानवरोंकी कल्पितकथायें हैं परन्तु उनमें नीतिका उपदेश ऐसा दिया है कि उसका जानना मनुष्योंके लिये भी परमोपयोगी है। इसकी संस्कृत भाषा वड़ी सरल है, इसके पढनेसे विद्यार्थीको संस्कृत पढनेका शौक हो जाता है। प्रत्येक प्राणीके लिये वड़ा ही लाभदायक ग्रन्थ है। मूल्य मूल ग्रंथका ।।) और भाषाटीका सहितका ।।।≈)

धर्मसंग्रहश्रावकाचार—अनुमान चार सौ वर्ष पहिले मेधावी नामके एक बड़े भारी विद्वान् हो गये हैं। उन्होंने अपने समय तकके विविध आचार्योंके रचे हुए श्रावकाचार ग्रंथोंका अध्ययन एवं मनन करके और वर्तमान देशकालके अनुसार आचारविषयक अनुभव संपादन करके विस्तारके साथ इस ग्रन्थकी रचना की है। भा० टी० उदयलालजी काशलीवालने की है। मूल्य० २) रु.

हरिवंशपुराण—यह जनसमाजमें प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें हरिवंशके प्रसिद्ध पुरुष नेमिनाथ, वासुदेव, वलभद्र, श्रीकृष्ण, पांडव, प्रद्युम्नकुमार आदि महान् पुरुषोंकी मनोमोहिनी कथायें हैं। भाषा वचनिका मोटे कागज व मोटे अक्षरोंमें छप कर तयार है। न्यो० ५) पांच रुपया.

पद्मपुराण—इसमें रामचंद्र, लक्ष्मण, सतीसीता, पवनंजय हनुमान आदि पुराणपुरुषोंकी वड़ी ही रोचक कथायें हैं। यह ग्रन्थ एक बार छप कर विक चुका था। कई वर्षोंसे न मिलनेके कारण देववन्दमें द्वितीयवार छपाया गया है। न्यों० ६) छह रुपया।

स्याद्वादमञ्जरी—इस ग्रंथमें स्याद्वादको वड़ी ही विद्वत्ताके साथ दरशाया है। अभीतक इसकी हिन्दी भाषाटीका कहीं पर नहीं हुई थी। अब भाषा-

टीका सहित यह ग्रन्थ तयार है । स्याद्वादका रहस्य जाननेवालोंके लिये संग्रह करनेयोग्य ग्रंथ है । न्यो० ४) रु० ।

सोमसेनाचार्यकृत त्रैवर्णिकाचार—मराठी भाषानुवाद. बहुत दिनोंसे हमारी समाजमें त्रैवर्णिकाचारके विषयमें आन्दोलन हो रहा है। किंतु ग्रन्थकी प्राप्ति न होनेसे लोग इस बातके जाननेके लिये तरसते ही थे, कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके आचार विचार क्या है ? सूतकविधि, पातकविधि, रजस्वला, प्रायश्चित्त, दायभाग, विवाह आदि संस्कार विधियोंका इस ग्रन्थके विना हमारी समाजमें प्रायः लोपसा हो गया था। जो सस्कृत जानते हैं, अथवा जिन्हें मराठी आती है, उन्हें फिलहाल यह ग्रन्थ अवश्य मगाकर रखना चाहिये । इसमें प्रातः-कालसे रात्रितक और जन्मसे मरणपर्यन्त एव व्यापारादि क्रियाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन है। न्यो० ३) रु० ।

अध्यात्मसंग्रह—इस पक्की कपडेकी सुन्दर जिल्द बधी हुई ३२२ पृष्ठकी पुस्तकमें नीचे लिखी २८ पुस्तकोंका सग्रह है—

१ विद्याकी लावनी, २ निर्वाणकाड भाषा, ३ धर्मपचीसी, ४-५-६ बारह भावना तीन तरहकी, ७ वैराग्यभावना, ८ आलोचनापाठ, ९ बारहमासा वज्रदन्त, १० नवकारमहिमा, ११ शिक्षाजकडी, १२ परमार्थजकडी, १३ समाधिमरण द्यानतकृत, १४ अध्यात्मपचासिका, १६ हुक्कानिषेध, १६ छहढाला बुधजन, १७ निशिभोजन कथा, १८ चौवीसदडक, १९ दशलक्षण धर्म, २० बारहखडी सूरत, २१ छहढाला दौलत, २२ तत्त्वार्थसूत्र मूल, २३ भक्तामर भाषा, २४ परमार्थ जकडी दौलत, २५ बाईसपरीषह, २६ पंचमगल, २७ भूधरशतक और २८ कर्त्ताखंडनका फोटू । न्यो० ॥।)

तेरहद्वीपपूजाविधान—लालकविका बनाया हुआ, मूल्य २॥) रु० ।

पांडवपुराण—यह कविवर बुलाकीलालजीका नाना प्रकारके सुन्दर छन्दोंमें बनाया हुआ ग्रन्थ है । इसमें वीररसकी कविता बहुत अच्छी है । मूल्य २॥।) पौन तीन रुपया ।

नरकदुःखचित्रादर्श—मनुष्य जिन २ पापोंको करके नरकोंमें जिन जिन दुःखोंको पाता है, इस पुस्तकमें उनका दोहोंमें वर्णन किया है. और

प्रत्येक पाप करते हुए मनुष्यका तथा दु.ख भोगते हुए नारकका रंगीन चित्र दिया है। सब मिलकर ५८ चित्र हैं। मूल्य ॥~) दश आना।

आदर्शदम्पति—यह सुन्दर उपन्यास व्येंकटेश्वर समाचारके पूर्व सम्पादक प० लज्जारामजीका बनाया हुआ है। इसमें एक ऐसी पतिव्रता स्त्री और एक ऐसे एकपत्नीव्रतधारी पुरुषकी आदर्श कहानी लिखी है, जिससे और अच्छी स्त्री तथा अच्छा पुरुष हो नहीं सकता। यद्यपि यह पुस्तक जैनधर्मसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखती है, तो भी सबके पढने योग्य है। मूल्य सिर्फ ॥~) है।

दूसरोंकी फुटकर पुस्तकें।

१ संशयतिमिरप्रदीप—पं० उदयलालजी कृत (दूसरी बारका) ॥)
२ वाग्भटालंकार—हिन्दी और संस्कृत भाषाटीका अलकारग्रन्थ १)
३ परमात्माप्रकाश—भाषाटीकासहित अध्यात्मग्रंथ ... ।~)
४ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय—सक्षिप्त अर्थसहित ... ।)
५ नित्यपूजा अर्थसहित—(देवगुरुशास्त्र पूजाका अर्थ) ... ~)
६ सुखानन्द मनोरमा नाटक—थिएटरोंमें खेलने योग्य ... ॥)
७ अंजनासुंदरी नाटक—बाबू कन्हैयालाल श्रीमालकृत ... ।)
८ सोमासती नाटक—बाबू जैनेन्द्रकिशोरजी कृत ... ~)॥
९ श्रावकवनिताबोधिनी—तीसरी बारकी छपी हुई ... ।)
१० बारहभावना—बाबू-जैनेन्द्रकिशोरजी कृत नई तर्जकी ... ।)
११ बालबोध व्याकरण—संस्कृत सीखनेका हिन्दीमें व्याकरण ... ॥)
१२ चौवीसठाणचर्चा—(गुटका) ... . ।~)
१३ कातंत्रपंचसंधि—भाषाटीकासहित " ... ~)
१४ सम्मेदशिखरपूजाविधान—माहात्म्यसहित ... ... ।)
१५ प्रश्नोत्तररत्नमाला—भाषा अर्थसहित दो तरहकी ... ... ~)
१६ अमरकोश मूल— ... ।~)
" और भाषाटीकासहित ... १॥)
१७ हिंदीकी पहिली पुस्तक—पन्नालालबाकलीवालकृत ... ~)॥

१८ हिंदी की दूसरी—पन्नालालबाकलीवालकृत ... ।)
१९ हिंदीकी तीसरी ,, ,, ... ।=)
२० नारीधर्मप्रकाश— ,, ... ≡)
२१ जैननित्यपाठसंग्रह—सोलह पाठोंका रेशमी मनोहर गुटका ।=)
२२ जैनतीर्थयात्रा—दूसरीवार छपी ।)
२३ जैनवनितारागिनी—बुंदेलखडकी स्त्रियोंके लिये .. =)
२४ जैनगीतावली— ... ।)
२५ राजुलनौपाठ—व्याहला बारहमासा आदि नौ पाठ ... ।-)
२६ बाईस परीषहसंग्रह—चार तरहकी =)
२७ अठारह नाते—यतिनयनसुखजी कृत ... -)
२८ बारहभावनासंग्रह—पांच तरहकी ...)॥
२९ श्रीपालचरित्र—कवि परमल्लकृत ... १।)
३० ज्योतीप्रसाद भजनमाला—नये भजन ... =)
३१ शीलकथा—ज्योतीप्रसाद कृत ... ≡)
३२ मंगतराय भजनमाला— -)॥
३३ शील और भावना—मुंशीलालजी एम्. ए कृत ... =)॥
३४ चार चौबीसीपाठ -)
३५ वसुनन्दिश्रावकाचार—भाषाटीका सहित .. ॥)
३६ सज्जनचित्तवल्लभ—सटीक ... ≡)
३७ जिनदत्तचरित्र—छन्दोबद्ध ... ॥।)
३८ स्त्रीशिक्षा प्रथम भाग—पन्नालालजी कृत ... =)
३९ स्त्रीशिक्षा दूसरा भाग— ≡)
४० छात्रोंके लिये उपदेश—मुंशीलालजी एम् ए कृत ... ।)॥
४१ आराधनासार कथाकोष—छन्दोबद्ध ... ३॥)
४२ यशोधर चरित्र—प्राकृत और भा० टीका ... २)
४३ बालबोध जैनधर्म—प्रथम भाग)॥
४४ बालबोध जैनधर्म—दूसरा भाग -)
४५ जैनबालगुटका (बड़ा)— ... ।=)
४६ जैननियम पोथी—... ...)॥

संस्कृत ग्रन्थोंका ब्योरा।

सुभाषितरत्नसंदोह—यह ग्रंथ धर्मपरीक्षाके कर्ता अमितगत्याचार्यकृत मूलसंस्कृत है। इसमें सांसारिकविषयनिराकरण, कोपानिराकरण, मायाहंकारनिराकरण, लोभनिराकरण, इन्द्रियनिग्रहोपदेश, स्त्रीगुणदोषविचार, मदसत्स्वरूपनिरूपण, ज्ञाननिरूपण, चरित्रनिरूपण, जातिनिरूपण, जरानिरूपण, मृत्युनिरूपण, सामान्यनित्यतानिरूपण, दैवनिरूपण, जठरनिरूपण, जीवसंबोधननिरूपण, दुर्जननिरूपण, सज्जननिरूपण, दाननिरूपण, मद्यनिषेधनिरूपण, मांसनिषेधनिरूपण, मधुनिषेधनिरूपण, कामनिषेधनिरूपण, वेश्यासंगनिषेधनिरूपण, द्यूतनिषेधनिरूपण, आप्तविवेचन, गुरुस्वरूपनिरूपण, धर्मनिरूपण, शोकनिरूपण, शौचनिरूपण, श्रावकधर्मनिरूपण, द्वादशविधतपश्चरणनिरूपण, ग्रंथकर्तृप्रशस्ति, इस प्रकार ३३ विषय हैं. जिनमेंसे श्रावणकधर्मनिरूपण प्रायः १२५ श्लोकोंमें और द्वादशतप ३५ श्लोकोंमें है. शेष विषय वीस २ श्लोकसे कोई कम नहीं है। प्रत्येक विषयका निरूपण ऐसा विस्तृत किया है कि प्रत्येक श्लोक कंठाग्र रखनेको जी चाहता है, उपदेशकोंके बडे ही कामका है। मूल्य ।III) आने।

जीवन्धरचम्पूकाव्य—क्षत्रचूडामणिमें जो कथा है, वही कथा इसमें भी है। परन्तु वह नीतिरूपमें है और यह शृंगाररूपमें है। इसके कर्त्ता महाकवि श्रीहरिचन्द्रजी हैं। मूल्य १)

नेमिनिर्वाणकाव्य—यह काव्य महाकवि वाग्भटकृत है। इसमें नेमिनाथ राजुलका चरित्र है। इसकी काव्यशैली बहुत अच्छी है। मूल्य ॥~)

चन्द्रप्रभचरित—इसमें चन्द्रप्रभतीर्थंकरका पवित्र चरित्र है। महाकवि वीरनन्दि विरचित देखने योग्य महाकाव्य है। इसकी रचना रघुवंशके ढंगकी है। मूल्य ।III) मात्र।

धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य—महाकवि श्रीहरिचन्द्रजी विरचित। प्रत्येक साहित्यप्रेमीके देखने योग्य काव्य है। काव्यमालाके सपादकने लिखा है, कि यह काव्य माघादि महाकवियोंके काव्योंसे किसी बातमें कम नहीं है। मूल्य १)

द्विसंधान महाकाव्य सटीक—यह काव्य महाकवि धनंजयश्रेष्ठि-विरचित है। इसके प्रत्येक श्लोकसे दो दो कथाओंका अर्थ निकलता है। अर्थात् एक अर्थमें रामचद्रजीकी कथा और दूसरे अर्थमें पाडवोंकी कथा। यह महाकाव्य सस्कृतटीकासहित छपा है। मूल्य १॥) रुपया।

यशस्तिलकचम्पूकाव्य—यह नीतिवाक्यामृतके कर्ता श्रीसोमदेव-सूरि विरचित महाकाव्य है। इसमें यशोधर महाराजका पवित्र चरित्र है। इसका गद्य भी कादवरीके गद्यको टक्कर लगानेवाला है। आचार्यवर्य श्रुतसागर-कृतविस्तृत टीकासहित निर्णयसागरकी जगत्प्रसिद्ध काव्यमालामें छपा है। परतु सस्कृतटीका उत्तरखंडके सरल भागकी नहीं है। उत्तरखडमें जैनधर्मका व्याख्यान भी वहुत उत्तम रीतिसे वर्णन किया गया है। मूल्य प्रथम खंडका ३॥) उत्तरखडका २॥)

काव्यमाला सप्तमगुच्छक—इसमें भक्तामर कल्याणमदिर सिंदूरप्रकर आदि २३ स्तोत्र हैं। प्रत्येक स्तोत्र एकसे एक वढ़ियां हैं। मूल्य १) रु.

काव्यमाला तेरहवां गुच्छक—इसमें वादिचन्द्रसूरिकृत पवनदूत काव्य (जैन) वहुत ही उत्तम है, जिसमें सुग्रीव और उसकी स्त्री सुताराके विरहका वर्णन है। इसके सिवाय धनदराज कवि (जैन) के शृगार नीति और वैराग्यशतक तथा अन्य वैष्णव कवियोंके विल्हणकाव्य आदि कई काव्य हैं। मूल्य १)

वाग्भटालंकार सटीक—महाकविवाग्भटकृत अलंकारका ग्रंथ है। इसकी सस्कृतटीका भी अच्छी है। मूल्य ॥) आने।

काव्यानुशासनसटीक—यह भी वाग्भटकृत अलंकारका ग्रथ है। इसमें सव लक्षण गद्यमय सूत्रोंमें दिये हैं। इसकी टीका भी सविस्तर है। मूल्य ।≈)

अलंकारचिन्तामणि (संस्कृत)—अजितसेन नामके आचार्यका वनाया हुआ अलंकारका ग्रंथ है। इस ग्रन्थमें जो अलकारके उदाहरण दिये हैं, वे अनेक प्राचीन जैनकाव्योंसे उद्धृत करके दिये गये हैं, जिनका कि कभी नाम भी सुननेमें नहीं आया था। न्यो० ॥)

सनातनजैनग्रन्थमाला प्रथमगुच्छक—इस एक ही गुटकेमें रत्नकरंडश्रावकाचार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, आत्मानुशासन, समाधिशतक, नयविवरण, युक्त्यनुशासन, तत्त्वार्थसूत्र, तत्त्वार्थसार, अध्यात्मतरंगिणी (समयसार-कलशे), बृहत्स्वयंभूस्तोत्र, आप्तपरीक्षा, परीक्षामुख, आलापपद्धति ये १३ मूल ग्रन्थ और आप्तमीमांसा (देवागमस्तोत्र) सटीक इसप्रकार १४ ग्रन्थ छपाये हैं। यह गुटका पाठ करनेवालोंके सुभीतेके लिये बडा उपयोगी है। न्यो० १) रु.

पार्श्वाभ्युदयकाव्य सटीक—आदिपुराणके कर्ता भगवज्जिनसेनने इस अपूर्व ग्रन्थकी रचना की है। इसमें कालिदासकविका बनाया हुआ मेघदूतकाव्य सबका सब वेष्टित है। अर्थात् मेघदूतके श्लोकोंके प्रत्येक पादकी समस्यापूर्ति करके यह ग्रन्थ बनाया है। इसतरह यह मेघदूतसे लगभग चौगुना हो गया है। बडी भारी खूबी यह है कि, इसमें श्रीपार्श्वनाथ और कमठका चरित्र वर्णन किया है। रसिकताकी इसमें हद हो गई है। श्रीयोगिराट् पंडिताचार्यकी बनाई हुई सुगम संस्कृत टीका भी इस ग्रन्थके साथमें है। मूल्य केवल लागतके करीब अर्थात् ॥।) बारह आना है।

आप्तपरीक्षा—मूल पाठमात्र ... ... ‌-)

आप्तमीमांसा— „ „ ... . -)

परीक्षामुख प्रमेयरत्नमाला टीकासहित—मूल ग्रन्थ श्रीमाणिक्यनन्दिकृत और टीका श्रीअनन्तवीर्यआचार्यकृत। मूल्य॥)

पंचाध्यायी—यह जैनसिद्धान्तोंका बडा ही अपूर्व और सुन्दर ग्रन्थ है. इसमें द्रव्य और गुणका स्वरूप ऐसा उत्तम और विलक्षण कहा है जो अन्य ग्रन्थोंमें नहीं देखा जाता। मूल मात्र छपा है. मूल्य ॥)

जीवंधरचरित्र—भगवद्गुणभद्राचार्यरचित। यह ग्रन्थ उत्तरपुराण मेंसे जुदा निकालकर छपवाया गया है. मूल्य १) एक रुपया।

तत्त्वार्थसूत्र—मूलपाठ ... ... -)॥

जिनसहस्रनाम—जिनसेन और आशाधरकृत ... ... ≈)

गोम्मटसार (जीवकांड)—उत्थानिका मूलगाथा और संस्कृत छायासहित। मूल्य ।≈)

मराठी पुस्तकें ।

१ आत्मानुशासन—यह ग्रन्थ हिन्दी भाषापरसे मराठीमें अनुवाद किया गया है और बहुत उत्तमतासे सोलापुरमें छपा है । मूल्य २)

२ जैनकथासुमनावली भाग १ ला—शेठ हीराचन्द अमीचन्द सोलापुरनिवासीकृत । इसमें सम्यग्दर्शनके अंगोंकी ८, पांच अणुव्रतोंकी १३, दानके माहात्म्यकी ४ और पूजा माहात्म्यकी १ इस तरह सब मिलकर २६ सुन्दर सुन्दर कथायें हैं । नवीन ढंगसे लिखी गई हैं । मूल्य ॥।) बारह आना ।

२ तत्वार्थसूत्राचा मराठी अर्थ—शेठ जीवराज गौतमने इसे हमारी हिन्दी टीकाके आधारसे मराठीमें लिखा है । मूल्य ॥।)

४ जैनव्रतकथासंग्रह—प्रसिद्ध विद्वान् शेठ हीराचन्द नेमीचन्दजीकी लिखी हुई इसमें २४ कथायें हैं । मूल्य ।) चार आना ।

५ पंचास्तिकायसमयसार—इसमें पहले मूल कुन्दाकुन्दाचार्यकी प्राकृत गाथा फिर उनकी छाया और नीचे संस्कृत बडी टीकाके आधारसे मराठी अर्थ लिखा है । मूल्य १)

६ आप्तमीमांसा (देवागमस्तोत्र)—यह न्यायका ग्रन्थ वसुनन्दि आचार्यकृत संस्कृतवृत्ति और मराठीअर्थसहित पं० कल्लापा भरमापा निटवेने पं० जयचन्दजी छावडाकृत भाषा वचनिकाके आधारसे तयार किया है। बहुत ही उत्कृष्ट ग्रन्थ है । मूल्य १॥) डेढ रुपया ।

७ वसुनन्दिश्रावकाचार—मूल, प्राकृतगाथा, संस्कृतछाया और मराठीटीकासहित । मूल्य ॥=)

८ षोडशकारणभावना—पं० सदासुखजीकृत रत्नकरंडश्रावकाचारके आधारसे शेठ हीराचन्द नेमचन्दजीने मराठी भाषामें बनाई है । इसमें भावनाओंका स्वरूप खूब विस्तारसे लिखा है । मूल्य चार आना ।

९ रत्नकरंडश्रावकाचार—शेठ हीराचन्द नेमीचन्दजीकृत मराठी और हिन्दी टीकासहित छोटेसाइजमें छपा है । मूल्य ।) चार आना ।

१० रत्नकरंडश्रावकाचार—प० कलापा भरमापा निटवेने अन्वय अर्थ और मराठी कविता सहित छपाया है । मराठी कविता बहुत ही अच्छी है । मूल्य ।) चार आना ।

११ दशलाक्षणिक धर्म—प० सदासुखजकृत रत्नकरंडके आधारसे श्रीमति ककूबाईने मराठीमें अनुवाद करके छपाया है। इसमें उत्तमक्षमादि धर्मोंका वर्णन बहुत विस्तारसे किया है। मूल्य ≈)

१२ श्रावकप्रतिक्रमण—मूल प्राकृत और मराठी अर्थ सहित। इसकी मराठी टीका शेठ हीराचन्दजीने की है। मूल्य ।) चार आना.

१३ तीर्थंकरचरित्र—अजितनाथतीर्थंकरसे लेकर मल्लिनाथतीर्थंकरतकका चरित्र इस पहिले भागमें छपा है। बीचमें अनेक चक्रवर्ती और नारायण प्रति नारायणोंके चरित्र भी इसमें आये हैं। पुस्तक इतनी अच्छी बनी है कि, बड़ौदा सरकारने इसके लेखक श्रीतात्यानेमिनाथ पांगलको १५०) रुपया इनाम दिया था। मूल्य ॥।)

१४ जीवंधरचरित्र—यह क्षत्रचूडामणिका मराठी अनुवाद प० कलापा भरमापाने करके छपवाया है। मूल्य ॥।)

१५ रयणसार—कुन्दकुन्दाचार्यकी मूल प्राकृत गाथा और मराठी अर्थसहित। इसमें दर्शन ज्ञान और चारित्ररूप रत्नोंका सार कहा है। मूल्य ≡) तीन आना।

१६ जैनधर्माची हिन्दुस्थानी आणि मराठी सुरस पदे—इसमें कवि हीराचन्द अमोलक फलटणकरके बनाये हुए हिंदीके ९४ और मराठीके १४ पद छपे हैं। मूल्य ॥) आठ आना।

१७ पुण्यास्रवपुराण (ओवीबद्ध)—इसमें सब मिलाकर ७९ अध्याय हैं और वज्रदत, नागकुमार, वज्रजंघ, कुबेरप्रिया, प्रभावती, नीलावती, रोहिणी आदिकी ५० बडी २ कथायें हैं। यह ग्रन्थ हिंदी पुण्यास्रवसे बहुत बडा हैं। मूल्य २॥)

१८ आदिपुराण—भगवज्जिनसेनाचार्यकृत मूल संस्कृत और मराठी अनुवाद सहित छहवर्षमें छपके तयार हुआ है। मूल्य २५) पचीस रुपया।

मराठी छोटी २ पुस्तकें।

कन्याविक्रय—(भरतखंडातील चालू गुलामाचा धंदा) ... ≡)

भजन सद्बोधमालिका—रावजी नाना कोलेकर रचित ... ।)

पंचपरमेष्ठीगुण— ... ... -)
जैनधर्मनियम— ... ... -)॥
श्रावणप्रतिक्रमण लहान ... ... -)
गजकुमारचरित्र—दत्तात्रय भीमाजी रणदिवे कृत मराठी कविता ।)
कुन्दकुन्दाचार्यचरित्र—(ऐतिहासिक) ... ... ≈)
पूज्यपादकृत, श्रावकाचार ... ... ।)
जैनविवाहपद्धति— ... ... ।)

गुजराती भाषाकी जैनपुस्तकें।

१ जैनव्रतकथासंग्रह गुजराती ... ... ॥=)
२ कल्याणमंदिर स्तोत्र गुजराती पद्य और अर्थ ... ।)
३ धर्मपरीक्षा अमितगतिकृत–गुजराती अनुवाद ... ।)
४ सुकमाल चरित्र ... ... ।=)
५ सुदर्शन सेठ ... . ।)
६ श्रावकप्रतिक्रमण ... ... -)॥
७ महावीर चरित्र शेठ प्रेमचन्द मोतीचन्दजी कृत ... ऋ
८ रत्नकरंडश्रावकाचार मूल और गुजराती अर्थ ... =)
९ श्रुतपंचमीमाहात्म्य ... ... =)
१० अनित्यपंचाशत ... ... ।)
११ जैनधर्म अने तेनी माहिती ... ... -)॥
१२ विद्यालक्ष्मीसवाद ... ... -)
१३ रविवारव्रतकथा ... ... -)
१४ सल्लेखना मृत्युमहोत्सव ... ... ।)
१५ दिगम्बरजैनज्ञानसंग्रह ... ... ≈)
१६ कलियुगनी कुलदेवी ... ...)॥॥
१७ जैननियम पोथी ... ...)॥
१८ जैनसारपदसंग्रह ... ... -)॥
१९ नित्यनियमपूजा ... ... ।।)

नया उद्योग ।

हम चाहते हैं कि, जैनियोंमें जैनधर्मसम्बन्धी पुस्तकोंके सिवाय ऐसी भी पुस्तकोंका प्रचार होवे, जिनसे लौकिक ज्ञानकी वृद्धि होवे । दुनियामें क्या हो रहा है, और कैसी २ किस २ विषयकी पुस्तकें लिखी जा रही हैं, इस बातका ज्ञान हमारे भाइयोंको बहुत कम होता है और इससे वे अपनी ऐहिक उन्नति नहीं कर सकते हैं । यह सोचकर हमने हिन्दीमें जितनी अच्छी २ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और हो रहीं हैं, उन सबको मगाकर विक्रीके लिये रखनेका प्रयत्न किया है । उपन्यास, इतिहास, नाटक, नीति, राजनीति, विज्ञान आदि सब विषयोंकी चुनी हुई पुस्तकें हम मंगानेका प्रबंध कर रहे हैं । फिलहाल हमने नीचे लिखी पुस्तकें मगाई हैं । आशा है कि, हमारे भाई इन्हें मंगाकर अपने ज्ञानकी वृद्धि करेंगे

उपन्यास ।

राजर्षि—बंगलाभाषाके लेखकशिरोमणि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके राजर्षि उपन्यासका यह हिन्दी अनुवाद है । इसके पढ़नेसे हृदयकी आंखें खुल जाती हैं, बुरी वासनाए दूर हो जाती हैं, हिंसा द्वेषकी बातोंसे घृणा होने लगती है, ऊचे २ ख्यालोंसे दिमाग भर जाता है, और अपना कर्तव्य क्या है, यह सूझ पड़ता है । पुरुष और स्त्री दोनों इसे पढ़ सकते हैं । मूल्य २६५ पृष्ठकी पुस्तकका चौदह आना ।

मुकुट—यह भी रवीन्द्रबाबूके बगला उपन्यासका अनुवाद है । भाई भाईमें परस्पर वैमनस्य होनेसे उसका परिणाम क्या होता है, यही इस छोटेसे उपन्यासमें दिखलाया गया है । मूल्य चार आना ।

दो अंगूठियां—बगलाके प्रसिद्ध उपन्यासलेखक बंकिमबाबूके युगलांगुरीय— अनुवाद । बड़ी ही मनोहर पुस्तक है । मूल्य तीन आना ।

धोखेकी टट्टी—इस उपन्यासमें एक अनाथ लड़केकी नेकनियती नेकचलनी और एक धनवान्के लड़केकी बदचलनी और बदनियतीका फोटो खींचा गया है । जरा मगाकर तो देखिये कैसी धोखेकी टट्टी है । छह आना ।

नूतनचरित्र—प्रयागके जैनी वकील बाबूरतनचन्दजी बी. ए. का बनाया हुआ यह उपन्यास बिलकुल ही नूतन है। एकबार पढ़ना शुरू करके फिर छोड़नेको जी नहीं चाहता है। एक रुपया।

बालआरव्योपन्यास—सहस्ररजनीचरित्र (अरेबियन नाइट्स) की दिलचस्प कहानियोंका संग्रह। अंग्रेजीके प्रसिद्ध लेखक बाबू रामानन्द चटर्जी एम्. ए. ने अलिफलैलाकी उन कहानियोंको छोड़कर इस पुस्तकको लिखी है, जो चरित्रको बिगाड़नेवाली हैं। उसीका यह हिन्दी अनुवाद है। इससे मनोरंजनके सिवाय अच्छी २ शिक्षायें मिलती हैं, बालक स्त्री पुरुष सबके कामकी है। आठ आना।

सीतावनवास— स्वर्गीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागरकी बंगला पुस्तकपरसे अनुवादित। बंगलामें यह पचासोंवार छप चुकी है और बिक चुकी है। करुणा-रससे भरी हुई पुस्तक है। पढते २ आंखोंसे आंसुओंकी धारा बहने लगती है। मूल्य आठ आना।

अथेलो—यह यूनानदेशका उपन्यास है। इसके पढ़नेसे मालूम होता है कि, दुष्टात्मा मनुष्य अपनी इच्छा पूरी करनेके लिये कैसे २ अनाचार और पाप करता है। और न्यायी पुरुष कैसे कर्तव्यशाली होते हैं। मूल्य तीन आना।

दुःखिनी बाला—इस छोटेसे रूपकमें बालविवाहका अशुभ परिणाम बड़ी युक्तिसे दिखलाया है। मूल्य डेढ़ आना।

निःसहायहिन्दू—हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक बाबू राधाकृष्णदासका लिखा हुआ यह वियोगान्त उपन्यास है। मूल्य चार आना।

जीवनप्रभात—स्व० रमेशचन्द्रदत्त सी आई ई. के लिखे हुए उपन्यासका हिन्दी अनुवाद। इसमें महाराष्ट्र वीर शिवाजीका वर्णन पढकर भारतके जीवनका प्रभात याद आजाता है। मूल्य १ रुपया।

कविताकी पुस्तकें।

कुमारसंभवसार—हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीने कालिदासके कुमारसंभवके पांच सर्गोंका बड़ा ही सुन्दर पद्यानुवाद किया है। पढने योग्य है। मूल्य तीन आना।

कविता कुसुममाला—इसमें विविध विषयोंकी अनेक कवियोंकी रची हुई अत्यन्त मनोहारिणी और रसीली कविताओंका संग्रह है। म० प्र० की टेक्सबुक कमेटीने इसे लायब्रेरियोंके लिये तथा इनाम देनेके लिये पसन्द किया है मूल्य दश आना।

रंगमे भंग—राजपूतानेकी एक ऐतिहासिक घटनाको लेकर हिन्दीके नामी कवि बाबू मैथिलीशरणगुप्तने इस पुस्तकको रची है। कविता हृदयको वीररससे परिप्लुत कर देती है। प्रारंभमें बूंदीके एक वीरका सुन्दर चित्र दिया है और पुस्तककी छपाई देखनेलायक है। मूल्य चार आना।

कविताकलाप—पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी द्वारा सम्पादित। इसमें हिन्दीके नामी २ कवियोंकी ४६ कविताओंका संग्रह है और इतने ही चित्र हैं। अधिकांश चित्र प्रसिद्ध चित्रकार राजारविवर्माके बनाये हुए हैं। पुस्तक देखते ही आप मोहित हो जावेंगे। मूल्य ढाई रुपया।

हम्मीर हठ—चन्द्रशेखर नामके एक पुराने कविका बनाया हुआ यह कविताका ग्रन्थ है। इस वीरकाव्यमें इतिहासप्रसिद्ध हाड़ा वीर हम्मीर और दिल्लीके बादशाह अल्लाउद्दीनके युद्धका वर्णन है। बड़ा ही आजवर्द्धक और चित्ताकर्षक काव्य है। मूल्य आठ आना।

छत्रप्रकाश—इसमें बुन्देलवंशशिरोमणि महाराज छत्रसालका इतिहास वर्णन किया गया है। लड़ाइयोंका हाल वीररससे भरा हुआ है। लाल कविका बनाया हुआ बड़े महत्वका ग्रन्थ है। मूल्य सवा रुपया।

इतिहासकी पुस्तकें।

जपानदर्पण—जिस महाबली जापानने भयंकर शत्रु रूसको पछाड़कर सारे संसारमें अपनी विजयदुंदुभि बजाई है, उसी वीरशिरोमणि देशके भूगोल आचरण, शिक्षा, उत्सव, धर्म, व्यापार, राजा, प्रजा, सेना और इतिहास आदि बातोंका इस पुस्तकमें विस्तारके साथ वर्णन किया है। ३५० पृष्ठकी पुस्तकका दाम बारह आना।

जर्मनीका इतिहास—पं० श्यामविहारी मिश्र एम् ए. और पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी ए लिखित। इसके पढनेसे मालूम होगा कि जर्मनीकी उन्नति किन २ कारणोंसे हुई है। मूल्य छह आना।

इंग्लैंडका इतिहास—भारतवासियोंको अपने राजाके देशका यह इतिहास अवश्य वाचना चाहिये। मूल्य दश आना।

फ्रांसका इतिहास—यह भी उक्त विद्वानोंका लिखा हुआ है। सात आना।

रूसका इतिहास—रूसका नकशा भी इसमें है। छह आना।

हिन्दी भाषाकी उत्पत्ति—भारतमें पहिले कौन २ भाषाएं थीं, उनसे किस प्रकार और कब हिन्दीकी उत्पत्ति हुई है, इसका इतिहास बड़ी खोजके साथ सरस्वतीके सम्पादकने लिखा है। मूल्य चार आना।

अशोकका जीवनचरित्र—प्रसिद्ध बौद्धराजा अशोकका बौद्धधर्म ग्रहण करना, उसकी उन्नति करना, उसके समयका इतिहास, राजशासन-प्रणाली, शिलालेख आदि बातें विस्तारके साथ इस पुस्तकमें लिखी हैं। प्रत्येक इतिहासप्रेमीको इसे पढना चाहिये। मूल्य चार आना।

नेपालका इतिहास—स्वतंत्र हिन्दूराज्य नेपालका परिचय इस पुस्तकमें बहुत अच्छी तरहसे दिया है। मूल्य पांच आना।

महाराणा प्रतापसिंह—यह एक वीररसका नाटक है। जिसने अपनी वीरता और धीरतासे भारतका मुख उज्ज्वल किया था, इस पुस्तकमें उसी राजपूतवीरका प्रतापसिंह राणाका और अकबरबादशाहका वृत्तान्त बडी युक्ति और कौशलके साथ लिखा है। मूल्य बारह आना।

विविधविषयोंकी उत्तमोत्तम पुस्तकें।

ऋद्धि—कौन नहीं चाहता कि, मैं ऋद्धिवान् अर्थात् धनी होऊं। परंतु धनवान् होनेके उपाय जाने विना लोग सफल मनोरथ न होकर भाग्यको दोष देते हैं। जो लोग भाग्यके भरोसे रहकर दरिद्रताका दुख झेलते हुए ऋद्धिप्राप्तिके लिये कुछ उद्योग नहीं करते, उनके लिये यह पुस्तक कल्पवृक्ष वा चिन्तामणि है। एक बड़े नामी विद्वान्की लिखी हुई यह पुस्तक है। इसमें उदाहरणके लिये उन अनेक उद्योगशील निष्ठावान् कर्मवीरोंका संक्षिप्त चरित्र भी दिया है, जिन्होंने स्वावलम्बनपूर्वक व्यवसाय करके करोडोंकी दौलत कमाई है। चार्ट्रर्या जिल्दसहित पुस्तकका दाम सवा रुपया।

चरित्रगठन—कैसा ही कोई बुरे आचरणोंवाला क्यों न हो, जो इसे एकबार पढ़ेगा वह उसी घडीसे अपने आचरण सुधारनेके लिये तयार हो जायगा।

इतना ही नहीं, उसे अपने बुरे आचरणोंपर घृणा हो जायगी और फिर वह कभी उनका नाम भी न लेगा। लोग अपनी सन्तानको शिक्षित और सच्चरित्र बनानेके लिये हजारों रुपया खर्च कर डालते हैं तो भी सफल मनोरथ नहीं होते हैं। ऐसे लोगोंको अपनी सन्तानको यह पुस्तक देकर परीक्षा करनी चाहिये। जो नवयुवक विद्यार्थी अपना चरित्र उत्तम बनाना चाहते हैं, उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढना चाहिये। जिस कर्तव्यसे मनुष्य अपने समाजमें आदर्श बन सकता है, उसका इस पुस्तकमें विशेषरूपसे वर्णन किया गया है। हिन्दीमे यह पुस्तक एक रत्न है। २३२ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य बारह आना।

शिक्षा—यूरोपके सुप्रसिद्ध विद्वान् हर्बर्ट स्पेन्सरकी बनाई हुई अंग्रेजी पुस्तकका यह सरस्वतीसम्पादकका किया हुआ बहुत बढियां अनुवाद है। जो अपनी सन्ततिको अच्छी बनाना चाहते हैं और यह जानना चाहते हैं कि, शिक्षाका स्वरूप क्या है, वे इस विद्वान्की लिखी हुई मीमासाको पढें। मूल्य ढाई रुपया।

सन्ततिरत्न—इस पुस्तकमें पुरुष स्त्रीके प्रश्नोत्तररूपमें यह बतलाया है कि, स्त्रीको जब गर्भ धारण हो, तबसे लेकर अपने चरित्रादि कैसे रखना चाहिये, कैसे विचार रखना चाहिये, और बालक उत्पन्न हो जावे, तब उसके साथे कैसा वर्त्ताव करना चाहिये, उसके ज्ञानको कैसे बढ़ाना चाहिये, उसका चरित्र कैसे सुधारना चाहिये। जो लोग बालबच्चोंवाले हैं अथवा जो शीघ्र ही माबाप होनेवाले हैं, उन्हें यह पुस्तक मगाकर अवश्य पढ़ना चाहिए। प्रसिद्ध २ अंग्रेजी ग्रन्थोंका मनन करके यह उत्तम पुस्तक लिखी गई है। इसके अनुसार चलनेसे प्रत्येक गृहस्थका घर थोडे ही दिनोंमें स्वर्ग बन सकता है। मूल्य साढे छह आना।

सम्पत्तिशास्त्र—जर्मन अमेरिका इग्लैंड आदि देश दिन परदिन धनी क्यों होते जाते हैं और हिन्दुस्थान दरिद्र क्यों होता जाता है। इसका कारण इस सम्पत्तिशास्त्रके ज्ञानका अभाव ही है। इसीके न जाननेसे भारत भूखों मर रहा है, अतएव इस शास्त्रको पढ़कर हमें अपनी दशा सुधारना चाहिये। मूल्य ढाई रुपया।

परिचर्याप्रणाली—रोगीकी सेवा सुश्रूषा चर्या आदि किसतरह करना चाहिये इसका ज्ञान हमारे कुटुम्बोंमें नहीं होनेसे सैकड़ों रोगी बेमौत मर जाते

हैं। इस पुस्तकके पढ़नेसे यह वात न होगी। इसमें रोगीकी परिचर्याकी सब विधि लिखी है। प्रत्येक घरमें यह पुस्तक होनी चाहिये। इसका ज्ञान वहू बेटियोंको सबको करा देना चाहिये। मूल्य चार आना।

सुघड़ दर्जिन—कपडोंकी काट छांट सिलाई कैसे करना चाहिये, इसको इस पुस्तकमें बहुत अच्छी तरहसे समझाया है। जगह जगह चित्र भी दिये हैं। स्त्रियोंके बड़े कामकी चीज है। बारह आना।

मनोविज्ञान—मन शास्त्रके गूढ तत्त्वोंका इसमें बडी सरलतासे वर्णन किया है। यूरोपके नामी २ दार्शनिकोंके ग्रन्थोंके आधारसे यह पुस्तक लिखी गई है। जैनियोंको यह पुस्तक मगाकर देखना चाहिये कि, हमारे यहा मनका स्वरूप कैसा माना है और दूसरे लोग कैसे मानते हैं। विद्वानोंके ही कामका यह ग्रथ है। मूल्य आठ आना।

पाकप्रकाश—रोटी, दाल, कढ़ी, भाजी, रायता, चटणी, पूरी, कचौरी, मालपूआ आदि जो चाहे चीज इस पुस्तकके सहारेसे आप बना लीजियेगा। स्त्रियोंके पास तो यह जरूर रहना चाहिये। मू० तीन आना।

व्यवहारपत्रदर्पण—इसमें अदालतके सैकडों कामकाजके नमूनोंके कागज छापे गये गये हैं। इसकी सहायतासे अदालतके जरूरी कामोंको नागरीमें बडी सुगमतासे कर सकते हैं। मूल्य आठ आना।

उपदेशकुसुम—फारसीके प्रसिद्धकवि शेखशादीकृत गुलिस्ताके आठवें बाबका हिन्दी अनुवाद। पढनेलायक और शिक्षादायक है। मूल्य दो आना।

सौभाग्यवती—पढी लिखी स्त्रियोंको यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिये। इसके पढनेसे वे बहुत कुछ उपदेश ग्रहण कर सकती है। मूल्य टाई आना।

जलचिकित्सा—जर्मनीके डाक्टर लुई कूनेनें दुनियाके तमाम रोगोंको केवल पानीसे आराम करनेकी तरकीब निकाली है। उसीका इसमें सचित्र वर्णन है। मगाकर पढ़िये और लाभ उठाइये। मूल्य चार आना।

बालकोपयोगी पुस्तकें।

बालविनोद—प्रथमभाग ─) द्वितीयभाग ─)॥ तृतीयभाग ─) ये तीनों भाग लड़के लडकियोंके लिये प्रारम्भिक शिक्षा देनेमें बडे उपकारी हैं। रंगीन तसवीरें और उपदेशपूर्ण कविताएं दी हैं।

लडकोंका खेल—इसमें ८४ चित्र हैं। बच्चोंको हिन्दी पढानेके लिये बडे कामकी किताव है। कैसाही खिलाड़ी वालक हो, इस कितावसे पढ़ना लिखना जरूर सीख लेगा। मूल्य ढाई आना।

खेलतमाशा—इसमें सुन्दर सुन्दर तसवीरोंके साथ गद्य और पद्य भाषा लिखी गई है। वालक इसे वडे चावसे पढकर याद कर लेते हैं। पढानेका पढ़ाना और खेलका खेल। मूल्य दो आना।

वच्चोंका खिलाना—इसे लेकर वालक खुशीके मारे उछलने लगते हैं। वच्चोंके लिये ऐसी अच्छी किताव अभीतक कहीं नहीं छपी। मूल्य पाच आना।

भाषा पत्रवोध—इसमें हिन्दीमें चिट्ठी पत्री लिखनेकी रीतिया बड़ी उत्तमतासे लिखी गई हैं। इसे पढ़कर छोटे २ बालक और स्त्रिया पत्रव्यवहार करना सीख लेती हैं। मूल्य डेड आना।

वालस्वास्थ्यरक्षा—इसमें वतलाया गया है कि, मनुष्य किस प्रकार रहकर किस प्रकारका भोजन करके नीरोग रह सकता है। प्रतिदिन वर्तावमें आनेवाली खानेकी चीजोंके गुण दोषोंका भी इसमें अच्छी तरह वर्णन किया है। वालकोंके समान वृद्ध युवा भी इससे लाभ उठा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके यहा रहने योग्य पुस्तक है। मूल्य आठ आना।

वालनीतिमाला—शुक, विदुर, चाणिक्य और कर्णिकके नीतिग्रन्थोंका इसमें सरल अनुवाद किया है। मूल्य आठ आना।

वालोपदेश—भर्तृहरिकृत नीतिशतकका पूरा और वैराग्यशतकका संक्षिप्त और अतिशय सरल हिन्दी अनुवाद। पाठशालाओंमे पढाने योग्य है। मूल्य चार आना।

वालपंचतंत्र—विष्णुशर्माके पंचतंत्र ग्रन्थका सरल हिन्दीमें सार। मूल्य आठ आना।

वालहितोपदेश—प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ हितोपदेशका अत्यन्त सरल हिन्दीमें सार। मूल्य आठ आना।

वालहिन्दीव्याकरण—लडके और लडकियोंके पढानेके लिये वहुत ही उपयोगी व्याकरण। १३६ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य चार आना।

हिन्दीव्याकरण—वावू गंगाप्रसादकृत। यह नये ढंगका हिन्दीव्याकरण जैनपरीक्षालयमें भरती किया गया है। तीन आना।

प्रवोधचन्द्रिका—श्रीमान् राजा उदयप्रतापसिंह सी. एस. आई भिनगानरेशकी वनाई हुई अंग्रेजी पाठय पुस्तकका हिन्दी गद्यपद्यमय अनुवाद है। इस पुस्तकको भी जैनपरीक्षालयने भरती किया है। मूल्य वारह आना।

लाला मुंशीलालजी जैनी एम. ए. की वनाई हुई पुस्तकें।

१ **छात्रोंकेलिये उपदेश**—विद्यार्थियोंके लिये उत्तम वहुत उत्तम ।)॥
२ **क्षत्रचूडामणि**—मूल और हिन्दी अनुवाद ॥)
३ **पवित्रजीवन और नीतिशिक्षा**— -)॥
४ **शान्तिसार**— -)॥
५ **शीलसूत्र**—कैरक्टर विल्डिंग थौट पौरका अनुवाद -)॥
६ **दरिद्रतासे श्रेय**—[फिरसे छप रहीहै] ≈)
७ **शील और भावना**—वारहभावनाओंका स्वरूप -)॥

श्वेताम्वर जैन विद्वानोंके वनाये हुए ग्रन्थ।

जगत्कर्तृत्वमीमांसा—यति वालचन्द्रकी रची हुई इस पुस्तकमें यह सिद्ध किया है कि ईश्वर सृष्टिका कर्ता नहीं है। प्रत्येक जैनोंके पढने योग्य पुस्तक है। आर्यसमाजियों और पौराणिकोंसे जिन्हें वातचीत करनेका मौका पड़ता है, उन्हें तो जरूर पास रखना चाहिये। मूल्य आठ आना।

जैनतत्वदिग्दर्शन—श्रीविजयधर्मसूरि रचित। यह निवन्ध श्रीविजयधर्मसूरिने कलकत्तेके धर्मपरिषदमें सन् १९०९ में पढा था। जैनधर्मका स्वरूप वहुत खूवीके साथ दिखलाया है। इस व्याख्यानकी वडी प्रशंसा हुई थी मूल्य चार आना।